॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
१६८

श्रीमद्रामदैवज्ञविरचितः

मुहूर्तचिन्तामणिः

दैवज्ञ-गोविन्दज्योतिर्विद्विरचितया

'पीयूषधारा'ख्यव्याख्यया समलङ्कृतः

स च

'मणिप्रदीप'-हिन्दीटीकोपेतः

व्याख्याकार

श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी

सम्पादक

डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

साहित्य-आयुर्वेद-आचार्य

एम. ए., पी-एच्. डी., ए. एस-सी.

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के-37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी-221001

दूरभाष : (0542) 2335263

संस्करण : 2014

मूल्य : 500.00

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

अन्य प्राप्तिस्थान :

धार्मिक ... चौखम्बा ... 697/... गली ... 37

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38. यू. ए. बंग्लो रोड़, जवाहर नगर,

पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली - 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA
168

MUHŪRTACINTĀMANI

OF

ŚRĪ RĀMA DAIVAJÑA

Along with

PĪYŪSADHĀRĀ' Sanskrit Commentary

OF

ŚRĪ GOVINDA JYOTIRVID

&

'Manipradeep' Hindi Commentary

By

Shri Vindhyeshwari Prasad Dwivedi

Edited by

Dr. Brahmananda Tripathi

Sahityacharya, Ayurvedacharya

M. A., Ph. D., D. Sc. A.

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

Publishers :
CHAUKHAMBA SURBHARTI PRAKASHAN
(Oriental Publisher or Distributors)
K - 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129, Varanasi 221001
Tel. : 2335263

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road,
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel : 3299391, 23286537
E-mail : Chaukhamba_neeraj@yahoo.com

❖

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bunglow Road,
Jawahar Nager,
Poset Box No. 2113
Delhi - 110007

❖

CHOWKHAMBA VIDYBHAVAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varnasi 221001

Printer :
A. K. Lithographer
Delhi

प्राक्कथन

वेद के षडङ्गों में ज्यौतिषशास्त्र का अन्यतम स्थान है। वेदों में सूर्य, चन्द्रमा तथा दूसरे कतिपय नक्षत्रों के लिए देवत्वरूप में स्तुतिपरक ऋचाएँ उपलब्ध होती हैं। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में ग्रह-नक्षत्रों के प्रति वैदिक ऋचाओं जैसी रहस्यात्मकता के स्थान पर उनके रूप, रंग, गुण और प्रभाव आदि का विचार किया गया है।

ज्यौतिषशास्त्र को सर्वप्रथम गणित और फलित रूपों में ही स्वीकार किया गया था, बाद में यह **स्कन्ध-त्रय** के नाम से कहा जाने लगा, जिसको **सिद्धान्त, संहिता** और **होरा** इन तीन भागों में विभाजित किया गया। सम्प्रति उक्त विभाजन ने पञ्चात्मक (होरा, गणित, संहिता, प्रश्न और निमित्त) रूप धारण किया है। आज के ज्यौतिष का क्षेत्र और भी विस्तृत होकर जीव-विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान, रसायन-विज्ञान और चिकित्सा-विज्ञान आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित हो चुका है।

होरा ज्यौतिष को जातक भी कहते हैं। जन्मकुण्डली में द्वादश भावों के शुभ-अशुभ फल का विवेचन करना ही होराशास्त्र का विषय है। वराहमिहिर, नारचन्द्र, सिद्धसेन, ढुण्ढिराज, केशव, श्रीपति और श्रीधर आदि ज्योतिर्विद् होरा ज्यौतिष के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं।

गणित ज्यौतिष में कालगणना, सौर-चान्द्रमासों का प्रतिपादन, ग्रह-गतियों का निरूपण, प्रश्नोत्तर विवेचन और अक्षक्षेत्र सम्बन्धी अक्षज्या, लम्बज्या, द्युज्या, कुज्या आदि का निरूपण है।

संहिता ज्यौतिष के अन्तर्गत भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, आयाद्यानयन, गृहोपकरण, इष्टिकाद्वार, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, मुहूर्तगणना, उल्कापात, दृष्टिविचार, ग्रहों के उदय-अस्त का विचार और ग्रहण-विवेचन आदि का समावेश है।

प्रश्न ज्यौतिष का सम्बन्ध मनोविज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है। इसमें प्रश्नाक्षर, प्रश्नलग्न और स्वरज्ञान का विचार प्रश्नकर्ता के हाव-भाव और आंगिक चेष्टाओं के आधार पर भी किया जाता है। इसी का सहयोगी **केरल ज्यौतिष** भी है।

शकुन ज्यौतिष का ही नाम **निमित्तशास्त्र** भी है, इसमें लक्षणों के अनुसार शुभाशुभ फलों का वर्णन किया जाता है।

ज्यौतिषशास्त्र की प्राचीनता—'वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम्' के अनुसार इसकी उपलब्धि हमें वेदों से लेकर परवर्ती सभी साहित्य में विविध भाँति से होती है।

ज्यौतिषशास्त्र का काल-विभाजन

१. अन्धकार युग	आदिकाल से १०००० ई० पू० तक
२. उदयकाल	१०००० से ५०० ई० पू० तक
३. आदिकाल	५०० ई० पू० से ५०० ई० तक
४. पूर्वमध्यकाल	५०० ई० से १००० ई० तक
५. उत्तरमध्यकाल	१००० ई० से १६०० ई० तक
६. आधुनिककाल	१६०० ई० से आज तक

अन्धकारयुग—संसार के सर्वविषयक इतिहासों का आरम्भ अन्धकार युग से ही विद्वानों ने माना है। इस युग का सम्पूर्ण ज्यौतिष-विषयक ज्ञान अध्यात्म-प्रिय ऋषियों की चिन्तनपूर्ण विचारधारा में मिला हुआ है।

उदयकाल—यह काल वैदिक संहिताओं की सीमा के परिवेश में स्थिर किया गया है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि वैदिक वाङ्मय के प्रधान विषयों में मास, ऋतु, वर्ष, अयन, युग, ग्रह, ग्रहण, नक्षत्र, विषुव, दिनमान और रात्रिमान सम्बन्धी चर्चाएँ ज्यौतिषशास्त्र के उदय की समर्थ सामग्री है।

वेद के चक्षुःस्वरूप इस त्रिस्कन्धात्मक ज्यौतिषशास्त्र के प्रवर्तक अठारह महर्षियों का उल्लेख काश्यपसंहिता में इस क्रम से है—सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पौलिश, च्यवन, यवन, भृगु और शौनक।

आदिकाल—ज्यौतिषशास्त्र को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में सामने आने का सुअवसर इसी युग में मिला। पहले ज्यौतिष की आवश्यकता केवल यज्ञों की सम्पन्नता तक ही सीमित थी, बाद में धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक विषयों की व्यवस्थाओं में भी इसकी उपयोगिता होने लगी।

पूर्वमध्यकाल—त्रिस्कन्ध ज्यौतिष की बारीकियों का विकास इसी युग की देन है। अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित सम्बन्धी सिद्धान्तों के निर्माण का समय यही है। फलित ज्यौतिष इसी युग की अमूल्य देन है। आचार्य वराहमिहिर का ज्यौतिष सम्बन्धी उपहार भारतवासियों को इसी युग में मिला।

उत्तरमध्यकाल—यद्यपि इस युग में कुछ मौलिक ग्रन्थ भी रचे गये हैं, तथापि इसको हम पूर्वोक्त महत्त्वपूर्ण ज्यौतिषग्रन्थों के व्याख्या काल के रूप में पाते हैं। इस काल की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं में आचार्य नीलकण्ठ के अनुज **रामदैवज्ञ** की कृति **मुहूर्तचिन्तामणि** प्रमुख है। संहिता ज्यौतिष के समस्त विषयों का समाधान इस ग्रन्थ द्वारा हो जाता है। इसमें गणित तथा फलित के आवश्यक विषयों का अनुपम संकलन है। अतएव इसका सुयश विद्वत्समाज में इतना अधिक व्याप्त है कि इसको समसामयिक तथा परवर्ती सभी विद्वानों ने ज्यौतिष-सिद्धान्तों की कसौटी मान लिया है। श्रीरामदैवज्ञ ने अपने ग्रन्थ के अन्त में अपना जो वंशक्रम दिया है, वह इस प्रकार है—

श्रीरामदैवज्ञ का वंशक्रम

चिन्तामणि (गर्गगोत्र)
|
अनन्त (पद्मा–स्त्री)
|
नीलकण्ठ (शक १५०९) — राम (शक १५२२)
|
गोविन्द (नीलकण्ठ के पुत्र)
|
माधव

श्रीनीलकण्ठ के पुत्र श्रीगोविन्द ने मुहूर्तचिन्तामणि पर सर्वप्रथम **पीयूषधारा** नामक सुप्रसिद्ध व्याख्या लिखी। इसके अनन्तर उक्त ग्रन्थ के अधिकाधिक लोकप्रिय होने के कारण अनेक विद्वानों ने इसकी टीका लिखने में अपना-अपना बुद्धिकौशल प्रदर्शित किया।

वाराणसेय चौखम्बा सुरभारती के अधिकारियों की प्रेरणा से **श्रीधर्मदत्तपुत्र पण्डित विन्ध्येश्वरी प्रसाद** जी ने अपने ज्यौतिषशास्त्रीय अध्ययन तथा चिरन्तन अनुभवों से इस संस्करण को सर्वविध अद्यतन बनाने का सफल प्रयास किया है। आशा है, इससे विद्वज्जन प्रसन्न एवं छात्रवर्ग लाभान्वित होगा।

विदुषां वशंवदः

डॉ० ब्रह्मानन्दत्रिपाठी

भूमिका

अनन्त स्वच्छाकाश-मण्डल के अन्तर्गत जब चन्द्रमा के प्रकाश का अभाव रहता है, तब असंख्य चमकते हुए छोटे-छोटे दिखलाई पड़ने वाले पिण्डों को ज्योतिः (प्रकाशवान्) पिण्ड कहा गया है। इनका तथा अन्यान्य ग्रहों का प्रभाव प्रति क्षण भूमण्डल पर पड़ता रहता है। फलस्वरूप नाना प्रकार की परिस्थितियाँ (भूकम्प, उल्कापात, निर्घात-निःस्वन, परिवेष, धूल-बडम्बर आदि) दिखलाई पड़ती हैं। इनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप का अध्ययन करके हमारे दिव्य-दृष्टिसम्पन्न त्रिकालदर्शी महर्षियों ने विश्वकल्याण हेतु ग्रहनक्षत्रों से सम्बन्धित तिथि-नक्षत्र-योग-वार-प्रवृत्ति आदि के योग से उत्पन्न शुभ-अशुभ समयादि का निर्देश अपने-अपने ग्रन्थों में किया है, जिन्हें संहिता कहा गया है। श्रीनारद-पुराण में संहिता का लक्षण निम्न रूप में वर्णित है—

'संहिताशास्त्ररूपं च ग्रहचारोऽब्दलक्षणम्।
तिथिवासरनक्षत्रयोगतिथ्यर्धसंज्ञकाः ॥ १ ॥
मुहूर्तोपग्रहाः सूर्यसङ्क्रान्तिर्गोचरः क्रमात्।
चन्द्रताराबलं चैव सर्वलग्ना लवादयः ॥ २ ॥
आधानपुंससीमन्तजातनामान्नभुक्तयः ।
चौलं कर्णच्छिदा मौञ्जी छुरिकाबन्धनं तथा ॥ ३ ॥
समावर्तनवैवाहप्रतिष्ठासद्मलक्षणम् ।
उत्पत्तिर्लक्षणञ्चैव सर्वसङ्क्षेपतो ब्रुवे' ॥ ४ ॥

श्रीनारद के मतानुसार—१ ब्रह्मा, २ आचार्य, ३ वसिष्ठ, ४ अत्रि, ५ मनु, ६ पौलस्त्य, ७ लोमश, ८ मरीचि, ९ अंगिरा, १० व्यास, ११ नारद, १२ शौनक, १३ भृगु, १४ च्यवन, १५ यवन, १६ गर्ग, १७ कश्यप एवं १८ पराशर—ये १८ ऋषि ज्यौतिषशास्त्र के प्रवर्तक माने गये हैं—

'ब्रह्माऽऽचार्यो वसिष्ठात्रिमनुपौलस्त्यलोमसा।
मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः ॥
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ॥'

इन आचार्यों के परवर्ती ऋषिकल्प शास्त्रसागर के पारंगत विशिष्ट विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों (यथा—सर्वश्री वराहमिहिराचार्य ने ईसा से

१४८ वर्ष[१] पूर्व पंचसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता, बृहज्जातक, श्रीपति ने जातकपति में, वल्लालसेन ने अद्भुतसागर, नारायण दैवज्ञ ने मुहूर्तमार्तण्ड, गणपति ने मुहूर्तगणपति, भर्तृहरि ने राजमार्तण्ड इत्यादि) में उन्हीं संहितोक्त विषयों को दिग्देशकालानुसार जनसमूह के कल्याणार्थ सरल करके लिखा है। प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थकारों के वचनों का संग्रह कर निबन्धकारों ने ज्योतिर्निबन्ध, बृहद्दैवज्ञरञ्जन आदि निबन्ध-ग्रन्थों की रचना की है।

आस्तिक हिन्दुओं के समस्त क्रिया-कलाप आदिकाल से उन्हीं त्रिकालदर्शी मुनियों तथा आचार्यों के वचनानुसार होते आ रहे हैं, आगे भी होते रहेंगे। भगवदनुग्रह अथवा पूर्वजन्मकृत अपूर्व पुण्य के प्रभाव अथवा आस्तिक जनों के सुकृत से श्रीअनन्तदैवज्ञ के पुत्र श्रीरामदैवज्ञरचित मुहूर्तचिन्तामणि नामक यह ग्रन्थ समस्त आवश्यक जीवनोपयागी मुहूर्तों, गण्डादि शान्तियों एवं विविध विषयों से सम्पन्न और लोकप्रिय हो गया है कि सभी प्रान्तों—महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, पञ्जाब, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बंगाल तथा नेपाल आदि के प्रकाण्ड मनीषीगण इसे अत्यन्त प्रामाणिक मानते हैं। इसी के अनुसार सभी धार्मिक कार्य किये जाते हैं।

इस ग्रन्थ की गूढ ग्रन्थियों को सुझलाने के लिए ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं प्रमिताक्षरा नाम की संस्कृत टीका लिख कर इस मणि की प्रभा को समुज्ज्वल बना दिया है। ग्रन्थकर्त्ता के भ्रातुष्पुत्र श्रीगोविन्ददैवज्ञ ने अपने प्रखर पाण्डित्य से ऊहापोह पूर्वक इस ग्रन्थ को सोने में सुगन्धि डाल कर उत्कृष्टतम बना दिया है।

यह ग्रन्थ १३ प्रकरणों में विभाजित है। प्रत्येक प्रकरण में विषयों का समुचित एवं सुस्पष्ट वर्णन उपलब्ध है। स्थान-स्थान पर श्रीगोविन्ददैवज्ञ ने आवश्यक विषयों का (यथा—नक्षत्र-जनन, रेवत्यादि नक्षत्रों की शान्ति, अमावास्या की शान्ति आदि) सन्निवेश कर इसे महोपयोगी बनाया है। किस प्रकरण में कौन-कौन से विषय हैं, इनका उल्लेख विषय-सूची में सुस्पष्ट है।

किन्तु यह ग्रन्थ एवं इसकी टीकाएँ (मिताक्षरा तथा पीयूषधारा) संस्कृत भाषा में होने से साधारण पढ़े-लिखे पुराहितों एवं कर्मकाण्डियों के लिए दुरूह हो गया है। साथ ही इस युग में दुर्भाग्यवश विश्व-भाषा की जननी संस्कृत भाषा का पठन-पाठन भी बिल्कुल शिथिल पड़ गया है तथा निश्चित नियमविहीन अनियमित उच्चारण आदि दोषों से संयुक्त अंग्रेजी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के मोहजाल ने अंग्रेजीयत के भक्त, नाम मात्र के हिन्दू

---

१. पूज्य करपात्रीजी रचित 'रामायण-मीमांसा' पृ० ८७४ द्रष्टव्य है।

कहलाने वाले भारतीयों से संस्कृत का सम्बन्ध विच्छेद करा दिया है। कितने भारतीय तो अपने को भूल कर संस्कृत की निन्दा भी करने लग गये हैं।

इन सब कारणों से संस्कृत और भी जटिल हो गई है। इसलिए व्यापारिक दृष्टि से अनेक जटिल समस्याओं में फँसी रहने पर भी संस्कृत से स्नेह रखने वाले पुस्तक-सम्पादकों, संस्कृत-पुस्तकों के विक्रेताओं ने हिन्दी भाषा के माध्यम से संस्कृत भाषाओं में निर्मित वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, ज्यौतिष, वैद्यक, सांख्ययोग आदि ग्रन्थों को आस्तिक जनों के समक्ष प्रस्तुत करने का निश्चय करके लोकोपकार का व्रत-सा ले लिया है।

अत एव अनेक पुस्तक-विक्रेताओं ने विद्वानों से हिन्दी टीका लिखवा कर इस मुहूर्तचिन्तामणि को भी प्रकाशित किया है। उनमें कई टीकाएँ बड़ी सुन्दर, सुबोध एवं उपयोगी भी हैं। किन्तु कतिपय विद्वानों ने कुछ स्थलों—जैसे षड्वर्ग में होरा-त्रिशांश, वधू-प्रवेश, द्विरागमन ग्रहों का उच्च-नीच और दशम लग्न साधन आदि—पर अर्थ का अनर्थ कर नारदसंहिता, बृहत्पाराशर-होराशास्त्र आदि आर्ष-ग्रन्थों के आधार पर चलने वाले त्रिस्कन्ध के मर्मज्ञ श्रीवराहमिहिराचार्य को अनार्षवादी एवं ग्रीक वालों से रिश्वत (घूस) लेने का आरोप लगा डाला है। क्या घूस ली, क्यों घूस ली, इसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया। फलित विकास में द्विरागमन व्यवस्था आदि में लिखित अनर्गल लेखों का दिग्दर्शन भी इस मुहूर्तचिन्तामणि की टीका में यथास्थान करा दिया है।

(१) किसी टीकाकार ने शुभाशुभ-प्रकरण के ६ठे श्लोक की पीयूषधारा टीका में काशीखण्ड के १३५वें अध्याय में लिखित 'दन्तानां काष्ठसंयोगात्' का अर्थ काष्ठ-संग्रह कर डाला है।

(२) 'मघादिपञ्चपादेषु' इसकी टीका में ४।३°।२०' तक ही पाँच पाद की समाप्ति कही है। इसकी पुनरावृत्ति भी की गयी है। अतः यह भ्रम नहीं कहा जा सकता, अपितु यह उनके अज्ञान का परिचायक ही कहा जायेगा।

(३) १।५५ श्लोक में अपने अनोखे गणित-ज्ञान का भी परिचय दिया है। यथा—दूसरी होरा के लिए इष्ट २।३१ × २ = ५।२ ÷ ५।० = शेष = ५।२–० = ५।२ ÷ ७ = शेष ५।

यहाँ २।३१ × २ = ५।२ ÷ ५।२ यह समीकरण प्रथम बार बना। इसका रूपान्तर = २।३१ = $\frac{५।२}{५।०}$ अव्यक्त के अभाव में ऐसा समीकरण कैसे बन गया? इसे टीकाकार ही समझ सकते हैं। यह अन्य गणितज्ञों की बुद्धि से परे का समीकरण है।

आगे भी ऐसे समीकरण दिये गये हैं—

२४–० = २४ ÷ ७ = शेष ३। यहाँ भी इसका रूपान्तर करने से $\frac{२४}{७}$ = ३ शेष। अतः २४ = ३ × ७ अथवा २४ = २१ हो गया।

ऐसे ही अनेक अद्‌भुत समीकरण बनाये गये हैं। जिनसे गणित का अपूर्व ज्ञान सुस्पष्ट हो जाता है। भूमिका में भी अयनांशानयन के प्रसंग में १२ राशि × ३० = ३६० अंश × ६० के तुल्य किया गया है। ऐसे ही आगे के भी समीकरण बनते गये हैं। इससे अद्‌भुत गणित-ज्ञान की प्रेरणा मिलती है। ऐसे ही कई स्थानों में ग्रन्थ की कठोरता सरल की गई है।

मुहूर्त देखने की विधि

तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण इन ५ को पञ्चाङ्ग कहते हैं। इन्हीं के आधार पर शुभ समय निश्चित किया जाता है। इन पाँचों का परिचय और इन्हीं पाँचों के आपस में मिलने से अनेक शुभ अथवा अशुभ फल देने वाले समय प्राप्त होते हैं, उनका ज्ञान रखना परम आवश्यक है।

अमावस्या तिथि के दिन सूर्य-चन्द्र दोनों एक राशि पर आ जाते हैं। उसके बाद सूर्य एवं चन्द्रमा आकाश में अपने-अपने मार्ग पर घूमते हुए जो दूरी उत्पन्न करते हैं, उसी को तिथि कहा गया है। १२°–१२° अन्तर की एक-एक तिथि होती है। ३६०° पूरा होने पर पुनः सूर्य-चन्द्र एक राशि पर आ जाते हैं, तब एक चान्द्रमास होता है। सूर्य-चन्द्र का १२° अन्तर जितने समय में पूरा होता है, उसको तिथि का भोगकाल कहते हैं। तिथि का अन्तर जिस समय से प्रारम्भ होता है, वह पचाङ्ग में अंकित रहता है। इसका ज्ञान करने की विधि यह है—राश्यादि चन्द्रमा में राश्यादि सूर्य को घटाने से जो राश्यादि शेष बचे उसका अंशादि बनाकर उसमें १२ का भाग देने पर प्राप्त लब्धि गत तिथियों की संख्या हो जाती है, शेष वर्तमान तिथि का भुक्तांश होता है। इस भुक्तांश पर से घटी-पल बनाकर पंचांग में लिख देते हैं।

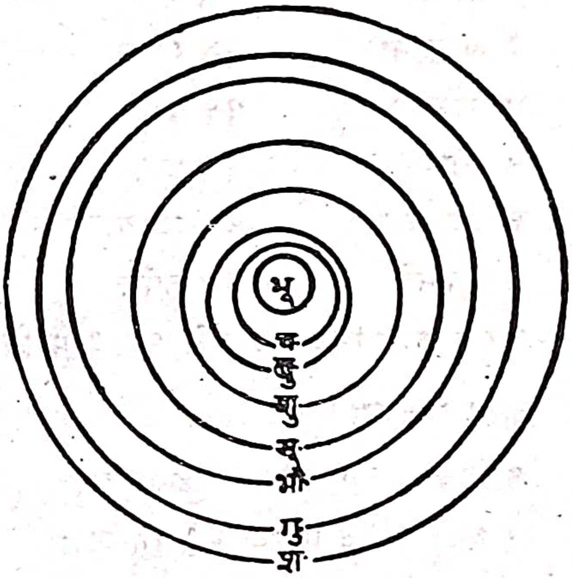
जब १, २, ३, ४ आदि तिथियों में चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती रहती हैं, उसको शुक्लपक्ष और जिस समय चन्द्रमा की कलाएँ घटने लगती हैं, उसे कृष्णपक्ष कहा जाता है। इसलिए चान्द्रमास में दो पक्ष कहे गये हैं। जब चन्द्रमा की कलाएँ पूर्णता को प्राप्त हो जाती हैं तो उसे पूर्णिमा एवं घटते-घटते जब कला हीन हो जाती है तो वह अमावस्या कही जाती है। तिथियों के पर्यायवाची शब्द १।३ की टीका में देखें।

वार—जब किसी वस्तु का निरीक्षण होता है, तब उत्कृष्ट वस्तु पर ही दृष्टि पड़ती है। उसके अनन्तर तत्सम या उससे न्यून पर दृष्टि पड़ती है। इस स्वयंसिद्ध नियम के अनुसार हमारे ऋषि-मुनियों की दृष्टि सर्वप्रथम

सूर्य पर पड़ी, इसलिये पहला वार सूर्य का निश्चित हुआ। उसके बाद चन्द्रमा पर दृष्टि पड़ी, इसलिये दूसरा वार चन्द्रमा का कहा गया। सूर्यकक्षा से नीचे चन्द्रकक्षा ४ है। इससे ४।४ कक्षा के वार निश्चित किये जायें, इस दृष्टि से चन्द्रमा से चौथी मंगल, मंगल से चौथी बुध, बुध से चौथी गुरु, गुरु से चौथी शुक्र, शुक्र से चौथी शनि की कक्षा पड़ती है। इस प्रकार ऋषियों ने वार-क्रम निश्चित कर विश्व का महान् उपकार किया है।

भूबिम्ब के ऊपर—

१ली कक्षा चन्द्रमा की
२री कक्षा बुध की
३री कक्षा शुक्र की
४थी कक्षा सूर्य की
५वीं कक्षा भौम की
६ठी कक्षा गुरु की
७वीं कक्षा शनि की



वारों के नाम तथा पर्यायवाची शब्द—

रविवार—भानु, सूर्य, बुध्न, भास्कर, दिवाकर, सविता, प्रभाकर, तपन, दिवेश, दिनेश, अर्क, दिवामणि, चण्डांशु, द्युमणि आदि।

सोमवार—चन्द्र, विधु, इन्दु, निशाकर, शीतांशु, हिमरश्मि, जडांशु, मृगांक, शशांक, हरिपाल।

भौमवार—कुज, भूमितनय, आर, भीमवक्त्र, अंगारक।

बुधवार—सौम्य, वित्, ज्ञ, मृगांकजन्मा, कुमारबोधन, तारापुत्र।

गुरुवार—बृहस्पति, ईज्य, जीव, सुरेन्द्र, सुरपूज्य, चित्रशिखण्डितनय, वाक्पति।

शुक्रवार—उशना, आस्फुजित्, कवि, भृगु, भार्गव, दैत्यगुरु।

शनिवार—मन्द, शनैश्चर, रवितनय, रौद्र, आर्कि, सौरि, पंगु, शनि।

नक्षत्र—सूर्य जिस मार्ग से भ्रमण करता है, उसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। यह वृत्त ३६०° का होता है। इसका समान १२ भाग करने से १।० राशि और २७ भाग कर देने से १।१ नक्षत्र कहा गया है। यह चन्द्र से सम्बन्ध

रखता है। अतः स्पष्ट राश्यादि चन्द्रमा को कलात्मक बनाकर ८०० से भाग देने पर लब्धिगत नक्षत्र-संख्या शेष वर्तमान नक्षत्र की भुक्तकला होती है। इसका आनयन भी गणितानुसार होता है। नक्षत्रों के नाम ग्रंथ के २।१ श्लोक में निर्दिष्ट हैं। एवं सूर्य-चन्द्र के योग में ८०० से भाग देने पर नक्षत्र के समान ही गणित करने पर योग आ जाते हैं, जिनके नाम निम्नलिखित हैं—

१ विष्कुम्भ	८ धृति	१५ वज्र	२२ साध्य
२ प्रीति	९ शूल	१६ सिद्धि	२३ शुभ
३ आयुष्मान्	१० गण्ड	१७ व्यतीपात	२४ शुक्ल
४ सौभाग्य	११ वृद्धि	१८ वरीयान्	२५ ब्रह्म
५ शोभन	१२ ध्रुव	१९ परिघ	२६ ऐन्द्र
६ अतिगण्ड	१३ व्याघात	२० शिव	२७ वैधृति
७ सुकर्मा	१४ हर्षण	२१ सिद्धि	

करण का परिचय ग्रंथ के १।४३ में निर्दिष्ट है।

काल परिभाषा—

१ दिन = ६० घटी = २४ घण्टा

१ घटी = ६० पल = २½ मिनट

१ पल = ६० विपल = २½ सेकेण्ड

भारतीय परिभाषा विदेशी परिभाषा से २½ भाग से सूक्ष्म है।

मास—यह ३ तरह का होता है—१. सौर, २. चान्द्र तथा ३. सावन।

(१) एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक सौरमास माना जाता है।

(२) अमावस्या से लेकर दूसरी अमावस्या तक चान्द्रमास होता है। देश-विशेष में यह चान्द्रमास पूर्णिमा से पूर्णिमा तक भी माना जाता है।

(३) दो सूर्योदय के अन्तर को सावन दिन कहते हैं। यह सावन मास वार से सम्बन्ध रखता है।

इनकी उपयोगिता इस प्रकार है—

(१) मुण्डन, उपनयन, विवाह तथा प्रायः सभी संस्कार वधू-प्रवेश, द्विरागमन, वर्षवृद्धि आदि में सौर वर्ष का प्रयोग होता है।

(२) गृहप्रवेश, गेहारम्भ (इनमें सूर्य-चान्द्र दोनों का प्रयोग होता है) पितृ-कार्य, जन्मदिनोत्सव आदि में चान्द्रमास प्रयुक्त होता है।

(३) यज्ञ में, जन्मकाल के कार्य, प्रसूति-स्नान आदि, दैनिक कार्य में सावन दिन लिया जाता है।

मासों के नाम

चान्द्रमास	सौरमास
चैत्र	मेष
वैशाख	वृष
ज्येष्ठ	मिथुन
आषाढ	कर्क
श्रावण	सिंह
भाद्रपद	कन्या
आश्विन	तुला
कार्तिक	वृश्चिक
मार्गशीर्ष	धनु
पौष	मकर
माघ	कुम्भ
फाल्गुन	मीन

प्रचलित सावन मास भारतीय नहीं है। इसको सूर्य की संक्रान्ति के आधार पर अंग्रेजों ने माना है। सौर–श्रावण का मेल प्रायः निम्न प्रकार से होता है—

सौरमास	अंग्रेजी मास
मेष	१४ अप्रैल से १४ मई
वृष	१४ मई से १५ जून
मिथुन	१५ जून से १६ जुलाई
कर्क	१६ जुलाई से १७ अगस्त
सिंह	१७ अगस्त से १७ सितम्बर
कन्या	१७ सितम्बर से १७ अक्टूबर
तुला	१७ अक्टूबर से १६ नवम्बर
वृश्चिक	१६ नवम्बर से १५ दिसम्बर
धनु	१५ दिसम्बर से १४ जनवरी
मकर	१४ जनवरी से १२ फरवरी
कुम्भ	१२ फरवरी से १४ मार्च
मीन	१४ मार्च से १३ अप्रैल

सूर्य की तीव्र एवं मन्द गति के कारण तारीखों में अनिवार्य अन्त

भारती-भक्त बाबू रामदास गौड़ जी, अध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ने मेष-वृष आदि मासों के प्रचारार्थ प्रयास किया था, किन्तु मानसिक गुलामी के कारण लोगों ने उसका लेशमात्र भी आदर नहीं किया।

अयन—वर्ष में सौम्यायन (उत्तरायण) और याम्यायन (दक्षिणायन) दो अयन माने गये हैं। कुछ कार्य सौम्यायन में एवं कुछ कार्य दोनों अयनों में होते हैं। जिनका विवरण पुस्तकाध्ययन से ज्ञात होगा। उपर्युक्त तिथि-वार-नक्षत्र-योग से अनेक प्रकार के सुयोग बनते हैं, जो प्रस्तुत पुस्तक में सन्नि-विष्ट हैं। ग्रन्थाध्ययन के पूर्व उक्त विषयों का अभ्यास कर लेने पर ग्रन्थाभ्यास में बड़ा सौकर्य होगा।

प्रस्तुत संस्करण में पीयूषधारा में उद्धृत आचार्य-वचनों का स्मरण करते हुए मूलग्रन्थ के विषय को अधिकाधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। मैंने स्थान-स्थान पर कूपचक्र, दीक्षा, ग्रहसारणी इत्यादि विषय को बोधगम्य बनाने के लिए प्रस्तुत प्रयास किया है। इस टीका में प्रमादवश जो त्रुटियाँ रह गई हों, विद्वज्जन उनका सुधार कर लेगें तथा मुझे भी सूचित करेंगे।

विद्वज्जनानुचर

विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
	२२१

(५) संस्कारप्रकरणम्

(१३) गृहप्रवेशप्रकरणम्

।। श्रीः ।।

श्रीरामदैवज्ञप्रणीतः

मुहूर्तचिन्तामणिः

'पीयूषधारा'-'मणिप्रभा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतः

(१) शुभाशुभप्रकरणम्

श्रीगणेशाय नमः ।।

दधानं भृङ्गालीमनिशममले गण्डयुगले
ददानं सर्वार्थान्निजचरणसेवासुकृतिने ।
दयाधारं सारं निखिलनिगमानामनुदिनं
गजास्यं स्मेरास्यं तमिह कलये चित्तनिलये ।। १ ।।

निपीतध्वान्ताय प्रसृमरकरायोग्रमहसे
निकामं कामानां वितरणविनोदव्यसनिने ।
समस्तप्रत्यूहप्रशमनकृते श्रीदिनकृते
नमस्तस्मै यस्मै स्पृहयति समस्ताम्बुजननी ।। २ ।।

लसल्लक्ष्मीलीलावसतिरनिशं वेदविहित-
स्फुरद्धर्माधारः श्रितसुखपयोदः प्रतिदिनम् ।
अतीव प्रख्यातः स जयति गुणानां जननभू-
र्विदर्भाख्यो देशो हरिरिव सदानन्दजनकः ।। ३ ।।

तस्मिन्विदर्भविषये विषये वितृष्णश्चिन्तामणिर्द्युमणिरेव बभूव मूर्तः ।
जाग्रच्चतुर्मुखचतुर्मुखशायिविद्यामाद्यां प्रवर्तयितुमत्र पवित्रकीर्तिः ।। ४ ।।

वादैर्विजित्य धरणीतलमासमुद्रमुन्निद्रतर्कशतकर्कशबुद्धिसिद्धैः ।
चत्वार ऊर्जितसमर्जितकीर्तिदम्भस्तम्भा दिशासु रचिताः सकलासु येन ।। ५ ।।

ज्योतिर्विदुज्ज्वलयशोहरणाय किं वा चन्द्रांशुनिर्मलकलाभरणाय किं वा !
विद्यासरोरुहदृशः शरणाय किं वा श्रीमाननन्त इति तत्तनयोऽजनिष्ट ।। ६ ।।

यस्मात्पद्माख्यपत्न्यामतिविमलमती वाक्पती दिक्पतीना-
माशाः कासारजाभस्फुरदधिकयशोरश्मिभिर्व्याप्य भातौ ।

प्राभूतां तौ तनूजौ श्रुतिगणगदिताचारधारापवित्रौ
ज्येष्ठः श्रीनीलकण्ठस्तदनु गुणगणालङ्कृतो रामनामा ॥ ७ ॥
सीमा मीमांसकानां कृतसुकृतचयः कर्कशस्तर्कशास्त्रे
ज्योतिःशास्त्रे च गर्गः फणिपतिभणितिव्याकृतौ शेषनागः ।
पृथ्वीशाकव्वरस्य स्फुरदतुलसभामण्डनं पण्डितेन्द्रः
साक्षाच्छ्रीनीलकण्ठः समजनि जगतीमण्डले नीलकण्ठः ॥ ८ ॥
रामो हेरम्बभक्तेरधिगतविशदानेकविद्योऽनवद्यो
बुद्धिप्रद्योतमानो गणितगुणवतां मानवानां सुखाय ।
ग्रन्थैर्नानाप्रकारैरतिकठिनतरग्रन्थनक्रे विशाले
ज्योतिःशास्त्रार्णवे द्राग्दृढतरमतुलं सेतुबन्धं चकार ॥ ९ ॥
श्रुतिस्मृतिप्रोक्तसमस्तकर्मोपयुक्तमानन्दितशिष्टलोकम् ।
मुहूर्तचिन्तामणिनामकं स ग्रन्थं व्यधाच्छर्वपुरे स्वपद्यैः ॥ १० ॥
श्रीनीलकण्ठस्य बभूव पत्नी सा चन्द्रिकाख्योभयवंशभूषा ।
नारायणस्येव समुद्रकन्या शर्वस्य गौरीव विराजते या ॥ ११ ॥
तस्माद्दैवविदग्रगण्यतिलकाच्छ्रीनीलकण्ठात्तया
गोविन्दाख्यसुतोऽजनि स्वगुरुतः सम्प्राप्तविद्यागणः ।
यः शास्त्रामृतसिन्धुबन्धुरवचोवीचीषु नित्योदितां
सानन्दं समवाप्य भूरि कृतवान् ग्रन्थे श्रमं ज्यौतिषे ॥ १२ ॥
अनेकबुधमण्डलीविरचितां हि टीकाकृतौ
निधाय हृदयेऽर्थनामिह मुहूर्तचिन्तामणेः ।
निगूढतरतद्गतप्रचुरभावमात्मोक्तिभि-
र्बुधाविवरणे करामलकमाशु कर्तुं यते ॥ १३ ॥
मुहूर्तचिन्तामणिदुग्धसिन्धुमामथ्य युक्तिव्रजमन्दरेण ।
गोविन्दसंज्ञस्तनुते सुखाय पीयूषधारां भुवि भूसुराणाम् ॥ १४ ॥
तत्रादितो गाणपतं प्रणम्य पादाब्जयुग्मं विदुषां सुतुष्टयै ।
शुभाशुभाध्यायभवां हि टीकां गोविन्ददैवज्ञ इमां करोति ॥ १५ ॥

अथ ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयमवश्यमिति शिष्टाचारः । उक्तञ्च महाभाष्ये—'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि च' इति । तच्च मङ्गलं त्रिविधम्—'आशीरूपं नमस्काररूपं वस्तुनिर्देशरूपं च' इति । उक्तञ्च दण्डिना काव्यादर्शे—'आशीर्नमस्क्रिया-वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इति । वस्तुनिर्देशो नलादेर्महाराजराजस्य सिद्धादि-शब्दानां वा ग्रन्थादौ कथनम् । तत्र तावद् गार्ग्यमुनिवरवंशतिलकमैत्रावरुणालङ्कारदिगन्त-गतमातृपुरनिवासी सकलज्योतिर्विन्मुकुटरत्नचिन्तामणिज्योतिर्वित्पुत्रानन्तज्योतिर्वित्पुत्रो नीलकण्ठज्योतिर्विदनुजो रामज्योतिर्वित्त्रिस्कन्धज्योतिःशास्त्रसरोजनिचयभास्करो ग्रन्थ-कृन्मुहूर्तचिन्तामणिनामकं श्रौतस्मार्ताद्यनेककर्मौपयिकं संहितास्कन्धान्तर्गतनानामुहूर्त-सङ्ग्रहरूपं ज्योतिषग्रन्थं चिकीर्षुरनेकजन्मोपार्जितदुरितसम्भूतविघ्नध्वंसकामो निर्विघ्न-

ग्रन्थसमाप्तिप्रचयगमनार्थं विशिष्टशिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताककर्माभिमत-गणेशदेवताऽऽशीर्वादरूपं मङ्गलमिन्द्रवज्राच्छन्दसोपनिबध्नाति—

गौरीश्रवःकेतकपत्रभङ्गमाकृष्य हस्तेन दधन्मुखाग्रे।
विघ्नं मुहूर्ताकलितद्वितीयदन्तप्ररोहो हरतु द्विपास्यः ॥ १ ॥

पीयूषधारा—गौरीत्यादिना । द्विपास्यो विघ्नं हरत्वित्यन्वयः । युष्माकमित्यध्याहारः । द्विपस्य हस्तिन आस्यमिवास्यं मुखं यस्य स द्विपास्यो गणेशो युष्माकं विघ्नं हरतु निराकरोतु । 'आशिषि लिङ्लोटौ' इति लोट् । कीदृशो द्विपास्यः ? गौरीश्रवः-केतकपत्रभङ्गं गौरी पार्वती तस्याः श्रवसी कर्णौ तयोः स्थितं यत्केतकपत्रं केतकीवृक्षस्य पुष्पं केतकं तस्य पत्रस्य भङ्गोंऽशस्तं हस्तेन शुण्डादण्डेन कृत्वा आकृष्य हठाद् गृहीत्वा मुखाग्रे स्वमुखोष्ठे दधाति भक्षणार्थं स्थापयतीति दधत् । अनेन बाललीला गणेशस्य सूचिता । बालो हि मातृसमीपवर्ति यत्किञ्चित्स्वेष्टं वस्तु बलात्कारेण गृहीत्वा मुखे निक्षिपति । अत एव कीदृशो गणेशः ? मुहूर्ताकलितद्वितीयदन्तप्ररोहः । मुहूर्तेन क्षणेनाकलितः, धातूनामनेकार्थत्वात् अनुहृतो हस्तिद्वितीयदन्तसादृश्यं प्रापितो द्वितीय-दन्तस्य प्ररोह उद्गमो येन सः । अनेनात्याश्चर्यं सूचितं भवति । तथा हि—हस्तिनो दृश्यमाना द्विदन्ता एव । गणेशस्त्वेकदन्त एवेति पुराणप्रसिद्धम् केतकपत्रस्य मुख-स्थापनसमये यावन्निगरणं करोति तावद् गणेशोऽपि द्विदन्त एवालोकि लोकैः । अद्भु-तोपमाख्योऽलङ्कारः । उक्तं च दण्डिना काव्यादर्शे—'यथाकथञ्चित्सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते । उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोऽयं प्रदृश्यते ॥ यदि किञ्चिद् भवेत्पद्मं सुभ्रु विभ्रान्तलोचनम् । तत्ते मुखश्रियं धत्तामित्यसावद्भुतोपमा ॥' इति । श्लोकार्थो व्या-ख्यातः । अत्र गणेशस्य नमनादिरूपा पूजा ब्रह्मवैवर्तेऽभिहिता—'ढुण्ढिराजः प्रियः पुत्रो भवान्याः शङ्करस्य च । तस्य पूजनमात्रेण त्रयोऽपि वरदाः सदा ॥' त्रयो ब्रह्मविष्णु-शिवाः । 'गणेशः सर्वदेवानामादौ पूज्यः सदैव हि । सर्वैरपि महाविघ्ननाशकोऽन्यो न विद्यते ॥' इति । शिष्टाचारोऽप्येतन्मूलक एव । यथा—'सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥' इति । गौरीति । 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष् । केतकं केतक्याः पुष्पम् । संज्ञेयमवयवार्थे । 'अवयवे च प्राण्यौषधिवृक्षेभ्यः' इत्यण् । 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' इति तस्य लुक् । दधत् दधातीति दधत् । शतृप्रत्यये जौहोत्यादिकत्वाद्विकरणस्य शपः श्लौ सति 'श्लौ' इति द्विवचने 'उभे अभ्यस्तम्' इत्यभ्यस्तसंज्ञायां 'श्नाभ्यस्तयोरातः' इत्याकारलोपः । तत 'उगि-दचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' इति प्राप्तस्य 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमोऽभावः । आकलि-तेति 'निष्ठा' इति बहुव्रीहौ निष्ठान्तस्य पूर्वनिपातः । द्विपास्य इति । द्वाभ्यां शुण्डादण्ड-मुखाभ्यां जलं पिबतीति द्विपः । 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कः । 'आतो लोप इटि च' इत्याकारलोपः । द्विपस्यास्यमिवास्यं यस्यासौ द्विपास्यः । 'सप्तम्युपमानपूर्वस्य वाच्यो वोत्तरपदलोपश्च' इति बहुव्रीहिः समास उत्तरपदलोपश्च । 'हस्तौ तु पाणिनक्षत्रे'

इति हस्तशब्दः पाणिनक्षत्रवाचकतथाप्युपचाराद्धस्तिशुण्डायामपि वर्तते । अत एव 'हस्ताज्जातौ' इति वदन्पाणिनिरप्यत्रानुकूलः । क्षीरस्वाम्यपि 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यस्य व्याख्याने हस्तिशुण्डोऽपि कर उपचारादिति व्याचख्यौ । तद्वत्प्रस्तुतेऽपि । 'हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्करेभकरयोरपि' इति विश्वप्रकाशे हस्तिशुण्डावाचकत्वमप्युक्तं हस्तशब्दस्य । अथात्र कवित्वे भङ्गशब्दोऽनुचितः । तथा हि—'लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्' इति काव्यलक्षणस्यात्र कवित्वे सत्त्वात् यस्मिन्कस्मिंश्चित्पद्ये भङ्गशब्दोपादानमयुक्तम् । विशेषतो ग्रन्थारम्भभूते । कुतः—'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' इति काव्यप्रकाशकारोक्तेर्दोषरहितयोः शब्दार्थयोः काव्यता विधीयते । तत्र शब्ददोषप्रस्तावे काव्यप्रकाशकारेण दोषोल्लासे—'दुष्टं पदं श्रुतिकटुच्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम् । निहतार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलम् । सन्दिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत्क्लिष्टम् । अविमृष्टविधेयांशं विरुद्धमतिकृत्समासगतमेव ॥' इति शब्ददोषा उक्ताः । तत्र भङ्गशब्देनासभ्यार्थान्तरकत्वादश्लीलाख्यो दोषोऽभिहितो भवति । तल्लक्षणं वामनेनोक्तम्—'असभ्यार्थान्तरमसभ्यस्मृतिहेतुश्चाश्लीलम्' इति । अस्यार्थः—यस्य पदस्यानेकार्थस्यैकोऽर्थोऽसभ्यः स्यात्तदसभ्यार्थान्तरम् । यथा वर्च इति पदं तेजसि पुरीषे च । यत्तु पदमेकदेशद्वारेणासभ्यमर्थं स्मारयति तदसभ्यस्मृतिहेतु, यथा कृकाटिकेति । एवं भङ्गशब्दोऽपि नानार्थः । तरङ्गरचनाशकलपराजयनाशादीनामर्थानां प्रकरणं विना स्फुरणादसभ्यार्थान्तरस्य नाशस्य प्रतीतेरश्लीलत्वम् । काव्यप्रकाशेऽप्यश्लीलोदाहरणम्—'पितृवसतिमहं व्रजामि तां सह परिवारजनेन यत्र मे । भवति सपदि पावकान्वये हृदयमशेषितशोकशल्यकम् ॥' अत्र पितृवसतिशब्देन पितुर्गृहमिति विवक्षितम् । तत्र श्मशानार्थस्यापि प्रतीतेरश्लीलत्वादमङ्गलार्थत्वम् । कथं तर्हि—'भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम्' इति कालिदासः । अथ भङ्गशब्देन पराजयो विवक्षित इत्यश्लीलत्वमिति चेत्, सत्यम्—तत्र हि युद्धप्रस्तावे स्वरूपान्वाख्यानाददोषः । प्रस्तुते ग्रन्थारम्भे प्रकरणमपि नास्त्यतो भङ्गशब्दपाठोऽनुचितः । तस्माद् 'गौरीश्रवःकेतकवालपत्रम्' इति पाठः साधीयान् (कल्प्यः । केचिदत्र पाठे बह्वक्षरपरिवर्तनभयात् 'गौरीश्रवःकेतकवालपत्रभागम्' इति पठन्ति) । तदेतत्सर्वं मत्सररहितैः सूरिभिर्विवेचनीयम् । अथ काव्यत्वादेव प्रसङ्गतो वर्णगणशुद्धिर्विचार्यते । तत्र श्लोकादावसंयुक्तशुभाशुभफलदगकारप्रक्षेपादस्ति वर्णशुद्धिः । तदुक्तं भामहेन—'कः खो गो घश्च लक्ष्मीं वितरति च यशो ङस्तथा चः सुखं छः प्रीतिं जो मित्रलाभं भयमरणकरौ झञौ टठौ खेददुःखे । डः शोभां ढो विशोभां भ्रमणमथ च णस्तः सुखं थश्च युद्धं दो धः सौख्यं मुदं नः सुखभयमरणक्लेशदुःखं पवर्गः ॥ यो लक्ष्मी रश्च दाहं व्यसनमथ लवौ शः सुखं पश्च खेदं सः सौख्यं हश्च खेदं व्यसनमथ च लः क्षः समृद्धिं करोति । संयुक्तं चेह न स्यात्सुखमरणपटुर्वर्णविन्यासयोगः पद्यादौ गद्यवक्त्रे वचसि च सकले प्राकृतादौ समोऽयम् ॥' इति । तेन नायकादेः सुखं भवति । 'अक्षरे परिशुद्धे तु नायको भूतिमृच्छति' इति वचनात् । प्रस्तुते ग्रन्थकर्तुरध्येतुरध्यापकस्य वा सुखं वाच्यम् । अथ गणशुद्धिः । तत्रास्मिन्पद्ये इन्द्रवज्राछन्दः । तल्लक्षणं वृत्तरत्नाकारेणोक्तम्—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तु जगौ गः' इति । तत्र गणलक्षणमपि तेनैवोक्तम्—

'सर्वगुर्मो मुखान्तलौ यरावन्तगली सती। ग्मध्याद्यौ ज्भौ त्रिलो नोऽष्टौ भवन्त्यत्र गणास्त्रिकाः ॥' इति। एषां गणानां फलमन्यैरभ्यधायि—'मकारः श्रियं योऽतिवृद्धिं ररोगं सकारश्च देशाटनं द्रव्यहानिम्। तकारो जकारो रुजं भश्च कीर्तिं न आयुः प्रयच्छत्यजस्रं जनानाम्।' इति वचनादिदं फलमध्यापकाध्येतृप्रभृतीनां ज्ञेयम्। एवं सति द्रव्यहानिरूपफलदस्य तगणस्यादौ प्रयोगाद् दुष्टमिदं काव्यमिति चेत्, सत्यम्—'उमा कात्यायनी गौरी' इति वचनाद् गौरीशब्दो देवतावाचकस्तस्यादौ प्रयोगाद् दुष्टफलत्वं नास्तीति समाधिः। यथोक्तम्—'देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥' इति। नन्वेवमपीन्द्रवज्रालक्षणासङ्गतिः। पादान्तस्थाक्षरस्य 'ह्रस्वं लघु' इति लघुसंज्ञकत्वात् 'संयोगे गुरु' 'दीर्घं च' इति विशेषलक्षणानाक्रान्तत्वेन गुरुत्वायोगाच्च। उच्यते—'पादान्तस्थलस्य गोरपि वैकल्पिकगुरुत्वाददोषः।' यथोक्तं वृत्तरत्नाकरे—'सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः। वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको लृजुः ॥' इत्यलमतिप्रसङ्गेनेति शिवम् ॥ १ ॥

* मणिप्रभा *

मङ्गलाचरणम्

गौरीगिरीशात्मजमेकदन्तं समस्तविघ्नौघविनाशदक्षम्।
अशेषवृन्दारकवृन्दवन्द्यं प्रणम्य मूर्ध्ना मतिलब्धिसिद्ध्यै ॥ १ ॥
गुरोः पदाम्भोजयुगं च नत्वा यत्पादपाथोजकृपाप्तबोधः।
श्रीधर्मदत्तस्य सुतो हि विन्ध्येश्वरीप्रसादाख्यमहीसुरोऽहम् ॥ २ ॥
अनन्तदैवज्ञसुतस्य रामदैवज्ञवर्य्यस्य कृते निबन्धे।
मुहूर्तबोधाय मणिप्रदीपे मुहूर्तचिन्तामणिनामधेये ॥ ३ ॥
सुगूढग्रन्थाशयबोधनाय छात्रोपकाराय विदां च तुष्ट्यै।
करोमि टीकां सरलां सुबोधां हिन्दीगिरा तद्विदुषां हिताय ॥ ४ ॥

हिन्दी—पार्वतीजी के कान में पहने हुए कर्णभूषण-स्थानीय केतकी के फूल के पत्ते के टुकड़े को हाथ (सूँड़) से खींच कर मुख के अग्र भाग में देते हुए, क्षणभर के लिए दूसरे दाँत के निकलने की शोभा को प्राप्त करने वाले पार्वतीपुत्र श्रीगणेशजी सभी के विघ्नों को दूर करें ॥ १ ॥

एवमादिपद्येनेष्टदेवताशीर्वादरूपमङ्गलमभिधायेदानीं ज्योतिषग्रन्थमारभमाणो रामज्योतिर्विद्विषयप्रयोजनसम्बन्धाधिकारिणः सूचयन् कर्तव्यमुपजातिकया प्रतिजानीते—

क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम्।
अनन्तदैवज्ञसुतः स रामो मुहूर्तचिन्तामणिमातनोति ॥ २ ॥

क्रियाकलापेति। सः प्रसिद्धो जगतीतलेऽनन्ताख्यो दैवज्ञो ज्योतिर्वित् तस्य सुतः पुत्रो रामो रामज्योतिर्वित् मुहूर्तचिन्तामणिम् मुहूर्तानां दिनशुद्धिविशेषाणाम्। अथवा

मुहूर्तशब्देन दिनस्य रात्रेर्वा पञ्चदशो विभाग उच्यते। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'दिनस्य यः पञ्चदशो विभागो रात्रेस्तथा तद्धि मुहूर्तमानम्' इति। तत्र लक्षणया मुहूर्तोपलक्षितः कालो मुहूर्तशब्देन विवक्ष्यते। तस्य चिन्ता शुभाशुभरूपो विचारस्तस्य मणिरिव मुहूर्तचिन्तामणिः। यथा मणिर्हीरकादिः समस्तकान्तीनामाधारस्तथाऽयमपि ग्रन्थो निखिलमुहूर्तानामाधार इत्यन्वर्थनामानं लक्षणया मुहूर्तचिन्तामणिज्योतिषग्रन्थमातनोति। निषेधविध्यादिसन्निवेशविशेषेण निरूपयतीत्यर्थः। ननु जीर्णा अपि मुहूर्तग्रन्थाः सन्ति, तैरेव निखिलमुहूर्तविचारनिर्वाहे सिद्धे किमनेन जीर्णमुहूर्तग्रन्थानुवादभूतेनेत्यत आह—कीदृशं मुहूर्तचिन्तामणिम्? क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुम्। क्रिया जातकर्मनामकर्मादिकास्तासां कलापः समूहस्तस्य अमुकस्मिन् शुभदिने कार्यमेतस्मिन्नशुभदिने न कार्यमित्येवंरूपा प्रतिपत्तिः सम्यक् ज्ञानं तस्य हेतुं कारणम्। अयमर्थः—अन्येषु मुहूर्तग्रन्थेषु तिथिप्रकरणे कर्मविशेषेषु शुभाशुभतिथयो निरूपिताः। एवं वारप्रकरणे वारा एव। तथा नक्षत्रप्रकरणे नक्षत्राण्येव। योगप्रकरणे योगा एव। लग्नप्रकरणे लग्नान्येवाभिहितानि। एवं सत्यखिलप्रकरणानां पुनः पुनरान्दोलनेन मुहूर्तविचारः प्रसिध्येदिति गौरवमस्ति। अत्र त्वेकस्मिन्नेव पद्ये यो यो मुहूर्तो विचार्यते तस्य तस्य तत्रैव निर्वाह इति लाघवम्। यथा—'नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम्। विना नन्दाविषघटीमधुपौषार्किभूमिजान्॥' इत्यादि। केचित्तु 'क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतोः' इति पञ्चम्यन्तपाठमाहुः। ननु मुहूर्ततत्त्वादावपि क्वचिदेवंविधमुहूर्तनिरूपणाद् व्यर्थोऽयं श्रम इत्यत आह—कीदृशं मुहूर्तचिन्तामणिम्? सङ्क्षिप्तसारार्थविलासगर्भम्। सङ्क्षिप्तशब्दैः सारार्थो निष्कृष्टार्थस्तस्य विलासः प्रकाशः स गर्भे यस्यासौ। सङ्क्षिप्तश्चासौ सारार्थविलासगर्भश्च संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भस्तमिति कर्मधारयः। यद्यपीदानीन्तनग्रन्थेषु शब्दलाघवेनार्थबाहुल्यमस्ति तथापि शब्दानां दुःखबोधार्थत्वाद् गुरुमुखादप्यध्ययने सति झटिति मनस्यर्थास्फुरणाच्चेत्यनुपादेयत्वम्। अत्र तुशब्दोऽपि लाघवं, तत्रापि निष्कृष्टस्याप्यर्थस्य तादृशशब्दैर्निरूपणाद्यथागुरुमुखं विनैवार्थज्ञानं सद्यो मनसि जागर्तितरामित्यवश्यमुपादेयत्वमस्य ग्रन्थस्य। ननु किमभिधेयार्थकमिदं शास्त्रम्? प्रयोजनमपि किम्? 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तत' इति न्यायात्। उक्तञ्च—'सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते॥' अन्यच्च—'ज्ञातार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते। ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः॥' इत्युच्यते। मुहूर्तचिन्तामणिमित्यनेनैव पदेन सर्वं सूचितम्। तथा हि—शुभाशुभप्रकरणनक्षत्रप्रकरणसङ्क्रान्तिगोचरप्रकरणसंस्कारविवाहप्रकरणवधूप्रवेशाग्न्याधानराज्याभिषेकयात्राप्रकरणगृहारम्भगृहप्रवेशमुहूर्तसमुदायाः संहितापदार्थाः प्रतिपाद्यत्वेन विषयभूताः। यद्यपि वसिष्ठादिभिः सूर्यचाराद्युत्पातादिकमपि संहितापदार्थेष्वभ्यधायि तथाप्यत्र तेषां मुहूर्तविचारेऽनुपयोगाद् ग्रन्थकृता नोक्तमिति तात्पर्यम्। मुहूर्तानां प्रतिलक्षणं लौकिकविचारार्हत्वेन तदभिधानात्। अत्राभिधेयपदार्थानां मुहूर्तचिन्तामणिनामकग्रन्थस्य च प्रतिपाद्यपतिपादकभावः सम्बन्धः। प्रयोजनं शुभाशुभकथनं विवाहादिकालनिर्णयश्च। यदाह नारदः—'प्रयोजनं तु जगतः शुभाशुभनिरूपणम्।' कश्यपोऽपि—'ग्रहणग्रहसङ्क्रान्ति-

यज्ञाध्ययनकर्मणाम् । प्रयोजनं व्रतोद्वाहक्रियाणां कालनिर्णयः ॥' एतज्जिज्ञासुरधिकारी, स च द्विज एव नान्यः । तदुक्तं नारदेनैव—'सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम् । वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम् । विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिध्यति । तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ अत एव द्विजैरेतदध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥' इति । अत्रैवकारस्य पाठक्रमेण योजने प्रयोजनं विनैव ज्योतिःशास्त्राध्ययनस्यावश्यकत्वं प्रतीयते । द्विजैरेवेति व्याख्याने द्विजव्यतिरिक्तैः शूद्रैर्नाध्येयमिति च प्रतीयते । व्याख्याद्वयमपि युक्तमेव । द्विजाः—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः । उक्तञ्च काशीखण्डे—'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजाः स्मृताः । प्रथमं मातृतो जन्म द्वितीयं चोपनायनात् ॥' इति । यत्तु वसिष्ठवचने—'अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिःशास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम् । एतद् बुध्वा सम्यगाप्नोति नूनं धर्मं चार्थं मोक्षमग्र्यं यशश्च' इति । श्रुतावपि—'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति । ब्राह्मणग्रहणमध्यापनेऽप्यावश्यकत्वसूचनार्थम् । अत एव महाभारते—'यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ । अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा ब्राह्मणः स्मृतः ॥' इति । क्षत्रियविशोस्त्वध्ययने एवाधिकारो नाध्यापने । तदुक्तं मनुना—'प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशेत् ॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वाणिज्यं च कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥' इति । अत्र प्रजारक्षणाद्युक्तेर्नाध्यापनाधिकारः । ननु कथं ज्योतिषं श्रौतस्मार्तकर्मौपयिकम् ? इति चेदुच्यते—'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत', तथा 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत', 'दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत' इत्यादिश्रुतयः सन्ति । तत्र वर्षज्ञानमादित्यादिग्रहचारपरिच्छेदसाध्यं, तस्य वसन्ताद्यृतूनां च दर्शपौर्णमासयोश्च ज्ञानं ज्यौतिषं विना सर्वथैव न निर्वहतीत्यवश्यमध्येतव्यं ज्योतिःशास्त्रम् । उक्तञ्च वेदाङ्गज्योतिषे—'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः । तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥' अत एव वेदस्य मुख्यमिदमङ्गं चक्षूरूपत्वात् । तदप्युक्तं तत्रैव शिक्षायाम्—'छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।' तथा—'यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा । तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥' इति । एवं मुख्यतायां सत्यां दृष्टान्तो वसिष्ठसिद्धान्ते—'वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत्प्रधानताङ्गेषु ततोऽर्थजाता । अङ्गैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किञ्चित् ॥' तस्मात्कर्मौपयिकत्वादवश्यमध्येयं ज्योतिःशास्त्रम् । तत्राध्ययने समीचीनशिष्या एवाध्याप्या न कृतघ्नादयः । तदुक्तं श्रुतौ—'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि । असूयकायानृजवे शठाय न मां ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥' इति । समरसारेऽपि—'नैतद्देयं दुर्विनीताय जातु ज्ञानं गुप्तं तद्धि सम्यक् फलाय । अस्थाने हि स्वाप्यमानैव वाचां देवी कोपाग्निर्दहेन्नो चिराय । विनयावनताय दीयमाना प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय । उपकृत्यनुचिन्तकानि शास्त्राण्युपकारस्य पदं हि साधुरेव ॥' इति । सिद्धान्तशिरोमणावपि—'दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियं यदृषिभिर्ब्राह्मं वसिष्ठादिभिः पारम्पर्यवशाद्रहस्यमवनौ नीतं प्रकाश्यं

ततः । नैतद्द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां स्यादायुःसुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झतः ॥' इति । एवं सत्यस्मिञ्ज्योतिःशास्त्रे सर्वथा शूद्राणामनधिकारः । उक्तञ्च मनुना—'एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥' इति । नारदवाक्यं तु प्रागेवाभिहितम् । तत्र यदि ब्राह्मणः शूद्रं लोभादिना पाठयति तस्माच्च पठति तदा महान् दोषः । यदाह गर्गः—स्नेहाल्लोभाच्च मोहाच्च यो विप्रोऽज्ञानतोऽपि वा । शूद्राणामुपदेशं तु दद्यात्स नरकं व्रजेत् ॥ अग्रं ददाति यः शूद्रः सकृत्षोडशकर्मणाम् । अधोयुगसहस्रान्ते जायते श्वानयोनिषु । सम्यगाचारयुक्तोऽपि यः शूद्रः सर्वशास्त्रवित् । वर्जयेद्वचनं तस्य कपालस्थोदकं यथा ॥' इति । कपालं=मनुष्यशिरोमध्यवर्त्यस्थि । 'भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितश्च यः । तावुभौ पतितौ विप्रौ स्वाध्यायक्रयविक्रयात् ॥' इति सामान्यतो हेमाद्रौ देवलस्मरणाच्च । अथैवंविधस्य ज्योतिःशास्त्रस्याध्येतुर्माहात्म्यमाह माण्डव्यः—'एवंविधस्य श्रुतिनेत्रशास्त्रस्वरूपभर्तुः खलु दर्शनं वै । निहन्त्यशेषं कलुषं जनानां षडब्दजं धर्मसुखास्पदं स्यात् ॥' इति । अत्र ज्ञानविशेषेण ज्योतिर्विदः पूज्यतातारतम्यं जीर्णैरभ्यधायि—'दशदिनकृतपापं हन्ति सिद्धान्तवेत्ता त्रिदिनजनितदोषं तन्त्रविज्ञः स एव । करणभगणवेत्ता हन्त्यहोरात्रदोषं जनयति घनमंहश्चात्र नक्षत्रसूची ॥' नक्षत्रसूची दैवज्ञो घनं बहु अंहः पापं जनयति । तल्लक्षणं वाराहसंहितायाम्—'अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते । स पङ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥' अन्यच्च—'तिथ्युत्पत्तिं न जानन्ति ग्रहाणां नैव साधनम् । परवाक्येन वर्तन्ते ते वै नक्षत्रसूचकाः ॥' इति । व्युत्पत्तिस्तु—गृहे गृहे गत्वाऽपृष्ट एव नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि शुभाशुभफलसूचकानि सूचयतीति नक्षत्रसूची । वराहः—'नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः । स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडम्बिना । नक्षत्रसूचकं पापं भिषजं शुल्कजीविनम् । तादृक्पौराणिकादींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ।' अत एव वसिष्ठः—'त्रिस्कन्धपारङ्गम एव पूज्यः श्राद्धे सदा भूसुरवृन्दमध्ये । नक्षत्रसूची खलु पापरूपो हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये ॥' वराहोऽपि—'ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव कृत्स्नं जानाति यो द्विजः । अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पङ्क्तिपावनः ॥ नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता । चतुर्भूतोऽपि यत्रैव पापं तत्र न विद्यते ॥ मुहूर्तं तिथिनक्षत्रमृतवश्चायनानि च । सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात्सांवत्सरो यदि ॥' अत एव यद्धर्मशास्त्रे सुमन्तुः—'तस्करकितवेत्यादिना महता गद्येन सांवत्सरिकोऽपाङ्क्तेय' इत्याह । महाभारतेऽपि—'कितवो भ्रूणहा लक्ष्मी' इत्यादिपद्यषट्कमध्ये—'कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति । एतानिह विजानीयाद् ब्राह्मणान् पङ्क्तिदूषकान् । इत्युक्तं, तन्नक्षत्रसूचकज्योतिर्विद्विषयम् । यदाह कश्यपः—'दार्त्विग्भ्रूणहन्तॄंश्च व्यङ्गान्नक्षत्रसूचकान् । वर्जयेद् ब्राह्मणानेतान्सर्वकर्मसु यत्नतः ॥' इति । 'नक्षत्रसूचकश्चैव पर्वकारश्च गर्हितः' इति । ब्रह्मपुराणेऽप्युक्तम् । अपृष्ट इति वाक्यशेषोऽत्राध्याहार्यः । अत एव मनुः—'तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्न नक्षत्राणि निर्दिशेत्' इत्याहस्म । यमोऽपि—'नक्षत्रतिथिपुण्याहान्मुहूर्तान्मङ्गलानि च । न निर्दिशन्ति ये विप्रास्तैर्भुक्तं ह्यक्षयं भवेत् ॥' इति । वसिष्ठवाक्यं तु प्रागभिहितम् । महाप्रयोजनं त्वेतच्छास्त्रस्य सम्यग्ज्ञानाद् ब्रह्मसायुज्यमिति । तदुक्तं गर्गेण—'ज्योतिश्चक्रे

तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम् । ज्योतिर्ज्ञानं च यो वेद स याति परमां गतिम् ॥' परमां गतिम् = ब्रह्मसायुज्यमिति । सूर्यसिद्धान्तेऽपि—'दिव्यं चक्षुर्ग्रहर्क्षाणां दर्शितं ज्ञान-मुत्तमम् । विज्ञायार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥' वराहसंहितायामपि—'न सांवत्सरपाठी च नरके परिपच्यते । ब्रह्मलोकं प्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः ॥' इति । संवत्सरं वर्षमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सांवत्सरः । 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' इत्यण् । आदिवृद्धिः । तं पठितुं शीलमस्य स सांवत्सरपाठी ज्योतिर्विदुच्यते । वसिष्ठेन त्वैहि-कामुष्मिकरूपं फलद्वयमप्युक्तं प्राक्—एतद् बुद्ध्वा सम्यगाप्नोति नूनं धर्मं चार्थं मोक्ष-मग्र्यं यशश्च ॥' इति । तस्माज्ज्योतिःशास्त्रमवश्यमध्येतव्यमिति स्थितम् । ननु ज्योतिः-शास्त्राध्ययनं न्यायशास्त्रादिवत् किं वादमात्रफलम्, उत चिकित्साशास्त्रवत्प्रत्यक्षदृश्य-फलम् ? उच्यते—दृष्टे सम्भवत्यदृष्टकल्पना न न्याय्येति दृष्टार्थताप्यस्य शास्त्रस्य । वादरूपं तु फलं सर्वेष्वपि शास्त्रेषु तुल्यम् । उक्तञ्च—'अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं न किञ्चिदेषां भुवि दृष्टमस्ति । चिकित्सितं ज्योतिषमन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमाव-हन्ति ॥' प्रत्ययं = विश्वासं संवादरूपम् । नन्वस्मिन् शास्त्रे के वा प्रत्यया इति चेत्पृच्छसि, तर्हि शृणु । सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणं जगतीतले आबालवृद्धेभ्यो महान् प्रत्ययः । उक्तञ्च—'अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् । प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ ॥' अथान्येऽपि प्रत्ययाः चन्द्रशृङ्गोन्नतिर्ग्रहयुतिश्च सूर्यादीनां ग्रहाणां च्छायागणितागता । यद्यपि भौमादीनां छाया दृग्गोचरा नास्ति तथापि नलि-कादियन्त्रवेधेन यस्मिन्समये सुषिरमध्ये ग्रहा गच्छन्ति तत्समयसंवादादर्थापत्तिप्रमाण-सिद्धा छायापि प्रत्ययः । शुक्रस्य तु महामण्डलत्वं छाया दृग्गोचरापि भवति । ग्रहाणां चन्द्रादीनां द्विविधा अप्यस्तोदयाः । एके सूर्यासन्नवशेन, अपरे प्रत्यहं क्षितिजसम्बन्ध-वशात् । ततोऽपि सूर्यासन्नवशतो भौमगुरुशनीनां प्राच्यामेवोदयः, प्रतीच्यामेवास्तः । बुधशुक्रयोस्त्वनियतः । क्षितिजसम्बन्धवशेन तु सर्वेषामपि सूर्यादीनां प्राच्यामेवोदयः प्रतीच्यामेवास्तः । अथायुर्दायस्येयत्ता । यात्रायां शुभशकुने शुभफलम्, अशुभशकुनेऽशुभ-फलम् । यज्ञोपवीतविवाहादिमङ्गलकृत्येषु शुभलग्नानुष्ठितेषूक्तफलावाप्तिः । यत्र क्वचिद् व्यभिचारः स जन्मकालीनसदसद्ग्रहवशेन । एवमादयोऽपि प्रत्यया ऊह्याः । सर्वेषामपि शास्त्राणामध्ययने मोक्षाद्यदृष्टरूपं फलं तु वाचनिकमेव, तदस्मिन्नपि शास्त्रे तुल्य-मित्यलमतिप्रसक्तानुप्रसक्तेनेति शिवम् ॥ २ ॥

हिन्दी—श्रीअनन्तदैवज्ञ के पुत्र जगत्प्रसिद्ध रामदैवज्ञ क्रिया (गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि संस्कारों, व्यापार, क्रय-विक्रय, व्यवहार, कृषिकर्म, यात्रा आदि व्यावहारिक कार्यों) की सफलता का कारण-स्वरूप थोड़े ही शब्दों में समस्त गूढार्थों को प्रकट करने वाले मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ की रचना करते है ॥ २ ॥

अथ मुहूर्तचिन्तामणिनामकग्रन्थप्रकरणप्रतिज्ञामभिधायेदानीं सामान्यतो मुहूर्त-विचारार्थमुत्सर्गापवादरूपा गुणा दोषाश्च तावद्वक्तव्याः, तेषां च तिथ्याद्यधीनत्वादादौ तिथयो वक्तव्याः, तासां तु लोकप्रसिद्धत्वादेवावक्तव्यतायां सिद्धायां तत्स्वामिन एवा-नुष्टुप्छन्दसाभिदधाति—

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः ।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी ॥ ३ ॥

तिथीशा इति ॥ एते पञ्चदशतिथीनां क्रमेणेशाः स्वामिनस्तानाह—वह्निकावित्यादि । वह्निश्च कश्च वह्निकौ, वह्निः अग्निः, को ब्रह्मा । अत्र 'देवताद्वन्द्वे च' इत्यानङ् न भवति । एकहविर्भाक्त्वेन प्रसिद्धसाहचर्याभावात् । नन्वेवम् 'अल्पाच्तरं पूर्वम्' इति द्वन्द्वे कशब्दस्य पूर्वनिपातप्राप्तिः । 'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ' इति ज्ञापकेन पूर्वनिपातप्रकरणमनित्यमित्यनित्यत्वात्क्रमस्य विवक्षितत्वाच्च न भवति । एवं सति प्रतिपदो वह्निर्द्वितीयाया ब्रह्मा स्वामीत्ययमर्थः सिद्धो भवति । अथवा 'तिथीशोऽग्निर्विधिर्गौरी' इत्यसन्देहार्थमेव पठितव्यम् । 'ईश ऐश्वर्ये' इति धातुः कर्त्रर्थेक्विबन्तस्तस्माद् वहुवचनं जस् । ईशते इतीशाः, तिथीनामीशास्तिथीशाः तिथिस्वामिन इत्यर्थः । अथवा 'तिथीशा रो विधिर्गौरी' इति व्यक्तं पठनीयम् । ईशशब्दोऽकारान्तः । रशब्देनाग्निरुच्यते । 'रः पावके च तीक्ष्णांशौ' इति विश्वः । 'रश्च कालेऽनले सूर्ये' इत्येकाक्षरनिघण्टुः । रोऽग्निः, विधिर्ब्रह्मा, गौरी पार्वती, गणेशः प्रसिद्धः, अहिः सर्पः, गुहः स्वामिकार्तिकेयः, रविः सूर्यः, शिवो महादेवः, दुर्गा जगदम्बा, अन्तको यमः, विश्वे विश्वेदेवाः, हरिर्विष्णुः, कामो मदनः, शिवः स एव, शशी चन्द्रः । तदाह वसिष्ठः— 'वह्निर्विधाताऽद्रिसुता गणेशः सर्पो विशाखो दितिजो महेशः । दुर्गा यमो विश्वहरी च कामः शर्वो निशेशश्च पुराणदृष्टाः ।' इति । स्वामिन इति शेषः । प्रयोजनं तु तत्तद्देवताप्रतिष्ठापूजादि । तथा च वाराहसंहितायामुक्तम्—'यत्कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम् । करणमुहूर्तेष्वपि तत्सिद्धिकरं देवतानां च ॥' इति । नारदोऽप्याह— 'यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः ।' अग्निपुराणेऽपि—'प्रतिपद्यग्निपूजा स्याद् द्वितीयाया च वेधसः । दशाम्यामन्तकस्यापि षष्ठ्यां पूजा गुहस्य च ॥ चतुर्थ्यां गणनाथस्य गौर्यास्तत्पूर्ववासरे । सरस्वत्या नवम्यां च सप्तम्यां भास्करस्य च ॥ अष्टम्याश्च चतुर्दश्यामेकादश्यां शिवस्य च । द्वादश्यां च त्रयोदश्यां हरेश्च मदनस्य च ॥ शेषादीनां फणीशानां पञ्चम्यां पूजनं भवेत् । पर्वणीन्दोस्तिथिष्वासु पक्षद्वयगतास्वपि ॥' इति । रत्नमालायामपि—'अथामरस्थापनमुत्तरायणे स्वदेववारर्क्षतिथिक्षणादिषु' इति । अथ प्रत्येकं तिथिकृत्यानि ग्रन्थकृदनुक्तान्यप्यस्माभिर्लिख्यन्ते लोकोपयोगित्वात् । तान्याह वसिष्ठः—'नोद्वाहयात्रोपनयप्रतिष्ठां सीमन्तचौलाखिलवास्तुकर्म । गृहप्रवेशाखिलमङ्गलाद्यं कार्यं हि मासाद्यतिथौ कदाचित्' ॥ १ ॥ मासाद्यतिथौ = शुक्लपक्षप्रतिपदि । अत एव कृष्णपक्षप्रतिपद्येतानि कर्माणि सुखेन भवन्तीत्यर्थः । यद्येषोऽभिप्रायोऽसम्मतः स्यात्तदा पक्षाद्यतिथाविति ब्रूयात् । 'सप्ताङ्गचिह्नानि नृपस्य वास्तुव्रतप्रतिष्ठाखिलमङ्गलानि । यात्राविवाहाखिलभूषणाद्यं कार्यं द्वितीयादिवसे सदैव ॥ २ ॥ सङ्गीतविद्याखिलशिल्पकर्मसीमन्तचौलान्नगृहप्रवेशम् । कार्यं द्वितीयादिवसे यदुक्तं सदा तृतीयादिवसेऽपि कार्यम् ॥ ३ ॥ रिक्तासु विद्युद्वधबन्धशस्त्रविषाग्निघातादि च याति सिद्धिम् । यन्मङ्गलं तासु कृतं विमूढैर्विनाशमायाति तदाशु नूनम्' ॥ ४ ॥ रिक्तासु = चतुर्थीनवमीचतुर्दशीषु । 'शुभानि कार्याणि चरस्थिराणि चोक्तान्यनुक्तान्यपि यानि तानि ।

सिद्धिं प्रयान्त्याशु ऋणप्रदानं विनाशदं नागतिथौ विधेयम् ॥ ५ ॥ अभ्यङ्गयात्रा-पितृकर्म दन्तकाष्ठं विना पौष्टिकमङ्गलानि । षष्ठ्यां विधेयानि रणोपयोग्यशिल्पानि वास्त्वम्बरभूषणानि ॥ ६ ॥ द्वितीयायां तृतीयायां पञ्चम्यां कथितान्यपि । तानि सिध्यन्ति कार्याणि सप्तम्यां निखिलान्यपि ॥ ७ ॥ सङ्ग्रामयोग्याखिलवास्तुशिल्प-नृपप्रमोदाखिललेखनानि । स्त्रीरत्नकार्याखिलभूषणानि कार्याणि कार्याणि महेश-तिथ्याम् ॥ ८ ॥ द्वितीयायां तृतीयायां पञ्चम्यां सप्तमीतिथौ । उक्तानि यानि सिध्यन्ति दशम्यां तानि सर्वदा ॥ ९ ॥ व्रतोपवासाखिलधर्मकृत्यं सुरोत्सवाद्याखिलवास्तुकर्म । सङ्ग्रामयोग्याखिलवस्तुकर्म विश्वेतिथौ सिध्यति शिल्पकर्म ॥ १० ॥ पृथिव्यां यानि कर्माणि धर्मपुष्टिशुभानि च । चरस्थिराणि द्वादश्यां यात्रां नवगृहं विना ॥ ११ ॥ विधातृगौरीभुजगभान्वन्तकदिनेषु च । उक्तानि तानि सिध्यन्ति त्रयोदश्यां विशे-षतः ॥ १२ ॥ यज्ञक्रियापौष्टिकमङ्गलानि सङ्ग्रामयोग्याखिलवास्तुकर्म । उद्वाहशिल्पा-खिलभूषणाद्यं कार्यं प्रतिष्ठा खलु पौर्णमास्याम् ॥ १३ ॥ सदैव दर्शे पितृकर्म कृत्वा नान्यद्विधेयं शुभपौष्टिकाद्यम् । मूढैः कृतं तत्र शुभोत्सवाद्यं विनाशमायात्यचिराद्भृशं तत्' ॥ १४ ॥ इति । ननु रत्नमालादिग्रन्थेष्वादौ संवत्सरप्रकरणमुक्तम् । तदत्र किमुपेक्षितमिति चेत् । उच्यते—मुहूर्तचिन्तामणिरिति नामधेयान्मुहूर्ता एवात्रोच्यन्ते । ते तु प्रतिक्षणविचारार्हाः, तत्र संवत्सराणां वर्षव्यापित्वात् सदसत्फलोक्तावपि विवाहादिकृत्यानि भवन्त्येव । कुतः ? सिंहराशिस्थितगुरुशुक्रास्तादिष्विव विवाहादि-विशेषकृत्यानां प्रतिषेधसत्त्वात् । तथा संवत्सरसदसत्फलेषु नेति । किञ्च सिंहगतगुरौ शुक्रास्तादावपि नित्यानां वस्त्रपरिधानादीनां नैमित्तिकानाञ्च पुंसवनजातकर्मनाम-कर्मान्नप्राशनादिकर्मणां विहितत्वान्मुहूर्तविचारोऽस्त्येवेत्यतोऽकथनं संवत्सरप्रकरणस्य । अमुमेवाशयं मनस्यभिसन्धाय मुहूर्तग्रन्थं परित्यज्य स्थलान्तरे गुरुचारे वसिष्ठेन फलमुक्तम् ॥ ३ ॥

हिन्दी—प्रतिपदा, द्वितीया आदि से⋯शुक्लपक्ष में पूर्णिमापर्यन्त, कृष्णपक्ष में अमावास्यापर्यन्त १५ तिथियों के क्रम से १५ स्वामी होते हैं। यथा—उभयपक्ष में प्रतिपदा के स्वामी अग्नि, द्वितीया के ब्रह्मा, तृतीया के गौरी (पार्वती), चतुर्थी के गणेश, पंचमी के नाग (साँप), षष्ठी के स्कन्द (स्वामि कार्तिकेय), सप्तमी के सूर्य, अष्टमी के शिव, नवमी के दुर्गा, दशमी के यमराज, एकादशी के विश्वेदेव, द्वादशी के विष्णु, त्रयोदशी के कामदेव, चतुर्दशी के शिव, पूर्णिमा के चन्द्रमा और अमावस्या के स्वामी पितर होते हैं ॥ ३ ॥

विशेष—जिस तिथि के जो देवता निर्दिष्ट हैं, उनका पूजन, प्रतिष्ठा (स्थापना), व्रत आदि उसी तिथि में करना चाहिए। जैसे—गौरी का तृतीया में, गणेश का चतुर्थी में, नागों का पंचमी में, दुर्गा का नवमी में इत्यादि और तिथीशों के नाम से तिथि का बोध करना चाहिए। जैसे—विश्व से एकादशी, हरि से द्वादशी, काम से त्रयोदशी का ज्ञान होता है, किन्तु आचार्य ने कई स्थानों पर संख्यावोधक शब्दों से तिथियों का ज्ञान कराया है। यथा—सप्तमी के स्वामी रवि हैं। रवि से सप्तमी का बोध होना चाहिए, परन्तु आचार्य ने रवि शब्द से द्वादशी (१।५७ में तिथि-रवी), वह्नि (अग्नि) से प्रतिपदा न लेकर तृतीया (१।८ में) शिव से अष्टमी या चतुर्दशी का ग्रहण न करके एकादशी (१।१० में इष्टे दशशिवाः) ईश और रुद्र से एकादशी (१।८ तथा ११।३४ में) इत्यलम् ।

प्रसंगवश तिथियों के कतिपय पर्यायवाचक शब्द छात्रों को शीघ्र स्मृतिपथ पर लाने के निमित्त दिये जाते हैं—

संख्या	तिथि	पर्यायवाची शब्द
१	प्रतिपद्	पक्षति, आद्यतिथि, भू और चन्द्र के सभी पर्यायवाचक शब्द (भूमि, भू, कु, शशी, इन्दु आदि)
२	द्वितीया	युग्म, द्वि, यम और नेत्र के सभी पर्याय (नेत्र, अक्षि, अन्तक···) अश्वि
३	तृतीया	अग्नि, वह्नि, हुताशन, अनल, शिवस्वेद
४	चतुर्थी	युग, वेद, अब्धि, उदधि
५	पंचमी	बाण, शर, नाग, इषु
६	षष्ठी	स्कन्द, रस, अंग
७	सप्तमी	अश्व, हय, शैल, वायु, अर्क, अद्रि
८	अष्टमी	वसु, गज, नाग, उरग
९	नवमी	अंक, गो, ग्रह, नन्द, दुर्गा
१०	दशमी	दिक्, आशा, काष्ठा
११	एकादशी	शिव, रुद्र, ईश
१२	द्वादशी	अर्क, रवि, सूर्य, हरि
१३	त्रयोदशी	विश्वे, काम, मदन
१४	चतुर्दशी	यम, इन्द्र, मनु, शक्र
१५	पूर्णिमा	तिथि, पंचदशी, राका
१६	अमावास्या	अमा, दर्श, कुहू

अथ तिथीनां नन्दादिसंज्ञाः सफला उपजातिकयाह—

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः ।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ॥ ४ ॥

नन्दा चेति । नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णासंज्ञाः प्रतिपदादिपञ्च तिथयः स्वनामसदृशफलदाः स्युरित्येवम्प्रकारेण सर्वाः षष्ठ्यादय एकादश्यादयश्च तिथयो ज्ञेयाः । ताः सिते शुक्लपक्षे अशुभमध्यशुभफलदाः स्युः । असिते कृष्णपक्षे शुभमध्यमाधमफलदाः स्युः । यदाह नारदः—'नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णाः स्युस्तिथयः पुनः । पर्यायत्वेन विज्ञेया नेष्टमध्येष्टदाः सिते ॥ कृष्णपक्षेऽपीष्टमध्यनेष्टदाः क्रमशः स्मृताः' इति । अनिष्टमिति वक्तव्ये नेष्ट इति प्रयोगो निषेधवाचकं नशब्दमाश्रित्य नैकधेत्यादिवत् साध्यः । अथ मूले 'अशुभमध्यशस्ताः' इति कथं प्रयोगः ? यावता 'तिथयो द्वयोः' इत्यभिधानात् स्त्रीपुंसयोरस्ति तिथिशब्दः, तथापि तिथ्य इति 'कृदिकारादक्तिनः' इति कृतङीषस्तिथिशब्दस्य स्त्रीलिङ्ग एव वृत्तिः । ततस्तिथ्य इति बहुवचनान्तस्याशुभमध्यशस्ता इति विशेषणे अशुभाश्च मध्याश्च शस्ताश्चेति द्वन्द्वे 'स्त्रियाः पुंवत्' इति वा 'पुंवत् कर्मधारयजातीय—' इति वा समानाधिकरणोत्तरपदाभावात्पुंवद्भावाभावे चिन्त्यताप्रसक्तेः । एवं चेत् कथं तर्हि रत्नमालायाम्—'कनिष्ठमध्येष्टफलश्च शुक्लः' इति ? यावता कनिष्ठाश्च मध्याश्चेष्टफलाश्चेति द्वन्द्वोऽपि । 'नन्दा च भद्रा च जया च

रिक्ता पूर्णेति सर्वास्तिथयः क्रमात्स्युः' इति सर्वापदविशेषणसामर्थ्यात्स्त्रीलिङ्ग एवेत्युक्ते दोषप्रसङ्गः। मैवं वोचः। नात्र द्वन्द्वः। किं तर्हि ? कनिष्ठं च मध्यं चेष्टं च कनिष्ठमध्येष्टानि, तादृशानि फलानि यासां ता इति द्वन्द्वगर्भवहुव्रीह्याश्रयणादुक्तदोषाप्रसङ्गः। ननु यद्यप्येवमत्र समाहितं तथापि—'कृष्णे भवन्त्युत्तममध्यहीनाः' इति चतुर्थचरणे कथं समाधिः ? यतः फलपदाश्रवणाद् द्वन्द्वगर्भवहुव्रीह्यभावाच्छुद्धो द्वन्द्व एव समासः। सर्वापदसमभिव्याहृतस्तिथिशव्दोऽपि स्त्रीलिङ्ग एवेत्युक्तो दोषो वज्रायितः। उच्यते—यथा 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' इति पाणिनिसूत्रस्थे द्व्येकयोरिति सङ्ख्यावाचिनो द्व्येकशव्दयोर्द्वन्द्वे वहुवचनप्रसङ्गः, अतो भावप्रधानो निर्देश इत्यभियुक्तस्मरणात्, वहुधा काव्येषु दृष्टत्वाच्चाशुभमध्यशस्ता इत्येवमादीनां शव्दानां भावप्रधानत्वादशुभत्वमध्यत्वशस्तत्वाभिधानात्तादृशानां शव्दानां द्वन्द्वं विधायाशुभमध्यशस्तानि विद्यन्ते यासां ता इति वहुव्रीहिणा सिद्धमिष्टम्। वहुव्रीहिणा गतार्थत्वान्मतुन्न भवति, 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इत्युक्तेः। अथवा 'तुष्यतु दुर्जन' इति न्यायमाश्रित्य मतुपो वाधकः 'अर्शआदिभ्योऽच्' इत्यर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थे चकारार्थः। एतच्च समाधानं शस्तसमाधमा इत्यत्रापि द्रष्टव्यम्। एवं च सति 'कृष्णे भवन्त्युत्तममध्यहीनाः' इत्यपि सिद्धम्। अत एव नैषधीये सप्तमसर्गे—'येयं भवद्भाविपुरन्ध्रिसृष्टिः' इति प्रयुक्तम्। 'द्रुतमध्यविलम्बितासु वृत्तिषु' इति महाभाष्यकारो जगाद। अतोऽनेनैवाशयेन—'उभयेऽधममध्यमपूजिता द्रेष्काणैश्चरभेषु चोत्क्रमात्। अशुभेष्टसमाः स्थिरे क्रमाद्घोरायाः परिकल्पिता दश।' इति वराहमिहिरोऽपि प्रायुङ्क्त। तथा—सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदम्' इति वसिष्ठोऽपि प्रायुङ्क्त। स्थिरप्रदमित्यत्र स्थैर्यप्रदमित्यर्थो विवक्षित इत्यलमतिप्रसङ्गेन। अथ चतुर्थचरणेन सिद्धियोगानाह—**सितेति**। ताः कृतसंज्ञा नन्दादितिथ्यः शुक्रवुधमङ्गलशनिगुरुवारेषु सिद्धाः सिद्धिकराः स्युः। यथा—नन्दा शुक्रे सिद्धियोगः, एवं भद्रा वुधे, जया भौमे, रिक्ता शनौ, पूर्णा गुरौ। यदाह कश्यपः—'नन्दा तिथिः शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया। रिक्ता मन्दे गुरोर्वारे पूर्णा सिद्धाह्वया तिथिः।' इति। वसिष्ठोऽपि—'शुक्रज्ञगुरुमन्देज्या वारा नन्दादिषु क्रमात्। सिद्धा तिथिः सिद्धिदा स्यात्सर्वकार्येषु सर्वदा ॥' इति। अस्याः फलस्तुतिमाह वसिष्ठ एव—'सिद्धा तिथिर्हन्ति समस्तदोषान् यान्मासशून्यानपि मासदग्धान्। दिनप्रदग्धानपि चान्यदोषानेकादशी यद्वदशेषपापान् ॥' इति ॥ ४ ॥

हिन्दी—प्रतिपदा से शुक्लपक्ष में पूर्णिमा या कृष्णपक्ष में अमावास्या पर्यन्त १५-१५ तिथियों की ३ आवृत्ति में क्रम से नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा संज्ञाएँ मानी गयी हैं। शुक्लपक्ष में प्रथमावृत्ति की (१।२।३।४।५) तिथियाँ अशुभ, द्वितीयावृत्ति की नन्दादि (६।७।८।९।१०) तिथियाँ मध्य (न उत्तम, न अधम) और तृतीयावृत्ति की नन्दादि (११।१२।१३।१४।१५) तिथियाँ शुभ कही गई हैं। इसी तरह कृष्णपक्ष में प्रथमावृत्ति की नन्दादि (१।२।३।४।५) तिथियाँ शुभ, द्वितीयावृत्ति की (६।७।८।९।१०) नन्दादि तिथियाँ मध्य और तृतीयावृत्ति की नन्दादि (११।१२।१३।१४।३०) तिथियाँ अशुभ होती हैं।

दोनों पक्षों में तीनों आवृत्ति की नन्दा (१।६।११) तिथियाँ शुक्रवार को, भद्रा (२।७।१२) तिथियाँ बुधवार को, जया (३।८।१३) तिथियाँ भौमवार को, रिक्ता (४।९।१४) तिथियाँ शनिवार

को और पूर्णा (५।१०।१५ या ३०) तिथियाँ गुरुवार को पड़ जायें तो कार्यों में सफलता प्राप्त कराने वाला सिद्धयोग होता है ॥ ४ ॥

विशेष—चन्द्रमा के पूर्ण और क्षीण होने से तिथियों में बलत्व और निर्बलत्व होता है। अतः शुक्लपक्ष में प्रतिपद् से पंचमी तक चन्द्रमा के क्षीण होने के कारण प्रथमावृत्ति की नन्दादि तिथियाँ अशुभ, षष्ठी से दशमी तक चन्द्रमा के मध्य (न पूर्ण, न क्षीण) होने से द्वितीयावृत्ति की नन्दादि (६।७।८।९।१०) तिथियाँ मध्य और इसी भाँति तृतीयावृत्ति की नन्दादि (११।१२।१३। १४) तिथियाँ चन्द्रमा के पूर्ण होने के कारण शुभ कही गयी हैं। एवं कृष्णपक्ष में १–५ तिथियाँ शुभ, ६–१० तिथियाँ मध्य, ११–३० तक की तिथियाँ चन्द्रमा के क्षीण होने के कारण अशुभ मानी गयी हैं। स्पष्टज्ञान हेतु चक्र देखिये—

तिथिसंज्ञा	तिथियाँ			वार	योग
	प्रथमावृत्ति	द्वितीयावृत्ति	तृतीयावृत्ति		
नन्दा	१	६	११	शुक्र	
भद्रा	२	७	१२	बुध	
जया	३	८	१३	भौम	सिद्धियोग
रिक्ता	४	९	१४	शनि	
पूर्णा	५	१०	१५,३०	गुरु	
शुक्लपक्ष में	अशुभ	मध्य	शुभ	चन्द्र पूर्व निर्बल पश्चात् सबल	
कृष्णपक्ष में	शुभ	मध्य	अशुभ	चन्द्र पूर्व सबल पश्चात् निर्बल	

अथ रव्यादिवारेषु यथाक्रमं निषिद्धतिथीन्निषिद्धनक्षत्राणि च शालिन्याह—

नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैव पूर्णा मृतार्कात् ।
याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यम्णं ज्येष्ठान्त्यं रवेर्दग्धभं स्यात् ॥ ५ ॥

नन्देति । यथाक्रममर्कात् 'ल्यब्लोपे पञ्चमी' इति अर्कमारभ्य वारेषु नन्दातिथिर्मृताधमफला स्यात् । यथा सूर्ये नन्दा मृता, तथा सोमे भद्रा, भौमे नन्दा, बुधे जया, गुरौ रिक्ता, शुक्रे भद्रा, शनौ पूर्णा मृतेत्यर्थः ॥ उक्तञ्च नारदेन—'आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः । जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा मृतिप्रदा ॥' इति । अत्र बहुपु नारदसंहितापुस्तकेषु 'मृतिप्रद' इति पाठमाश्रित्य मृतेति पदं प्रायोजि ग्रन्थकृता । तथैवास्माभिर्व्याकृतं च सकलदेशीयशिष्टसम्मतत्वादापामरं तथैव व्यवहारदर्शनाच्च । वस्तुतस्तु 'पूर्णामृतार्कात्' इत्यत्र अकारं प्रश्लिष्य अमृतेति पदं विधेयम् । तत्रामृता अमृतफलदा स्यात् । यथा—नन्दा रवावमृता, एवं सोमवारादिष्वपि व्याख्येयं पूर्ववत् । अत्र सम्मतिरूपे जीर्णपुस्तकस्थनारदवाक्ये—'शनौ पूर्णाऽमृताह्वया' इत्यकारादिराकारान्तः पाठः साधीयान् । अमृतेत्याह्वयं नाम यस्याः सा अमृताह्वयेत्यर्थः । इममर्थं सफलमाह वसिष्ठः—'नन्दा भौमार्कयोर्भद्रा शुक्रेन्द्वोश्च जया बुधे । शुभयोगा

गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णाऽमृताह्वया ।'' इति । इदं वचनं वसिष्ठेन गुणनिरूपणाध्याये निरूपितमित्यतोऽपि शुभत्वप्रतिपादकम् । कश्यपोऽपि तथैवाह—'आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः । जया सौम्ये गुरौ रिक्ता पूर्णाऽऽर्कावमृता शुभा ॥' इति । आर्कौ = शनौ । एवं सत्यपि शुभत्वे शिष्टाचारेण व्यवस्था ज्ञेया । अथोत्तरार्धेन निन्द्यनक्षत्राण्युच्यन्ते—याम्यमिति । रविवारादिषु याम्यं भरणी तदादीनि नक्षत्राणि यथाक्रमं दग्धनक्षत्राणि स्युः । यथा रवौ भरणी दग्धा, सोमे चित्रा, भौमे उत्तराषाढा, बुधे धनिष्ठा, गुरावुत्तराफल्गुनी, शुक्रे ज्येष्ठा, शनौ रेवती । यदाह नारदः—'यमर्क्षमर्कवारेऽब्जे चित्रा भौमे तु विश्वभम् । बुधे श्रविष्ठार्यम्णर्क्षं गुरौ ज्येष्ठा भृगोर्दिने ॥ रेवती शनिवारे तु दग्धयोगा भवन्त्यमी ॥' इति । लल्लः—'याम्यं चित्रोत्तराषाढा धनिष्ठोत्तरफल्गुनी । ज्येष्ठा च रेवती चैव जन्मर्क्षं भानुतः क्रमात् ॥ जन्मर्क्षग्रहसंयोगे न कुर्याच्छोभनं नरः । पाणिग्रहणयात्रादि विनाशमुपयात्यतः ॥'' इति ॥ ५ ॥

हिन्दी—सूर्य आदि वारों में क्रम से नन्दा, भद्रा, नन्दा, जया, रिक्ता, भद्रा और पूर्णा तिथियाँ पड़ जायें तो अधम योग होता है। अर्थात् रविवार को नन्दा (१।६।११), सोमवार को भद्रा (२।७।१२), भौमवार को नन्दा (१।६।११), बुधवार को जया (३।८।१३), गुरुवार को रिक्ता (४।९।१४), शुक्रवार को भद्रा (२।७।१२) और शनिवार को पूर्णा (५।१०।१५ या ३०) तिथियाँ पड़ जायें तो **मृतयोग** होता है।

सूर्यादि वारों में क्रमशः भरणी आदि नक्षत्र अर्थात् रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढा, बुधवार को धनिष्ठा, बृहस्पतिवार को उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा और शनिवार को रेवती आ जाय तो **दग्धयोग** होता है। भरणी आदि नक्षत्र सूर्यादि ग्रहों के जन्मर्क्ष हैं। अतः **दग्धयोग** कहा गया है। ये दोनों (मृत्युयोग और दग्धयोग) यात्रा में अतिनिन्दित हैं। अन्य शुभकार्य भी यदि इनमें न किये जायें तो उत्तम होता है।

विशेष—यहाँ पूर्वार्धोक्त मृत्युयोग के विषय में मतभेद दिखलायी पड़ता है। एक मत के विद्वान् नारदपुराण (पूर्वभाग २ पाद २४३ श्लो०) में निर्दिष्ट—

'आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः ।
जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा मृतिप्रदा ॥'

इस वचन के अनुसार इनको मृत्युयोग मानते हैं। इसी के आधार पर रामाचार्य ने "मृताऽर्कात्" अथवा अधमार्कात् पाठ रखा है। ग्रन्थकार के भ्रातृज श्रीगोविन्द ने भी विवेचनावसर पर पीयूषधारा टीका में नारदसंहिता की अनेक प्रतियों का अवलोकन करके "अत्र बहुषु नारदसंहितापुस्तकेषु 'मृतिप्रद' इति पाठमाश्रित्य मृतेति पदं प्रायोजि ग्रन्थकृता । तथैवास्माभिर्व्याकृतं च सकलदेशीयशिष्टसम्मतत्वादापामरं तथैव व्यवहारदर्शनाच्च'' इत्यादि लिखकर **'मृतार्कात्'** पद की पुष्टि की है।

दूसरे मत के विषय में उल्लेख करते हुए उन्हीं गोविन्ददैवज्ञ ने वशिष्ठ और कश्यपसंहिता का उद्धरण देते हुए 'एवं सत्यपि शुभत्वे शिष्टाचारेण व्यवस्था ज्ञेया' यह अन्तिम वाक्य कहकर विश्राम ले लिया। किन्तु आजकल के एक हिन्दी टीकाकार ने प्रथम मत मानने वाले विद्वानों को 'ज्ञानमृत' कहा है। अतः इस विषय में विचारणीय यह है कि इस उभयपक्षीय मत के निर्देश से स्पष्ट है कि श्रीगोविन्ददैवज्ञ को भी समस्तदेशीय शिष्टसम्मत पक्ष ही अभिमत है। नारदसंहिता के प्रचार-समय से श्रीरामदैवज्ञ द्वारा शकाब्द १५२१ में लिखित मुहूर्तचिन्तामणि के समय

तक समस्त शिष्टसम्मत मत का ही प्रचार था। उसके अनन्तर अद्यावधि वही प्रणाली चली आ रही है। इस प्रकार प्राचीनतम परम्पराओं के अनुसार समस्त प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वान् को 'ज्ञानमृत' कहने वाले महाविद्वान् को क्या कहा जाय, विद्वज्जन ही विचार करें।

ज्योतिःशास्त्र आगमशास्त्र है। इसमें अपनी अपरिपक्व बुद्धि का पुट देना उचित नहीं है। वराहमिहिराचार्य ने (बृ० सं० ९।७ में) कहा भी है—'ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्। स्वयमेव विकल्पयितुम्'॥ इति ॥ ५ ॥

अथ क्रकचादिनिन्द्ययोगाननुष्टुभाह—

षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद् बुधे।
सप्तम्यर्केऽधमाः षष्ठ्याद्यामाश्च रदधावने ॥ ६ ॥

षष्ठ्यादीति। षष्ठीसप्तम्यष्टमीनवमीदशम्येकादशीद्वादश्यस्तिथयो मन्दाच्छनैश्चराद्विलोमं विपरीतवारगणनयाऽधमाः स्युः। यथा—शनौ षष्ठ्यधमा, शुक्रे सप्तमी, गुरावष्टमी, बुधे नवमी, भौमे दशमी, सोमे एकादशी, रवौ द्वादशी। एते योगाः क्रकचाख्या ज्ञेयाः। यदाह नारदः—'त्रयोदश स्युर्मिलने सङ्ख्यायास्तिथिवारयोः। क्रकचो नाम योगोऽयं मङ्गलेष्वतिगर्हितः ॥' इति। अथ बुधे प्रतिपत्तिथिस्तथा सूर्यवारे सप्तमी संवर्तयोगाख्याऽधमा। उक्तञ्च नारदेन—'सप्तम्यामर्कवारश्चेत्प्रतिपत्सौम्यवासरे। संवर्तयोगो विज्ञेयः शुभकर्मविनाशकृत् ॥' इति। अथ षष्ठी आद्या प्रतिपत्, अमा अमावास्या एतास्तिथयो रदधावने निम्बकाष्ठादिभिर्दन्तमलनिराकरणेऽधमा निषिद्धाः स्युः। उक्तं च रत्नमालायाम्—'नष्टेन्दुषष्ठीप्रतिपत्सु धीमान्न जातु दन्तोत्कषणं विदध्यात्। कुर्वन्नवाप्नोति तदाशु नूनं लक्ष्मीकुलज्ञातिजनोपघातम् ॥' इति। क्वचिन्नवमी रविवासरेऽपि निषिद्धा। उक्तञ्च काशीखण्डे पञ्चत्रिंशाध्याये—'प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवासरे। दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम् ॥' इति ॥ ६ ॥

हिन्दी—षष्ठी आदि क्रम से तिथियों और शनि से उलटे वारों के योग से क्रकच नाम का अधम योग होता है। यथा—शनिवार को षष्ठी, शुक्रवार को सप्तमी, गुरुवार को अष्टमी, बुधवार को नवमी, भौमवार को दशमी, सोमवार को एकादशी और रविवार को द्वादशी (तिथि और वार की संख्या का योग तेरह) हो जाय तो क्रकच नाम का कुयोग होता है।

बुधवार को प्रतिपद्, रविवार को सप्तमी हो तो संवर्तक नाम का कुयोग होता है।

षष्ठी, प्रतिपद्, अमावास्या इन ३ तिथियों में दन्तधावन (दातून करना) निषिद्ध कहा गया है। काशीखण्ड में नवमी और रविवार को भी दातून करना निषिद्ध कहा गया है[1] ॥ ६ ॥

अथ कृत्यविशेषेषु निषिद्धतिथीनिन्द्रवंशाछन्दसाह—

षष्ठ्यष्टमीभूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतम्।
नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत् ॥ ७ ॥

षष्ठ्यष्टमीत्यादि। षष्ठी अष्टमी च प्रसिद्धा भूतश्चतुर्दशी, विधुक्षयोऽमावास्या एतासु तिथिषु क्रमेण ना पुरुषः तैलं, पलं मांसं क्षुरं रतं मैथुनं, यथाक्रमं न सेवेत।

१. किसी ने यहाँ 'काष्ठसंचय का संग्रह' कहकर अपने परिपक्व ज्ञान का परिचय दिया है।

यथा षष्ठ्यां तैलं, अष्टम्यां मांसं, चतुर्दश्यां क्षौरं, अमावास्यायां मैथुनं, नो सेवेतेत्यर्थः। 'षेवृ सेवने' आत्मनेपदी। नृशब्दो मनुष्यजात्युपलक्षकस्तेन स्त्रीणामप्ययं निषेधः। उक्तञ्च नारदेन—'षष्ठ्यां तैलं तथाऽष्टम्यां मांसं क्षौरं तिथौ कलेः। पूर्णिमादर्शयोर्नारीसेवनं परिवर्जयेत् ॥' इति। कलेस्तिथौ चतुर्दश्याम्। रत्नमालायां च—'षष्ठीषु तैलं पलमष्टमीषु क्षौरक्रिया चैव चतुर्दशीषु। स्त्रीसेवनं नष्टकलासु पुंसामायुःक्षयार्थं मुनयो वदन्ति ॥' अत्र वचने नष्टकलास्विति वचनमाश्रित्य विधुक्षयेष्वित्युक्तम्। वयं तु विधुक्षयशब्दः पक्षसर्वपर्वोपलक्षक इति व्याकुर्मः। तथा सति पञ्चपर्वसु मैथुनं न कार्यमित्यर्थः। उक्तञ्च वसिष्ठसंहितायाम्—'स्त्रीसेवनं पर्वसु पक्षमध्ये पलं च षष्ठीषु च सर्वतैलम्। नृणां विनाशाय चतुर्दशीषु क्षुरक्रिया स्यादसकृत्तदाशु ॥' इति। पक्षमध्येऽष्टम्याम्। क्वचित्सङ्क्रान्त्यादावपि तैलाभ्यङ्गो निषिद्धः। यदाह नारदः—'व्यतीपाते च सङ्क्रान्तावेकादश्यां च पर्वसु। अर्कभौमदिने विष्टयां नाभ्यङ्गं न च वैधृतौ ॥' इति। पर्वाणि तु वसिष्ठेनोक्तानि—'चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा त्वमावास्या च पूर्णिमा। पुण्यानि पञ्च पर्वाणि सङ्क्रान्तिर्दिनपस्य च ॥' इति। अत्र निषिद्धकर्मसु तात्कालिक्यस्तिथयो ग्राह्याः। तथा च स्मृतिः—'स्नाने चाभ्यञ्जने चैव दन्तधावनमैथुने। तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या तथा मरणजन्मनोः ॥' इति। अथ विश्वदशद्विके तिथौ त्रयोदशीदशमीद्वितीयास्वभ्यञ्जनं न तैलाभ्यङ्गो न कार्य इत्यर्थः। तदुक्तं रत्नमालायाम्—'स्नातुर्जनस्य दशमी तनयांस्त्रयोदश्यर्थं निहन्त्युभयमेतदपि द्वितीया' इति। अयञ्च शारीरमलनिराकरणार्थं निषेधो नित्यनैमित्तिककाम्यव्यतिरिक्तविषयः। निर्णयामृते द्वितीयातिथिनिर्णये भट्टभास्कर इत्युक्त्वा पठितम्—'स्नातुस्तनूजान् दशमी त्रयोदश्यर्थं द्वितीया द्वितयं निहन्ति। मलापहस्नाननिषेधो एव न नित्यनैमित्तिककाम्यबाधः ॥' एतादृशोऽपि मलापहस्नाननिषेधो ब्राह्मणव्यतिरिक्तवर्णत्रयस्यैव। उक्तञ्च भट्टभास्करेण—'त्रयोदश्यां द्वितीयायां दशम्यां च विशेषतः। शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं नाचरेयुः कथञ्चन ॥' इति। अर्थाद् ब्राह्मणस्य नायं निषेध इत्यर्थः। अथ धात्रीफलैरिति। धात्रीफलैरामलकैः स्नानमगाद्रिगोष्वसत्। अमावास्यासप्तमीनवमीष्वसन्निषिद्धमित्यर्थः। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'सप्तम्यनिन्दुनवमीषु च सम्पदिच्छुः स्नायात्कदाचिदपि नामलकैर्मनुष्यः।' अत्र केचिदामलकैः स्नातुर्दशमी तनयान्निहन्ति। एवं सर्वत्र व्याख्येयम्। एवं सति दशमीद्वितीयात्रयोदशीसप्तम्यनिन्दुनवमीष्वामलकस्नाननिषेधोऽस्ति तत्कथं भिन्नवाक्यतामादाय स्वपद्ये स्पष्टैव भिन्नवाक्यता कृता। अत्राहुः—स्नातुस्तनूजान्दशमीति वचनान्तरानुरोधाद्भिन्नवाक्यता स्पष्टैव। तथा च आमलकस्नाननिषेधो दीपिकाटीकायां स एव भट्टभास्करः—'सप्तम्यचन्द्रानवमीषु देहश्रीसन्ततीरामलकैर्नरस्य। स्नानं निहन्त्यन्यदिने तु धत्ते तिलैः श्रियं पुण्यकरं सदैव ॥' इत्याहुस्म। अपरे पुनराहुः सर्वास्वपि तिथिष्वामलकस्नानस्यैव निषेधो नाभ्यङ्गस्य। यदाह वसिष्ठः—'कामदुर्गान्तकविधिनष्टेन्द्वर्कदिनेषु च। सकृदामलकस्नानं सम्पत्पुत्रविनाशनम् ॥' कामस्त्रयोदशी, दुर्गा नवमी, अन्तको दशमी, विधिर्द्वितीया, नष्टेन्दुरमावास्या अर्कदिनं सप्तमी। कश्यपोऽपि—'षष्ठ्यां दर्शप्रतिपदि द्वादश्यां च दिनक्षये। कुर्यादामलकस्नानं दशम्यां मूढधीर्नरः ॥' पुत्रनाशो भवेत्तस्य त्रयोदश्यां धनक्षयः।

सम्पत्पुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायामसंशयम् ।। सप्तम्यां च नवम्यां च अमायां कुलनाशनम्' ।। इति । दर्शानन्तरं प्रतिपद्दर्शप्रतिपच्छुक्लप्रतिपदित्यर्थः ।। ७ ।।

हिन्दी—षष्ठी, अष्टमी, चतुर्दशी और अमावास्या को मनुष्य क्रम से तेल, मांस, क्षौरकर्म और मैथुन का सेवन न करे, अर्थात् षष्ठी को तेल न लगाये, अष्टमी को मांस न खाये, चतुर्दशी को बाल न बनवाये और अमावस्या को मैथुन न करे (क्योंकि इनसे आयु क्षीण होती है) त्रयोदशी, दशमी और द्वितीया को उबटन न लगाये और अमावास्या, सप्तमी और नवमी को आँवला लगाकर स्नान न करे ।। ७ ।।

विशेष—अन्यत्र इसका परिहार भी लिखा है । शनिवार से युक्त षष्ठीमे तल-सेवन, महाष्टमी (दुर्गाष्टमी=आश्विन शुक्लाष्टमी) को मांस श्रीदुर्गा जी का प्रसाद, किसी तीर्थ में पहुँच कर चतुर्दशी में क्षौर-कर्म और दीपावली की अमावास्या में मैथुन किया जा सकता है । यथा—

'षष्ठी शनैश्चरे तैलं महाष्टम्यां पलानि च ।
तीर्थक्षौरं चतुर्दश्यां दीपमाल्यां च मैथुनम् ।।' इति ।

अथ सूर्यादिवारेषु दग्धादियोगचतुष्टयमिन्द्रवज्रोपजातिकाभ्यामाह—

सूर्येशपञ्चाग्निरसाष्टनन्दा वेदाङ्गसप्ताश्विगजाङ्कशैलाः ।
सूर्याङ्गसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनाश्च ।। ८ ।।
सूर्यादिवारे तिथयो भवन्ति मघाविशाखाशिवमूलवह्निः ।
ब्राह्मं करोऽर्काद्यमघण्टकाश्च शुभे विवर्ज्या गमने त्ववश्यम् ।। ९ ।।

सूर्येशेति । सूर्या द्वादश । लक्षणया यावत्सङ्ख्या द्वादश्युच्यते । एवमीशादिशब्देष्वपि व्याख्येयम् । तत्र सूर्या द्वादशी, ईशा एकादशी, पञ्च पञ्चमी, अग्नयस्तृतीया, रसाः षष्ठी, अष्ट अष्टमी, नन्दा नवमी, सूर्यादिवारेष्वेतास्तिथयो दग्धा भवन्ति । यथा—रवौ द्वादशी दग्धा, सोमे एकादशी दग्धा, भौमे पञ्चमी, बुधे तृतीया, गुरौ षष्ठी, शुक्रे अष्टमी, नवमी शनौ । शनिरिक्तासिद्धियोगश्चतुर्थीचतुर्दश्योश्चरितार्थः । उक्तञ्च नारदेनोपग्रहाध्याये—'एकादशी चेन्दुवारे द्वादशी चार्कवासरे । षष्ठी बृहस्पतेर्वारे तृतीया बुधवासरे ।। अष्टमी शुक्रवारे च नवमी शनिवासरे । पञ्चमी भौमवारे च दग्धयोगाः प्रकीर्तिताः' ।। वसिष्ठोऽपि—'द्वादश्येकादशीनागगौरीस्कन्दवसुष्वपि । नवम्यां दग्धयोगाख्या भानुवारादितः क्रमात्' ।।

अथ विषयोगाः । वेदेति । वेदाश्चतुर्थी, अङ्गानि षष्ठी, सप्त सप्तमी, अश्विनौ द्वितीया, गजा अष्टमी, अङ्का नवमी, शैलाः सप्तमी, एतास्तिथयः सूर्यादिवारेषु विषाख्या भवन्ति । यथा—रवौ चतुर्थी विषाख्या, चन्द्रे षष्ठी, भौमे सप्तमी, बुधे द्वितीया । बुधे भद्रारूपः । सिद्धियोगस्तु सप्तमीद्वादश्योश्चरितार्थः । गुरावष्टमी, शुक्रे नवमी, शनौ सप्तमी । यदाह बृहस्पतिः—'षष्ठी शशाङ्के नवमी च शुक्रे बुधे द्वितीया तपने चतुर्थी । जीवेऽष्टमी सौरिकुजेऽह्नि सप्तमी योगा विषाख्याः कुलनाशनाः स्युः ।।' वसिष्ठोऽपि—'कुजार्क्योः सप्तमी षष्ठी चन्द्रे भानौ चतुर्थिका । द्वितीया ज्ञेऽष्टमी जीवे नवमी शुक्रवासरे ।। अचिकित्स्या गदायोगा मङ्गलेष्वेव निन्दिताः' ।

अथ हुताशनयोगाः । सूर्येति । सूर्याः द्वादशी, अङ्गानि षष्ठी, सप्त सप्तमी, उरगा अष्टमी, गावो नवमी, दिशो दशमी, ईशा एकादशी । एतास्तिथयो रविवारादिषु हुताशनाख्या ज्ञेयाः । यथा—रवौ द्वादशी, सोमे षष्ठी, भौमे सप्तमी, बुधेऽष्टमी, गुरौ नवमी, शुक्रे दशमी, शनौ एकादशी हुताशनाः । यथा हुताशनो निक्षिप्तं वस्तु दहति तथाऽयमुक्तो वारतिथियोगोऽपीत्यर्थः । यदाह गुरुः—'षष्ठ्यादितिथयः सप्त चन्द्रवारादिभिर्युताः । क्रमात्पक्षद्वयेऽपि स्युः सप्तयोगा हुताशनाः ॥' इति । वसिष्ठोऽपि—'सप्त षष्ठ्यादितिथयः सोमवारादिभिर्युताः । अग्निजिह्वाः सप्त योगा मङ्गले कुलनाशनाः ॥' इति ।

अथ यमघण्टः—मघा, विशाखा, शिव आर्द्रा, मूलं, वह्निः कृत्तिका । समाहारद्वन्द्वः । ब्राह्मं रोहिणी, करो हस्तः, एतानि नक्षत्राण्यर्कात्सूर्यादिवारेषु यमघण्टाः स्युः । यथा–रवौ मघा यमघण्टः, सोमे विशाखा, भौमे आर्द्रा, बुधे मूलं, गुरौ कृत्तिका, शुक्रे रोहिणी, शनौ हस्तः । उक्तञ्च दैवज्ञमनोहरे गर्गेण—'मघाविशाखा चार्द्रा व मूलमृक्षं च कृत्तिका । रोहिणी हस्त इत्येवं यमघण्टाः क्रमाद्रवेः ॥' इति । अत्र पाठान्तरम्—'सूर्यादिवारे तिथयो हि पित्र्यद्वीशेशमूलाग्निविरिञ्चिहस्ताः । भवन्ति सूर्याद्यमघण्टकाश्च शुभे विवर्ज्या गमने त्ववश्यम् ॥' इति । अयं पाठः साधीयान् । प्राक्पाठे हि कतिचिन्नक्षत्राणि पूर्वार्धे द्वे तूत्तरार्ध इत्यसामञ्जस्यात् । एते दग्धादियोगाः शुभे शुभकार्ये विवर्ज्यास्त्याज्याः । तुर्विशेषे । गमने यात्रायां त्ववश्यं वर्ज्याः । तदाह मार्तण्डः—'नात्र यात्रा प्रकर्तव्या कार्यान्तरमथापि वा । यमघण्टादियोगोऽयमनर्हः सर्वकर्मसु ॥' इति ।

आवश्यकत्वेन यमघण्टपरिहारमाह गर्गः—'विन्ध्यस्योत्तरभागे तु यावदातुहिनाचलम् । यमघण्टकदोषोऽस्ति नान्यदेशे कदाचन ॥' इति । अन्यच्च—'लग्नाच्छुभग्रहः केन्द्रे त्रिकोणेऽवस्थितो यदि । चन्द्रो वापि न दोषः स्याद्यमघण्टकसम्भवः ॥' इति । कैश्चिदष्टौ घटिकास्त्याज्या इत्युक्तम् । तदुक्तं दीपिकायाम्—'यमघण्टे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादश नाडिकाः' इति । अत्रैषां पापयोगानामपवादो वसिष्ठेनोक्तः—'दिवामृत्युप्रदाः पापा दोषास्त्वेते न रात्रिषु । शुभकार्यप्रसूतौ च सर्वदा परिवर्जयेत् ॥' ८-९ ॥

हिन्दी—रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पञ्चमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी और शनिवार को नवमी पड़ जाय तो **दग्धयोग** होता है ।

रविवार को चतुर्थी, सोमवार को षष्ठी, भौमवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, गुरुवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी और शनिवार को सप्तमी पड़े तो **विष** नाम का योग होता है ।

रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, बृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी और शनिवार को एकादशी पड़ जाय तो **हुताशन** नाम का योग होता है ।

रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा, मंगलवार को आर्द्रा, बुधवार को मूल, बृहस्पतिवार को कृत्तिका, शुक्रवार को रोहिणी, शनिवार को हस्त आ जाय तो **यमघण्ट** नाम का योग होता है ।

ये चारों योग समस्त शुभ कार्यों में वर्जित हैं, विशेष कर यात्रा में तो अवश्य ही त्याज्य हैं ॥ ८-९ ॥

पूर्वोक्त तिथि-वार-नक्षत्रज-योग-सारणी

संख्या	वार	रवि में	सोम में	भौम में	बुध में	गुरु में	शुक्र में	शनि में
१	सिद्धयोग	×	×	जया ३।८।१३	भद्रा २।७।१२	पूर्णा ५।१०।१५	नन्दा १।६।११	रिक्ता ४।९।१४
२	मृत्युयोग	नन्दा १।६।११	भद्रा २।७।१२	नन्दा १।६।११	जया ३।८।१३	रिक्ता ४।९।१४	भद्रा २।७।१२	पूर्णा ५।१०।१५
३	दग्धयोग	भरणी	चित्रा	उ.षाढा.	धनिष्ठा	उ.फाल्गु.	ज्येष्ठा	रेवती
४	क्रकच	१२	११	१०	९	८	७	६
५	संवर्त	७	×	×	१	×	×	×
६	दग्ध	१२	११	५	३	६	८	९
७	विष	४	६	७	२	८	९	७
८	हुताशन	१२	६	७	८	९	१०	११
९	यमघंट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त

अथ चैत्रादिमासेषु शून्यास्तिथीः शार्दूलविक्रीडितेनानुष्टुप्पूर्वार्द्धेन चाह—

भाद्रे चन्द्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी
पौषे वेदशरा इषे दशशिवा मार्गेऽद्रिनागा मधौ।
गोऽष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथयः शून्या बुधैः कीर्तिता
ऊर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कृष्णे शराङ्गाब्धयः ॥ १० ॥
शक्राः पञ्च सिते शक्राद्रचग्निविश्वरसाः क्रमात्।

भाद्र इति। भाद्रशब्देन भाद्रपद उच्यते। 'स्युर्नभस्यप्रौष्ठपदभाद्रभाद्रपदाः समाः' इत्यमरः। भाद्रे भाद्रपदे मास्युभयपक्षगे शुक्लकृष्णसाधारणे, चन्द्रदृशौ प्रतिपद्द्वितीये तिथी शून्ये। तथा नभसि श्रावणे मासि अनलनेत्रे तृतीयाद्वितीये उभयपक्षगे शून्ये। माधवे वैशाखे द्वादशी तिथिः शून्या। पौषे वेदशराः चतुर्थीपञ्चम्यौ शून्ये। इषे आश्विने दशशिवाः दशम्येकादश्यौ शून्ये। मार्गे मार्गशीर्षेऽद्रिनागाः सप्तम्यष्टम्यौ शून्ये। मधौ चैत्रे गोऽष्टौ नवम्यष्टम्यौ शून्ये। एषु मासेषु एतास्तिथयः पक्षद्वयगाः शून्या बुधैः कीर्तिताः। अथानुक्तमासानामूर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कार्तिकाषाढफाल्गुनज्येष्ठमाघानां कृष्णपक्षे क्रमेण शराङ्गाब्धयः शक्राः पञ्च तिथयः शून्याख्याः। यथा—कार्तिककृष्णपक्षे पञ्चमी शून्या। आषाढकृष्णपक्षे षष्ठी शून्या। फाल्गुनकृष्णपक्षे चतुर्थी शून्या। ज्येष्ठकृष्णपक्षे चतुर्दशी शून्या। माघकृष्णपक्षे पञ्चमी

शून्या। अथैषामेव मासानां सिते शुक्लपक्षे शक्राद्रचग्निविश्वरसाः क्रमाच्छून्याः। यथा—कार्तिकशुक्लपक्षे चतुर्दशी शून्या। आषाढशुक्ले सप्तमी शून्या। फाल्गुनशुक्ले तृतीया शून्या। ज्येष्ठशुक्ले त्रयोदशी शून्या। माघशुक्ले षष्ठी शून्येत्यर्थः। यदाह वसिष्ठः—'अष्टमी नवमी चैत्रे पक्षयोरुभयोरपि। माधवे द्वादशी त्याज्या पक्षयो-रुभयोरपि॥ ज्येष्ठे त्रयोदशी निन्द्या सिते कृष्णे चतुर्दशी। आषाढे कृष्णपक्षस्य षष्ठी शुक्ले तु सप्तमी॥ द्वितीया च तृतीया च श्रावणे सितकृष्णयोः। प्रथमा च द्वितीया च नभस्ये मासि निन्दिते॥ दशम्येकादशी निन्द्या मासीषे शुक्लकृष्णयोः। ऊर्जे चतुर्दशी शुक्ले कृष्णपक्षे तु पञ्चमी॥ सप्तमी चाष्टमी सौम्ये पक्षयोरुभयोरपि। पौषे पक्षद्वये चैव चतुर्थी पञ्चमी तथा॥ माघे तु पञ्चमी षष्ठी कृष्णे शुक्ले यथाक्रमम्। तृतीया च चतुर्थी च फाल्गुने सितकृष्णयोः॥ तिथयो मासशून्याख्या वंशवित्तविना-शदाः। आसु श्राद्धं प्रकुर्वीत नैव मङ्गलमाचरेत्' इति॥ १०॥

हिन्दी—भाद्रपद मास के दोनों पक्षों की प्रतिपद् और द्वितीया, श्रावण मास के दोनों पक्षों की द्वितीया और तृतीया, वैशाख मास के दानों पक्षों की द्वादशी, पौष मास के दोनों पक्षों की चतुर्थी और पंचमी, आश्विन मास के दोनों पक्षों की दशमी और एकादशी, अगहन मास के दोनों पक्षों की सप्तमी, अष्टमी और चैत्र मास के दोनों पक्षों की नवमी, अष्टमी को पण्डितों ने **मासशून्य तिथि** कहा है। कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की पंचमी, आषाढ़ कृष्णपक्ष की छठ, फाल्गुन कृष्णपक्ष की चतुर्थी, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी और माघ कृष्णपक्ष की पंचमी **शून्य तिथि** कही गयी है। एवं कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी, आषाढ़ शुक्ल सप्तमी, फाल्गुन शुक्ल तृतीया, ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी और माघ शुक्ल षष्ठी, ये तिथियाँ **मासशून्य तिथि** होती हैं॥ १०½॥

अथ तिथिनक्षत्रसम्बन्धिदोषान्सार्धानुष्टुब्द्वयेनाह—

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे॥ ११॥
अनुराधा द्वितीयायां पञ्चम्यां पित्र्यभं तथा।
त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी॥ १२॥
स्वातीचित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे।
नवम्यां कृत्तिकाष्टाम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी॥ १३॥

तथा निन्द्यमिति। शुभे कृत्ये द्वादश्यां सार्पमाश्लेषा निन्द्यं, आदिमे तिथौ प्रतिपदि वैश्वमुत्तराषाढा निन्द्या, द्वितीयायामनुराधा, पञ्चम्यां पितृभं मघा, तृतीयायां त्र्युत्तराः उत्तराफल्गुन्युत्तराषाढोत्तराभाद्रपदा निन्द्याः, एकादश्यां रोहिणी, त्रयोदश्यां स्वाती-चित्रे, सप्तम्यां हस्तरार्क्षसे हस्तमूले, नवम्यां कृत्तिका, अष्टम्यां पूभा पूर्वाभाद्रपदे-त्यर्थः। यदाह चतुर्भुजमिश्रनिबन्धे लल्लः—'द्वितीयया चानुराधा त्र्युत्तराश्च तृतीयया। पञ्चमी च मघायुक्ता चित्रा स्वात्या त्रयोदशी॥ एषु कार्यं कृतं चेत्स्यात् षण्मासान्मरणं ध्रुवम्। प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि॥ पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्यां च रोहिणी। द्वादश्यां च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदि॥' इति॥ ११-१३॥

हिन्दी—जिस प्रकार मासशून्य तिथियाँ शुभकर्मों में निन्दित कही गई हैं, उसी तरह द्वादशी तिथि में आश्लेषा, प्रतिपद् में उत्तराषाढा, द्वितीया में अनुराधा, पंचमी में मघा, तृतीया में तीनों

उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा), एकादशी में रोहिणी, त्रयोदशी में स्वाती और चित्रा, सप्तमी में हस्त और मूल, नवमी में कृत्तिका, अष्टमी में पूर्वाभाद्रपदा और षष्ठी में रोहिणी पड़े तो निन्द्य योग होता है। इन तिथि-नक्षत्रों के योग में शुभ कार्य करना निषिद्ध कहा गया है ॥ १०½-१३ ॥

सुगमता से बोध के लिये चक्र—

तिथि	१	२	३	५	६	७	८	९	११	१२	१३
नक्षत्र	उ. षा.	अनु.	उ. फा. उ. षा. उ. भा.	मघा	रोहिणी	हस्त मूल	पू. भाद्र.	कृत्ति.	रोहिणी	आश्ले.	चित्रा स्वाती

अथ चैत्रादिमासेषु क्रमाच्छून्यनक्षत्राण्यनुष्टुब्द्वयेनाह—

कदास्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ।
वैश्वश्रुती पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे ॥ १४ ॥
चित्राद्वीशौ शिवाश्व्यर्काः श्रुतिमूले यमेन्द्रभे।
चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः ॥ १५ ॥

कदास्रभ इति। चैत्रमासे कदास्रभे रोहिण्यश्विन्यौ, वैशाखे त्वाष्ट्रवायू चित्रास्वात्यौ, ज्येष्ठमासि विश्वेज्यौ उत्तराषाढापुष्यौ, आषाढमासे भगवासवौ पूर्वफल्गुनीधनिष्ठे, श्रावणे वैश्वश्रुती उत्तराषाढाश्रवणौ, भाद्रपदे पाशिपौष्णे पाशी वरुणः शततारकारेवत्यौ, आश्विने अजपात्पूर्वाभाद्रपदा, कार्तिके अग्निपित्र्यभे कृतिकामघे। अत्र पाशिपौष्णे अजपादित्यत्र 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' इति प्रगृह्यत्वात् 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इति प्रकृतिभावेन सन्ध्यभावः। मार्गशीर्षे चित्राद्वीशौ चित्राविशाखे, पौषे शिवाश्व्यर्काः आर्द्राश्विनीहस्ताः, माघे श्रुतिमूले श्रवणमूले, फाल्गुनमासे यमेन्द्रभे भरणीज्येष्ठे, एतास्ताराः क्रमाच्चैत्रादिमासेषु शून्यसंज्ञा ज्ञेयाः। कीदृश्यस्ताराः ? वित्तविनाशदा धननाशकरा इत्यर्थः। उक्तं च वसिष्ठसंहितायाम्—'अश्विनी रोहिणी चैत्रे शून्यभे परिकीर्तिते। चित्रा स्वाती च वैशाखे ज्येष्ठे विश्वेज्यतारके ॥ भगवासवमाषाढे श्रावणे हरिविश्वभे। नभस्ये वारुणान्त्यर्क्षमजपादश्वयुज्यपि ॥ कार्तिके पितृवह्न्यृक्षे मार्गे चित्राद्विदैवते। पौषे दस्रकरार्द्राः स्युर्माघे मूलं च विष्णुभम् ॥ तपस्ये शक्रभरणी शून्यभान्याहुरग्रजाः। एषु यत्तु कृतं कर्म धनैः सह विनश्यति' ॥ इति ॥ १४-१५ ॥

हिन्दी—चैत्रमास में रोहिणी और अश्विनी, वैशाख में चित्रा-स्वाती, ज्येष्ठ में उत्तराषाढा-पुष्य, आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनी-धनिष्ठा, श्रावण में उत्तराषाढा-श्रवण, भाद्रपद में शतभिषा-रेवती, आश्विन में पूर्वाभाद्रपदा, कार्तिक में कृत्तिका-मघा, मार्गशीर्ष में चित्रा-विशाखा, पौष में आर्द्रा-अश्विनी, माघ में श्रवण-मूल और फाल्गुन में भरणी-ज्येष्ठा, ये **मासशून्य नक्षत्र** कहे गये हैं। इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के धन का नाश होता है ॥ १४-१५ ॥

अथ चैत्रादिमासेषु शून्यराशीननुष्टुभाह—

घटो झषो गौर्मिथुनं मेषकन्यालितौलिनः ।
धनुः कर्को मृगः सिंहश्चैत्रादौ शून्यराशयः ॥ १६ ॥

घट इति । चैत्रे घटः कुम्भः, वैशाखे झषो मीनः, ज्येष्ठे गौर्वृषः, आषाढे मिथुनं, श्रावणे मेषः, भाद्रपदे कन्या, आश्विनेऽलिर्वृश्चिकः, कार्तिके तौलिस्तुला, मार्गशीर्षे धनुः, पौषे कर्कः, माघे मृगो मकरः, फाल्गुने सिंहः, एते राशयः क्रमेण चैत्रमासादिषु शून्यसंज्ञका इत्यर्थः । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'घटमत्स्यवृषा युग्ममेषकन्याः सवृश्चिकाः । तुलाचापकुलीराख्यमृगसिंहाश्च राशयः ॥ चैत्रादौ मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशदाः । तस्मात्तान्सम्परित्यज्य शोभनं कारयेत्सुधीः' ॥ इति ॥ १६ ॥

हिन्दी—चैत्र में कुम्भ, वैशाख में मीन, ज्येष्ठ में वृष, आषाढ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्रपद में कन्या, आश्विन में वृश्चिक, कार्तिक में तुला, मार्गशीर्ष में धनु, पौष में कर्क, माघ में मकर और फाल्गुन में सिंह, ये राशियाँ **शून्य** हैं । इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के वंश और धन दोनों का विनाश होता है ॥ १६ ॥

मास में शून्यतिथि-नक्षत्र-राशि-बोधक चक्र—

मास		चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र.	आश्विन	कार्तिक	मार्ग.	पौष	माघ	फाल्गु.
शून्यतिथियाँ	शुक्ल	९।८	१२	१३	७	३।२	१।२	१०।११	१४	७।८	४।५	६	३
	कृष्ण	९।८	१२	१४	६	३।२	१।२	१०।११	५	७।८	४।५	५	४
शू. नक्षत्र		रोहि. अश्वि.	चित्रा स्वाती	उ. षा. पुष्य	पू. षा. धनि.	उ. षा. श्रवण	शत. रेवती	पू. भाद्र.	कृत्ति. मघा	चित्रा विशा.	आर्द्रा अश्वि. हस्त	श्रव. मूल	भद्र. ज्येष्ठा
शू. राशि		कुंभ ११	मान १२	वृष २	मिथुन ३	मेष १	कन्या ६	वृश्चिक ८	तुला ७	धनु ९	कर्क ४	मकर १०	सिंह ५

अथ विषमतिथिषु दुग्धलग्नानीन्द्रवज्रयाऽऽह—

पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ मृगेन्द्रनक्रौ मिथुनाङ्गने च ।
चापेन्दुभे कर्कहरी हयान्त्यौ गोऽन्त्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने ॥ १७ ॥

पक्षादित इति । शुक्लकृष्णसाधारण्येन पक्षमङ्गीकृत्य ओजतिथौ विषमतिथिषु प्रतिपत्तृतीयादिषु घटस्तुला, एणो मकर इत्यादीनि लग्नानि क्रमेण दिनदग्धानि ज्ञेयानि । यथा प्रतिपदि तुलामकरौ, तृतीयायां मृगेन्द्रनक्रौ सिंहमकरौ, पञ्चम्यां, मिथुनकन्ये, सप्तम्यां धनुःकर्कौ, नवम्यां कर्कसिंहौ, एकादश्यां धनुर्मीनौ, त्रयोदश्यां वृषमीनौ, तस्यां तस्यां तिथौ एते एते लग्ने नेष्टे अनिष्टे इत्यर्थः । उक्तञ्च वसिष्ठ-संहितायाम्—'मृगसिंहौ तृतीयायां प्रथमायां तुलामृगौ । पञ्चम्यां बुधराशी द्वौ सप्तम्यां चापचन्द्रभे ॥ नवम्यां सिंहकीटाख्यावेकादश्यां गुरोर्गृहे । वृषमीनौ त्रयोदश्यां दग्ध-

संज्ञास्त्वमी गृहाः ॥ दग्धसद्मनि यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यति । तस्माद्दग्धगृहास्त्याज्याः शोभनेष्वखिलेष्वपि ॥' इति ॥ १७ ॥

हिन्दी—शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में प्रतिपदा से लेकर विषम (१।३।५।७।९।११।१३) तिथियों में क्रम से तुला, मकर आदि लग्न अर्थात् प्रतिपदा में तुला और मकर, तृतीया में सिंह और मकर, पंचमी में मिथुन और कन्या, सप्तमी में धनु और कर्क, नवमी में कर्क और सिंह, एकादशी में धनु और मीन, त्रयोदशी में वृष और मीन शून्य लग्न है। उनमें कोई शुभ कार्य करना उचित नहीं है ॥ १७ ॥

सुखबोधार्थ चक्र—

तिथि	१	३	५	७	९	११	१३
शून्य लग्न	तुला ७ मकर १०	सिंह ५ मकर १०	मिथुन ३ कन्या ६	धनु ९ कर्क ४	कर्क ४ सिंह ५	धनु ९ मीन १२	वृष २ मीन १२

अथैषां दुष्टयोगानां शुभकृत्यावश्यकत्वे सति परिहारं नारदवचनेनैवाह—

तिथयो मासशून्याश्च शून्यलग्नानि यान्यपि ।
मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु तु ॥ १८ ॥
पङ्ग्वन्धकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः ।
गौडमालवयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिताः ॥ १९ ॥

तिथय इति । स्पष्टार्थमिदं पद्यद्वयम् । पङ्ग्वन्धकाणाद्याख्यानि लग्नानि विवाह-प्रकरणे वक्ष्यन्ते । मध्यदेशो वराहसंहितायामुक्तः—'मद्रारिमेदमाण्डव्यशाल्वनीपोज्जिहानसङ्ख्यानाः । मरुवत्सघोषयामुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः ॥ माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च । गौरग्रीवौ दैहिकपच्चगुडाश्वत्थपाञ्चालाः । साकेतककुकुरुकालकोटिकुकुराश्च पारियात्रनगः । औदुम्बरकापिष्ठकगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम् ॥' इति । जगन्मोहनेऽपि—'केन्द्रे चैव त्रिकोणे च शुभो ह्युपचयेऽपि वा । एकोऽपि बलवांश्चापि शून्यतिथ्युडुनाशकः ॥' इति ॥ अयं देशाचारमनुसृत्य व्यवहारः कर्तव्यः ॥ १८-१९ ॥

हिन्दी—मास में शून्यतिथियाँ (१० श्लोकोक्त) तथा शून्यलग्न (१७ श्लोकोक्त) मध्यदेश[1] में ही वर्जित हैं, अन्य देशों में दूषित नहीं है। एवं पंगु, अन्ध, काण लग्न और मास में शून्य राशियाँ गौड और मालवा देश में ही वर्जित हैं, दूसरे देशों में नहीं ॥ १८-१९ ॥

---

१. 'हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विशननादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥' मनु २।२१ ॥

हिमवान् और विन्ध्याचल के बीच, सरस्वती नदी से पूर्व प्रयाग से पश्चिम, इनके बीच के भूभाग को मनु ने मध्यदेश कहा है। आधुनिक मध्यप्रदेश इससे भिन्न है। वराहमिहिर के मत में मध्यप्रदेश के लिये पीयूषधारा टीका देखिए।

अथ समस्तशुभकार्येषु सिद्धिदानपि हस्तार्कादियोगांस्तिथिविशेषेणातिनिन्द्यानुष्टुब्द्वयेनाह—

वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्कं पञ्चमीतिथौ ।
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं तथा ॥ २० ॥
बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम् ।
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादश्यां शनिरोहिणीम् ॥ २१ ॥

वर्जयेदिति । सर्वशुभकृत्येषु पञ्चम्यां हस्तनक्षत्रं सूर्यवारं च युगपद्वर्जयेत् । एवं सप्तम्यां भौमाश्विनीमपि, षष्ठ्यां सोममृगनक्षत्रे, अष्टम्यां बुधानुराधां, दशम्यां भृगुरेवतीं, नवम्यां गुरुपुष्यम्, एकादश्यां शनिरोहिणीं वर्जयेदित्यर्थः । हस्तार्कादीन् सिद्धियोगानाह नारदः—'हस्तर्क्षं सूर्यवारेन्दाविन्दुभं प्रथमं कुजे । सौम्ये मित्रभमाचार्ये पुष्यं पौष्णं भृगोः सुते । रोहिणी मन्दवारे तु सिद्धियोगाह्वया अमी ॥' इति । तत्र त्रितयनिषेधो दैवज्ञमनोहरे—'आदित्ये पञ्चमीहस्तौ सोमे षष्ठी च चन्द्रभम् । भौमाश्विन्यौ च सप्तम्यामनुराधां बुधाष्टमीम् ॥ गुरुपुष्यं नवम्यां च दशम्यां भृगुरेवतीम् । एकादश्यां शनिब्राह्मे विषयोगाः प्रकीर्तिताः ॥' इति । अन्यत्रापि—'अर्के हस्तं पञ्चमीं च सोमे षष्ठीं च चन्द्रभम् । अश्विनीं सप्तमीं सोमे बुधे मैत्रं तथाष्टमीम् ॥ गुरौ पुष्यं च नवमीं रेवतीं दशमीं भृगौ । एकादशीं शनौ ब्राह्मं वर्जयेत्सर्वदा बुधः ॥' इति । वसिष्ठेन त्वन्यदेव त्रितयं निषिद्धमुक्तम्—'अर्कवारेऽग्निपञ्चम्यौ सोमे चित्रा द्वितीयया । कुजे पूर्णेन्दुरोहिण्योः सप्तमीयाम्ययोर्बुधे ॥ गुरौ मित्रत्रयोदश्योः षष्ठीश्रवणयोः सिते । पौष्णाष्टम्योः शनावेते योगा हालाहलाह्वयाः ॥ एषु योगेषु कर्तव्यं शत्रूच्चाटनमारणम् । विवाहादिषु कार्येषु नियतं निधनप्रदम् ॥' इति । अग्निः कृत्तिका । पूर्णेन्दुः पूर्णिमा ॥ २०–२१ ॥

हिन्दी—पंचमी तिथि में रविवार और हस्तनक्षत्र, सप्तमी में भौमवार अश्विनीनक्षत्र, षष्ठी में चन्द्रवार मृगशिरानक्षत्र, अष्टमी में बुधवार अनुराधानक्षत्र, दशमी में शुक्रवार रेवतीनक्षत्र, नवमी में गुरुवार पुष्यनक्षत्र और एकादशी में शनिवार रोहिणीनक्षत्र को समस्त शुभकार्यों में वर्जित (त्याग) कर देना चाहिए ।

यद्यपि यहाँ नक्षत्र-वार के योग से शुभयोग होते हैं, तथापि तिथियों के योग से निषिद्ध योग हो जाते हैं । इसी को **मधुसर्पिष्** योग भी कहते हैं । महर्षि वसिष्ठ ने दूसरे प्रकार का **मधुसर्पिषे** योग कहा है, जिसको **हालाहल** योग कहा है ॥ २०–२१ ॥

सुगमता से ज्ञान के लिये दोनों मतों का चक्र देखिए—

वार सिद्धयोग	रवि हस्त	सोम मृगशिरा	मंगल अश्विनी	बुध अनुराधा	गुरु पुष्य	शुक्र रेवती	शनि रोहिणी
तिथि	५	६	७	८	९	१०	११

वसिष्ठोक्त हालाहलयोग चक्र—

वार	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
तिथि नक्षत्र	५ कृत्तिका	२ चित्रा	१५ रोहिणी	७ भरणी	१३ अनुराधा	६ श्रवण	८ रेवती

अथ भौमाश्विनीत्यादिकान् सिद्धियोगान् कार्यविशेषेऽतिनिन्द्यानानुष्टुभाह—

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम् ।
भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

गृहेति । नूतनगृहप्रवेशेऽतिसिद्धिदामपि भौमाश्विनीं वर्जयेत् । यात्रायां शनौ रोहिणीं वर्जयेत् । विवाहे गुरुपुष्यं विवर्जयेत् । राजमार्तण्डः—'भौमाश्विनीं प्रवेशे चं प्रयाणे शनिरोहिणीम् । गुरुपुष्यं विवाहे च सर्वथा परिवर्जयेत् ॥' इति । ननु भौमाश्विनी तु प्रवेशे निषिद्धास्ति । कथम् ? 'व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितासु च । दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रदः ॥' इति नारदोक्तेर्भौमो निषिद्धः । अश्विनी-क्षिप्रसंज्ञकनक्षत्रं, तेन 'क्षिप्रैश्चरैः स्यात्पुनरेव यात्रा' इति फलम् । ततः सापि निषिद्धा । एवं रोहिणी यात्रायामविहिता, पश्चिमायां चातिशयेन निषिद्धैव । एवं शनिवारोऽपि सामान्यतो नवम्यादियोगे सुतरां निषिद्ध एव । एवं पुष्योऽपि विवाहे निषिद्धः । गुरुवारस्तूत्तम एव । अनयोर्योगस्तु वाय्वग्निवत्सुतरां निषिद्धस्तत्कथमिदमपवादवचनम् ? प्राप्तिपूर्वकत्वात्प्रतिषेधस्य इति । उच्यते—'हस्तर्क्षमर्कवारे' इत्यादिवचनाद् भौमाश्विनी-त्यादेर्वा नक्षत्रयुतेः कार्यमात्रे प्रशस्ततमत्वमस्ति । यदाह राजमार्तण्डः—'यदि विष्टि-र्व्यतीपातो दिनं वाप्यशुभं भवेत् । हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ॥ हन्त्यमृताख्यो योगः सर्वाण्यशुभानि लीलया नियतम् । न भवति पुनरिह शक्तौ वैधृतिविष्टिव्यती-पाते ॥' इति । सामान्यतः कार्यमात्रप्राशस्त्यप्राप्तावपवादवचनं युक्तमेव । अत्र पितृ-चरणाः । इयं च प्रशंसाऽमृतयोगकारकनक्षत्रवारोक्तकर्मविशेषगतविशिष्टफलाभिधायि-कावगन्तव्या न तु निषिद्धकर्मानुविधायिनी । अत एव पठन्ति—'भौमाश्विनीं प्रवेशे च प्रयाणे शनिरोहिणीम् । गुरुपुष्यं विवाहे च सर्वथा परिवर्जयेत् ॥' इत्याहुः । अत्र समाधिः । अन्यशुभदिवसासम्भवे कृत्यस्य चावश्यकत्वे भौमाश्विन्यादौ निषिद्धेऽपि कार्यं कार्यमन्यथा नेति ॥ २२ ॥

हिन्दी—गृहप्रवेश में भौमवार अश्विनीनक्षत्र, यात्रा में शनिवार रोहिणीनक्षत्र और विवाह में गुरुवार पुष्यनक्षत्र को त्याग देना चाहिए ॥ २२ ॥

विशेष—भौमाश्विनी, शनिरोहिणी और गुरुपुष्य, ये तीनों **सिद्धियोग** हैं । तथापि गृहप्रवेश में भौमवार निषिद्ध है, अश्विनीनक्षत्र भी विहित नहीं, अतः सिद्धियोग होते हुए भी गृहप्रवेश में त्याज्य है । वसिष्ठ एवं राजमार्तण्ड के अनुसार यात्रा में शनिवार निन्द्य माना गया है, अतः रोहिणी के योग से सिद्धियोग होते हुए भी यात्रा में त्याज्य है । गुरुपुष्ययोग कामुकता का वर्धक होने से विवाह में निषिद्ध है ।

अथानन्दादीनष्टाविंशतियोगान् शालिन्युपजातिभ्यामाह—

आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वाङ्क्षकेतू क्रमेण ।
श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुम्बौ ॥ २३ ॥
उत्पातमृत्यू किल काणसिद्धी शुभोऽमृताख्यो मुसलो गदश्च ।
मातङ्गरक्षश्चरसुस्थिराख्याः प्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना ॥ २४ ॥

आनन्देति । स्पष्टार्थं पद्यद्वयम् । यदाह नारदः—'आनन्दः कालदण्डोऽथ धूम्रो धाता शुभाह्वयः । ध्वाङ्क्षो ध्वजाख्यश्रीवत्सवज्रमुद्गरछत्रकाः ॥ मित्रमानसपद्माख्यलुम्बकोत्पातमृत्यवः । काणः सिद्धिः शुभामृतमुसलातङ्ककुञ्जराः । राक्षसाख्यश्चरस्थैर्यवर्धमानाः क्रमादमी । योगाः स्वसंज्ञाफलदास्त्वष्टाविंशतिसङ्ख्यकाः ॥' इति ॥ २३-२४ ॥

हिन्दी—१ आनन्द, २ कालदण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सौम्य, ६ ध्वांक्ष, ७ केतु, ८ श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्व, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुशल, २३ गद (रोग), २४ मातंग, २५ रक्ष, २६ चर, २७ सुस्थिर और २८ प्रवर्धमान—ये (वार और नक्षत्रों के योग से उत्पन्न) योग अपने-अपने नाम के अनुसार फल देने वाले होते हैं ॥ २३-२४ ॥

विशेष—उक्त योगों में २।३।६।९।१०।१४।१५।१६।१७।१८।२२।२३।२५—ये १३ योग अशुभ फल देने वाले हैं । तथा शेष १५ शुभफलप्रद हैं ।

अथैते योगाः कथं ज्ञेया इत्यनुष्टुभाह—

दास्त्रादर्के मृगादिन्दौ सार्पाद्भौमे करात् बुधे ।
मैत्राद् गुरौ भृगौ वैश्वाद् गण्या मन्दे च वारुणात् ॥ २५ ॥

दास्त्रादिति । अत्र नक्षत्राणां साभिजितां गणना कार्या । यतोऽष्टाविंशतिरेते योगाः सम्भवन्ति । तथा सत्यर्कवारे दास्त्रादश्विनीनक्षत्रात्साभिजिद्दिननक्षत्रं गणनीयम् । तद्यत्सङ्ख्याकं स्यात्तत्सङ्ख्याको योग आनन्दादिर्भवति । यथा दिननक्षत्रं श्रवणः तदश्विनीतः साभिजिद्गणनया त्रयोविंशतिसङ्ख्यमस्ति । तथासत्यानन्दादियोगेषु त्रयोविंशतिसङ्ख्यो गदयोगो जातः । एवमिन्दौ सोमवारे मृगशीर्षात्पूर्ववद् गणनया आनन्दादियोगा ज्ञेया इत्यर्थः । एवं सर्वत्र व्याख्येयम् । सार्पमाश्लेषा, करो हस्तनक्षत्रं, मैत्रमनुराधा, वैश्वमुत्तराषाढा, वारुणं शततारका । यदाह नारदः—'रविवारक्रमादेते दास्त्रभादिन्दुभाद्विधौ । सार्पाद्भौमे बुधे हस्तान्मैत्रभाद्देवमन्त्रिणि ॥ वैश्वदेवाद् भृगुसुते वारुणाद्भास्करात्मजे ॥' इति ॥ २५ ॥

हिन्दी—रविवार को अश्विनी से, सोमवार को मृगशिरा से, मंगलवार को आश्लेषा से, बुधवार को हस्त से, गुरुवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढा से और शनिवार को शतभिषा से अभिजित् सहित वर्तमान नक्षत्र तक गिन कर जितनी संख्या हो, उस दिन आनन्द से गिनने पर उतनी संख्या वाला योग होता है ॥ २५ ॥

उदाहरण—रविवार को धनिष्ठा नक्षत्र है तो कौन योग होगा ? ऐसे प्रश्न के उत्तर के लिये रविवार को अश्विनी से धनिष्ठा तक अभिजित् सहित गिनने पर २४ संख्या हुई । अतः आनन्दादि से २४वाँ मातंगयोग आया । इसी प्रकार सभी वारों में समझना चाहिए ।

सुगमता से योगों को जानने के लिये चक्र—

संख्या	योग	फल	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	आनन्द	शुभ	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उ. षाढा	शतभिषा
२	कालदण्ड	अशुभ	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पू. भाद्र
३	धूम्र	अशुभ	कृत्तिका	पुनर्वसू	पू. फाल्गु	स्वाती	मूल	श्रवण	उ. भाद्र
४	धाता	शुभ	रोहिणी	पुष्य	उ. फाल्गु	विशाखा	पू. षाढा	धनिष्ठा	रेवती
५	सौम्य	शुभ	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उ. षाढा	शतभिषा	अश्विनी
६	ध्वांक्ष	अशुभ	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित	पू. भाद्र	भरणी
७	केतु	शुभ	पुनर्वसू	पू. फाल्गु	स्वाती	मूल	श्रवण	उ. भाद्र	कृत्तिका
८	श्रीवत्स	शुभ	पुष्य	उ. फाल्गु	विशाखा	पू. षाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी
९	वज्र	अशुभ	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उ. षाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा
१०	मुद्गर	अशुभ	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पू. भाद्र	भरणी	आर्द्रा
११	छत्र	शुभ	पू. फाल्गु	स्वाती	मूल	श्रवण	उ. भाद्र	कृत्तिका	पुनर्वसू
१२	मित्र	शुभ	उ. फाल्गु	विशाखा	पू. षाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य
१३	मानस	शुभ	हस्त	अनुराधा	उ. षाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा
१४	पद्म	अशुभ	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पू. भाद्र	भरणी	आर्द्रा	मघा
१५	लुम्ब	अशुभ	स्वाती	मूल	श्रवण	उ. भाद्र	कृत्तिका	पुनर्वसू	पू. फाल्गु
१६	उत्पात	अशुभ	विशाखा	पू. षाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फाल्गु
१७	मृत्यु	अशुभ	अनुराधा	उ. षाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त
१८	काण	अशुभ	ज्येष्ठा	अभिजित्	पू. भाद्र	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
१९	सिद्धि	शुभ	मूल	श्रवण	उ. भाद्र	कृत्तिका	पुनर्वसू	पू. फाल्गु	स्वाती
२०	शुभ	शुभ	पू. षाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फाल्गु	विशाखा
२१	अमृत	शुभ	उ. षाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा
२२	मुशल	अशुभ	अभिजित्	पू. भाद्र	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा
२३	गद	अशुभ	श्रवण	उ. भाद्र	कृत्तिका	पुनर्वसू	पू. फाल्गु	स्वाती	मूल
२४	मातंग	शुभ	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फाल्गु	विशाखा	पू. षाढा
२५	रक्ष	अशुभ	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उ. षाढा
२६	चर	शुभ	पू. भाद्र	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्
२७	सुस्थिर	शुभ	उ. भाद्र	कृत्तिका	पुनर्वसू	पू. फाल्गु	स्वाती	मूल	श्रवण
२८	प्रवर्धमान	शुभ	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फाल्गु	विशाखा	पू. षाढा	धनिष्ठा

अथानन्दादिषु ये दुष्टयोगास्तेषां कियतां सत्यावश्यकत्वे परिहारं शालिन्याह—

ध्वाङ्क्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्यो वर्ज्या वेदाः पद्मलुम्बे गदेऽश्वाः।
धूम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे॥ २६॥

ध्वाङ्क्ष इति। ध्वाङ्क्षवज्रमुद्गरयोगेषु आद्या इषुनाड्यः पञ्चघट्यो वर्ज्याः। पद्मलुम्बयोगयोर्वेदाश्चतस्रो घटिका वर्ज्याः। एवं गदे अश्वाः सप्तघटिकाः, धूम्रे भूरेकैव घटिका, काणे घटिकाद्वयं, मुसलयोगे घटिके द्वे, राक्षसमृत्यूत्पातकालाः षष्टिघटिकात्मकाः सर्वेऽपि वर्ज्याः। अत्र श्लोके अनुक्तेऽपि चरयोगे घटिकात्रयं वर्ज्यम्। उक्तञ्च ज्योतिःसारसागरे—'ध्वाङ्क्षेन्द्रायुधमुद्गरेषु घटिकास्त्याज्यास्तु पञ्चादितः, पद्मालुम्बकयोश्चतस्र उदिता धूम्रे सदैका पुनः। द्वे काणे मुसलाह्वयेऽपि च गदे सप्तैव तिस्रश्चरे, मृत्यूत्पातकरक्षसां दिनगतास्ताः कालदण्डे तथा॥' अत्र दिनशब्देनाहोरात्रमुच्यते। पद्मालुम्वकयोरित्यत्राङ्प्रश्लेषश्छन्दोऽनुरोधार्थः॥ २६॥

हिन्दी—६ ध्वांक्ष, ९ वज्र और १० मुद्गर योगों में आदि की ५ घटी, १४ पद्म और १५ लुम्ब योगों में आदि की ४ घटी, २३ गद योग की आदिम ७ घटी, ३ धूम्र योग के आदि में १ घटी, १८ काण में २ घटी, २२ मुशल में २ घटी और २५ राक्षस, १७ मृत्यु और १६ उत्पात एवं २ काल योगों की समस्त घटिकाएँ शुभकर्म में त्याज्य हैं। ज्योतिःसारसागर में चरयोग के आदि में भी ३ घटी त्याज्य करने का निर्देश है (पीयूषधारा द्र०)। इसका भोगकाल धनिष्ठा के भोगकाल ७।२५ घटी के तुल्य ही हुआ। उसके बाद शतभिषा प्रारम्भ होता है। अतः ७।२५ घटी के अनन्तर आनन्दयोग प्रारम्भ हो जायगा। इसी प्रकार सर्वत्र देखना चाहिये॥ २६॥

विशेष—पंचांग में आनन्दादि योगों का भोगमान जानने का नियम यह है कि जिस वार और नक्षत्र के योग से आनन्दादि योग बनते हैं। उस योग का भोगकाल उस नक्षत्र के बराबर ही रहता है। नक्षत्र समाप्त हो जाने पर योग की समाप्ति हो जाती है, उसके बाद आगे का योग प्रारम्भ हो जाता है। जैसे—शनिवार को धनिष्ठा नक्षत्र ७।२५ घटी है तो चक्र देखने से २८ प्रवर्धमान योग हुआ।

अथ दोषापवादभूतान् रवियोगाननुष्टुभाह—

सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते।
चन्द्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसङ्घविनाशकाः॥ २७॥

सूर्यभादिति। सूर्यो यस्मिन्नक्षत्रेऽस्ति ततश्चन्द्रर्क्षं दिननक्षत्रमित्यर्थः। तस्मिन् चतुर्नवषट्दशत्रयोदशविंशतिसङ्ख्याके सति रवियोगाः स्युः। कीदृशः ? दोषाणां सङ्घः समूहस्तस्य विनाशका इत्यर्थः। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'सूर्याच्चतुर्थे दशमे च षष्ठे विश्वर्क्षके विंशतिमे नवर्क्षे। भवन्ति षड् भानुमहर्क्षयोगाः कुयोगविध्वंसकराः शुभेषु'॥ इति॥ २७॥

हिन्दी—सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उस नक्षत्र से वर्तमान चन्द्र नक्षत्र—चौथा, नवाँ, छठा, दसवाँ, तेरहवाँ और बीसवाँ हो तो रवियोग होता है। यह समस्त दोषों को नष्ट करने वाला है॥ २७॥

विशेष—यदि सूर्य अश्विनी नक्षत्र पर है तो ४ रोहिणी, ६ आर्द्रा, ९ आश्लेषा, १० मघा, १३ हस्त और २० पूर्वाषाढ़ा में रवियोग होगा। संयोगवश उक्त नक्षत्रों के साथ रविवार भी हो तो रविवार आश्लेषा नक्षत्र के योग से ९ वज्र, रविवार मघा के योग से १० मुद्गर योग भी होगा, जो निन्द्य माना जाता है। तथापि 'अयोगे सुयोगोऽपि' (१।४२) इत्यादि के अनुसार रवियोग का ही फल होगा। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

अथ सूर्यादिवारेषु नक्षत्रविशेषैः सिद्धियोगानिन्द्रवज्रोपजातिभ्यामाह—

सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम्।
भौमेऽश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम्॥ २८॥
जीवेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितीज्यधिष्ण्यं शुक्रेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम्।
शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः॥ २९॥

सूर्येति। रविवारे हस्तमूलत्र्युत्तरापुष्याश्विन्यो नक्षत्राणि सिद्धियोगाः स्युः। एवं चन्द्रे श्रवणरोहिणीमृगशिरःपुष्यानुराधाः सिद्धियोगाः। एवं भौमेऽश्विन्युत्तराभाद्रपदा-कृत्तिकाश्लेषाः। ज्ञे बुधे रोहिण्यनुराधाहस्तकृत्तिकाश्लेषाः। गुरौ रेवत्यनुराधाश्विनी-पुनर्वसुपुष्याः। शुक्रे रेवतीपूर्वाफल्गुन्यश्विनीपुनर्वसुश्रवणाः। शनौ श्रवणरोहिणीस्वात्यो नक्षत्राणि सर्वार्थसिद्ध्यै पूर्वैराचार्यैः कथितान्युक्तानि। अत्रैते सिद्धियोगाः 'दास्रादर्के मृगादिन्दौ' इत्यादिप्रकारेणानन्दादिसमीचीनयोगसम्बन्धिनक्षत्रैरुपनिबद्धाः। अत एवा-नयोः पद्ययोरार्षमूलाभावः। अमुमेवाशयं मनस्यभिसन्धाय जगन्मोहनज्योतिःसार-सागरादिनिबन्धेषु स्वेच्छया न्यूनाधिकनक्षत्रैः सिद्धियोगा उक्ताः। तत्र भीमपराक्रमः— 'मूलं रवौ पुष्यकरोत्तराणि वेधा मृगाङ्कः श्रवणं च सोमे। कृशानुपुष्योत्तरभानि भौमे बुधेऽनुराधा वरुणः कृशानुः॥ बृहस्पतौ पुष्यपुनर्वसू च भगोऽश्विनी च श्रवणं च शुक्रे। शनैश्चरे स्वातिपितामहौ च योगाः किलैते शुभदायिनः स्युः'॥ इति। दीपि-कायां च—'ध्रुवगुरुकरमूलं पौष्णभञ्चार्कवारे' इत्यादिभिर्नक्षत्रैः सिद्धियोगाभिधानं युक्तमेव। 'हस्तर्क्षमर्कवारेन्दाविन्दुभं प्रथमं कुजे। सौम्ये मित्रभमाचार्ये पुष्यं पौष्णं भृगोः सुते॥ रोहिणी मन्दवारे तु सिद्धियोगाह्वया अमी' इति नारदोक्तवचनार्थेऽ-स्मिन्पद्ये, उक्ता एवेति स्वयं पुनर्नोक्ताः॥ २८–२९॥

हिन्दी—रविवार को—हस्त, मूल, तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्र-पदा), पुष्य और अश्विनी ७ नक्षत्र;

सोमवार को—श्रवण, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य और अनुराधा ५ नक्षत्र;

भौमवार को—अश्विनी, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका और आश्लेषा ४ नक्षत्र;

बुधवार को—रोहिणी, अनुराधा, हस्त, कृत्तिका और मृगशिरा, ये ५ नक्षत्र;

बृहस्पतिवार को—रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु और पुष्य ५ नक्षत्र;

शुक्रवार को—रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु और श्रवण ५ नक्षत्र;

शनिवार को—श्रवण, रोहिणी, स्वाती ३ नक्षत्र पड़ें; तो **सर्वार्थसिद्धियोग** होता है। इसमें किया गया कार्य सफल होता है॥ २८-२९॥

विशेष—आनन्दादि योगों में भी रविवार को हस्त नक्षत्र होने से १३ मानस, मूल हो तो १९ सिद्धि, उत्तराफाल्गुनी हो तो १२ मित्र, उत्तराषाढ़ा हो तो २१ अमृत, उत्तराभाद्रपदा हो तो

१९ सुस्थिर, पुष्य हो तो ८ श्रीवत्स और अश्विनी हो तो १ आनन्दयोग होता है। ये सातों योग उत्तम फलदायक होते हैं। एवं प्रत्येक वारों में उत्तम योगों की प्रतीति होती है। इसलिये ग्रन्थकर्ता ने सब शुभदायक योगों का एकत्रीकरण करके इन्हें सर्वार्थसिद्धिदायक कहा है।

सर्वार्थसिद्धियोगचक्र

वार	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
नक्षत्र	हस्त मूल उ. फा. उ. षा. उ. भा. पुष्य आश्लेषा	श्रवण रोहिणी मृगशिरा पुष्य अनुराधा	आश्विन उ. भाद्र कृत्तिका आश्लेषा	रोहिणी अनुराधा हस्त कृत्तिका मृगशिरा	रेवती अनुराधा अश्विनी पुनर्वसु पुष्य	रेवती अनुराधा अश्विनी पुनर्वसु श्रवण	श्रवण रोहिणी स्वाती

ग्रन्थान्तर में वार-नक्षत्रोत्पन्न कुयोगों का भी उल्लेख है—

‘ज्येष्ठावह्निमघावृषाग्निवसवो मैत्रं यमाख्यं रवौ,
सोमे शैववृषाग्निपुष्यपवनाश्चित्रा त्वषाढाद्वयम्।
भौमे विश्वजलेशमित्रवसवः प्राग्भाद्रसार्पौ शिवः,
शूलीपौष्णमपूर्वयोनिभरणी वस्वश्विमूला बुधे॥
जीवे मूलमघार्द्रयाम्यवरुणाः पूषा शशी रोहिणी
शुक्रे स्वातिभुजङ्गदैवतमघापुष्योत्तरा रोहिणी।
सौरावर्यममूलहस्तवरुणाषाढाद्वयं रेवती,
चित्रा विष्णुमघाश्च सर्वसमये त्याज्याः कुयोगा अमी॥’

वार-नक्षत्रज कुयोगज्ञानार्थ सारणी—

वार	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
नक्षत्र	ज्येष्ठा कृत्तिका मघा विशाखा धनिष्ठा अनुराधा भरणी	आर्द्रा विशाखा पुष्य स्वाती चित्रा पूर्वाषाढा उ. षाढा	उ. षाढा शतभिषा अनुराधा धनिष्ठा पूर्वाभाद्र आश्लेषा आर्द्रा	आर्द्रा रेवती पू. फाल्गु. भरणी धनिष्ठा अश्विनी मूल	मूल मघा आर्द्रा भरणी शतभिषा रेवती मृगशिरा रोहिणी	स्वाती आश्लेषा मघा पुष्य उ. फा. उ. षाढा उ. भाद्र रोहिणी	उ. फा. मूल हस्त शतभिषा पूर्वाषाढा उ. षाढा रेवती चित्रा श्रवण मघा

इस वचन के अनुसार सोमवार–पुष्य, भौम–आश्लेषा एवं गुरु–रेवती को अशुभ योग और रामदैवज्ञ ने सर्वार्थसिद्धियोग कहा है। किन्तु आनन्दादि योगों में सोम-पुष्य=**धाता**, भौमाश्लेषा=**आनन्दयोग** और गुरु–रेवती=**मित्रयोग** होते हैं। अतः इनकी गणना उत्तम योगों में ही करनी चाहिए। ये शुभाशुभ योग ग्रन्थों में वर्णित विभिन्न शुभाशुभ योगों का एकत्रीकरण मात्र है।

अथोत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगान् शालिन्याह—

द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाद्युगर्क्षैः।
स्यादुत्पातो मृत्युकाणौ च सिद्धिर्वारेऽर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम् ॥ ३० ॥

द्वीशादिति। आदित्यवारादिषु क्रमाद् द्वीशाद्विशाखातः, तोयभात्पूर्वाषाढातः, वासवाद् धनिष्ठातः, पौष्णभाद्रेवतीतः, ब्राह्माद्रोहिणीतः, पुष्यादर्यमर्क्षादुत्तराफल्गुनीत आरभ्य युगर्क्षैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैः क्रमादुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगाः स्युः। यथा रवौ विशाखा उत्पातः, मैत्रं मृत्युः, ज्येष्ठा काणः, मूलं सिद्धिः। एवं सोमे पूर्वाषाढा उत्पातः, उत्तराषाढा मृत्युः, अभिजित्काणः, श्रवणं सिद्धिः। भौमे धनिष्ठोत्पातः, शततारका मृत्युः, पूर्वाभाद्रपदा काणः, उत्तराभाद्रपदा सिद्धिः। बुधे रेवत्युत्पातः, अश्विनी मृत्युः, भरणी काणः, कृत्तिका सिद्धिः। गुरौ रोहिण्युत्पातः, मृगो मृत्युः, आर्द्रा काणः, पुनर्वसुः सिद्धिः। शुक्रे पुष्य उत्पातः, आश्लेषा मृत्युः, मघा काणः, पूर्वाफल्गुनी सिद्धिः। शनावुत्तराफल्गुन्युत्पातः, हस्तो मृत्युः, चित्रा काणः, स्वाती सिद्धियोग इत्यर्थः। तदुक्तं नारदेन—'विशाखादिचतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात्। उत्पातमृत्युकाणाख्या योगाश्चामृतसंयुताः ॥' अमृतं सिद्धिः। ननु चायं पुनरुक्तः श्लोकार्थः। आदित्यवारादिषु हि—'दास्रादर्के मृगादिन्दौ' इत्यादिक्रमेणानन्दादियोगगणनया उत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगा एव सम्भवन्ति नान्ये। किञ्च—सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रम्' इति मूलादीनामेव सिद्धियोगाभिधानात्त्युक्तिश्चोच्यते। बालानां शीघ्रबोधनार्थं तथोक्तिः। अथवावश्यं वर्ज्या एते उत्पातमृत्युकाणाः सिद्धियोगोऽप्यतिप्रशस्त इत्येतदर्थं तथोक्तिः। ननु तर्हि देशभेदेन परिहारो वक्ष्यमाणोऽनुपपन्नः। सत्यम्। कार्यस्यावश्यकर्तव्यत्वे समीचीनदिनान्तराप्राप्तावपवादप्रवृत्तिरिति युक्तमुत्पश्यामः। तत्फलमिति तेषामुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगानां फलं नामतुल्यम्। यस्य योगस्य यादृशं नाम तद्योगसत्त्वे प्रारब्धकार्यफलमपि तादृशमेवेत्यर्थः। उक्तञ्च नारदेन—'योगाद्यसंज्ञा फलदास्त्वष्टाविंशतिसंज्ञकाः' इति ॥ ३० ॥

हिन्दी—रविवार को विशाखा से, सोमवार को पूर्वाषाढ़ा से, भौमवार को धनिष्ठा से, बुधवार को रेवती से, गुरुवार को रोहिणी से, शुक्रवार को पुष्य से और शनिवार को उत्तराफाल्गुनी से ४-४ नक्षत्रों के पड़ने से क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्धि योग होते हैं। इनका फल नामतुल्य ही कहा गया है।

सुगमता के लिए सारणी—

वार योग	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उत्पात	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.
मृत्यु	अनुराधा	उ. षाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त
काण	ज्येष्ठा	अभिजित	पूर्वाभाद्र	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्धि	मूल	श्रवण	उ.भाद्र.	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	स्वाती

इस तरह सूर्यादि वारों में किसी नक्षत्र से ४-४ नक्षत्र गिनने पर अनेकों योगचतुष्टय बनते हैं, किन्तु आचार्य ने एक ही चतुष्टयी का निर्देश किया है।

अथ दुष्टयोगानां देशभेदेन परिहारमनुष्टुभाह—

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः।
हूण-वङ्ग-खशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ३१ ॥

कुयोगा इति। तिथिवारोत्थाः कुयोगाः दुष्टयोगाः क्रकचादयः, तिथिभोत्थाः, 'अनुराधा द्वितीयायाम्' इत्यादयः, भवारजाः 'याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवम्' इत्यादयः, तथा त्रितयजास्तिथिवारनक्षत्रजाः। 'वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्कं पञ्चमीतिथौ' इत्येवमादयस्ते सर्वे दुष्टयोगा हूणवङ्गखशेष्वेव। हूणवङ्गौ प्राच्यदेशौ। खशो देश उत्तरस्यां दिशि प्रसिद्धस्तत्रैते वर्ज्याः। अन्यदेशेषु निषिद्धा न भवन्तीत्यर्थसिद्धमेव। उक्तञ्च नारदेन—'तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसम्भवाः। हूणवङ्गखशेभ्योऽन्यदेशेष्वेते शुभप्रदाः' ॥ अथ तिथिवारयोर्वारर्क्षयोश्च युतेरुपलक्षणत्वादन्ययुतावपि परिहारो ज्ञेयः ॥ ३१ ॥

हिन्दी—तिथि और वार से उत्पन्न **कुयोग** (नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या······इत्यादि **मृत्युयोग** (१।५), षष्ठ्यादि तिथयः···इत्यादि **क्रकचयोग** (१।६), सूर्येश पञ्चाग्नि···**दग्ध, विष, हुताशनयोग** (१।८-९) इत्यादि), तिथि और नक्षत्र से उत्पन्न **कुयोग** (तथा निन्द्यं शुभे सार्पं···१।११-१२), नक्षत्र और वार से उत्पन्न कुयोग (याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं इत्यादि **दग्धयोग** (१।५), मघा विशाखा···**यमघण्टयोग** (१।९), आनन्दादि योगों में कालदण्ड, मृत्यु उत्पातादि (१।२३-२४) और त्रितयज (तिथि, वार, नक्षत्र तीनों से उत्पन्न) **कुयोग** (वर्जयेत् सर्वकार्येषु···इत्यादि १।२०-२१) हूण[1], वंग (बंगाल), खश (नेपाल, वर्तमान गढवाल और उसके उत्तरवर्ती प्रदेश) इन्हीं देशों में वर्जनीय है, अन्य देशों में नहीं ॥ ३१ ॥

---

१. हूण जाति के लोग पूर्वकाल में चीन की पूर्वी सीमा पर लूट-पाट करते थे। वहाँ से प्रबल अवरोध होने पर तुर्किस्तान पर अधिकार कर लिया और वक्षु नद के किनारे आ बसे। फिर कालिदास के समय में हूण लोग वक्षु नद के तट तक ही सीमित थे। रघुवंश में कालिदास ने हूणों का वर्णन वक्षु नद के तट पर ही किया है। बाद में वे फारस के सम्राट् से हार कर भारत में घुसे और सीमान्त प्रदेश कपिसा गोधार पर अधिकार कर लिया। फिर मध्यदेश की ओर चढ़ाई

अथ समस्तशुभकृत्ये वर्ज्यपदार्थान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सर्वस्मिन्विधुपापयुक्तनुलवावर्धे निशाह्नोर्घटी-
त्र्यंशं वै कुनवांशकं ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयम् ।
उत्पातग्रहतोऽद्रचहांश्च शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं
षण्मासं ग्रहभिन्नभं त्यज शुभे यौद्धं तथोत्पातभम् ॥ ३२ ॥

सर्वस्मिन्निति । हे पण्डित ! सर्वस्मिन् शुभे कार्ये एतानि वस्तूनि वै निश्चयेन त्यज परिहरेत्यर्थः । कानीत्यत्राह—विध्विति । विधुश्चन्द्रः, पापाः क्षीणचन्द्रसूर्यभौमशनयः । 'क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः' इति वराहोक्तेः । राहुकेत्वोरपि पापत्वं दीपिकायामुक्तम्—'अर्धोनेन्द्वर्कसौराराः पापा ज्ञस्तैर्युतोऽपरे। शुभाः पापौ तमःकेतू विष्णुधर्मोत्तरोदितौ ॥' इति । वसिष्ठेनापि—सूर्यभौमशनिराहुकेतवः पापसंज्ञखचराः क्षयिचन्द्रः । पूर्णचन्द्रशुक्रसोमजाः सर्वकर्मसु हि सौम्यखेचराः ।।' इति । तत्र विधुना पापेन वा पापैर्वा युक्तौ तनुलवौ लग्ननवांशौ त्यज । 'पूर्णो क्षीणोऽपि वा चन्द्रो लग्ने सर्वत्र गर्हितः' इति कश्यपोक्तेः । श्रीपतिश्च—'सर्वार्थसिद्धिषु शशी न शुभो विलग्ने' इति । दैवज्ञमनोहरे गुरुः—'पापेन्दू लग्नगौ त्याज्यौ सर्वेषु शुभकर्मसु । अक्षीणं कर्किगोजस्थं केप्याहुर्लग्नगं शुभम् ॥' इति । अथ निशाह्नोरर्धे रात्र्यर्धे दिनार्धे च घटीत्र्यंशं विंशतिपलानि दश पूर्वं दश पश्चाच्च पलानि त्यज । उक्तञ्च शार्ङ्गीये—'मूर्तः कालो निवसति महानिशायां दिने दले यस्मात् । दश पूर्वं दश परतस्तस्माद्वर्ज्यानि च पलानि ॥' इति । अथो कुनवांशकं पापग्रहनवांशं त्यज, । यदाह नारदः—'क्रूरोग्रांशा न च ग्राह्या न शस्तास्ते नवांशकाः । कुनवांशकलग्नं यत्त्याज्यं सर्वगुणान्वितम् ॥' इति । क्रूरैः क्रूरग्रहैरुग्रा भयजनका अंशा नवांशा न ग्राह्या इत्यर्थः । अथ ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयं त्यज । ग्रहणतः सूर्यचन्द्रग्रहणदिनात्प्रथमं दिवसत्रयं त्याज्यम् । यदाह गर्गः—'चन्द्रसूर्योपरागेषु त्र्यहं प्रागशुभं भवेत् । सप्ताहमशुभं पश्चात्स्मृतं ग्रहणशूलकम् ॥' इति । उपरागो ग्रहणम् । 'उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विन्दौ पूष्णि च' इत्यमरोक्तेः । अथ उत्पातग्रहतोद्रचहांश्च । उत्पातो नाम स्वभावतो वैपरीत्यम् । यदाह वराहः—'तेषां सङ्क्षेपोऽयं प्रकृतेरन्यथात्वमुत्पातः' इति । ते चोत्पातास्त्रिविधाः । दिव्या आन्तरिक्षा भौमाश्च । तत्र दिव्यः केत्वादिः, आन्तरिक्षो गन्धर्वनगरादिः, भौमो भूमिकम्पादिः । एतदप्याह वराहः—'अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति । संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः ॥ दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः । गन्धर्वपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत् ॥ भौमं चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति' इति । ते ह्युत्पाता यस्मिन् दिने स्युस्तद्दिनमारभ्याद्रचहान् सप्त दिनानि त्यज । यदाह नारदः—'उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताहं निखिलग्रहे' इति । दीपिकायां च—'अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहकासूनुदर्शने । सप्तरात्रं न कुर्वीत यात्रोद्वाहादिमङ्गलम् ॥'

करने लगे और गुप्तसम्राटों से युद्ध करते हुए हूणों के प्रतापी राजा तोरमाण ने गुप्तसाम्राज्य के पश्चिमी भाग पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया । इस प्रकार गान्धार, काश्मीर, पञ्जाब, राजपूताना, मालवा, काठियावाड़ उनके शासन में आये । इनको हूण देश कहा जा सकता है ।

इति । अनिष्टे अकालवृष्टयादिदूषिते काले इति तट्टीकाकारो व्याख्यात् । अद्रयहानीति अद्रयश्च तान्यहानि चेति कर्मधारयसमासे 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति समासान्ते टचि कृते 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे च 'रात्राह्नाहाः पुंसि' इति पुंल्लिङ्गत्वम् । अत एव 'क्वाहाः प्रदेया अविशुद्धशुद्धौ' इत्यादयः प्रयोगा उपपद्यन्ते । तथा ग्रहणतोऽग्रहणत ऊर्ध्वं सप्त दिनानि त्यज । अत्र ग्रहणशब्देन सर्वग्रहणं विवक्षितम् । ततो न्यूनत्वे त्रैराशिकम् । यदाह वसिष्ठः—'सर्वग्रासे दिनान्यष्टौ सर्वकार्येषु वर्जयेत् । षट् दिनानि त्रिभागोने अर्धग्रासे चतुर्दिनम् ॥ चतुर्थांशे त्रिरात्रं स्याद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥' इति । नारदोऽपि— 'निःशेषे सप्त सप्त च' इत्याह । एतच्च यद्यप्यविशेषेणोक्तं तथापि ग्रहणानन्तरमेव ज्ञेयम् । 'उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताहं निखिलग्रहे' इति तस्यैवोक्तेः । अङ्गिरा अपि—'सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम् । त्रिद्व्येकाङ्गुलतो ग्रासे दिनमेकन्तु वर्जयेत् ॥' इति । अनयोर्वाक्ययोर्विषयव्यवस्था देशभेदेनाचारभेदादवगन्तव्या । क्वचित्सामान्यतो दिनसप्तकमुक्तम् । यदाह गर्गः—'सूर्यचन्द्रोपरागौ द्वौ महादोषाह्वयावुभौ । सप्तरात्रं तयोरूर्ध्वं सर्वशोभननाशनम् ॥' इति । एतदपि सर्वग्रासपरतया योज्यम् । शार्ङ्गीयविवाहपटले—चन्द्रस्य सर्वग्रासे उभयतो दिनसप्तकं त्याज्यमित्युक्तम्—'कृत्स्नचन्द्रग्रहे त्याज्यं प्राक् पश्चाद्दिनसप्तकम्' इति । उत्पातविशेषे ग्रहणे च बहूनि दिनानि वर्ज्यान्याहुः । यदाह चण्डेश्वरः—'ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥ इति । ग्रहे तु कार्यस्यावश्यकत्वविशेषे परिहार उक्तो ज्योतिर्निबन्धे—'पञ्चदिनानि वसिष्ठस्त्रिदिनं गर्गस्तु कौशिकस्त्वेकम् । यवनाचार्यस्य मतं पञ्च मुहूर्तांश्च दूषयति राहुः ॥' इति ।

अयञ्च ग्रहणयोर्निषेधो नित्यनैमित्तिकादिकृत्यव्यतिरिक्तविषयः । यदाह गुरुः— 'नित्ये नैमित्तिके काम्ये जपहोमक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥' इति । ग्रहो ग्रहणम् । अथ शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं त्यज, शुभं कल्याणं ददति लोकेभ्य इति शुभदा एतादृशा ये उत्पाता वसन्ताद्यृतुपुरस्कारेणोत्पातविशेषाः शुभा इत्युक्तम् । तादृशैरुत्पातैर्दुष्टं दूषितं दिनं द्वित्वातिरिक्तसङ्ख्याविशेषानवगमादेकत्वस्य च प्रतीतेरेकं दिनं त्याज्यमित्यर्थः । अत्र हेतुः शुभदत्वमुत्पातानाम् ।

शुभदोत्पाताः

शुभदोत्पातानाह ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्वराहः—

'वज्राशनिमहीकम्पाः सन्ध्यानिर्घातनिःस्वनाः । परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमनोदयाः ॥
द्रुमेभ्योऽन्तरसस्नेहमधुपुष्पफलोद्गमाः । गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ॥
तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् । अनग्निज्वलनास्फोटधूमरेखानिलाकुलम् ॥
रक्तपद्मारुणं सान्ध्यं नभः क्षुब्धार्णवोपमम् । सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं भवेत् ॥
शक्रायुधपरीवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् । कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं दारणं क्षितेः ॥
नद्युदपानसरसां वृद्ध्यूर्ध्वतरणप्लवाः । शीरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥
दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् । ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाम्बरे ॥
गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु । सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि स्मृताः ॥

शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् । रक्षो यक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥
दिशो धूमान्धकाराश्च सनशोवनपर्वताः । उच्चैः सूर्योदयेऽस्ते च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥
हिमपाताऽनिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम् । कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्॥
चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोजाश्वमृगपक्षिषु । पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥

ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः ।
ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते भृशदारुणाः ॥' इति ।

अथ ग्रहभिन्नभं ग्रहैर्भौमादिभिः पञ्चभिर्भिन्नं सिद्धान्तोक्तरीत्या भेदयोगं प्राप्तमेतादृशं भं नक्षत्रं त्यज । तथा यौद्धं यन्नक्षत्रं भौमादिपञ्चग्रहयुद्धमध्यपतितं सदृश्यन्ते तत्त्यज । तत्र क्रूरयोगादेव दोषसत्वे युद्धोपघातस्तु दोषाधिक्यसूचनार्थः । सौम्यग्रहयुद्धे तु स एव दोषः । अत्र केचित् यस्मिन् दिननक्षत्रे भौमादीनां युद्धं जातं तन्नक्षत्रं त्याज्यमित्याहुस्तन्न, प्रमाणाभावात् । तथोत्पातभमुत्पातैर्दिव्यान्तरिक्षभौमैर्दूषितं भं त्यज । अयमर्थः । भौमान्तरिक्षयोरुत्पातयोर्ग्रहयुद्धं चेत्प्रत्यक्षदृश्यनक्षत्राभावाद्दिननक्षत्रमेत्र त्याज्यम् । दिव्योत्पाते तु केत्वादिना प्रत्यक्षतो यन्नक्षत्रमाक्रान्तं तत्त्याज्यम् । भौमान्तरिक्षोत्पातसाहचर्याद्दिननक्षत्रमपि त्याज्यम् । एवं नक्षत्रचतुष्टयं षण्मासम् । 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया । षण्मासमभिव्याप्येत्यर्थः । यदुक्तं शार्ङ्गीयविवाहपटले—'क्रूरैर्भुक्तं युक्तं भोग्यं च तथैव खेटयुद्धगतम् । ग्रहभिन्ने केतुहतभं त्यजेन्महोत्पातदुष्टं यत् ॥ यद्राहुसन्दर्शनदुष्टमृक्षं शीतांशुयुक्तं च विवाहलग्ने । आमासषट्कं विदधीत तस्मिन्विवाहयात्रादिशुभं न चैव ॥' इति । नारदोऽपि—'ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम्' इति । मङ्गलेषु 'ऋतुत्रयमि'त्यत्र 'ऋत्यक' इति प्रकृतिभावः । गुरुरपि—'उत्पातैः पीडितास्तारा: षण्मासं प्रकृतिं ययुः । राहुकेतुविभुक्तं यदृक्षचक्रं निपीडितम् ॥ वत्सरार्धेन शुध्येत ग्रहयुद्धगतं च भम् । नक्षत्रग्रहयोगेन यदुक्तं दोषसञ्चयम् ॥ तदिदं सर्वकार्येषु शुभेषु परिवर्जयेत् ।' इति ।

ग्रहयुद्धे चत्वारो भेदाः

ग्रहयुद्धे भेदाश्चत्वारः—भेदः, उल्लेखः, अंशुविमर्दनम्, अपसव्यं चेति । यथा वराहः—'आसन्नक्रमयोगाद् भेदोल्लेखांशुमर्दनाऽसव्यैः । युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥' इति ॥ तल्लक्षानि सूर्यसिद्धान्ते—'उल्लेखस्तारकास्पर्शाद् भेदे भेदः प्रकीर्त्यते । युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ॥ अंशादूनेऽपसव्यं स्याद्युद्धमेकोऽत्र चेदणुः' इति । ननु ग्रहयुद्धादिकं सिद्धान्तविरुद्धम् । यतः—'कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्ताङ्कितास्ता वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः । तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भ्रान्ति यान्तः क्रमेण ॥' इति भास्कराचार्योक्तेर्महान्तरोर्ध्वाधोभावेनावस्थितानां ग्रहाणां युद्धासम्भव एव । लोके हि समीपवर्तिनोः पुंसोर्युद्धादि दृश्यते तत्कथमियमत्र शास्त्रे ग्रहयुद्धोक्तिः । सत्यम् । अत्र युक्तिपुरःसरं वराह एव समादधाति स्म—'वियतिचरग्रहाणामुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम् । अतिदूराद् दृग्विषये समतामिव सम्प्रयातानाम् ॥ आसन्नक्रमयोगाद् भेदोल्लेखांश्च मर्दनाऽसव्यैः । युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥' इति । तेन भूवर्तिनां राज्ञामन्येषां

वा शुभाशुभफलसूचनार्थं युद्धसमागमाद्युक्तिः । उक्तञ्च सूर्यसिद्धान्ते—'भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता । स्वमार्गतः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमार्गतः ॥' इति । ननु यथा ग्रहणं तिथिसन्धौ भवति तथा नक्षत्रद्वयसन्धौ जायमानं किं नक्षत्रं दूषयति किं परं किं पूर्वं किमुभयमिति । अविशेषादुभयमिति वयं ब्रूमः । यदुक्तं शार्ङ्गीयविवाहपटले–'यस्मिन् विधुं राहुरिनं च धिष्ण्ये गृह्णाति तत्त्याज्यमृतुत्रयं स्यात् । पाणिग्रहे पुम्मरणं विधत्ते द्वयोर्भयोश्चेद्द्वयमेव जह्यात् ॥' इति । अथासन्नपक्षद्वयग्रहणे किं द्वयोस्त्यागः षण्मासमुत कस्यचित्कश्चिद्विशेषः । अयमपि निर्णयस्तत्रैवाभ्यधायि 'पक्षान्तरेण ग्रहणद्वयं च यदा तदादिग्रहणोपगर्भम् । पक्षाद्विशुद्धं भवति द्वितीयं पाणिग्रहे शुद्ध्यति भोगषट्कात् ॥ इत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ३२ ॥

हिन्दी—चन्द्रमा और पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु और पापयुक्त बुध) से युक्त लग्न और नवांश (जब पापग्रह युक्त त्रिंशदंशात्मक लग्न त्याज्य है, तो उसके अन्तर्गत बीतने वाला नवांश स्वतः त्याज्य हो गया, फिर नवांश त्यागने का अभिप्राय दोषाधिक्य प्रदर्शनार्थ है), मध्यरात्रि और मध्यदिन (ठीक १२ बजे रात और दिन) में घटी (६० पल) का तृतीयांश= $\frac{६०}{३}$=२० पल पूर्व और पश्चात् (अर्थात् ठीक आधीरात से १० पल या ४ मिनिट पहले और १० पल बाद एवं ठीक मध्य दिन के १० मिनट पहले और १० पल बाद) पापग्रह का नवांश, सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के पहले ३ दिन (ग्रहण लगने के समय से ७२ घंटा पहले) उत्पात और ग्रहण के बाद सात दिन (२४×७=१६८ घण्टे) तक, शुभद उत्पात से दूषित समस्त दिन, इनको समस्त शुभ कार्यों में त्याग देना चाहिए ।

भौम आदि ५ ताराग्रहों से भिन्न नक्षत्र, जिस नक्षत्र में आकाश में ग्रहयुद्ध देखा जाय और जिस नक्षत्र में कोई उत्पात हो—इन तीनों नक्षत्रों को ६ मास तक शुभ कर्मों में त्याग देना चाहिए, अर्थात् इनमें कोई शुभ कार्य नहीं करने चाहिए ॥ ३२ ॥

विशेष—इस श्लोक में पापग्रह, नवमांश, उत्पात, ग्रहण, ग्रहभिन्न, ग्रहयुद्ध आदि कई सांकेतिक शब्द आये हैं । उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

पापग्रह—सूर्य, कुज, शनि, राहु और केतु पापग्रह कहे गये हैं । इनसे युक्त बुध तथा क्षीण चन्द्रमा, ये सब पापग्रह माने जाते हैं ।

'क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापाः बुधस्तैर्युतः ।'—बृहज्जातक (२।५)

नवांश—इसका विवेचन आगे ६।३९ में किया जायगा ।

ग्रहण—सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण दो प्रकार के होते हैं ।

सूर्यग्रहण—सूर्य और चन्द्रमा निरन्तर भूमि की परिक्रमा करते रहते हैं । जब कभी भ्रमण करते-करते चन्द्रमा सूर्य और हमारी दृष्टि के बीच में आ जाता है, उस समय चन्द्र से आच्छादित सूर्यमण्डल को हम नहीं देखते, उसे सूर्यग्रहण कहते हैं । एवं जब एक छोर पर स्थित चन्द्रमा और दूसरे छोर पर सूर्य हो जाता है, उस समय हमारी पृथिवी दोनों के बीच में आ जाती है और पृथिवी की छाया में चन्द्रबिम्ब आ जाता है, जिससे चन्द्रमा को हम धूमिल देखते हैं, उसको चन्द्रग्रहण कहते हैं । इसके खग्रास, पूर्णग्रास, खण्डग्रास आदि अनेक भेद होते हैं । इनका ज्ञान ग्रहलाघव, केतकी, मकरन्द आदि ग्रन्थों से होता है ।

ग्रहण का नक्षत्र पूर्णग्रहण लगने पर छः मास तक त्याज्य है । अर्धग्रास पादग्रास में आगे के श्लोक ३३ में आचार्य ने स्वयं निर्णय दिया है ।

उत्पात—१ दिव्य, २ अन्तरिक्ष, ३ भौम—ये तीन प्रकार के होते हैं। इनका विस्तृत वर्णन बृहत्संहिता के ४५वें अध्याय में श्रीवराहमिहिराचार्य ने किया है।

मनुष्यों में जब अतिलोभ, असत्य, नास्तिकता और अधर्म आदि तामसी वृत्तियाँ बढ़ती हैं, तब उक्त ३ प्रकार के उत्पात नाना प्रकार के उपद्रवों की सूचना देते हैं—

'अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद् वाप्यधर्मतः।
नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्तते॥' (बृ० सं० ४५।२ टी०)

ग्रहों और नक्षत्रों में विकार उत्पन्न होना, पुच्छलतारा का दीखना, उल्का, निर्घात, पवन-विकार, परिवेष (सूर्य और चन्द्रमण्डल के चारों ओर वृत्त बनना) आदि दिव्य उत्पात कहे गये हैं।

गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि अन्तरिक्ष उत्पात हैं। जंगम-स्थावर में विकृति, भूकम्प, देव विग्रह का बिना कारण फट जाना, घरों में सिल, लोढ़ा, मूसल आदि का टूटना आदि भौम उत्पात कहे जाते हैं।

शुभदोत्पात—बृहत्संहिता ४५।८३–९५ में वर्णित हैं।

वसन्त ऋतु में—बिजली गिरना, ओले गिरना, भूकम्प होना, सन्ध्या (बृ० सं० ३०।२२ में लिखित), निर्घात ('यदा तु बलवान् वायुरन्तरिक्षानिलाहतः। पतत्याशु स निर्घातो भवेद-निलसम्भवः॥'—बृ० सं० टी० ३२।२) और शब्द होना, परिवेष, दिशाओं में धूलि फैलना, जंगलों में धुआँ, उदयास्त समय में सूर्य का रक्तवर्ण होना, पेड़ों से रस टपकना, तेल निकलना, फूलों-फलों का उत्पन्न होना, गौओं-पक्षियों में मद (कामशक्ति की) वृद्धि आदि वसन्त ऋतु में शुभदोत्पात होते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में—आकाश में तारा और उल्का का गिरना, सूर्य या चन्द्र का बिम्ब कपिलवर्ण का दिखलाई पड़ना, बिना अग्नि के ज्वलन, विस्फोट (शब्द), आकाश में धूलि फैलना, वायु के आघात से शब्द, सन्ध्या समय में लालकमल सदृश दृश्य, आकाश का क्षुब्ध समुद्र के समान होना, नदियों के जल का सूख जाना, ये ग्रीष्म ऋतु के शुभदोत्पात हैं।

वर्षा ऋतु में—इन्द्रधनुष, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, बिजली का चमकना, सूखे हुए पेड़ों तथा लताओं का पनपना, भूमि का काँपना, परिवर्तन, विकृत होना, भूमि में दरार पड़ना, शब्द होना, तालाबों में पानी का बढ़ना, नदियों के पानी का बढ़कर उतराना, कुआँ, बावली एवं गड़ही का जल ऊपर से छितराना, पर्वतों का फटना आदि वर्षा ऋतु के शुभदोत्पात हैं।

शरद् ऋतु में—दिव्य स्त्री (देवांगना), भूत (देवयोनि पुरुष), गन्धर्व तथा विमानों का अद्भुत दर्शन, दिन के समय आकाश में ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओं का दर्शन, वनों और पर्वतों की खोहों में गाने-बजाने का शब्द सुनाई पड़ना, फसलों की अच्छी उपज होना, पानी की कमी, ये शरद्ऋतु के शुभदोत्पात कहे गये हैं।

हेमन्त ऋतु में—शीतल वायु का बहना, पाला पड़ना, मृगों और पक्षियों का शब्द करना, राक्षसों, यक्षों, भूत-प्रेतों और पिशाचों का दर्शन, अमानुषी वाणी (अकस्मात् आकाशवाणी) सुनना दिशाओं में धुँए के समान अन्धकार से आकाश-वनपर्वतों का न देखना, सूर्य का उदयक्षितिज के ऊपर आ जानेपर दर्शन तथा अस्तक्षितिज से ऊपर रहते अदर्शन होना हेमन्तर्तु के शुभदोत्पात हैं।

शिशिर ऋतु में—पाला गिरना, वायु-विकृति (स्पर्श न करने योग्य ठण्डी वायु का बहना), भीषण जानवरों का अद्भुत दर्शन, आकाश का अञ्जन के समान काला दिखलाई पड़ना, ताराओं और उल्काओं के टूटने से आकाश का विचित्र रंग होना, स्त्रियों, गौओं, भैंसों, बकरियों,

घोड़ियों, मृगों एवं पक्षियों में विचित्र प्रकार के गर्भ की उत्पत्ति, वृक्ष, लता एवं अंकुरित पत्तों में विकृति का होना, ये सब शिशिर ऋतु के शुभदोत्पात कहे गये हैं। संक्षेप में ऋतुओं के अनुकूल दृश्यों को शुभ और प्रतिकूल दृश्यों को अशुभ कहा गया है।

ग्रहभिन्न—जब ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में चलते हुए उसका स्पष्ट शर किसी नक्षत्र के शर के समान एक ही दिशा उत्तर या दक्षिण दिशा में हो जाता है तो वह ग्रह उस नक्षत्र का भेदन करता है, उसे नक्षत्र-भेदन कहते हैं। यह गणित गम्य है।

ग्रहयुद्ध—ग्रहयुद्ध के ४ भेद हैं—(१) उल्लेख, (२) भेद, (३) अंशुविमर्द और (४) अपसव्य। इनका परिचय नीचे दिया जा रहा है—

'छादनं रोधनं चैव रश्मिमर्दस्तथैव च।
अपसव्यं ग्रहाणां च चतुर्धा युद्धमुच्यते॥'

भौमादि ५ तारा ग्रहों में जब एक ग्रह दूसरे ग्रह से ढँका हुआ दिखलाई पड़े तो भेद, दो ग्रहों की परिधिमात्र का स्पर्श हो तो उल्लेख, दोनों ग्रहों की किरणें आपस में मिली हुई प्रतीत हों तो अंशुविमर्द और अल्प दूरी पर दोनों आपस में दक्षिण-उत्तर (एक शर में) दिखलाई पड़े तो अपसव्य नामक युद्ध कहा जाता है (बृ० सं० १७।३)। चन्द्रमा के साथ तारा ग्रहों का योग होने से समागम कहा जाता है।

अथ ग्रासभेदेन कियत्सङ्ख्याकेषु ग्रहणीयनक्षत्रनिषेधं तथा प्रागादिदिवसांश्च निषिद्धानिन्द्रवज्राच्छन्दसाह—

नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेन्दुमासान्।
पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्रा ग्रस्तेऽस्तगे चाभ्युदितेऽर्धखण्डे॥ ३३॥

नेष्टमिति। ग्रहर्क्षं ग्रहणनक्षत्रं क्रमात्सम्पूर्णार्धचतुर्थांशग्रासे सति षट्त्र्येकमासान् नेष्टम्। तथा ग्रहणभं सर्वग्रासे मासषट्कं, अर्धग्रासे मासत्रयं, चतुर्थांशग्रासे मासमेकं त्यजेदित्यर्थः। यदाह गुरुः—'सर्वग्रासे तु षण्मासांस्त्रीन्मासांश्च दलग्रहे। आपादग्रहणे धिष्ण्यं मासमेकं विवर्जयेत्॥' इति। अथ पूर्वमिति क्रमादित्यनुवर्तत एव। अत्रापि ग्रस्तेऽस्तगे ग्रस्तास्ते पूर्वं त्रिघस्रास्त्रिदिनं नेष्टम्। पूर्वं न सम्यक् त्रिदिनमित्यर्थः। अर्थादग्रेतनानि दिनानि समीचीनानि। तथा ग्रस्तेऽभ्युदिते ग्रस्तोदये परस्तात्पश्चात्त्रिदिनं नेष्टं पूर्वं सम्यक् त्रिदिनमित्यर्थः। तथा अर्द्धखण्डे ग्रस्तोदयग्रस्तास्तयोरभावेऽपि अर्धग्रासे बिम्बमानादर्धग्रासे उभयोः कालयोः प्राक्पश्चात्त्रिदिनं नेष्टम्। यदाह गुरुः—'ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चाद् ग्रस्तोदये तथा। खण्डग्रासे त्रित्रिदिनं निःशेषे सप्त सप्त च॥' इति। कश्यपोऽपि—'ग्रस्तोदये परो दोषो ग्रस्तास्तेऽर्वाक् शशीनयोः। द्युनिशार्धे तूभयं स्यात् खण्डिखण्डव्यवस्थयोः॥' इति। वसिष्ठोऽपि—'ग्रस्तोदये चोर्ध्वमनिष्टमादौ ग्रस्तास्तमानेप्युडुमासषट्कम्॥' इति। अतः खण्डग्रहणादिसद्भावेऽपि ग्रस्तोदयग्रस्तास्तत्वाभावात्पूर्वं पश्चाच्चोक्तदिनानि वर्ज्यानीति सर्वत्र विषयविवेकः॥ ३३॥

हिन्दी—जिस नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण लगे, उस नक्षत्र को ६ मास तक, आधा ग्रहण लगे तो ३ मास तक, चौथाई ग्रहण लगे तो १ मास तक त्याग देना चाहिए, अर्थात् उस नक्षत्र में कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

ग्रहण लगा हुआ सूर्य या चन्द्रमा अस्त हो जाये तो ३ दिन पूर्व (पहले) तथा ग्रहण लगा हुआ सूर्य या चन्द्रमा उदय हो तो ग्रहण के बाद ३ दिन तक कोई शुभ कार्य (विवाह, उपनयन, मुण्डन आदि) नहीं करना चाहिए।

इसी भाँति उदयास्त से अन्यत्र (भिन्न काल में) आधा ग्रहण लगे तो ३ दिन पहले, ३ दिन बाद तथा ग्रहण का दिन समस्त शुभ कार्यों में वर्जित है ॥ ३३ ॥

विशेष—यहाँ सहज ही प्रश्न उठता है कि जब पूर्ण ग्रहण में ग्रहणर्क्ष ६ मास तक, आधे ग्रहण में ग्रहणर्क्ष ३ मास तक तो ¼ ग्रहण लगने पर १। मास तक ग्रहणर्क्ष त्याग लिखना चाहिए, १ मास क्यों लिखा गया ? इसका उत्तर भी अतिसरल ही है—४५ दिनों में या ३० दिनों में ग्रहण का नक्षत्र एक ही बार पड़ता है, २ बार नहीं पड़ सकता। अतः एक लिखना अनुपयुक्त नहीं है।

अथ सामान्यतोऽवश्यं वर्ज्यानि पञ्चाङ्गदूषणादीनि वसन्ततिलकयानुष्टुभा चाह। जन्मर्क्षमासतिथिप्रभृतयः पदार्थाः सर्वेषु कर्मसु वर्ज्या इति द्वितीयश्लोकेनान्वयः। तान् पदार्थानाह—

जन्मर्क्षमासतिथयो व्यतिपातभद्रा वैधृत्यमापितृदिनानि तिथिक्षयर्द्धी।
न्यूनाधिमासकुलिकप्रहारार्धपातविष्कम्भवज्रघटिकात्रयमेव वर्ज्यम् ॥३४॥
परिघार्धं पञ्च शूले षट् च गण्डातिगण्डयोः।
व्याघाते नव नाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु ॥ ३५ ॥

जन्मर्क्षेति। यस्मिन्नक्षत्रे जन्म भवेत्तज्जन्मर्क्षं, यस्मिन् मासे जन्म भवेत्स जन्ममासः, यस्यां तिथौ जन्म भवेत्सा जन्मतिथिः एते वर्ज्याः। तदाह वसिष्ठः—'स्वजन्ममासर्क्ष-तिथिक्षयेषु वैनाशकाद्यृक्षगणेषु भेषु। नोद्वाहमात्माभ्युदयाभिलाषी नैवाद्यगर्भद्वितयं कदाचित् ॥' अयञ्च जन्मनक्षत्रमासतिथिनिषेध आद्यगर्भस्यैव। यदाह नारदः—'जन्म-मासे न जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा। आद्यगर्भसुतस्यादि दुहितुर्वा करग्रहः ॥' इति। अनेनाद्यगर्भव्यतिरिक्तकन्यायास्तादृशवरस्य जन्मर्क्षमासतिथिषु शुभफलत्वमुक्तं भवति। अत एवाह च्यवनः—'जन्मर्क्षे जन्ममासे वा तारायामथ जन्मनि। जन्मलग्ने भवेदूढा पुत्राढ्या पतिवल्लभा ॥' इति।

अथ जन्ममासलक्षणम्। जगन्मोहने वृद्धगर्गः—'आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्। स जन्ममासो विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥' इति। अस्यापि विशेषस्तत्रैव—'जातं दिनं दूषयते वसिष्ठः पञ्चैव गर्गस्त्रिदिनं तथात्रिः। तज्जन्मपक्षं किल भागुरिश्च व्रते विवाहे गमने क्षुरे च ॥' इति। वस्तुतस्तु यस्मिंश्चान्द्रमासे चैत्रादौ जन्माभूत्स चान्द्रमासो जन्ममासतया त्याज्य इति युक्तमुत्पश्यामः। 'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्तितः। अग्नीषोमौ स्थितौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ ॥' इति हारीतवचनात्। उपवासव्रतोद्वाहयात्राक्षौरोपनायनम्। तिथिवर्षादिनिखिलं चान्द्रमानेन गृह्यते ॥' इति कश्यपोक्तेश्च। अथात्र तिथिशब्दो वसिष्ठवाक्यस्वरसादुक्तः। अत एव नारदसंहितायां रत्नमालादिग्रन्थेषु च दिवसपदं तिथिपरं व्याख्येयम्। अन्यथा जन्मवारेऽप्यतिप्रसङ्गः स्यात्। अथ व्यतीपातो वर्ज्यः, सप्तविंशतियोगेषु व्यतीपातो नाम योगः स्पष्टसूर्यचन्द्र-

योगजन्मा सप्तदशसङ्ख्याको निन्द्यः । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'स वैधृतो यो व्यतिपातयोगः सर्वोऽप्यनिष्टः परिघार्धमाद्यम् ।' इति । तथा भद्रा वर्ज्या भद्रा सप्तमं करणं वर्ज्यम् । यदाह वसिष्ठः—'न कुर्यान्मङ्गलं विष्ट्यां जीवितार्थी कदाचन । कुर्वन्नज्ञस्तदा क्षिप्रं तत्सर्वं नाशतां व्रजेत् ।।' इति । भद्राप्रवृत्तिरङ्गविभागकल्पनं च विशेषतोऽग्रे वक्ष्यते । तथा वैधृतिः पूर्वलक्षणलक्षितः सप्तविंशतिसङ्ख्याको योगो निन्द्यः । अत्र सम्मतिः पूर्वमुक्ता । अथ 'नामैकदेशे नामग्रहणम्' इति न्यायमनुसृत्य भीमो भीमसेन इत्यादिवदमा अमावास्या निन्द्या । 'सदैव दर्शे पितृकर्म चैव नान्यद्विधेयं शुभपौष्टिकाद्यम् । मूढैः कृतं यच्च शुभोत्सवाद्यं विनाशमायात्यचिराद् भृशं तत् ।।' इति वसिष्ठोक्तेः । अथ पितृदिनं माता च पिता च पितरौ 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः । पित्रोर्दिनं मातापित्रोर्मरणदिनम् । श्राद्धदिनमिति यावत् । तदपि निषिद्धम् । यदाह शार्ङ्गधरः—'भद्रार्धयामकुलिकं व्यतिपातं वैधृतिं च परिघार्धम् । क्रान्तिसमत्वं जह्यात्सङ्क्रान्तिं क्षयदिनं पित्रोः ।।' इति । अथ तिथिक्षयर्द्धी वर्ज्ये, क्षयश्च ऋद्धिश्च क्षयर्द्धी 'तिथेः क्षयर्द्धी तिथिक्षयर्द्धी तिथिक्षयस्तिथिवृद्धिश्चैते वर्ज्ये । अनयोः प्रसिद्धत्वाल्लक्षणं नोक्तम् ।

तिथिक्षयवृद्धिलक्षणम्

तत्र तिथिक्षयलक्षणं यत्र यो वारस्तिथिद्वयान्तं स्पृष्ट्वा तृतीयतिथेः कञ्चिदादिमभागमपि स्पृशति तत्र वारे मध्यमा तिथिः क्षयसंज्ञा । यथा नवमी रवौ घटिकाद्वयं पुनर्दशमी रवौ षट्पञ्चाशद्घटिकाः ५६ एकादश्याश्च घटिकाद्वयं रविवारेण सह सम्बद्धमिति दशमीतिथिः क्षयसंज्ञिता अवमसंज्ञितेत्यपि चाहुः । अथ तिथिवृद्धिलक्षणं । यत्र या तिथिर्वारद्वयान्तं स्पृष्ट्वा तृतीयवारस्यादिमं कञ्चिद्भागं स्पृशति तत्र सा तिथिर्वृद्धिसंज्ञा त्रिद्युस्पृगित्यपि चेत्याहुः । यथा तृतीया रवौ अष्टपञ्चाशद्घटिकाः ५८, ततश्चतुर्थी सोमे षष्टिघटिकाः ६०, ततो भौमवासरे चतुर्थी घटिकात्रयं ३, अतश्चतुर्थी वारत्रयसम्बद्धा तिथिर्वृद्धिसंज्ञा । यदाह वसिष्ठः—'स्युस्तिस्रस्तिथयो वारे एकस्मिन्नवमा तिथिः । तिथिर्वारत्रयं चैका त्रिद्युस्पृक् द्वेऽतिनिन्दिते ।। कृतं यन्मङ्गलं तत्र त्रिद्युस्पृगवमे दिने । भस्मीभवति तत्क्षिप्रमग्नौ सम्यग्यथेन्धनम् ।। इति ।

तिथिक्षयादिदोषपरिहारः

अथ शुभकृत्यावश्यकत्वे तिथिक्षयतिथिवृद्ध्योः परिहारमाह दोषापवादाध्याये वसिष्ठः—'अवमाख्यं तिथेर्दोषं केन्द्रगो देवपूजितः । हन्ति यद्वत्पापचयं व्रतं द्वैवार्षिकं यथा ।। त्रिद्युस्पृगाह्वयं दोषं सौम्यः केन्द्रगतः सदा । हन्ति यद्वत्पापचयमशून्यशयनव्रतम् ।।' इति । अथ न्यूनाधिमासौ क्षयमासाधिकमासौ वर्ज्यौ । 'असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद् द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्' इति । द्वयोरपि लक्षणं सिद्धान्तशिरोमणावभिहितम् । ग्रन्थकृदपि सङ्क्रान्तिप्रकरणे—'स्पष्टार्कसङ्क्रान्तिविहीन उक्तो मासोऽधिमासः क्षयमासकस्तु । द्विसङ्क्रमः' इति वक्ष्यति । एतच्च तत्रैव सम्यग्व्याख्यास्यते । तदुक्तं वसिष्ठसंहितायाम्—'यस्मिन्दर्शस्यान्तादर्वागेवापरं दर्शम् । उल्लङ्घ्य भवति भानोः सङ्क्रान्तिः सोऽधिमासः स्यात् ।। आद्यन्तदर्शयोर्मध्ये भानोरेव कदाचन । सङ्क्रान्तिद्वितयं स्याच्चेन्न्यूनमासः स उच्यते ।। मास-

प्रधानाखिलमेव कर्म मुक्त्वाऽखिलं कर्म न कार्यमत्र । यत्रोपवासव्रततीर्थयात्राविवाहकर्मादि विनाशमेति ।।' इति । अथ कुलिकः वारसम्बन्धी मुहूर्तदोषो वर्ज्यः । तथा प्रहरार्धं वारसम्बन्धेनार्धयामा वर्ज्याः । यदाह वसिष्ठः—निधनं प्रहरार्धे तु निःस्वत्वं यमघण्टके । कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदाः ।।' इति । कुलिकादीन् दोषान् ग्रन्थकृदग्रे वक्ष्यति । अथ पातो महापातो महागणितसाध्यो व्यतीपातनामको वैधृतिनामकश्च वर्ज्यः । यदाह नारदः—'यस्मिन्दिने महापातस्तद्दिनं वर्जयेच्छुभे । अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योर्मरणप्रदम् ।।' इति । कश्यपोऽपि—'महावैधृतिपाताभ्यां दूषितं लग्नमुत्तमम् । राजावधूतं पुरुषं यद्वत्तत्सम्परित्यजेत् ।।' इति । पातो व्यतीपातः । महाशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । महावैधृतिर्महाव्यतीपातश्च ताभ्यामित्यर्थः । महापातो नाम रवीन्दुक्रान्तिसाम्यम् । तदानयनं तु गणितग्रन्थेभ्यः सूर्यसिद्धान्तादिभ्यो ज्ञेयम् । ततो महापातकालं निर्णीय यत्तत्कालस्यातिसूक्ष्मत्वात्कस्मिन्काले मङ्गलकृत्यं निषिद्धमित्याशङ्क्य महापातस्थितिकालानयनमप्युक्तं तत्रैव । तत्प्रयोजनं सूर्यसिद्धान्ते—'आद्यन्तकालयोर्मध्ये कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः । प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः ।। स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मसु । प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा ।।' इति । आद्यन्तकालौ स्पर्शमोक्षस्थितिरूपौ । सिद्धान्तशिरोमणावप्युक्तम्—'पातस्थितिकालान्तर्मङ्गलकृत्यं न शस्यते तज्ज्ञैः । स्नानजपहोमदानादिकमत्रोपैति खलु वृद्धिम् ।।' इति । यत्तु वसिष्ठेनोक्तम्—'महापातो वैधृतिश्च उपरागसमस्तदा । तस्माद्दिनत्रयं त्याज्यं मध्यपूर्वापराभिधम् ।।' इति । वराहेणापि बृहद्यात्रायामुक्तम्—'एष्यो धनं क्षपयति व्यतिपातयोगो मृत्युं ददाति न चिरादपि वर्तमानः । सन्तापशोकगदविघ्नभयान्यतीतस्तस्माद्दिनत्रयमपि प्रजहीत विद्वान् ।' इति । तदेव तद्वचनद्वयमपि महापातोपयोगिगणिताशक्त्या कदा महापातः स्यादिति सूक्ष्ममहापातस्थितिकालज्ञानाद्विवाहप्रकरणे 'पञ्चास्याजौ' इति वक्ष्यमाणरीत्या महापातसम्भावनापरया पातदिवसं निर्णीय पूर्वापरवर्तमानदिनानां त्यागपरमिति प्रतिभाति । 'यस्मिन्दिने महापातस्तद्दिनं वर्जयेच्छुभे' इति । नारदवाक्यमप्येवमेव व्याख्येयम् । यदा तु महापातस्य स्थितिरूपसूक्ष्मकालज्ञानं स्यात्तदा 'स्थूलात्सूक्ष्मं ज्यायः' इति न्यायेन स एव पातमध्यकालो विवाहादिमङ्गलकृत्येषु त्याज्योऽन्यथा गणितग्रन्थेषु पातस्थितिकालानयनस्य वैयर्थ्यप्रसङ्ग इति निष्कृष्टोऽर्थः । विष्कम्भेति । विष्कम्भवज्रयोगयोः प्रथमाविक्रमे कारणाभावादादिमं घटिकात्रयमेव वर्ज्यम् । तथा परिघस्य परिघाख्ययोगस्य घटिकानामाद्यमर्धं त्रिंशद्घटिकात्मकं त्याज्यम् । शूले पञ्चादिमा घट्यो वर्ज्याः । गण्डातिगण्डयोगयोरादिमाः षड् नाड्यो वर्ज्याः । व्याघातयोगे नवादिमा नाड्यो वर्ज्याः । यदाह श्रीपतिः—'परिघस्य चार्धम् । तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नव पञ्च शूले । गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ।।' इति । ननु सवज्रे इदं कस्य विशेषणं प्रथमयोगस्य वा व्याघातयोगस्य वा । भिन्नभिन्नघटिकानिर्देशादुभयोस्तद्विशेषणमयुक्तम् । अत्र ब्रूमः । प्रथमस्यैव विशेषणं वज्रयोगसहिते प्रथमयोगे विष्कम्भयोग तिस्रो नाड्यो वर्ज्या इत्यर्थः । किमत्र प्रमाणमिति चेच्छृणु । कश्यपादिवाक्यस्वरसात् । यदाह कश्यपः—'विष्कम्भवज्रयोस्तिस्रः षट् च गण्डातिगण्डयोः । व्याघाते नव शूले तु पञ्च नाड्यस्तु

गर्हिताः ॥' इति । नारदोऽप्येवमेव । अनेन—'विष्कम्भादिघटीत्रयं च नवकं व्याघात-वज्रोद्भवम्' इति वदन्महेश्वरः प्रत्याख्यातो भवति । एवञ्च—'विष्कम्भाद्यत्रिनाडी शुभकृतिषु च षट् गण्डयोः पञ्च शूले व्याघाते वज्रकेऽङ्काः' इति गणेशज्योतिर्विदुक्ति-रपि चिन्त्या ॥ ३४–३५ ॥

हिन्दी—जन्म-नक्षत्र, जन्ममास, जन्मतिथि, व्यतीपातयोग, भद्रा, वैधृतियोग, अमावास्या, माता-पिता की मृत्यु का दिन, तिथिक्षय (सूर्योदय समय में न रहने वाली तिथि), तिथिवृद्धि (दो वार सूर्योदय में रहने वाली तिथि), न्यूनमास=क्षयमास (एक चान्द्रमास=दो अमावास्या के बीच के समय में दो सूर्य की संक्रान्ति पड़ जाय तो क्षयमास होता है। यह क्षयमास १४१ वर्ष में या १९ वर्ष के वाद पड़ सकता है), अधिमास (जिस चान्द्रमास में कोई सूर्य संक्रान्ति न पड़े, उसे अधिमास कहते हैं), कुलिक मुहूर्त (१।३७ में वक्ष्यमाण), अर्धयाम (६।६४ में वक्ष्य-माण), पात (महाव्यतीपात और महावैधृति, ये दोनों गणितगम्य है), विष्कम्भयोग और वज्रयोग की ३ घटी, परिघयोग का आधा, शूलयोग की ५ घटी, गण्ड और अतिगण्ड योग की ६।६ घटी, व्याघात योग की ९ घटी सब शुभ कार्यों में वर्जित हैं ॥ ३४–३५ ॥

विशेष—(क) जन्मनक्षत्र, जन्ममास उपनयन में शुभ होता है (५।४५)। (ख) दूसरे-दूसरे गर्भ से उत्पन्न बालक-बालिकाओं का विवाह भी उत्तम होता है (६।१४)। (ग) 'पट्टबन्धन-चौलान्नप्राशने व्रतबन्धने। शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि ॥' नारदसंहिता के अनुसार पट्टबन्धन (राज्याभिषेक), मुण्डन, अन्नप्राशन, व्रतवन्ध, इन कार्यों में जन्मर्क्ष शुभ माना गया है। (घ) बहुत से कार्यों में जन्म की तारा शुभ कही गई है, उन कार्यों को भी जन्मर्क्ष में करने का संकेत मिलता है। (ङ) गर्भाधान (५।५ श्लो०) और यात्रा में विशेष रूप से जन्मर्क्ष का निषेध कहा गया है (११।८)।

अथ पक्षरन्ध्रतिथीरावश्यकत्वे सति तन्निष्ठवर्ज्यघटीश्चानुष्टुभाह—

वेदाङ्गाष्टनवार्केन्द्रपक्षरन्ध्रतिथौ त्यजेत् ।
वस्वङ्कमनुतत्त्वाशाशरा नाडीः पराः शुभाः ॥ ३६ ॥

वेदाङ्गेति । चतुर्थी षष्ठी अष्टमी नवमी द्वादशी चतुर्दशी एताः पक्षरन्ध्रसंज्ञास्तिथयो ज्ञेयाः । आसु शुभकृत्यावश्यकत्वे सति क्रमादादिमा वस्वङ्कमनुतत्त्वाशाशरा नाडी-स्त्यजेत् । यथा चतुर्थ्यामादिमा अष्ट घटिकास्त्याज्या इत्यर्थः । अथ परा उर्वरिता नाड्यः शुभकृत्ये शुभा ज्ञेयाः । यदाह दोषनिरूपणाध्याये वसिष्ठः—

'चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वया इमाः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूताष्टमनुतत्त्वाङ्कदशशेषास्तु शोभनाः ॥ दोषनाडीषु यत्कर्म शुभं सर्वं विनश्यति । विवाहे विधवा नारी व्रात्यः स्याच्चोपनायने ॥ सीमन्ते गर्भनाशः स्यात्प्राशने मरणं ध्रुवम् । अग्निना दह्यते क्षिप्रं गृहारम्भे विशेषतः ॥ राजराष्ट्रविनाशः स्यात्प्रतिष्ठायां विशेषतः । किमत्र बहुनोक्तेन कृतं कर्म विनश्यति ॥' इति ।

कश्यपस्तु सर्वसाधारण्येन 'दशैव घटिकास्त्याज्या' इत्याह—'अष्टमी द्वादशी षष्ठी पक्षरन्ध्रास्तु तासु च । मङ्गले सर्वदा त्याज्या नूनं हि दश नाडिकाः ॥' इत्यनेन एत-स्यैव तिथिवारनक्षत्रयोगकरणात्मकस्य पञ्चाङ्गस्य शुद्धिः पञ्चाङ्गशुद्धिरित्युक्तम् ।

नारदेन—'तिथिवारर्क्षयोगानां करणस्य च मेलनम्। पञ्चाङ्गमस्य शुद्धिः पञ्चाङ्गशुद्धिरुदाहृता ॥ यस्मिन् पञ्चाङ्गदोषोऽस्ति तस्मिल्लग्नं निरर्थकम् ॥' इति ॥ ३६ ॥

हिन्दी—चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी, ये ६ तिथियाँ पक्षरन्ध्र कही गयी हैं। इनके आदि की क्रमसे ८।९।१४।२५।१०।५ घटियाँ त्याग देनी चाहिए। शेष घटियों में शुभ कार्य किया जा सकता है ॥ ३६ ॥

विशेष—यहाँ ३४-३६ श्लोकों में कहे गये योगों और तिथियों का भोग ६० घटी मान कर त्याज्य घटियाँ लिखी गयी हैं। ६० घटी से कम या अधिक योग, भोग एवं तिथिभोग में त्रैराशिक से त्याज्य घटी स्पष्ट कर लेना चाहिये।

रन्ध्रतिथि में त्याज्यघटी-बोधक चक्र

रन्ध्रतिथि	४	६	८	९	१२	१४
त्याज्य घटी	८	९	१४	२५	१०	५

अथ कुलिककालवेलायमघण्टकण्टकदोषाननुष्टुभाह—

कुलिकः कालवेला च यमघण्टश्च कण्टकः।
वाराद्द्विघ्ने क्रमान्मन्दे बुधे जीवे कुजे क्षणः ॥ ३७ ॥

कुलिक इति। वारात् वर्तमानवारात् मन्दे शनैश्चरे गणिते सति योऽङ्को भवेत्तस्मिन् द्विगुणे योऽङ्कस्तत्सङ्ख्यः क्षणो मुहूर्तः कुलिको भवति। एवं वर्तमानवारात् बुधे, जीवे, कुजे, गणिते ततो द्विगुणिते सति योऽङ्कः स क्रमात्कालवेलायमघण्टकण्टकसंज्ञकाः दुष्टमुहूर्ताः स्युः। यथा रवितः शनिः सप्तसङ्ख्याकः स द्विगुणश्चतुर्दश जातः। अतस्तत्सङ्ख्याको मुहूर्तः कुलिकसंज्ञो रविवारे भवति। एवं रवावष्टमो मुहूर्तः कालवेला, तथा रवौ दशमो मुहूर्तो यमघण्टः तथा रवौ षष्ठो मुहूर्तः कण्टकसंज्ञ इत्यर्थः। एवं सोमवारादावपि कुलिककालवेलायमघण्टकण्टकाः स्युरित्यर्थः। यदाह कश्यपः—'शैलाक्षवेदाः ७, ५, ४, स्तर्काब्धिनगाः ६, ४, ७, पञ्चाग्निबाहवः ५, ३, २। वेदाक्षिवाणा ४, २, ५ लौकेकेभा ३, १, ८, स्त्वक्षिगिरिवह्नयः २, ७, ३, ॥ चन्द्रर्तुतर्काः १, ६, ६, कुलिकयमघण्टार्धयामकाः। प्रहरार्धप्रमाणास्ते भानुवारादितः क्रमात् ॥' इति। अत्रार्धयामः सम्पूर्णस्त्याज्योऽन्वर्थत्वात्। कुलिकयमघण्टयोस्तूत्तरार्धं त्याज्यम्। उक्तञ्च दैवज्ञमनोहरे—'अहनि निशि गजांशः स्वे दिनेशादिकानां भवति तु गुरुभौमज्ञार्किकालक्रमेण। प्रभवति यमघण्टः कण्टकः कालवेला कुलिक इति विरुद्धस्तत्परार्धं निषिद्धम् ॥' इति। गजांशोऽर्धप्रहरः। एते मुहूर्तदोषा दिनषोडशांशत्वेन ज्ञेयाः। गजांश इत्युक्त्वा तत्परार्धनिषिद्धमित्युक्तेः।

दोषफलमाह वसिष्ठः—'निधनं प्रहरार्धे तु निःस्वत्वं यमघण्टके। कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदाः ॥' इति। कण्टककालवेलयोरन्वर्थत्वादत्र फलं नोक्तम्।

'रात्रावेते न दोषदाः' इत्यस्यार्थवादो रत्नकोशे—'तमस्विनीगन्धमुपेत्य वारदोषास्तथा शक्तिमनाप्नुवन्तः। अन्धं समासाद्य विलासिनीनां कटाक्षबाणा इव निष्फलाः

स्युः ॥ इति । तथा च 'न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्यदैत्येज्यदिवाकराणाम् । दिवा शशाङ्कार्कजभूसुतानां सर्वत्र निन्द्यो बुधवारदोषः ॥' इति ज्योतिर्निबन्धकृदुक्तिः सङ्गच्छते ।

अथ शुभकृत्यावश्यकत्वे देशभेदेन यमघण्टकण्टकादिदोषपरिहारमाह गर्गः—

'विन्ध्यस्योत्तरकूले तु यावदातुहिनाचलम् ।
यमघण्टकदोषोऽस्ति नान्यदेशेषु विद्यते ॥
मत्स्याङ्गमगधान्ध्रेषु यमघण्टस्तु दोषकृत् ।
काश्मीरे कुलिकं दुष्टमर्धयामस्तु सर्वतः ॥' इति ॥ ३७ ॥

हिन्दी—वर्तमान दिन से शनिवार तक गिनने पर जो संख्या आये उसको २ से गुणा करें, उस दिन उसी संख्या के तुल्य कुलिक मुहूर्त होता है। एवं वर्तमान दिन से बुध तक गिन कर २ गुना करने से कालवेला, गुरुवार तक गिन कर दुगुना करने से यमघण्ट और मंगलवार तक गिनकर दूना करने से कण्टक नाम का मुहूर्त होता है ॥ ३७ ॥

उदाहरण—यथा भौमवार में मुहूर्तों का ज्ञान करना है तो भौमवार से शनिवार तक गिनने से ५ हुए, इसे दूना किया तो १० हुए, अतः भौमवार को १०वाँ मुहूर्त कुलिक हुआ। एवं भौमवार से बुध तक २ हुए, २ से गुणा कर दिया तो ४ हुए, इसलिये भौमवार को चौथा मुहूर्त कालवेला हुआ। भौमवार से गुरुवार तक गिनने पर ३ हुए, इसे दूना किया तो ६ हुए, अतः भौम को छठा मुहूर्त यमघण्ट हुआ। भौमवार से भौम १ ही हुआ, इसे दूना किया तो २ हुए, अतः भौमवार को दूसरा मुहूर्त कण्टक हुआ। इसी भाँति अन्य दिनों में भी इन चारों मुहूर्तों का ज्ञान करना चाहिए।

दिनमान के १६वें भाग को मुहूर्त कहते हैं। अतः अपने-अपने देश के दिनमान में १६ का भाग देने पर लब्धि जितनी घटी-पल आवे, उतना घटी-पल एक मुहूर्त का मान होता है।

सरलता से मुहूर्तों के ज्ञान के लिए सारणी

वार / मुहूर्त	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कुलिक	१४	१२	१०	८	६	४	२
कालबेला	८	६	४	२	१४	१२	१०
यमघण्ट	१०	८	६	४	२	१४	१२
कण्टक	६	४	२	१४	१२	१०	८

अथ सूर्यादिवारेषु शिष्याणां सद्य एव दोषज्ञानार्थं दुर्मुहूर्तादिनामकान् मुहूर्तान् शार्दूलविक्रीडितवसन्ततिलकाभ्यामाह—

सूर्ये षट्-स्वर-नाग-दिङ्-मनुमिताश्चन्द्रेऽब्धिषट्कुञ्जरा-
ङ्कार्काविश्वपुरन्दराः क्षितिसुते द्व्यब्ध्यग्नितर्का दिशः ।
सौम्ये द्व्यब्धि-गजाङ्क-दिङ्-मनुमिता जीवे द्वि-षड्-भास्कराः
शक्राख्यास्तिथयः कलाश्च, भृगुजे वेदेषु-तर्क-ग्रहाः ॥ ३८ ॥

दिग्भास्करा मनुमिताश्च शनौ शशिद्वि-
नागा दिशो भव-दिवाकर-सम्मिताश्च ।
दुष्टक्षणः कुलिक-कण्टक-कालवेलाः
स्युश्चार्धयाम-यमघण्टगताः कलांशाः ॥ ३९ ॥

सूर्ये इति । दिगिति । रविवारे षष्ठसप्तमाष्टमदशमचतुर्दशसङ्ख्या मुहूर्ता निन्द्याः । सोमवारे चतुर्थषष्ठाष्टमनवमद्वादशत्रयोदशचतुर्दशमुहूर्ता निन्द्याः । भौमे द्वित्रिचतुःषड्दशमङ्ख्या मुहूर्ता निन्द्याः । बुधे द्विचतुरष्टनवदशचतुर्दशसङ्ख्या मुहूर्ता निन्द्याः । गुरौ द्विषड्द्वादशचतुर्दशपञ्चदशषोडशसङ्ख्या मुहूर्ता निन्द्याः । शुक्रे चतुःपञ्चषणवदशद्वादशचतुर्दशसङ्ख्या मुहूर्ता निन्द्याः । शनौ एकद्विवसुदशैकादशद्वादशसङ्ख्याका मुहूर्ता निन्द्याः । एषु मुहूर्तेषु केषुचित् दुष्टक्षणो दुर्मुहूर्तो ज्ञेयः । केषुचित्कुलिककण्टककालवेलाः स्युः । केषुचिदर्धयाममयमघण्टाः स्युः । तत्प्रमाणमाह—कलांशा इति । कलांशा षोडशांशाः । दिनस्येति शेषः । यस्मिन्दिने कुलिकादिजिज्ञासा तद्दिने यद्दिनमानं तत्षोडशभिर्भाज्यं यल्लब्धं घटीपलात्मकं तन्मुहूर्तपरिमाणं तेषु मुहूर्तेषु यथासम्भवं दुर्मुहूर्तादयो दोषा ज्ञातव्याः । तथा हि रवौ चतुर्दशसङ्ख्यो मुहूर्तो दुर्मुहूर्तः कुलिकश्च षष्ठः कण्टकसंज्ञः सप्तमाष्टमावर्धयामाख्यौ । तत्राष्टमः कालवेलाख्यश्च दशमो यमघण्टाख्यः । एवं सोमवारादिष्वपि वोद्धव्यम् । तत्र कुलिककण्टककालवेलायमघण्टज्ञानं पूर्वश्लोकेऽभ्यधायि । दुर्मुहूर्तार्धयामान्विवाहप्रकरणे 'रवावर्यमा' इत्यादिना वक्ष्यति । ननु दुर्मुहूर्तकुलिकादेर्वाचनिकस्यार्थस्य 'सूर्ये षट्स्वर' इत्यादिलघुप्रकारेणाभिधानात्पूर्वं परस्ताच्च पुनर्ग्रन्थोक्तप्रकाराभिधानमुक्तं प्रतिभाति । केचिद् दृष्टान्तार्थमिदमभिधानम् । तथा हिं ग्रन्थेषु दुर्मुहूर्तकुलिककण्टककालवेलार्धयाममयमघण्टानां श्लोकषट्केनाभिधानात् व्याख्यानगम्यार्थत्वाच्चेति गौरवम् । अत्र तु सर्वमप्यर्थं शब्दतः सङ्क्षिप्य श्लोकद्वयेन व्याख्यानानपेक्षमभिधानमिति लाघवमिति दृष्टान्तदर्शनद्वारा सर्वत्र लाघवप्रकरणसूचनार्थं शिष्याणामत्र ग्रन्थपठनादरातिशयार्थं च पुनरुक्तिः ॥ ३८–३९ ॥

हिन्दी—रविवार को ६।७।८।१०।१४वाँ मुहूर्त, सोमवार को ४।६।८।९।१२।१३।१४वाँ मुहूर्त, भौमवार को २।३।४।६।१०वाँ, बुधवार को २।४।८।९।१०।१४वाँ, गुरुवार को २।६।१२।१४।१५।१६वाँ, शुक्रवार को ४।५।६।९।१०।१२।१४वाँ, शनिवार को १।२।८।१०।११।१२वाँ मुहूर्त निन्दित होता है । इन मुहूर्तों में कोई दुष्टमुहूर्त, कोई कुलिक, कण्टक, कालवेला, अर्धयाम और यमघण्ट हैं । दिनमान का १६वाँ भाग मुहूर्त कहा जाता है ॥ ३८–३९ ॥

यहाँ ३७वें श्लोक के आगे दिये चक्र के अनुसार रविवार को १४वाँ कुलिक, १०वाँ यमघण्ट, ८वाँ कालवेला, ६वाँ कण्टक मुहूर्त है । विवाह-प्रकरणोक्त ६।६४ के अनुसार ४था प्रहरार्ध (७।८ मुहूर्त) निषिद्ध है ।

सोमवार को ७वाँ अर्धयाम (१३।१४ मुहूर्त), ९वाँ दुष्टक्षण शेष (४।६।८।१२) कुलिकादि है ।

मंगलवार को दूसरा अर्धयाम (३।४ मुहूर्त) शेष कुलिकादि, बुधवार को ५वाँ अर्धयाम (९।१० मुहूर्त) शेष कुलिकादि, गुरुवार को ८वाँ अर्धयाम (१५।१६ मुहूर्त) शेष कुलिकादि,

शुक्रवार को ३रा अर्धयाम (५।६ मुहूर्त), ९वाँ दुष्टक्षण, शेष कुलिकादि, शनिवार को ६ठा अर्धयाम (११।१२ मुहूर्त), १ दुष्टक्षण और शेष कुलिकादि मुहूर्त लिये गये हैं।

दुष्टमुहूर्त बोधसारणी

रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
६	४	२	२	२	४	१
७	६	३	४	६	५	२
८	८	४	८	१२	६	८
१०	९	६	९	१४	९	१०
१४	१२	१०	१०	१५	१०	११
	१३		१४	१६	१२	१२
	१४				१४	

अथ विवाहादिशुभकृत्ये होलिकाष्टकनिषेधमनुष्टुभाह—

विपाशेरावतीतीरे शुतुद्र्वाश्च त्रिपुष्करे।
विवाहादिशुभे नेष्टं होलिकाप्राग्दिनाष्टकम् ॥ ४० ॥

विपाशेति। विपाशा नदी इरावती चैते नद्यौ पश्चिमदेशे प्रसिद्धे। एतयोर्नद्योस्तीरवर्तिदेशेषु, तथा शुतुद्रुर्नदी सापि तत्रैव प्रसिद्धा तस्या अपि तीरवर्तिदेशेषु, तथा त्रिपुष्कराख्ये देशे च होलिका फाल्गुनपौर्णमास्यामग्निदाहः ततः प्राक् दिनाष्टकं विवाहादिशुभकृत्ये नेष्टं निषिद्धमित्यर्थः। अत्र तावद्धोलिकाष्टकनिषेधः शीघ्रबोधे—'शुक्लाष्टमीं समारभ्य फाल्गुनस्य दिनाष्टकम्। पूर्णिमावधिकं त्याज्यं होलाष्टकमिदं शुभे ॥' इति।

अस्यापवादोऽपि तत्रैव—'शुतुद्र्यां च विपाशायामैरावत्यां त्रिपुष्करे। होलाष्टकं विवाहादौ त्याज्यमन्यत्र शोभनम् ॥' इति ४० ॥

हिन्दी—विपाशा (व्यास), इरावती (रावी) और शुतुद्र (सतलज) नदियों के तीरप्रदेशों में और त्रिपुष्कर (पुष्करक्षेत्र=अजमेर) में होलिका (फाल्गुन सुदी १५) से ८ दिन पहले (अर्थात् फाल्गुन सुदी ८ से १५ पर्यन्त) विवाह आदि शुभ कार्यों में निन्दित हैं। इसे होलाष्टक कहते हैं ॥ ४० ॥

बड़ी नदियों के दोनों ओर योजन-पर्यन्त तट कहा गया है। ये तीनों नदियाँ पंजाब प्रान्त में हैं। व्यास नदी के किनारे होशियारपुर, गुरुदासपुर, मण्डी, काँगड़ा, सुलतान और कपूरथला, रावी नदी के तटपर मुलतान, मांतगोमही, लाहौर, अमृतसर, पठानकोट, काँगडा, सतलज नदी के किनारे जालन्धर, लुधियाना, पटियाला, भावलपुर शहर हैं।

अथ मृत्युयोगादिदुष्टयोगे परिहारमाह—

मृत्यु-क्रकच-दग्धादीनिन्दौ शस्ते शुभाञ्जगुः ।
केचिद्यामोत्तरञ्चान्ये यात्रायामेव निन्दितान् ॥ ४१ ॥

मृत्य्विति । मृत्यवो मृत्युयोगा आनन्दादिष्वष्टाविंशतियोगेषु 'दास्रादर्के' इत्यादिना प्रागुक्ताः । क्रकचः—'षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद्विलोमम्' इत्युक्तः । दग्धयोगः—सूर्येश-पञ्चाग्निरसाष्टनन्दा' इत्युक्तः । आदिशब्देन विषयोगा हुताशनयोगाश्च गृह्यन्ते । चन्द्रे शस्ते समीचीने सति । समीचीनत्वं गोचरप्रकरणे वक्ष्यते । मृत्युक्रकचदग्धादीन् शुभाननिष्टफलमपास्य शुभफलदान् जगुरूचुः । यदाह राजमार्तण्डः—'क्रकचो मृत्यु-योगाख्यो दिनं दग्धं तथैव च । चन्द्रे शुभे क्षयं यान्ति वृक्षा वज्रहता इव ॥' इति । अथ केचिदाचार्या यामोत्तरं मृत्युक्रकचदग्धादीन् शुभाञ्जगुः । तथा च दीपिकायां राजमार्तण्डः—'उत्पाते यमघण्टे च काणे च क्रकचे तथा । तिथौ दग्धे च काले च प्राग्यामात्परतः शुभम् ॥' इति ।

अथान्ये आचार्या मृत्युक्रकचदग्धादीन् यात्रायामेव निन्दितान् जगुः । विवाहादीनि तु प्रतिषेधाभावादवश्यं कार्याणि । यदाह लल्लः—वारर्क्षतिथियोगेषु यात्रामेव विवर्ज-येत् । विवाहादीनि कुर्वीत गर्गादीनामिदं वचः ॥' इति । वारर्क्षतिथियोगेषु निन्द्येष्विति शेषः ॥ ४१ ॥

हिन्दी—चन्द्रमा के शुद्ध रहने पर (कार्यकर्ता की जन्मराशि से ३।६।७।१०।११ राशि पर और शुक्लपक्ष में २।५।९ राशि पर चन्द्रमा हो तो शुभ होता है), मृत्यु, क्रकच, दग्ध आदि (१।५, ६, ११–१३ आदि श्लोकों में कथित) योग शुभ हो जाते हैं और किसी आचार्य के मत में एक पहर के बाद शुभदायक होते हैं और किसी आचार्य के मत में ये सभी कुयोग यात्रा में ही निन्दित हैं; अन्य शुभ कार्यों में निन्द्य नहीं हैं ॥ ४१ ॥

अथ पुनरप्यपवादं भुजङ्गप्रयातेनाह—

अयोगे सुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति ।
परे लग्नशुद्धया कुयोगादिनाशं दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम् ॥ ४२ ॥

अयोग इति । अयोगे क्रकचादौ सति सुयोगः सिद्धियोगोऽपि चेत्स्यात्तदा एष सिद्धियोग अयोगं अयोगफलं निहत्य सिद्धिं कार्यसिद्धिं तनोति निष्पादयति । यदाह राजमार्तण्डः—'अयोगः सिद्धियोगश्च द्वावेतौ भवतो यदि । अयोगो हन्यते तत्र सिद्धियोगः प्रवर्तते ॥' इति । अन्यच्च—'हन्त्यमृताख्यो योगः सर्वाण्यशुभानि लीलया नियतम् । न भवति पुनरिह शक्तो वैधृतिविष्टिव्यतीपाते' ॥ इति । यत्तु दीपिकाकार-वचनम्—'यदि विष्टिर्व्यतीपातो दिनं वाप्यशुभं भवेत् । हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ॥' इति । तदमृतयोगस्यातिप्राशस्त्यसूचनार्थं न तु भद्राव्यतीपातादिदोषापवाद-कम् । 'हन्त्यमृताख्यो योग' इत्येकवाक्यताबलात् । अथ परे आचार्या लग्नशुद्धया समी-चीनलग्नबलेन कुयोगानां मृत्युक्रकचादीनां नाशं वदन्तीति शेषः । यदाह स एव—'यत्र लग्नं विना कर्म क्रियते शुभसंज्ञकम् । तत्र तेषामयोगानां प्रभावाज्जायते फलम् ॥'

अथावश्यकशुभकृत्ये कालान्तरप्रतीक्षाऽयोग्यतायां परिहारमाह—विष्टिपूर्वं विष्टिर्भद्रा तत्पूर्वं तदादिव्यतीपातादिकं दिनार्धोत्तरं मध्याह्नादनन्तरं शस्तं प्राहुः। अर्थान्मध्याह्नं यावत्कालो निषिद्धिः। 'विष्टिरङ्गारकश्चैव व्यतीपातश्च वैधृतिः। प्रत्यरं जन्मनक्षत्रं मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥' इति तेनैवोक्तत्वात् ॥ ४२ ॥

हिन्दी—क्रकच आदि कुयोगों के रहते हुए उसी समय कोई अन्य सुयोग आ जाये तो वह सुयोग, कुयोग के अशुभ फलों को नष्ट करके अपने सुयोग का ही शुभ फल देता है। अन्य आचार्य 'जिस कार्य के लिए जैसी लग्नशुद्धि कही गई है, वैसी लग्नशुद्धि रहने पर कुयोग के दुष्ट फल नष्ट हो जाते हैं' ऐसा कहते हैं। कुछ आचार्यों के मत से दिन के आधे के बाद भद्रा आदि कुयोगों का दुष्टफल नष्ट हो जाता है; वे शुभ फल देने वाले हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

अथ भद्रा निषिद्धेति पूर्वमुक्तं तदधुना प्रस्तावात्तन्निषिद्धकालं शालिनीछन्दसाह—

शुक्ले पूर्वार्द्धेऽष्टमी पञ्चदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे।
कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीया दशम्योः पूर्वे भागे सप्तमी शम्भुतिथ्योः ॥ ४३ ॥

शुक्ल इति। शुक्लपक्षेऽष्टम्यां च पूर्णिमायां च पूर्वार्धे भद्रा भवति। एकादश्यां चतुर्थ्यां चोत्तरार्धे भद्रा। अथ कृष्णे कृष्णपक्षे तृतीयायां दशम्यां चान्त्यार्धे उत्तरार्धे भद्रा स्यात्। सप्तम्यां शम्भुतिथौ चतुर्दश्यां च पूर्वभागे पूर्वार्धे भद्रा स्यात्। पूर्वे इति। 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इत्यस्मिनभावपक्षे रूपम्। अष्टम्यादीनां तिथीनां गतभोग्य-घटिकायोगार्धं भद्राप्रमाणमिति यावत्। 'तिथेर्गतैष्यैक्यदलं तन्मानं करणं भवेत्' इति वोपदेवोक्तेः। 'तिथ्यर्धभागं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत्' इति सूर्यसिद्धान्तोक्तेश्च। उक्तञ्च दीपिकायाम्—'तृतीयदशमीशेषे तत्पञ्चम्योस्तु पूर्वतः। कृष्णे विष्टिः सिते तद्वत्तासां परतिथिष्वपि ॥' इति। बृहस्पतिना तु स्पष्टमुक्तम्—'सिते चतुर्थ्यामन्त्यार्धं-मष्टम्याद्यार्धमेव च। एकादश्यां परार्धे तु पूर्वार्धे पूर्णशीतगौ ॥ कृष्णे तृतीयान्त्यार्धं हि सप्तम्याद्यार्धमेव च। दशम्यामुत्तरार्धं तु चतुर्दश्यर्धमादितः ॥ विष्टयाख्योऽयं महादोषः कथितोऽत्र समस्तगः। तदानीं कृतसत्कर्मकर्त्रा सह विनश्यति ॥' इति। पूर्णशितगौ पूर्णिमायाम्।

रत्नकोशे प्रत्येकं भद्रानामानि—हंसी नन्दीन्यपि च त्रिशिराः सुमुखी करालिका-श्चैव। वैकृतिरौद्रमुखी च चतुर्मुखी विष्टयः क्रमशः ॥' चतुर्थ्यादितिथिसम्बन्धिभद्रा-नामाभिधानं नाम सादृश्येन फलतारतम्यसूचनार्थम्। भद्रास्वरूपं रत्नमालायाम्—'उद्वृद्धोद्भटतरपीडिताऽतिकृष्णा दंष्ट्रोग्रा पृथुहनुगण्डदीर्घनासा। कार्यघ्नी हुतवहनं समुद्गिरन्ती विश्रान्तः पतति समन्ततोऽत्र विष्टिः ॥' इति ॥ ४३ ॥

हिन्दी—शुक्लपक्ष में अष्टमी और पूर्णिमा के पूर्वार्ध (पहले आधे) में चौथ और एकादशी के उत्तरार्ध (दूसरे आधे) में भद्रा होती है। कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के अन्त्यार्ध (दूसरे आधे) में और सप्तमी तथा चतुर्दशी के पूर्वार्ध (पहले आधे) में भद्रा होती है ॥ ४३ ॥

विशेष—करण तिथिमान के आधे को कहते हैं। अर्थात् एक-एक तिथि में २-२ करण होते हैं। इनके दो भेद माने गये हैं—पहला चर और दूसरा स्थिर। १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज और ७ विष्टि या भद्रा—ये ७ करण प्रत्येक पक्ष में ४-४ बार पड़ने

से चर कहे गये हैं। १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद, ४ किंस्तुघ्न—ये ४ करण स्थिरकरण हैं, क्योंकि कृष्णपक्ष की १४ के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावास्या के पूर्वार्ध-उत्तरार्ध दोनों दलों में क्रम से नाग एवं चतुष्पद, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न होता है। अन्य तिथियों में इनकी प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिये ये स्थिरकरण कहे गये हैं। तिथि पर से करण जानने की विधि यह है कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से गिन कर वर्तमान तिथि संख्या को दूना करके एक घटा देना चाहिए। शेष में सात का भाग देने से एक, दो…आदि शेषों में बव आदि करण होते हैं, सातवाँ विष्टिनाम का करण होता है।

अथ चतुर्थ्यादितिथिषु भद्रायां मुखपुच्छविभागादिकं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पञ्चद्व्यद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघट्यः शरा
विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसरामाद्र्यश्विबाणाब्धिषु ।
यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे
विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा शुभकरी रात्रौ तु पूर्वार्द्धजा ॥ ४४ ॥

पञ्चेति । चतुर्थ्यादितिथिनां क्रमशः पञ्चादिप्रहरेषु शराः पञ्च नाड्यः आदिमा विष्टेर्भद्राया आस्यं मुखम् । यथा चतुर्थ्याः पञ्चमप्रहर आदिभूताः पञ्च घट्यो भद्रामुखम् । एवमष्टम्यां द्वितीयप्रहरे, एकादश्याः सप्तमप्रहरे, पौर्णमास्याश्चतुर्थप्रहरे, तृतीयाया अष्टमप्रहरे, सप्तम्यास्तृतीयप्रहरे, चतुर्दश्याः प्रथमप्रहरे, भद्रामुखमित्यर्थः । तद्भद्राया मुखमसदशुभमित्यर्थः । अथ पुनश्चतुर्थ्यादितिथीनां क्रमेण गजादिप्रहरेषु अन्त्यं अन्ते भवमन्त्यम् । 'दिगादिभ्यो यत्' इति । यद् घटीत्रयं पुच्छं पुच्छसंज्ञं तच्छुभकरं समस्तकार्येष्वित्यर्थः । यथा चतुर्थ्या अष्टमप्रहरस्यान्त्यघटीत्रयं भद्रापुच्छम्, एवमष्टम्याः प्रथमप्रहरस्य, एकादश्याः षष्ठप्रहरस्य, पूर्णिमायास्तृतीयप्रहरस्य, तृतीयायाः सप्तमप्रहरस्य, सप्तम्या द्वितीयप्रहरस्य, दशम्याः पञ्चमप्रहरस्य, चतुर्दश्याश्चतुर्थप्रहरस्यान्त्यघटीत्रयं भद्रापुच्छमित्यर्थः । यदाह गुरुः—'भूतदस्रस्वराम्भोधिवसुवह्न्यङ्गरूपकाः । यामेष्वेषु क्रमादास्यं भवेत्तिथ्यर्धविष्टिषु ॥' इति । व्यवहारसमुच्चये—दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापञ्चकपरं हरिद्युः सप्तम्यां द्विदश १२ घटिकान्ते त्रिघटिकम् । तृतीया राकायां खयम २० घटिकाभ्यः परभवं शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योस्तु विरमे ॥' इति । हरिद्युरेकादशी राका पूर्णिमा । ननु भद्रा देवतेत्यभिधीयते तस्याः पुच्छकथनात्तु पशुत्वसिद्धिर्दृश्यते । देवता च कथं पशुर्भवितुमर्हतीति । सत्यम् । दैत्येन्द्रैर्देवेषु पराजितेषु रुद्रस्य ज्वालामालाकुलनेत्रालोकितशरीराद्देवी भद्रासंज्ञा मुखपुच्छादिमत्युत्पन्ना सती दैत्याञ्जघान । यदुक्तं श्रीपतिना—

'दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवान्
स्वं कायं किल निर्गता खरमुखी लाङ्गूलिनी च त्रिपात् ।
विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलका क्षामोदरी प्रेतगा
दैत्यघ्नी मुदितैः सुरैस्तु करणप्रान्ते नियुक्ता सदा ॥' इति ।

करणान्याह गर्गः—'बवं च बालवं चैव कौलवं तैतिलं गरम् । वणिजं विष्टिमित्याहुः करणानि चराणि तु ॥' इति ।' विष्टिर्भद्रा । 'अन्ते कृष्णचतुर्दश्याः शकुनिर्दर्श-

भागयोः । भवेच्चतुष्पदं नागं किंस्तुघ्नं प्रतिपद्दले ॥' इति । अतस्तिथ्यर्धभोगः करणमित्युक्तेः प्रतिपत्पूर्वार्धे स्थिरकरणं किंस्तुघ्नं ततो ववकरणं प्रतिपद्द्वितीयार्धे । बालवकौलवकरणे द्वितीयायाः पूर्वोत्तरार्धयोः । तैतिलगरकरणे तृतीयापूर्वोत्तरार्धयोः । चतुर्थीपूर्वार्धे वणिक् उत्तरार्धे तु भद्रा । एवं पञ्चमीषष्ठीसप्तमीषु ववबालवकौलवतैतिलगरवणिक्करणानि भवन्ति । ततोऽष्टम्या द्व्यर्धे भद्रा भवति । एवं पुनः पुनरावृत्तावुक्ततिथिषु भद्रा ज्ञेया । अत एवोक्तम् 'शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपञ्चदश्योः' इत्यादि । एवं चतुर्दश्याः पूर्वार्धे भद्रा । उत्तरार्धादारभ्य शकुन्यादीनि स्थिरकरणानि चत्वारि ।

भद्राकृत्यमाह वसिष्ठः—वधबन्धविषाग्न्यस्त्रच्छेदनोच्चाटनादि यत् । तुरङ्गमहिषोष्ट्रादिकर्म विष्टयां तु सिद्ध्यति ॥ न कुर्यान्मङ्गलं विष्टयां जीवितार्थी कदाचन । कुर्वन्नज्ञस्तदा क्षिप्रं तत्सर्वं नाशतां व्रजेत् ॥' इति ।

तत्राङ्गविभागः फलञ्च कश्यपसंहितायाम्—'मुखे पञ्च गले त्वेका वक्ष्यस्येकादश स्मृताः । नाभौ चतस्रः षट् कटयां तिस्रः पुच्छे तु नाडिकाः ॥ कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसि निःस्वता । कटयामुन्मत्तता नाभौ च्युतिः पुच्छे ध्रुवो जयः ॥' इति ।

अयञ्च भद्राङ्गविभागो नाडीनां त्रिंशतोक्तः । त्रिंशतो न्यूनाधिकत्वे तु त्रैराशिकेन मुखादीनामङ्गानां विभागज्ञानम् । यथा । यदि नाडीत्रिंशता इदमुक्तमङ्गपरिमाणं तदेष्टपरिमाणेन किमिति त्रैराशिकम् । एवं सति उक्ताङ्गपरिमाणं भद्राभोगमितघटीभिः सङ्गुण्यं त्रिंशता भाज्यं लब्धं समोऽङ्गविभागः । त्रैराशिकस्वरूपं लीलावत्यामुक्तम्—'प्रमाणमिच्छा च समानजाती आद्यन्तयोस्तत्फलमन्यजाति । मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत्स्यादिच्छाफलं व्यस्तविधिर्विलोमे ॥' इति ।

तत्र मुखादिकालो रत्नमालायाम्—'जलशिखिशशिरक्षःशर्वकीनाशवायुत्रिदशपतिककुप्सु प्रोक्तमास्यं हि विष्टेः । नियतमृषिभिराशासङ्ख्ययामक्रमेण स्फुटमिह परिहार्यं मङ्गलेष्वेतदेव ॥' इति । जलं वरुणः । कीनाशो यमः । शुक्लचतुर्थ्या उत्तरार्धे पश्चिमदिशि भद्रामुखं तच्चाशासङ्ख्यया क्रमेण पञ्चमे प्रहरे भवति । अर्थादेव भद्रायाः प्रहरचतुष्टयाधिकस्थितिभावादान्ते एव घटिकात्रयं पुच्छम् । ततोऽष्टम्यां द्वितीयप्रहरे तेन प्रकारेण आग्नेय्यां दिशि मुखम् । मुखाच्च प्राक् पुच्छमिति प्रथमप्रहरान्त एव पुच्छघटिकामित्येवं सर्वास्वपि भद्रातिथिष्ववगन्तव्यम् ।

प्रयोजनमपि तत्रैव—'मनुवसुमुनितिथियुगदशशिवगुणसङ्ख्यासु तिथिषु पूर्वस्याः । आयाति विष्टिरेषा पृष्ठे शुभदा पुरस्त्वशुभा ॥' इति । तदेतदात्ययिककार्यसम्भवे सति मुखदिक्सम्मुखयात्रानिषेधकमवधेयम् । ग्रन्थान्तरे अन्यदप्युक्तम्—'असिते सर्पिणी ज्ञेया सिपे विष्टिस्तु वृश्चिकी । सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च ॥' इति ।

अथ परिहारमाह—तथेति । विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा तिथ्युत्तरार्धे सम्भूता वासरे दिवसे यदि स्याद्भद्रा तदा शुभकरी । तेनैव प्रकारेण तिथिपूर्वार्धजा रात्रौ भद्रा चेत्स्यात्तदा शुभा शुभकरी स्यात् । उक्तञ्च—'रात्रिभद्रा यदाऽह्नि स्याद्दिवाभद्रा यदा निशि । न तत्र भद्रादोषः स्यात्सा भद्रा भद्रदायिनी ॥' इति । रात्रिभद्रा तिथ्युत्तरार्धोद्भवा, दिवाभद्रा तिथिपूर्वार्धोद्भवा । अमुमर्थं स्पष्टमाह गुरुः—'निशि पूर्वार्धजा विष्टिर्दिवा चापरतः शुभा । क्रमागता तु या विष्टिः सैव हालाहलोपमा ॥' इति । लल्लोऽपि—

'दिवा परार्धजा विष्टिः पूर्वार्धोत्था यदा निशि। तदा विष्टिः शुभायेति कमलासनभाषितम् ॥' ब्रह्मसिद्धान्तेऽपि—'दिवा परार्धजा विष्टिर्विष्टिरेव दिवानिशोः। सा त्याज्या त्वन्यथा विष्टिः सर्वकर्मशुभप्रदा ॥' इति। ननु यत्तु नारदकश्यपादिभिरुक्तम्—'करणानि ववादीनि शुभसंज्ञानि षट् क्रमात्। क्रमायाताऽक्रमायाता विष्टिर्नेष्टा तु मङ्गले ॥' इति। अत्र क्रमायाता दिवारात्रिक्रमायाता दिवाभद्रा रात्रौ रात्रिभद्रा च दिवेत्यर्थः। एवं सति द्विविधाया अपि भद्राया दोषवत्वोक्ते पूर्वोक्तपरिहाराभिधानमयुक्तम्। उच्यते। इदमेव क्रमायातेति वचनं ज्ञापकमुक्तार्थस्य। अन्यथा सामान्यतो भद्रा दुष्टेत्युक्ते द्विविधभद्राया दोषवत्त्वसिद्धेरनर्थकमिदं स्यात्। तस्माच्छुभकार्याणां भद्रारूपदुष्टदिनव्यतिरिक्तकालप्रतीक्षायोग्यत्वे तदैव कार्यं न दुष्टदिने। 'अबाधेनोपपत्तौ बाधो न न्याय्यः' इति न्यायाद्वचनस्य निषेध एव तात्पर्याच्च। अवश्यकर्तव्यस्य तु शुभकर्मणः कालान्तरप्रतीक्षामसहमानस्य वैमादि(?)परिहारमाश्रित्य दुष्टदिने कृतिरुचितैव। 'विष्टिरङ्गारकश्चैव' इत्यपि परिहार एतत्पर एवेत्यलं पल्लवितेन ॥ ४४ ॥

हिन्दी—शुक्लपक्ष में चतुर्थी, अष्टमी, एकादशी, पूर्णिमा; कृष्णपक्ष में तृतीया, सप्तमी, दशमी और चतुर्दशी तिथियों में क्रम से ५।२।७।४।८।३।६।१ प्रहरों के आदि की ५ घटी भद्रा का मुख अर्थात् चतुर्थी के पाँचवें प्रहर के आदि की ५ घटी, अष्टमी तिथि के दूसरे प्रहर के आदि की ५ घटी, अष्टमी तिथि के दूसरे प्रहर के आदि की ५ घटी, एकादशी के सातवें प्रहर के आदि की ५ घटी, पूर्णिमा के चौथे प्रहर के आदि की ५ घटी, (कृष्णपक्ष में) तृतीया के आठवें प्रहर के आदि की ५ घटी, सप्तमी के तीसरे प्रहर के आदि की ५ घटी, दशमी के छठे प्रहर के आदि की ५ घटी और चतुर्दशी के पहले प्रहर के आदि की ५ घटी भद्रा का मुख होता है। जो अशुभ फल देने वाला होता है।

तथा उन्हीं तिथियों में क्रम से ८।१।६।३।७।२।५।४ प्रहरों के अन्त में ३।३ घटी भद्रा का पुच्छ होता है, जो शुभ-फलद कहा गया है।

तिथि के उत्तरार्ध (दूसरे आधे) की भद्रा दिन में, पूर्वार्ध (पहले आधे) की भद्रा रात्रि में हो तो शुभ होती है ॥ ४४ ॥

विशेष—तिथि के भोगमान के ८वें भाग को प्रहर समझना चाहिए। ५ घटी मुख, ३ घटी पुच्छ यह तिथि का भोगमान ६० घटी मान कर लिखा गया है। यदि तिथि भोगमान ६० घटी से न्यून या अधिक हो तो मुख पुच्छ घटी को त्रैराशिक गणित से स्पष्ट कर लेना चाहिए। यथा—यदि चतुर्थी का भोग ५५ घटी ५४ पल अर्थात् ३३५४ पल है तो त्रैराशिक से स्पष्ट मुख घटी $\frac{३३५४ \times ५}{३६००} = \frac{३३५४}{७२०} = \frac{५५९}{१२०} =$ ४।३९।३० घट्यादि हुई। चतुर्थी आधी २७ घटी ५७ पल बीतने पर ५वें प्रहर के आदि में ४।३९।३० घटी भद्रमुख हुआ। अर्थात् २७ घटी ५७ पल से ३२ घटी ३६ पल ३० विपल तक भद्रा की मुखघटी रहेगी। इसी तरह मुख पुच्छ घटी सब तिथियों में स्पष्ट करनी चाहिए। रत्नमालाकर ने चतुर्थी आदि तिथियों के ५वें आदि प्रहरों में ही मुख घटी और ८वें आदि प्रहरों के अन्त में पुच्छ घटी होने की बड़ी सुन्दर विधि कही है। चतुर्थी आदि तिथियों में व्याप्त भद्रा का मुख क्रम ५ पश्चिम, २ अग्निकोण, ७ उत्तर, ४ नैर्ऋत्यकोण, ८ ईशानकोण, ३ दक्षिण, ६ वायुकोण और १ पूर्व में होता है। अतः इन दिशा-संख्या तुल्य प्रहरों

की आदिम ५।५ घटी भद्रमुख होती है। तिथि का आधा अर्थात् ४ प्रहर का करणों का भोगकाल माना गया है। जिस तिथि का जिस प्रहर में मुख हो, उससे चौथे प्रहर के अन्त में ३।३ घटी भद्रापुच्छ होता है। भद्रा का स्वरूप पीयूषधारा टीका में देखें।

सरलता से बोध होने के लिए सारणी

	शुक्लपक्ष में				कृष्णपक्ष में			
	४ परार्ध	८ पूर्वार्ध	११ परार्ध	१५ पूर्वार्ध	३ परार्ध	७ पूर्वार्ध	१० परार्ध	१४ पूर्वार्ध
यामादि	पश्चिम ५	आग्नेय २	उत्तर ७	नैर्ऋत्य ४	ईशान ८	दक्षिण ३	वायव्य ६	पूर्व १
मुखघटी	५	५	५	५	५	५	५	५
प्रहरान्त	ईशान ८	पूर्व १	वायव्य ६	दक्षिण ३	उत्तर ७	आग्नेय २	पश्चिम ५	नैर्ऋत्य ४
पुच्छघटी	३	३	३	३	३	३	३	३

अथ भद्रानिवासं तत्फलं चानुष्टुभाह—

कुम्भकर्कद्वये मर्त्ये स्वर्गेऽब्जेऽजात्त्रयेऽलिगे।
स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधो भद्रा तत्रैव तत्फलम् ॥ ४५ ॥

कुम्भेति। अब्जे चन्द्रमसि कुम्भद्वये कुम्भमीनस्थे कर्कद्वये कर्कसिंहराशिस्थिते सति भद्रा मर्त्ये मनुष्यलोके तिष्ठति। अथ मेषादित्रये मेषवृषमिथुनस्थितेऽलिगे वृश्चिकस्थिते चन्द्रे स्वर्गे भद्रा तिष्ठति। कन्याधनुस्तुलामकरराशिस्थितेऽधः पाताललोके भद्रा तिष्ठति॥ अथ भद्रा तत्रैव मर्त्यस्वर्गपातालेषु फलं स्वोक्तशुभाशुभफलं ददातीत्यपवादद्वारा प्रयोजनमुक्तं भवति। उक्तञ्च—'मेषोक्षकौर्प्यमिथुने घटसिंहमीनकर्केषु चापमृगतौलिसुतासु चन्द्रे। स्वर्मर्त्यनागनगरीः क्रमशः प्रयाति विष्टिः फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे॥' इति। भूपालवल्लभे—'कन्यातुलामकरधन्विषु नागलोके मेषालिवैणिकवृषेषु सुरालये स्यात्। पाठीनसिंहघटकर्कटकेषु मर्त्ये चन्द्रे वदन्ति मुनयस्त्रिविधां हि विष्टिम्॥' इति। पाठीनो मीनः॥ ४५॥

हिन्दी—जब चन्द्रमा कुम्भ-मीन (धनिष्ठा के उत्तरार्ध से रेवती के अन्त तक) कर्क-सिंह (पुनर्वसु के चतुर्थ चरण से······उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण तक) राशि का हो, उसी समय भद्रा भी आ जाये तो भद्रा का निवास मृत्युलोक में रहता है। मेष-वृष-मिथुन (अश्विनी से··· पुनर्वसु के ३ चरण तक) और वृश्चिक (विशाखा के चौथे चरण से ज्येष्ठा के अन्त तक) के चन्द्रमा में भद्रा का निवास स्वर्ग में रहता है। एवं कन्या, तुला, धनु, मकर के चन्द्रमा में भद्रा का निवास पाताल में रहता है। भद्रा का निवास जिस लोक में रहता है, उस लोक में उसका अशुभ फल होता है।

विशेष—इस वचन से सिद्ध होता है कि कुम्भ-मीन तथा कर्क-सिंह के चन्द्रमा में ही भद्रा का दोष मानना चाहिए। अन्य (१।२।३।६।७।८।९।१०) राशियों के चन्द्रमा में भद्रा को दोष नहीं होता है ॥ ४५ ॥

एवं महता ग्रन्थसन्दर्भेण पञ्चाङ्गदूषणान्युक्तान्यधुना कालाशुद्धौ निषेध्यवस्तूनि शार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

वाप्यारामा-तडाग-कूप-भवनारम्भप्रतिष्ठे व्रता-
ऽऽरम्भोत्सर्ग-वधूप्रवेशन-महादानानि सोमाष्टके
गोदानाग्रयण-प्रपा-प्रथमकोपाकर्म वेदव्रतं
नीलोद्वाहमथातिपन्नशिशुसंस्कारान् सुरस्थापनम् ॥ ४६ ॥
दीक्षा-मौञ्जि-विवाह-मुण्डनमपूर्वं देवतीर्थेक्षणं
संन्यासाग्निपरिग्रहौ नृपतिसन्दर्शाऽभिषेकौ गमम् ।
चातुर्मास्यसमावृती श्रवणयोर्वेधं परीक्षां त्यजेद्-
वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्य-सितयोर्न्यूनाधिमासे तथा ॥ ४७ ॥

वाप्यारामेति । दीक्षेति । वापी दीर्घिका, आराम उपवनं, तडागः पुष्करिणी, कूपः प्रसिद्धः, भवनं गृहम्, एतेषामारम्भप्रतिष्ठे आरम्भो निर्माणं, प्रतिष्ठा उत्सर्गः, तत्र गृह-प्रतिष्ठा गृहप्रवेशो ज्ञेयः । व्रतारम्भोत्सर्गौ व्रतानामनन्तशिवरात्रिव्रतादीनामारम्भः । उत्सर्गोऽनन्तव्रतादीनामुद्यापनम् । महादानानि षोडशमहादानानि, सोमः सोमयागः, अष्टका अष्टकाश्राद्धं, गोदानं केशान्तसंज्ञं कर्म, आग्रयणं नवान्नेष्टिः, प्रपा जलशाला, 'प्रपा पानीयशालिका' इत्यभिधानात् । महाराष्ट्राः पाणपोई इति वदन्ति । पहुआईति कान्यकुब्जाः । प्रथमकोपाकर्म प्रथमारभ्यमाणं श्रावणीकर्म, वेदव्रतं महानाम्न्यादि-त्रयम् । उपनिषद्व्रतं, महानाम्नीव्रतं, वेदव्रतं च । नीलोद्वाहः नीलशब्दवाच्यः काम्यो वृषोत्सर्गः । न त्वेकादशाहे क्रियमाणः । तस्य तदैव विहितत्वान्मुहूर्तविचारानुन्मेषः । अतिपन्नशिशुसंस्काराः अतिपन्ना अतिक्रान्ता जातकर्मनामकर्मादयः शिशूनां संस्काराः, दीक्षा मन्त्रग्रहणादिका, मुण्डनं चौलम्, अपूर्वं देवेक्षणं तीर्थेक्षणं च । अग्निपरिग्रहो-ऽग्निहोत्रमग्न्याधानम्; चातुर्मास्य चातुर्मास्याख्यो यागः, समावृतिः समावर्तनं मौञ्जी-मोक्षः, श्रवणयोर्वेधः कर्णवेधः, परीक्षा तप्तमाषादिरूपा दिव्यमिति यावत् । अन्यानि कर्माणि नामतः स्पष्टानि । एतानि सर्वाणि कर्माणि त्यजेन्न कुर्यात् । ईज्यसितयो-र्बृहस्पतिशुक्रयोर्वृद्धत्वे शिशुत्वे बाल्ये च तथा न्यूनाधिमासे क्षयमासे अधिकमासे च न कुर्यात् । अयञ्च निषेधः प्रथमोपक्रान्तकृत्येषु । न तु नित्यवदारब्धवार्षिकयात्रादौ । अत्र मूलवचनानि लिख्यन्ते । तत्र शुक्रास्तादिषु ज्योतिःसारसागरे कक्षोच्चयः— 'वापीकूपतडागपानगमनं क्षौरं प्रतिष्ठाव्रतं विद्यामन्दिरकर्णवेधनमहादानं वनं सेवनम् । तीर्थस्नानविवाहदेवभवनं मन्त्रादिदेवेक्षणं दूरेणैव जिजीविषुः परिहरेदस्तङ्गते भार्गवे ॥ बाले शुक्रे वृद्धे जीवे वृद्धे शुक्रे जीवे बाले । जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये नष्टे जीवे ॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्ये तथास्तगे । वापीकूपतडागादिक्रियाः प्रागुदितास्त्य-जेत् ॥' इति । वनमारामादि । सेवनं राजादीनाम् । नष्टे जीवे नष्टबले नीचस्थिते गुरा-

वित्यर्थः । लल्लः—'उपनयनगोदानपरिणयनगृहप्रवेशगमनानि । अस्तमितेषु न कुर्यात्सुरगुरुभृगुपुत्रचन्द्रेषु ॥' इति । शातातपः—'अस्तङ्गते गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत् ॥' अस्तमयादिफलमाह बादरायणः—'गुरोरस्ते पतिं हन्याच्छुक्रास्ते चैव कन्यकाम् । चन्द्रे नष्टे उभौ हन्यात्तस्मादस्तं विवर्जयेत् ॥' इति । विवाह इति शेषः । 'बालभावे स्त्रियं हन्याद् वृद्धभावे नरं तथा । तस्माद् बाले च वृद्धे च विवाहं नैव कारयेत् ॥' उपलक्षणमेतत् । एवं व्रतबन्धादिष्वपि कर्तुर्मरणं ज्ञेयम् । 'एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थोऽपरत्रापि विनियुज्यते' इति न्यायात् । उक्तञ्च शार्ङ्गीयविवाहपटले—'विवाहो व्रतबन्धो वा यात्रा वा गृहकर्म च । गुरावस्तमितें शुक्रे ध्रुवं मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥' इति । अथाधिमासक्षयमासवर्ज्यानि । तत्र गृह्यपरिशिष्टे—'सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे । तथैवाग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि ॥' महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत् । स्पष्टमासविशेषाख्यविहितं वर्जयेन्मले ॥' इति । गर्गबृहस्पती अपि 'अग्न्याधानं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च । वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥ माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ॥ मरीचिः—'गृहप्रवेशगोदानस्थानाश्रममहोत्सवम् । न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पेऽहस्पतौ तथा ॥' इति । यदा क्षयमासो भवति तदा पूर्वोत्तरावधिमासौ भवतः । तत्र पूर्वः संसर्पः । द्वितीयोऽहस्पतिः । एतान्यधिकमासक्षयमासवर्ज्यानि । गुरुशुक्रयोरस्तादावपि वर्ज्यानि । यदाह वृद्धगार्ग्यः—'बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तङ्गते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ॥' इति । अत्र देवदर्शनमपूर्वं विवक्षितम् । यदाह गर्गः—अपूर्वदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे । मलमासेष्वनावृत्ततीर्थयात्रां परित्यज्येत् ॥' इति । अनावृत्ततीर्थयात्रामपूर्वतीर्थयात्राम् । दीपिका—'नो शुक्रास्तेऽष्टमेऽर्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ । नाडीनक्षत्रहीने सुरगुरुरजनीनाथताराविशुद्धौ प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ॥' इति । गुरुसहितरवौ गुर्वादित्ये इत्यर्थः । इदं सिंहस्थितमकरस्थितास्तमितगुरूणामुपलक्षणम् । उक्तञ्च व्यवहारोच्चये—'सिंहस्थे मकरस्थे च जीवे चाऽस्तमिते तथा । मलमासे न कर्तव्या परीक्षा जयकाङ्क्षिणा ॥' इति । मलमासग्रहणं क्षयमासस्याप्युपलक्षणम् । नाडीनक्षत्राणि वैनाशिकनक्षत्राणि । परीक्षा दिव्यम् । अयमत्र तात्पर्यार्थः । अनियतकालविहितानि चूडाकरणवाप्यारामादिशुभकृत्यानि गुर्वादेरस्तादिषु सर्वथा न कार्याणि । यानि तु नियतकालानि सीमन्तनामकरणादीनि तानि गुर्वादेरस्तादिसत्त्वेऽपि स्वोक्तकाल एव भवन्ति । 'चतुर्थे गर्भमासे स्यात्सीमन्तोन्नयनक्रिया । षष्ठेऽष्टमे वा कुर्वीत सूत्रान्तरविधानतः ॥' इति शौनकादिमुनिवचनेभ्यः कालस्यापि नियामकत्वावगतेः । अत एवाह बृहस्पतिः—'मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । न दोषकृन्मलो मासो गुर्वादित्यादिकं तथा ॥' इति । यमोऽपि—'चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं श्राद्धदानजपादिकम् । कार्याणि मलमासेऽपि नित्यं नैमित्तिकं तथा ॥' इति । अन्यत्रापि 'सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि यानि वै । न दोषो मलमासस्य मौढ्यस्य गुरुशुक्रयोः ॥' इति । एवं सति प्रतिबन्धवशादतिक्रान्तकालेषु जातकर्मादिषु सत्सु गौणकालस्य तुल्यत्वात् । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'अतीतकालान्यखिलानि तानि

कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे। सिरे गुरौ चाप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपश्चाङ्गदिनेऽप्यखण्डे ॥' इति। अत एवोक्तं अतिपन्नशिशुसंस्कारानिति ॥ ४६-४७ ॥

हिन्दी—वापी (बावड़ी), बागीचा, तालाब, कूप, गृह इनका आरम्भ और इनकी प्रतिष्ठा, व्रतों का आरम्भ और उत्सर्ग (उद्यापन), वधूप्रवेश, महादान ('कनकाश्वतिला नागो दासी-रथ-मही-गृहाः। कन्या च कपिला धेनुर्महादानानि वै दश' ॥ कूर्म० पु०) सोमयज्ञ, अष्टका श्राद्ध, गोदान (केशान्त कर्म), नवान्नभक्षण, प्रपा (जलशाला), पहले पहल श्रावणीकर्म, वेदव्रत, नीलवृषोत्सर्ग (काम्य वृषोत्सर्ग), अतिपन्न शिशुसंस्कार (जिन बच्चों के जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन आदि संस्कार उचित समय पर न हुए हों उनका संस्कार), देवताओं की प्रतिष्ठा, दीक्षा (मन्त्रग्रहण), यज्ञोपवीत, विवाह, मुण्डन, अपूर्व देव-तीर्थ (प्रथम बार किसी देवता या तीर्थ) का दर्शन[1], संन्यास-ग्रहण, अग्निहोत्र, राजा का प्रथम बार दर्शन, राज्याभिषेक, सर्वप्रथम किसी भी देश की यात्रा, चातुर्मास व्रत (श्रावण में शाक, भाद्रपद में दही, आश्विन में दूध और कार्तिक में दाल का त्याग), समावर्तन (उपनयन के बाद वेदव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत का त्याग), कर्णवेध, परीक्षा (दिव्य परीक्षा २।४३ श्लो०)—ये सभी कार्य बृहस्पति और शुक्र के वृद्धत्व, अस्त, शिशुत्व (बाल्य) में तथा न्यून (क्षय) मास, अधिमास में नहीं करने चाहिए।

विशेष—बृहस्पति और सूर्य का अन्तरांश ११ से न्यून होता है तो गुर्वस्त और जब शुक्र सूर्य से आगे या पीछे १० अंश से कम होता है तो शुक्रास्त होता है। गुरु-शुक्र के अस्त होने के पहले तेजोहीनता का दर्शन होने से उनका वृद्धत्व एवं उदय होने के बाद भी अल्पतेज होने से बाल्यकाल होता है। विशेष विस्तार के लिए प्र० ५, श्लोक २७-२८ में देखें। क्षयमास और मलमास का लक्षण आचार्य ने आगे (३।२० श्लोक में) बतलाया है।

दीक्षा श्लोक में कहे गये प्रायः सभी के मुहूर्त इस ग्रन्थ में आ गये हैं, किन्तु दीक्षा के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। अतः इसके जिज्ञासुओं के लिए इसका कुछ परिचय करा देना अनावश्यक नहीं है। तत्र दीक्षाशब्दार्थः गौतमीये—दीयते ज्ञानमत्यन्तं क्षीयते पापसञ्चयः। तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ तस्यावश्यकत्वम्। अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्। पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाविरहितो नरः ॥ दीक्षामूलं जपः सर्वः दीक्षामूलं परं तपः। दीक्षामाश्रित्य निवसेद् यत्र कुत्राश्रमे वसन् ॥ अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः। न भवन्ति प्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥ देवि दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिः न च सद्गतिः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥ एवमन्यत्रापि बहुलिखितमस्ति। तत्र गुरुः कीदृशः कार्यः। गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥ शान्तो दान्तः कुलीनश्च मन्त्रतन्त्रविशारदः। निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते ॥ उद्धर्तुं चैव संहर्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः। तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते। तत्त्वसारेऽपि—गुरुं

---

१. गया और गोदावरी की यात्रा, गुरु और शुक्र के अस्त और सिंहस्थ गुरु में भी निषिद्ध नहीं है—

'न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ।
अधिमासे सिंहगुरावस्ते च गुरुशुक्रयोः।
तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना' ॥ (वायुपुराणे)
'गोदावर्यां गयायां च स्त्रीशैले ग्रहणद्वये।
सुरासुरगुरूणां च मौढ्यदोषो च विद्यते' ॥ (त्रिस्थलीसेतौ)

विना न संसारस्तीर्यते बहुसाधनैः। तस्माद्वेदविदं विप्रं ज्येष्ठाश्रमगतं नरः॥ गुरुः कुर्यादित्यध्याहारः। गृहस्थब्राह्मणातिरिक्ताः मुण्डिनो जटाधारिणः पाखण्डाः बहुरूपा गुरवस्त्याज्याः। तेभ्यो मन्त्रग्रहणे दोषश्रवणात् अगस्त्यसंहितायां पाद्मे च—महाभागवतः श्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्। सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः॥ आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः। ब्राह्मणो वीतरागश्च क्रोधलोभविवर्जितः॥ वाराहपुराणे। विप्राद्गृहस्थात्सङ्ग्राह्या दीक्षा नान्यनरात्प्रिये। गृहस्थेन विशेषेण देवताभावसिद्धये। आचार्यत्वमाद्यवर्णे मया संस्थापितं पुराः॥ इति। श्रुतावपि—ब्राह्मणं ब्रह्मिष्ठं गुरुमुपासीत। सेव्य एव हि सर्वेषां विप्रो राजर्षिसत्तम। देवानां दानवानाञ्च मनुष्याणां च का कथा॥ आरोपयन्ति ये विप्रं सेवकत्वं नराधमाः। ज्ञेयास्ते सर्वथा पापा अन्ते निरयगामिनः॥ इति। मुनरपि—एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (मनुस्मृति २।२०)।

निषिद्धा गुरवः कालिकापुराणे—क्रियाहीनकल्याङ्गं वामनं गुरुनिन्दकम्। सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं मन्त्रेषु वर्जयेत्॥ श्वित्री चैव गलत्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः। कुनखी श्यावदन्तश्च। स्त्रीजितश्चाधिकाङ्गकः॥ हीनाङ्गः कपटी रोगी बह्वाशी बहुजल्पकः। एतैर्दोषैर्विमुक्तोः यः स गुरुः शिष्यसम्मतः॥ यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनाम्। विविक्तश्रमिणां दीक्षा न सा कल्याणदायिका॥ योगिनीतन्त्रे—पितुर्मन्त्रं गृह्णीयात्तथा मातामहस्य च। सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च॥ अज्ञानान्मोहाद्वा मन्त्रे गृहीते किंकर्तव्यमित्याह सिद्धयामले—प्रमादाच्च तथाज्ञानात् पितुर्दीक्षां समाचरेत्। प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत्। अत्र पितुरुपलक्षणं यत्यादीनामपि पूर्वोक्तवाक्यान्निषेधः। यतिदीक्षां गृही प्राप्य पुत्रपौत्रादिनाशनम् (व० दै० स्तवे)। ब्राह्मपुराणे च—ब्राह्मणः स्वेतरान् वर्णान् गुरुं मोहात्करोति चेत्। स याति नरकं घोरं विपन्नोऽपि भवेद्ध्रुवम्॥ वराहपुराणेऽपि—उत्तमाद्यधमो वर्णो यस्तु मन्त्रं प्रयच्छति। स याति पतितो भूत्वा श्वचाण्डालादियोनिषु। ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा मोहमाश्रितः। न कुर्यान्नीचवर्णेभ्यो मन्त्रदानं कदाचन॥ भविष्ये—शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि मन्त्रग्रहणमुत्तमम्। ब्राह्मणं श्रोत्रियं शुद्धं नारायणपरायणम्॥ प्रणम्य विधिवद्भक्त्या मन्त्रं गृह्णीत संयतः। यो मोहादन्यवर्णेभ्यो मन्त्रं गृह्णाति कर्हिचित्॥ वेषान्तरमितेभ्योऽपि न स कल्याण भाग्भवेत्॥ अतो कार्यो गुरुर्विप्रो गृहस्थो गृहिभिः सदा। अन्यत्र च—वर्णोत्कृष्टो हीनवर्णं गुरुं मोहाद्यदाचरेत्। प्रायश्चितं तदा कृत्वा गुरुमन्यं समाश्रयेत्॥ इत्यादयः श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु वचनान्युपलभ्यन्ते। तत्कदा कार्यमित्युक्तं मुहूर्तमुक्तावल्याम्—

मासेऽथाश्विनतो हि षट्सु पुरतो सुश्रावणे माधवे
भद्रा पूर्णस्त्रयोदशी शुभतिथौ शुक्रेन्दुजेन्दौ गुरौ।
रोहिण्युत्तरशक्रशङ्करमरुत्पुष्यद्विदैवाश्विनी-
विष्णौ चन्द्रबले सुलग्नसमये दीक्षा शुभा कीर्तिता॥

इनका विस्तृत वर्णन बृहद्दैवज्ञरञ्जन में देखें॥ ४६–४७॥

अथ सिंहस्थगुर्वादिदोषान् शालिन्याह—

अस्ते वर्ज्यं सिंहनक्रस्थजीवे वर्ज्यं केचिद्वक्रगे चातिचारे।
गुर्वादित्ये विश्वघस्रेऽपि पक्षे प्रोचुस्तद्वद्दन्तरत्नादिभूषाम्॥ ४८॥

अस्ते वर्ज्यमिति। यदस्ते गुर्वादेरस्ते वर्ज्यमुक्तं तत् सिंहनक्रस्थजीवे सिंहस्थगुरौ मकरस्थगुरौ च वर्ज्यं निषिद्धम्। यदाह वराहः—'उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्रा

हि वधूप्रवेशः। तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात् ॥' इति। देवीपुराणेऽपि—'सिंहसंस्थे गुरौ यत्नात्सर्वारम्भान् विवर्जयेत्। प्रारब्धं न च सिध्येत महाभयकरं भवेत् ॥ पुत्रभ्रातृकलत्राणि हन्याच्छीघ्रं न संशयः। कारको व्रजते नाशं सन्तानं म्रियतेऽचिरात् ॥ देवारामतडागाश्च प्रपोद्यानगृहाणि च। विवाहयज्ञोपनयचूडादि च न सिध्यति ॥ यथा सिंहस्थितो जीवस्तथैव मकरस्थितः ॥' इति। त्रिस्थलीसेतौ—'गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे शुक्रे वास्तमुपागते। त्यजेद्यानं महादानं व्रतं देवविलोकनम् ॥' इति। लल्लोऽपि—'नीचस्थे वक्रसंस्थेप्यतिचरणगते बालवृद्धेऽस्तगे वा संन्यासो देवयात्रा व्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा। मौञ्जीबन्धो गणानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते वा ॥' इति। अयमपि निषेधो नियतकालविहितानां न भवति। उक्तञ्च शार्ङ्गीये—'सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि यानि वै। कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पञ्चाननगते गुरौ ॥' इति। उपलक्षणमेतत्। एवं मकरस्थेऽपि कार्याणि शुभानि। क्वचिदपूर्वतीर्थयात्रायां मौढ्यादिदोषाभावोऽभिहितः। त्रिस्थलीसेतौ—'गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये। सुरासुरगुरूणां च मौढ्यदोषो न विद्यते ॥' वायुपुराणे—'गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विधानतः। अधिमासे जन्मदिने ह्यस्ते च गुरुशुक्रयोः ॥ न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ ॥' इति। अत्र श्राद्धस्य यात्रापूर्वकत्वाद्गयायात्रापि न निषिद्धेति ज्योतिर्निबन्धे व्याख्यातम्। गुर्वाद्यस्तस्योपलक्षणत्वात्सिंहस्थगुरावपि गोदावरीयात्रा न निषिद्धेत्याहुः। अन्यच्च—'अधिमासे सिंहगुरावस्ते च गुरुशुक्रयोः। तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥' इति। अत्राधिमासे च जन्मर्क्ष इति पठन्ति तत्र यात्रायां जन्मनक्षत्रस्यातिनिषिद्धत्वाद्गोदावरीगयायात्रयोरपवादो युक्त एव। तथा ग्रहणार्धोदयकपिलाषष्ठीसङ्क्रान्त्युद्देशेनापूर्वतीर्थयात्रायां कर्तव्यायां शुक्रास्तादिमहादोषो नास्तीत्युक्तम्। त्रिस्थलीसेतौ लल्लेन—उपप्लवे शीतलभानुभान्वोरर्धोदये वा कपिलाख्यषष्ठ्याम्। सुरासुरेज्यास्तमयेऽपि तीर्थयात्राविधिः सङ्क्रमणेऽपि शस्तः ॥' इत्यलमियता। अथ गुर्वाद्यस्ते यद्वर्ज्यमुक्तं तद्वक्रगे गुरावथवातिचारगे गुरौ वर्ज्यम्। यदाह वात्स्यः—'यात्रोद्वाहौ प्रतिष्ठां च गृहचूडाव्रतादिकम्। वर्जयेद्यत्नतश्चैव जीवे वक्रातिचारगे ॥ कीर्तिभङ्गः प्रतिष्ठायां चौरभीतिस्तथाध्वनि। तथोद्वाहे भवेन्मृत्युर्व्रते हानिर्भयं गृहे ॥' इति। क्वचिदस्यापवादोऽभिहितः राजमार्तण्डे—'वक्रातिचारगे जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम्। व्रतोद्वाहादिचूडायामष्टाविंशतिवासरान् ॥' इति। मुक्तावल्यां त्वतिचारस्यैवापवादः—'अतिचारे सूरपूज्यो भवनाद्भवनान्तरं यदा याति। अष्टाविंशतिदिवसान् विवर्जयेत्परिणयं प्रयत्नेन ॥' इति। परिणय इत्युपलक्षणम्। अस्यापवादो दीपिकायां—'त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः। यदा तदा प्राह शुभं विलग्नं हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥' इति। अत एव लल्लः—'प्रतिषिद्धो नोद्वाहो वक्रिणि जीवे तथातिचारगते। गोचरबलं प्रधानं लग्नं च पराशरः प्राह ॥' इति। विवाहे एव कर्तव्येऽयमपवाद इति केचित्। न तु यज्ञोपवीतादौ। लग्नं च पराशरः प्राहेति सामान्योक्तेः। सर्वस्यापि कर्मणोऽपवाद इत्यन्ये। विशेषमाह लल्लः—'यद्यप्यनुपचयस्थो जीवः कन्यातिकालमावहति। गुणवद्वरोपलब्धौ तथापि पणिग्रहः कार्यः ॥' इति। अथ केचिद्गुर्वादित्ये

गुरुसहिते आदित्ये सूर्ये। एकराशिगतौ गुरुसूर्याविति यावत्। स गुर्वादित्यस्तस्मिन्नपि सर्वमस्तोक्तं शुभकर्म वर्ज्यम्। यदाह शौनकः—'एकराशिगतौ सूर्यजीवौ स्यातां यदा पुनः। व्रतबन्धविवाहादिशुभकर्माखिलं त्यजेत् ॥ इति। यत्तु गुरुवचनम्। गुरुक्षेत्रगतो भानुर्भानुक्षेत्रगतो गुरुः। गुर्वादित्यः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥' इति। तदविचारितरमणीयम्। तथाहि—गुरुक्षेत्रे धनुर्मीनौ तत्र भानुः सूर्यो गुर्वादित्यस्तदसत्। धनुरर्कस्य दक्षिणायनत्वादेव निषेधसिद्धेः। मीनार्कस्य तु यज्ञोपवीतव्यतिरिक्तकार्यमात्रनिषेधसिद्धेः। तथा भानुक्षेत्रं सिंहस्तत्र गतो गुरुर्गुर्वादित्य इति चेन्न। तत्र सिंहस्थगुरुत्वादेव निषेधसिद्धेः। अतो गणितवशेन यस्मिन्नेव क्षेत्रे भानुस्तस्मिन्नेव राशौ गुरुः स गुर्वादित्य इति तन्न। सम्भवत्येकवाक्यताकरणे भिन्नवाक्यताकरणस्य वैयर्थ्यापत्तेः। ननु गुरोर्बाल्यवृद्धत्वास्तमयानां पृथक्निषेधोऽनर्थकः गुर्वादित्यनिषेधेनैव सिद्धत्वादिति चेन्मैवं वोचः। राश्यादौ सूर्यः तद्राशेरेवान्तेऽष्टाविंशत्यंशे गुरुः तत्राष्टाविंशत्यंशानां व्यवधानात्तावद्गुरोरस्ताभावः। कालांशाश्च गुरोरेकादश ११ तदन्तरे ह्यस्तमयत्वोक्तेः। सप्तदशांशान्तरितत्वाच्च वार्धकमपि नास्ति। यतो बाल्यं वार्धकं च परमं पक्ष १५ मात्रं नारदादिभिरुक्तम्। तत्र दिनद्वयमधिकमवशिष्यते। येषां तु दश वा सप्त वा दिनानि बाल्यं वार्धकं चेति पक्षस्तेषामपि सप्त वा दश वा दिनानि बाल्यवार्धकरहितान्यवशिष्यन्ते। तत्र गुर्वादित्यप्रयुक्तोऽपि दोषो यथा स्यादिति वचनारम्भः। एवं बाल्येऽपि द्रष्टव्यम्। नन्वेवं गुर्वादित्य एव तर्हि वक्तव्यो गुरोर्बाल्यवार्धकास्तानां पार्थक्येन दोषाभिधानमनर्थकमिति चेन्न। यदा यत्र राशौ सूर्यस्ततः प्राग्राशौ गुरोरुदयस्तत्र बाल्यदोषः सावकाशः। यदोत्तरराशौ गुरुस्तदा वार्धकदोषः सावकाशः। बह्वंशान्तरत्वादस्तमयसम्भावनापि नास्ति। तत्र गुर्वादित्यदोषेण बाल्यवार्धकास्तमयदोषाणां कथं निरासः कर्तुं शक्यः। न हि भिन्नराशिस्थयोरपि गुर्वादित्ययोर्गुर्वादित्यदोषाभिधानं कैश्चिदुक्तम्। तस्मात्प्रागुक्तविषय एव गुर्वादित्यदोषः। यदात्वेकराशिस्थितत्वं तदा यदि बाल्यवार्धकास्तमयदोषाणां सम्भवस्तदा दोषस्याधिक्यन्यूनतातारतमभावो ध्येयः। तथा हि बृहस्पतेः खलु पञ्चावस्थाः सम्भवन्ति। पूर्वं गुर्वादित्यसंज्ञा साल्पदोषा। ततो यथायथा रविसामीप्यं तथातथा क्षीणताधिक्याद्वार्धकव्यपदेशो गुर्वादित्यव्यपदेशाद्दुष्टफलः। ततः सूर्यातिसान्निध्येनास्तङ्गतत्वेऽस्तमयाख्यो व्यपदेशः सोऽत्यन्तं दुष्टफलः। ततः पुनरपि कालांशातिक्रमेण रविविप्रकर्षादुदये सति बाल्यत्वव्यपदेशः प्राक्फलात् किञ्चिन्न्यूनदोषकरः। ततः पुनरपि राश्यन्ते गुर्वादित्यव्यपदेशः। सोऽल्पदोष इति। एवं गुरोर्बाल्यवार्धकदिनानामपि बहुत्वाल्पयोरपि व्यवस्था ध्येया। तथा हि। यदास्तोदयाभ्यां प्राक् पश्चाच्च वार्धकं बाल्यं च पक्षमभिहितं तदा पक्षान्तिमदिनपञ्चकमल्पदोषदम्। यदा तु दशदिनानीति पक्षस्तदा तदन्तिमं दिनत्रयं मध्यमदोषम्। यदा तु सप्तदिनानीति पक्षस्तदा तु महादोष एव। एवं धीमद्भिरन्यत्रापि व्यवस्थाविरोधे सति महादोषाल्पदोषजनिकावश्यकानावश्यकविषयिणी ध्येयेत्यलमतिप्रसङ्गेन। अथ केचिद्विश्वघस्रेऽपि पक्षे त्रयोदशदिने पक्षे यस्मिन् पक्षे तिथिद्वयह्रासः स त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोऽतिनिन्द्यः। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—'पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोगः। पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुरा-

चार्यवराः समस्ताः ॥' इति । तथा 'त्रयोदशदिने पक्षे तदा संहरते जगत् । अपि वर्ष-सहस्रेण कालयोगः प्रकीर्तितः ॥' इति । एवंविधे काले सर्वं गुर्वाद्यस्तोक्तं शुभकर्म वर्ज्यं प्रोचुः । तदुक्तं व्यवहारचण्डेश्वरे—'त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् । गर्गादि-मुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत् ॥' इति । विवाहे दम्पत्योश्चौलोपनयनादौ च शिशो-र्मृत्युरित्यवधातव्यम् । संस्कार्यतया प्राधान्यात् । ज्योतिर्निबन्धेऽपि–'उपनयनं परिणयनं वेश्मारम्भादिकर्माणि । यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः ॥' इति । अथ प्रसङ्गात्त्रयोदशदिनात्मकपक्षः कथं सम्भवति कथं च न सम्भवतीति विचारः प्रस्तूयते । कस्मिंश्चिच्छककाले कस्मिंश्चित्पक्षे प्रतिपत्सोमवारे घटिकैका दशपलाधिका १।१०, ततो द्वितीया क्षयोन्मुखत्वात्पक्षस्य सोमवार एवान्तर्हिताद् एवावमाख्या जाता घट्यः ५७ पलानि ६, ततः पुनरपचयक्रमेण तिथीनां चतुर्दश्यपि क्षयं गतावमाख्या शुक्रवार एव । ततः शनिवारे पूर्णिमा क्षयोन्मुखी चतुर्दशीतुल्या वा एतादृशः पक्षस्त्रयोदशदिनात्मकः सम्भवति । यद्यपि 'पक्षपरिग्रहे' इत्यस्माद्धातोः 'पचाद्यचि' पक्षशब्दो निष्पन्नो नानार्थश्चास्ति । तथापि ज्योतिःशास्त्रे प्रतिपदाद्यक्षणमारभ्य पञ्चदश्यन्तिमक्षणपर्यन्तं पञ्चदशतिथ्यात्मके काले रूढः शिष्टपरिगृहीतत्वाद् गृह्यते । दिनशब्दोऽप्यत्र त्रयोदश-पदसमभिव्याहारादहोरात्रवाचको 'दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते' इत्यादावहः-शब्दवत् । तत्र दिवसस्तु 'यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यं तत्सावनाच्च घटिकादिक-मार्क्षमानात्' इति भास्करोक्तेः । सावन एवात्र ग्राह्यः । स च सूर्योदयमारभ्यापर-सूर्योदयं यावत् तावत्कालो रविवाराद्यपरपर्यायः सकललोकप्रसिद्धो गृह्यते । तत्र 'त्रयोदशदिने पक्षे नूनं संहरते जगत्' इति वचनादेतादृशस्य त्रयोदशदिनात्मकस्य पक्षस्य दोषवत्ता समर्थ्यते । कथमस्य पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकत्वम् । उच्यते । त्रयोदश-सङ्ख्याकानि दिनानि यस्मिन्स त्रयोदशदिनस्तादृशे पक्ष इति व्युत्पत्त्या पक्षस्यान्य-पदार्थकत्वात्तस्य पञ्चदशतिथ्यात्मकस्य त्रयोदशाहोरात्रसम्बन्धोऽभिहितो भवति । प्रस्तुतोदाहरणे तावत्प्रतिपदन्तिमघटीसम्बन्धः प्रातःकाले सोमवारस्य जातः । ततो द्वितीयादितिथिसम्बन्धः सोमवारमारभ्यैव जातः । ततः क्रमेण पञ्चदश्याः शनिवार-सम्बन्धोऽभूदिति पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकत्वमजनिष्ट । यदि प्राग्लक्षणलक्षितस्य पक्षस्य त्रयोदशाहोरात्रसम्बन्धो विवक्ष्यते, तदा पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकता खपुष्पतुल्यैव भवेत् । यतोऽपचयाभिमुखत्वात्तिथीनां मध्ये एकस्या एव तिथेः क्षयः स्यान्न द्वयोस्ति-थ्योस्तदा पक्षस्य चतुर्दशदिनात्मकता सम्भवति । 'पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोगः । पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवराः समस्ताः ॥' इति वाक्याद्द्वयोस्तिथ्योरेव क्षयपक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकता सम्भवेत् । सा चाल्पा-वशिष्टप्रतिपत्सम्भवेदिति निष्कृष्टोऽर्थः । अत्रैवंविधमन्यदप्युदाहरणम् । विंशत्युत्तरपञ्च-दशशती १५२० मिते शककाले कार्तिकशुक्लपक्षे जातमस्ति तदेवं विधेयम् । एवञ्च यदाकदाचिच्छककाले पञ्चदशीतिथिर्गुरुवारे घटिकैका १ पुनस्तस्मिन्नेव वारे प्रतिपद् ५९ क्षयगता ततस्तस्मिन्नेव वारे पुनर्द्वितीया संलग्ना पुनः प्रातरारभ्य शुक्रवारसम्बधेन द्वितीया सम्पूर्णाभूत्, पुनः क्षयाभिमुखत्वात्तिथीनां चतुर्दश्याः पञ्चदश्या वा क्षयः संवृत्त-स्तदा पञ्चदशी तिथिर्गुरुवार एव समभूत्तदा चतुर्दशदिनात्मक एव पक्षो भवति । यतः

प्रतिपत्सम्बन्धः शुक्रवारे एकपलात्मकोऽपि नाभूत्किन्तु गुरुवारेणैव । ननु 'पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेताम्' इति लक्षणात् त्रयोदशदिनात्मकः पक्षो भविष्यतीति चेन्न । यतोऽत्र मध्यशब्दः पठ्यते स यद्यष्टमीतिथिमुत षष्ठ्यादितिथिपञ्चकात्मकविभागमाक्षिपति तथापि द्वितिथी पतेतामिति वाक्यार्थासम्भव एव स्यात् । सम्भवस्तु वाक्यार्थे लक्षणयोपयुज्यते । अतो यदा हि पक्षे इति सप्तम्यन्तपदे वक्तव्ये मध्यपदोच्चारणसामर्थ्यादाक्षिप्तयोराद्यन्तयोस्तिथ्योर्निवृत्तिमाह स इति वाक्यार्थोऽवगम्यते । एवं सति प्रतिपत्पञ्चदश्योर्युगपत्क्षये दोषवत्ता नैव भवति, किन्तु द्वितीयामारभ्य चतुर्दश्यन्तं तिथिद्वयह्रासे त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोऽतिदोषावहो भवति । यद्येवं द्वितीयापञ्चदश्योः क्षयेतिदोषवत्ता न स्यादिष्यते च तत्रापि । सत्यम् । नहीदमेव वचोऽतिनिर्णायकं किन्तु त्रयोदशदिने पक्ष इत्यनेनैकवाक्यतामापन्नं सत् । 'सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि दूषणम्' इत्युक्तेः कथं तिथिद्वयक्षयवान् त्रयोदशाहोरात्रसम्बन्धवान्पक्षस्त्रयोदशदिनः पक्ष इत्यनुगतं लक्षणं क्रियते । अतो नात्र व्याप्तिरित्यस्त्यतिदोषवत्ता । यत्र चतुर्दशदिनात्मकः पक्ष इति प्रसिद्धिस्तत्र पञ्चदशतिथीनां त्रयोदशाहोरात्रसम्बन्धात्पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकता स्यात्सा माभूदिति तिथिक्षयद्वयवानित्युक्तम् । अतः प्रतिपत्तिथेश्चतुर्दशीपञ्चदश्योरन्यतरतिथेश्च युगपत्क्षये त्रयोदशदिनात्मकपक्षत्वं नास्त्येवेति सिद्धान्तः । अतएव भीष्मपर्वणि कुरुपाण्डवसैन्यक्षयनिमित्तभूतमुत्पातमाह दुर्योधनम्प्रति भीष्मः—'चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् । इमां त्वमभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् ॥' इति । अस्यार्थः । पूर्वं हि पञ्चाङ्गगणनया प्रतिपदमारभ्यामावास्यां तिथिं चतुर्दशीं चतुर्दशाहोरात्रे निष्पन्नां भूतपूर्वां पूर्वभूतामहमभिजाने । पक्षस्यैकतिथिक्षयसद्भावात् । तथामावास्यां पञ्चदशीं पञ्चदशाहोरात्रे पूर्वं जातामहमभिजाने । पक्षस्यैकतिथिक्षयवृद्धिराहित्यात् । तथामावास्यां षोडशीं षोडशहोरात्रे पूर्वं जातामहमभिजाने । पक्षस्यैकतिथिक्षयवृद्धिसद्भावात् । पक्षमध्ये तिथिद्वयवृद्धिस्तु खपुष्पतुल्यैव । भूतपूर्वामित्यनेन, गणितसाध्यपञ्चाङ्गेष्वनेकशो दृष्टत्वादाश्चर्याभावोऽभिहितः । अतः फलमप्यस्य वराहेण सामान्यत उक्तम्—'शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धिं प्रयाते ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च । हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥' इति । व्यत्ययस्तु शुक्लपक्षापेक्षया । अत्रातिदुष्टफलाश्रवणान्नोत्पातरूपत्वमस्य पक्षस्य परमस्मिन्नवसरे त्विमां पञ्चाङ्गे मया दृष्टाममावास्यां त्रयोदशीं प्रतिपत्तिथिमारभ्य त्रयोदशाहोरात्रे तिथिद्वयह्रासाज्जातां कदाप्यननुभूतां नाहमभिजाने इति महानुत्पातो मया दृष्टोऽतो युद्धान्निवर्तस्वेति वाक्यतात्पर्यार्थः । प्रकृतेरन्यत्वमुत्पात इत्युत्पातलक्षणानाक्रान्तत्वमत्रास्ति गणितज्ञानसाध्यत्वाच्छुक्रास्तादिरुत्पातः केनाप्यङ्गीक्रियते । सत्यम् । यद्यपि पक्षद्वयमध्ये तिथीनां क्षयगामित्वात्तिथिद्वयह्रासो दृश्यते बहुधा गणितसाध्यत्वात्तथाप्यस्मिन्कालेऽप्यस्मिन्नेवैकस्मिन्पक्षे प्रतिपदमारभ्य तिथिद्वयह्राससद्भावाद् बहुभिर्वर्षैरमावास्या त्रयोदशी जाता दृष्टा तादृशी च मया कदापि नानुभूतेति महोत्पातरूपत्वमस्य युक्तमेव सम्पन्नमिति । 'ज्योतिर्विन्नीलकण्ठस्य गोविन्देन तनुभुवा । त्रयोदशाहपक्षस्य तत्त्वं सम्यक् प्रकाशितम् ॥' इति । अथ तद्वत्तेन प्रकारेण दन्तरत्नादिभूषां दन्ता हस्तिदन्तास्तत्सम्बन्धिनीं भूषां रत्नसम्बन्धिनीं भूषां तथादिशब्दा-

त्सुवर्णमणिसम्बन्धिनीं भूषामपि वर्ज्या प्रोचुः। सर्वस्मिन्निषिद्धे काले इत्यर्थः। यदाह राजमार्तण्डः—'यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवरविधिं शङ्खसद्मप्रवेशं प्रासादोद्यानहर्म्यं सुरनरभवनारम्भविद्याविधानम्। मौञ्जीबन्धं प्रतिष्ठां मणिकनकरदाधारणं कुर्वतो ये मृत्युः सिंहस्थितेज्ये गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च ॥' इति। सिंहस्थगुरोरुपलक्षणत्वाद् गुर्वस्तादावपि प्रथमकर्तव्यसुवर्णादिधारणं वर्ज्यमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

हिन्दी—गुरु और शुक्र के अस्त में (१।४६–४७ श्लोकोक्त) जितने कार्य वर्जित हैं, उन सभी को सिंह और मकर राशि में गुरु के रहने पर भी वर्जित करना चाहिए। किसी आचार्य का मत है कि बृहस्पति वक्रगति और मार्गगति (अतिचार) हो तो भी १।४६–४७ श्लोक में कहे गये कार्य त्याग देने चाहिए। एवं गुर्वादित्य तथा १३ दिन के (विश्वघस्र) पक्ष में भी सभी कार्य निन्दित कहे गये हैं। जिस प्रकार ४६–४७ श्लोकों में कहे हुए कार्य अस्त में वर्जित हैं वैसे ही हाथीदाँत के या शंख के बने हुए और रत्नों से निर्मित आभूषणों को धारण करना भी वर्जित है ॥ ४८ ॥

विशेष—सिंहराशिस्थ और मकर (अपने नीच) राशिस्थ बृहस्पति का विवेचन ग्रन्थकार ने आगे के ५२वें श्लोक में किया है। यहाँ गुर्वादित्य के विषय में आचार्यों के मत कहे जाते हैं—

गुरु के मत में—बृहस्पति और सूर्य परस्पर एक-दूसरे की राशि में हों तो गुर्वादित्य दोष होता है।

गुरुक्षेत्रगतो भानुर्भानुक्षेत्रगतो गुरुः।
गुर्वादित्यः स विज्ञयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥

शौनक के मत में—

एकराशिगतौ सूर्यजीवौ स्यातां यदा पुनः।
व्रतबन्धविवाहादिशुभकर्माखिलं त्यजेत् ॥

यद्यपि इस वचन में गुर्वादित्य शब्द नहीं आया है, तथापि किसी टीकाकार ने इसे गुर्वादित्य कहा है। किन्तु जब सूर्य, गुरु एकराशि पर कालांश के भीतर आ जाते हैं तो गुर्वस्त होता है। कालांश के बाहर रहने पर भी बाल्य और वृद्धत्व होते हैं। जिसका (अस्त बाल्य वृद्धत्व का) निषेध आचार्य ने (४६–४७ श्लोकों) में किया है। अतः गुर्वादित्य शब्द से गुरु का मत ही लिया जा सकता है। तथा पृथक् पृथक् भी जब गुरु सूर्य की राशि (सिंह) में आता है तो निषिद्ध माना जाता है। एवं सूर्य भी जब गुरु की राशि (९।१२) में आ जाता है तो खर मास होता है। अतः जब युगपत् दोनों (सूर्य और बृहस्पति) परस्पर एक-दूसरे की राशि पर प्राप्त हो तो गुर्वादित्य मानना उचित ही है।

जिस पक्ष में दो तिथियों का क्षय होता है, उसे त्रयोदशदिनात्मक पक्ष कहते हैं। यह शुभ कार्यों में अतिनिन्दित कहा गया है।

अथ सिंहस्थगुरोः प्रकारत्रयेण परिहारमिन्द्रवज्रयाह—

सिंहे गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्टोऽथ गोदोत्तरतश्च यावत्।
भागीरथीयाम्यतटे हि दोषो नान्यत्र देशे तपनेऽपि मेषे ॥ ४९ ॥

सिंह इति। अथ प्रथममंशभेदेन परिहार उच्यते। गुरौ सिंहस्थिते सत्यपि सिंहांशे तृतीयांशसहितत्रयोदशांशकेभ्योऽनन्तरं १३।२० तृतीयांशसहितांशत्रयं ३।२० पञ्चमो

नवांशः सिंहांशस्तत्र गुरौ सति विवाहो नेष्टो निषिद्धः। उक्तं ज्योतिर्निबन्धे राजमार्तण्डेन—'सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः। सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दम्पत्योर्निधनप्रदः ॥' इति। विशेषमाह वसिष्ठः—'सिंहे सिंहांशके जीवे कलिङ्गे गौडगुर्जरे। कालमृत्युरयं योगो दम्पत्योर्निधनप्रदः ॥' इति। अतोऽवशिष्टेष्वंशेषु विवाहादि शुभं भवतीत्यर्थः। 'सिंहेऽपि भगदैवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत् ॥ अत्यन्तसुभगा साध्वी धनधान्यसमन्विता ॥' इति राजमार्तण्डोक्तेः। अथ देशभेदेन द्वितीयः परिहार उच्यते। अथ गोदोत्तरतः गोदावरीनदी तस्या उत्तरदिशि भागीरथी गङ्गा तस्या याम्यतटं दक्षिणकूलं यावन्मर्यादीकृत्य गोदावरीगङ्गान्तरालवर्ती यो देशस्तत्र सिंहस्थगुरुर्वर्ज्यो नाऽन्यत्र। अन्येषु देशेषु न सिंहस्थगुरुदोषः। तदाह लल्लः—'गोदावर्युत्तरतो यावद्भागीरथीतटं याम्यम्। तत्र विवाहो नेष्टः सिंहस्थे देवपतिपूज्ये ॥' इति। अर्थाद् गोदावरीदक्षिणे देशे भागीरथ्युत्तरे देशे च सिंहस्थगुरुदोषो नास्ति। यदाह वसिष्ठः—भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तटे। विवाहो व्रतबन्धो वा सिंहस्थेज्ये न दुष्यति ॥ मृगेन्द्रसंस्थिते जीवे मध्यदेशे करग्रहः। मृत्युयोगो मृत्युदः स्याद्दम्पत्योः पञ्चवर्षतः ॥' इति। अत्र विवाहव्रतबन्धावेव निषिद्धौ। आभ्यामन्यानि शुभकर्माण्यनिषिद्धान्येव। अपवादस्य सङ्कोचाश्रयत्वादुपलक्षणत्वायोगात्। अथ सूर्यराशिवशेन तृतीयः परिहार उच्यते—तपनेऽपि मेषे, सूर्ये मेषराशौ विद्यमाने सति वा सिंहस्थगुरोर्दोषो नास्ति। 'मङ्गलानीह कुर्वीत सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा। भानौ मेषगते सम्यगित्याहुः शौनकादयः ॥' इति ज्योतिर्निबन्धोक्तेः। अन्यच्च तत्रैव—'सिंहगते सुरमन्त्रिणि कन्या मेषगते तपने परिणीता। भूषणरत्नयुता च सुशीला सत्यवती सुखकीर्त्तिसमेता ॥' इति ॥ ४९ ॥

हिन्दी—पूर्व श्लोक (४८) में सिंहस्थ गुरु सभी कार्यों में वर्जित कहा गया है। अब अंशभेद, देशभेद और सूर्यराशि-भेद से ३ परिहार इस प्रकार कहते हैं—

(१) वृहस्पति सिंहराशि और सिंह ही के नवमांश[1] पाँचवें नवमांश (४।१३°।२०' से ४।१६°।४०' तक) हो तो सब देशों में विवाहादि शुभकार्य नहीं करना चाहिए। राजमार्तण्ड में भी कहा गया है—

सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः।
सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दम्पत्योर्निधनप्रदः॥

(२) गोदावरी के उत्तर से भागीरथी के दक्षिण तट तक के प्रदेश में ही विवाहादि शुभकार्यों में सिंहस्थ गुरु वर्जित है। अन्य देशों (गोदावरी के दक्षिण और भागीरथी के उत्तर) में वर्जित नहीं है। जैसा कि वशिष्ठ ने कहा है—

भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तटे।
विवाहे व्रतबन्धो वा सिंहस्थे ज्ये न दुष्यति॥ इति।

(३) जब सूर्य मेषराशि (स्वोच्चराशि) का हो तो किसी भी देश में सिंह का वृहस्पति निषिद्ध (दोषकारक) नहीं होता। यथा ज्योतिर्निबन्धे—

---

१. पीताम्बरा टीकाकार ने १०°।०' से १३°।२०' तक सिंहस्थ गुरु में सिंह का नवमांश माना है।

सिंहगते सुरमन्त्रिणि कन्या मेषगते तपने परिणीता ।
भूषणरत्नयुता च सुशीला सत्यवती सुखकीर्तिसमेता ॥

अथ सिंहराशिगतगुरुनिषेधवाक्यानां प्रतिप्रसववाक्यानां च निर्गलितार्थमनुष्टुब्द्वयेनाह—

मघादिपञ्चपादेषु गुरुः सर्वत्र निन्दितः ।
गङ्गागोदान्तरं हित्वा शेषाङ्घ्रिषु न दोषकृत् ॥ ५० ॥
मेषेऽर्के सद् व्रतोद्वाहौ गङ्गागोदान्तरेऽपि च ।
सर्वः सिंहगुरुर्वर्ज्यः कलिङ्गे गौड-गुर्जरे ॥ ५१ ॥

मघादिपञ्चेति । मेषेऽर्के इत्यादि च । श्लोकद्वयं स्पष्टार्थम् ॥ ५०-५१ ॥

हिन्दी—मघा के आदि से ५ चरणों (मघा का ४ चरण और पूर्वाफाल्गुनी का १ चरण अर्थात् ४।०°।०′ से ४।१६°।४०′ तक) में जब गुरु रहता है, तब तक सभी देशों में निन्दित माना गया है। शेष (४।१६।४० से ५।०।० तक के) अंशों में गंगा-गोदावरी के अन्तरालवर्ती देशों को छोड़ कर अन्य देशों में बृहस्पति दोषकारक नहीं होता है।

यदि मेष राशि का सूर्य हो तो गंगा-गोदावरी के बीच वाले प्रदेश में भी विवाहोपनयनादि संस्कार शुभ होते हैं। कलिंग (गोदावरी ओर वैतरणी नदी के बीच के प्रदेश), गौड (मध्य बंगाल और उड़ीसा प्रदेश) और गुजरात प्रदेशों में समस्त सिंहस्थ गुरु वर्जित है। अर्थात् इन तीनों देशों में कोई परिहार लागू नहीं होता। मेष राशि का सूर्य रहने पर भी सिंहस्थ गुरु इन देशों में अशुभ माना जाता है ॥ ५०-५१ ॥

अथ मकरस्थितगुरोः प्रकारद्वयेन परिहारं शालिन्याह—

रेवापूर्वे गण्डकीपश्चिमे च शोणस्योदग्दक्षिणे नीच इज्यः ।
वर्ज्यो नायं कौङ्कणे मागधे च गौडे सिन्धौ वर्जनीयः शुभेषु ॥ ५२ ॥

रेवापूर्वे इति । रेवा नर्मदा नदी तस्याः पूर्वे भागे, गण्डकी नदी तस्याः पश्चिमे भागे शोणनदस्योत्तरे दक्षिणे च भागे नीच ईज्यः मकरस्थगुरुर्न वर्ज्यः । एषु देशेषु मकरस्थगुरोर्दोषो नास्ति । तदुक्तं लल्लेन—'नर्मदापूर्वभागे तु शोणस्योत्तरदक्षिणे । गण्डक्याः पश्चिमे भागे मकरस्थो न दोषभाक् ॥' अर्थादन्येषु देशेषु निषिद्ध एव । तद्देशज्ञानार्थं द्वितीयः परिहारः । अयं मकरस्थितगुरुः कौङ्कणे देशे मागधे देशे च गौडदेशे सिन्धुदेशे अटकाख्यनगराधस्तात् सिन्धुर्नाम नदोऽस्ति तत्पारे शुभेषु शुभकृत्येषु वर्ज्यो निषिद्धः । उक्तञ्च दैवज्ञमनोहरे—'मागधे गौडदेशे च सिन्धुदेशे च कौङ्कणे । व्रतं चूडां विवाहं च वर्जयेन्मकरे गुरौ ॥' इति । अतोऽन्येषु देशेषु मङ्गलं कार्यमेवेत्यर्थतः सिद्धम् । व्यवहारचण्डेश्वरे तु विशेषः—'नीचराशिगतो जीवः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । नीचांशकगतस्त्याज्यो यस्मादंशेषु नीचता ॥' इति । अत एव वामनपुराणे—'वापीकूपतडागादि निषिद्धं सिंहगे गुरौ । मकरस्थेऽपि तत्कार्यं न दोषः काललोपतः ॥' इति । काललोपो नाम कालनिषेधः स इह नास्ति । निषेधवाक्यस्य देशपरत्वादंशपरत्वाच्चेति भावः । गरुडपुराणेऽपि—'यदा सिंहगतो जीवो नैव कल्याणमाचरेत् । मकरस्थेऽपि कर्तव्यं नात्र कार्या विचारणा ॥' इत्यत्रापि पूर्वोक्त एवाशयः ॥ ५२ ॥

हिन्दी—रेवानदी (मध्य प्रदेश के पश्चिम-दक्षिण में स्थित नर्मदा) से पूर्व और गण्डकी नदी (जो हिमालय से निकलकर नेपाल के पश्चिम एवं उत्तर से होती हुई पटना के पास गंगा नदी में मिलती है) के पश्चिम (अर्थात् इन्दौर से पटना के बीच का प्रदेश), शोणभद्र के दक्षिण और उत्तर दोनों ओर के देशों में नीच (मकर) राशि का वृहस्पति वर्जित नहीं है। वह नीच (मकर) राशि का वृहस्पति, कोंकण (दक्षिण भारत का एक प्रदेश, जिसके अन्तर्गत कनारा रत्नागिर, कोलाबा, बम्बई और थाना आदि हैं। प्राचीन काल में केरल, तुलव, सौराष्ट्र, कोंकण, करहाट, करनाट और वर्वर मिलकर सप्त-कोंकण कहलाते थे), मागध (काशीस्थ गंगा के पूर्व दक्षिण बिहार का प्राचीन नाम आरा, गया आदि जिले), गौडदेश (मध्य वंगाल; वैदिककाल में इसका नाम कीकट था और उड़ीसा प्रदेश), सिन्धुदेश (कच्छ और बहावलपुर-वेला स्थान जो आज बम्बई कहा जाता है) में वर्जित है। इन देशों में मकरस्थ गुरु होने पर विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करने चाहिए। (उक्त प्रदेशों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में मकरगत गुरु मध्यम माना जाता है) ॥ ५२ ॥

अथ लुप्तसंवत्सरदोषापवादं वंशस्थवृत्तेनाह—

गोऽजान्त्यकुम्भेतरऽभेतिचारगो नो पूर्वराशिं गुरुरेति वक्रितः।
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिन्दितः शुभेषु रेवा-सुरनिम्नगान्तरे ॥ ५३ ॥

गोऽजान्त्येति। गौर्वृषः, अजो मेषः, अन्त्यो मीनः, कुम्भ एतदितरभे यस्मिन् कस्मिंश्चिद्राशौ स्थितो गुरुराक्रान्तराशेः सकाशादग्रिमराशौ महातिचारेण समागतः सन् पश्चात्कियद्भिर्दिनैर्वक्रितो यदा पूर्वराशिं भुक्तराशिं नो एति तदा विलुप्ताब्दः लुप्तसंवत्सर उच्यते। स विलुप्ताब्दः इह शुभकृत्येष्वतिनिन्दितः। निषिद्ध इत्यर्थः। तदुक्तं व्यवहारोच्चये—'अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैति चेत्पुनः। लुप्तसंवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु।' इति। यदा तु गोजान्त्यकुम्भेषु पूर्वराशेः सकाशान्महातिचारेणायाति पूर्वराशिं च नैति तदा न लुप्तसंवत्सरदोषः। यदाह गुरुः—'मेषे वृषे झषे कुम्भे यद्यतीचारगे गुरौ। न तत्र कालदोषः स्यादित्याह भगवान् यमः ॥' इति कालदौष्टचम्। यदि तु दशैकादश वा मासान्भुक्त्वा यस्मिन्कस्मिंश्चिद्राशावतिचारेण गुरुः समायाति पूर्वं राशिं च न गच्छति तदा लुप्तसंवत्सर एव नास्ति। यदाह च्यवनः—'मासान् दशैकादश वा प्रयुज्य राशेर्यदा राशिमुपैति जीवः। भुङ्क्ते न पूर्वं च पुनस्तथापि न लुप्तसंवत्सरमाहुरार्याः ॥' इति। अथ पूर्वराशिभेदेन परिहारमुक्त्वेदानीं देशभेदेन परिहारमाह—रेवेति। लुप्तसंवत्सरो रेवा नर्मदा सुरनिम्नगा गङ्गा तयोर्नद्योरन्तरे मध्ये निषिद्धः। उक्तञ्च—'लुप्ताब्ददोषोऽत्रिमतेन मध्ये सोमोद्भवायाः सुरनिम्नगायाः।' इति। केषुचिद्राशिषु लुप्तसंवत्सरदोषातिशयोऽस्तीत्युक्तं सारसागरे—'अतिचारगते जीवे धनुःकर्कटमीनगे। लुप्तसंवत्सरो ज्ञेयो विवर्ज्यः सर्वकर्मसु ॥'

समसप्तकम्

अन्यैर्विवाहादिनिषेधकं समसप्तकाख्यं दोषान्तरमप्युक्तम्। यदाह नारदः—'समदृष्टिर्गुरुः शुक्रस्तन्मासे तु प्रयत्नतः। विवाहादि न कुर्वीत नर्मदातीर उत्तरे ॥' इति। गुरुरपि—'यदा जीवसितौ चक्रे परस्परनिरीक्षितौ। सप्तमस्थौ तदा दोषो मूढत्वादति-

रिच्यते' इति । वसिष्ठोऽपि—'समसप्तकयोर्जीवशुक्रयोश्च परस्परम् । तदा मूढसमो दोषः शुभकार्यविनाशदः ॥' इति ॥ ५३ ॥

हिन्दी—वृष, मेष, मीन और कुम्भ इन ४ राशियों को छोड़कर शेष (३।४।५।६।७।८।९।१०) ८ राशियों में अतिचारी वृहस्पति यदि पूर्व राशि में वक्री होकर नहीं आवे तो विलुप्ताब्द कहा जाता है। यह विलुप्ताब्द रेवा (नर्मदा) और गंगा के अन्तरालवर्ती प्रदेशों में समस्त शुभ कार्यों में अतिनिन्दित कहा गया है।

इससे स्पष्ट है कि कुम्भ, मीन तथा शेष वृष राशि में वृहस्पति अतिचारी होकर यदि पूर्व राशि पर वक्री होकर नहीं लौटे तो विलुप्ताब्ज का लक्षण होने पर भी दोषकारक नहीं होता है। कहा भी है—

मेषे वृषे झषे कुम्भे यद्यतीचारगो गुरुः ।
न तत्र काललोपः स्यादित्याह भगवान् ममः ॥

पीयूषधारा में गुरु और शुक्र के परस्पर सप्तम राशि में रहने पर समसप्तक दोष माना गया है। यह भी जिस मास में पड़े उस मास में समस्त शुभ कार्य वर्जित हैं ॥ ५३ ॥

अथ ग्रहाणां होरां वक्ष्यति सा च वारप्रवृत्त्यधीना । तदर्थं वारप्रवृत्तिमुपजात्याह–

पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः पलैर्युतोनास्तिथयो दिनार्द्धतः ।
ऊनाधिकास्तद्विवरोद्भवैः पलैरूर्ध्वं तथाऽधो दिनपप्रवेशनम् ॥ ५४ ॥

पादोनेति । रेखा भूमध्यरेखा 'पुरी रक्षसां देवकन्याथ काञ्ची सितः पर्वतः पर्यली-वत्सगुल्मम् । पुरी चोज्जयिन्याह्वया गर्गराटं कुरुक्षेत्रमेरू भुवो मध्यरेखा ॥' इति भास्करेणोक्ता । उपलक्षणं चैतत् । लङ्कात आरभ्य सुमेरुपर्यन्तं यद्दत्तं सूत्रं तदधोवर्तिनो ये देशास्ते मध्यरेखा उच्यन्ते । तदुक्तं तेनैव—'यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशा-न्स्पृशत्सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः' इति । यस्मिन् देशे वारप्रवृत्तिश्चि-कीर्षिता स देशो यदि मध्यरेखातः प्राक्पश्चाद्वा यावन्ति योजनानि भवन्ति तानि स्वदेशचतुर्थांशोनानि कृत्वा तावद्भिः पलैस्तिथयः पञ्चदश युतोनाः कार्याः । यदि मध्य-रेखातः प्रत्यग्योजनानि तदा युताः, यदा तु प्राग्योजनानि तदोनाः कार्या इत्यर्थः । अथ यद्दिने वारप्रवृत्तिरिष्टा तद्दिने—'चरपलयुतहीना नाडिकाः पञ्च चन्द्राद्द्विदलमथ निशार्धं याम्यगोले विलोमे' इति भास्करोक्तरीत्या दिनार्द्धं साध्यम् । तस्माद्दिनार्द्धात्संस्कार-विशिष्टाः पञ्चदशोनाधिकाश्चेद्भवन्ति तद्विवरोद्भवैः पलैर्दिनार्धस्य संस्कारविशिष्टपञ्च-दशानां च यद्विवरमन्तरं तत्सम्बन्धेनोत्थैरुत्पन्नैः पलैरूर्ध्वं तथाधो दिनपस्य वारस्य प्रवेशनं वारप्रवृत्तिः स्यात् । यदा दिनार्द्धात्संस्कारविशिष्टा पञ्चदश चेदूनाः स्युस्तदा सूर्योदयादूर्ध्वं वारप्रवेशनम् । यदा ह्यधिकास्तदा सूर्योदयात्प्राग्वारप्रवृत्तिरित्यर्थः । यथा वाराणसीप्राङ्मध्यरेखाभिधानात् 'कुरुक्षेत्रात् त्रिषष्टियोजनानि ६३ पादोनानि ४७।१५ प्राग्योजनत्वादेतैः पलैः ४७ ऊनाः पञ्चदश १५ जाताः १४।१३ दिनार्द्धं १७।२ अस्मात् न्यूना इति विवरं २।४९ सूर्योदयादूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः ।

अयमर्थो ग्रन्थकृता लाघवायोपनिबद्धः । राजमार्गस्तु वसिष्ठसंहितायाम्—'प्रभाकर-स्योद्गमनात्पुरे स्याद्वारप्रवृत्तिर्दशकन्धरय । चरार्धदेशान्तरनाडिकाभिरूर्ध्वं तथाधोऽथ

परत्र तस्मात्' इति । श्रीपतिरपि—'चरार्धदेशान्तरयोर्वियोगयोगोत्थमानीय पलैश्च सम्यक् । सूर्योदयादूर्ध्वमृणे धनेऽधो वारप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति ॥' इति । तत्र चरमुत्तर-दक्षिणगोलवशादृणं धनं च 'अस्वं खचरगोलयोः स्यात्' इति भास्करोक्ते । देशान्तर-मपि पूर्वापरयोजनवशादृणं धनं च । तत्र 'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा धनर्ण-योरन्तरमेव योगः ॥' इत्युक्तेः । ऋणयोर्देशान्तरचरयोर्योगे तूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः । धनर्णयोर्योगे सूर्योदयादधः धनर्णयोर्योगेऽन्तरं कार्यम् । तच्चदृणं धनं च तदा सूर्यो-दयादूर्ध्वमधश्च वारप्रवृत्तिः । ग्रन्थकृता तु चरसंस्कारो मध्याह्नस्य तद् विशिष्टत्वान्न कृतः । देशान्तरसंस्कारोऽवशिष्यते स लङ्कादिनार्धे पञ्चदशघटीमिते कार्यः । तथा कृते सति यदुभयोरन्तरं तावत्सूर्योदयादूर्ध्वमधश्च वारप्रवृत्तिः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—रेखा (भूमध्य रेखा) देश से पश्चिम या पूर्व जितने योजन पर अपना देश हो उतने योजन संख्या में उसी का चतुर्थांश $\frac{}{४}$ (उस योजन संख्या में) घटा देने पर जो संख्या आवे उतना पल, १५ घटी में जोड़ने या घटाने से (यदि अपना देश रेखा-देश से पश्चिम है तो १५ घटी में उतने पल को जोड़ने और यदि अपना देश रेखा-देश से पूर्व है तो १५ घटी में उतना पल घटाने से जो घटी-पल आवे वह अपने देश के दिनार्ध से जितना कम हो उतना घटी-पल सूर्योदय के बाद उस देश में वार-प्रवृत्ति होगी । एवं अपने देश के दिनार्ध से जितना अधिक हो उतनी घटी-पल सूर्योदय से पहले उस देश में उस दिन वार-प्रवृत्ति होगी ।

उदाहरण—श्रीविक्रम-संवत् २०२७ आषाढसुदी १३ शुक्रवार दिनमान ३३।३३ को काशी में वार-प्रवृत्ति जाननी है । रेखा-देश उज्जैनी से काशी ६३ योजन पूर्व है । ६३—$\frac{६३}{४}$=६३—१५।४५=४७।१५ पल हुआ । इसको १५ घटी में (रेखा-देश से स्वदेश पूर्व होने कारण) घटाया तो शेष १५—४७।१५=१४।१२।४५ हुआ । यह काशी के दिनार्ध से १६।४६।३०—१४।१२।४५= २।३३।४५ घटयादि कम है । अतः उस दिन सूर्योदय होने के बाद २ घटी ३३ पल ४५ विपल (१ घण्टा १ मि० ३० से०) पर शुक्रवार की प्रवृत्ति हुई ।

श्रीभास्कराचार्य ने करणकुतूहल (१।१४) में **भूमध्यरेखा** का वर्णन इस प्रकार किया है—

पुरी राक्षसी देवकन्याऽथ काञ्ची सितः पर्वतः पर्यली वत्सगुल्मम् ।
पुरी चोज्जयिन्याह्वयं गर्गराटं कुरुक्षेत्रमेरू भुवो मध्यरेखा ॥

इस समय विदेशी वैज्ञानिक ग्रीनविच (पेरिस) से गुजरती हुई रेखा को भूमध्यरेखा मानते हैं । वहाँ से ७६° पूर्व जो देश पड़ते हैं, वे पूर्वाचार्यों के मत से भूमध्यरेखा देश कहे जाते हैं । जैसे—कालीकट, शोलापुर, जलगाँव, इन्दौर, उज्जैन, सवाई माधोपुर, जयपुर, रिगस, पिलानी, लुधियाना, जम्मू आदि मध्य देश कहे जा सकते हैं ।

इस श्लोक की उपपत्ति म० म० श्रीसुधाकर द्विवेदी जी ने लिखी है, जो उनकी शिष्य-परम्परा में सर्वत्र प्रसिद्ध है । यथा—प्राचीन आचार्यों ने जिस समय लंका में सूर्योदय होता है, उस समय को वार-प्रवृत्ति माना है—

लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव ।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत्प्रवृत्तिः ॥ —शिरमध्यमाधि० १५

वह सूर्योदय अपने देश के सूर्योदय से लंका में कितने समय पहले या पश्चात् होता है, इसी का ज्ञान इस 'पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः' श्लोक से किया जाता है । रेखादेश से पूर्व के देशों में लंका-याम्योत्तर और स्वदेशीय-याम्योत्तर वृत्त का अन्तर स्पष्ट भूपरिधि में जितना होगा उसी को

पूर्व देशान्तर कहते हैं। उतना ही अन्तर लंकाक्षितिज और स्वदेशीय क्षितिज में भी होता है। इसी प्रकार पश्चिम देशान्तर भी समझना चाहिए। इस देशान्तर सम्बन्धी घटी-पल के जानने के लिए रेखादेश और स्वदेश के अन्तर योजन का ज्ञान करके त्रैराशिक गणित का प्रयोग करना चाहिए। यथा—यदि भूमध्यपरिधि योजन में ६० घटी है तो पूर्वापर देशान्तरयोजन में क्या ? यह पूर्वापर देशान्तरयोजनसम्बन्धी घटी हुई $= \frac{\text{६० घटी} \times \text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{भूमध्य परिधियोजन}}$ इसे ६० से गुणा किया तो पूर्वापर देशान्तरयोजन सम्बन्धी पल $= \frac{\text{६०} \times \text{६०} \times \text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{भूमध्य परिधियोजन}}$ हुआ।

अब 'खभ्राष्टवेद (४८००) प्रमितैस्तु योजनैः सदा भवेत् भूपरिधिप्रमाणम्' इसके अनुसार ४८०० योजन भूपरिधि प्रमाण कहा गया है। इसका उत्थापन करने पर पूर्वापर देशान्तरयोजन सम्बन्धी—

$$\text{पल} = \frac{\text{६०} \times \text{६०} \times \text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{४८००}}$$

$$= \frac{\text{३} \times \text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{४}}$$

$$= \frac{(\text{४} - \text{१})\ \text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{४}}$$

$$= \frac{\text{४} \times \text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{४}} - \frac{\text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{४}}$$

$$= \text{पूर्वापर देशान्तरयोजन} - \frac{\text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{४}}$$

लंका के यामोत्तर (रेखादेश) और लंका क्षितिज का अन्तर १५ घटी होता है। यदि अपना देश रेखादेश से पूर्व में है तो पहले अपने क्षितिज में सूर्य आवेगा, उसके पश्चात् लंकाक्षितिज में। अतः पूर्व के देशों में १५ घटी में देशान्तर पल घटाना चाहिए और पश्चिम के देशों में १५ घटी में देशान्तर पल जोड़ना चाहिए। यह अपना याम्योत्तर और लंकाक्षितिज का अन्तर हो जाता है। अतः क्रमशः पश्चिम या पूर्व स्वदेश में अन्तर—

$$= \text{१५ घटी} \pm \left(\text{पूर्वापर देशान्तरयोजन} - \frac{\text{पूर्वापर देशान्तरयोजन}}{\text{४}} \right)$$

यह अन्तर यदि अपने दिनार्ध से न्यून है तो अपना क्षितिज लंकाक्षितिज से नीचे होने के कारण पहले अपने क्षितिज में सूर्योदय, उसके अनन्तर लंका में सूर्योदय होगा। अतः हमारे सूर्योदय के बाद लंका में वार-प्रवृत्ति होगी। इस तरह अन्तर यदि अपने दिनार्ध से अधिक हो तो अपना क्षितिज लंका क्षितिज से ऊपर होने के कारण पहले लंका क्षितिज में सूर्य आवेगा उसके बाद अपने क्षितिज में सूर्योदय होगा। अतः अपने देश में उदय के पूर्व लंका में वार-प्रवृत्ति होगी ॥ ५४ ॥

अथ वारप्रवृत्तिप्रयोजनपुरःसरां होरामनुष्टुभाह—

वारादेर्घटिका द्विघ्नाः स्वाक्षहृच्छेषवर्जिताः।
सैकास्तष्टा नगैः कालहोरेशा दिनपात् क्रमात् ॥ ५५ ॥

रेखादेशः

वारादेरिति। वारप्रवृत्तिप्रकारेण यस्मिन् क्षणे वारप्रवृत्तिर्जाता तत इष्टघट्यो द्विगुणाः कार्याः। ता द्विस्थाने स्थाप्याः। तत्र पञ्चभिर्भक्ते यल्लब्धं तत् त्याज्यम्। यच्छेषं तत् द्विगुणघटीमध्ये वर्जितं कार्यम्। एवंविधा घट्यः सैका एकयुक्ताः कार्याः। ततो नगैः सप्तभिस्तष्टा भक्ता अवशिष्टाः कालहोराः स्युः। तद्दिनपाद्वारात् क्रमाद् गणनीयाः। यथा रविवारे इष्टघटिकाः षट् ६ द्विगुणाः १२ पृथगक्षाप्तशेष २ वर्जिताः १०। नगैः ७ तष्टाः शेषं ३ सैकं ४ रविवारे क्रमगणनया चतुर्थो बुधस्तस्य होरा। अत्र वासना। तत्र वसिष्ठः—'वारप्रवृत्तेर्गदिता दिनेशात्कालाख्यहोरापतयः क्रमेण। सार्धेन नाडीद्वितयेन तष्टः षष्ठश्च षष्ठश्च पुनः पुनः स्यात्' इति। तत्र कृतेऽहोरात्रे चतुर्विंशतिः कालहोरा भवन्ति॥ अत्रानुपातः—यदि घटिकानां षष्ठ्या ६० चतुर्विंशतिः २४ होरा लभ्यन्ते तदैकया किमिति। अत्रैकेन गुणे विशेषाभावाच्चतुर्विंशतेः छेदः षष्ठिर्जातः। उभयोर्द्वादशापवर्ते इष्टघटिका द्विगुणाः पञ्चभक्ताः कालहोराः स्युरिति। तथा चोक्तं रत्नमालायाम्—'वारप्रवृत्तेर्घटिका द्विनिघ्नाः कालाख्यहोरापतयः शराप्ताः। दिनाधिपाद्या रविशुक्रसौम्यशशाङ्कसौरेज्यकुजाः क्रमेण॥' अथ ग्रन्थकृदुक्ता वासना। सार्धघटीद्वयेनैका होरा द्विगुणिताः सार्धद्विघट्यः पञ्च भवन्ति। अत एवोक्तं—वारादेर्घटिका द्विघ्नाः' इति। एकयोगे षट् जाताः। एवं रविवारे क्रमेण गणनया द्वितीया शुक्रस्य कालहोरा प्रवृत्ता। अत उक्तं 'सैका' इति। भवन्मतेऽपि सूर्यात्षष्ठः शुक्रस्तस्यैव होरा। इयञ्च शुक्रहोरा पञ्चघटीपर्यन्तम्। स्वमते इष्टघटिका ४ द्विगुणाः ८ अत्र पञ्चभ्य आधिक्यमनुचितमिति द्वितीयस्थाने स्थापयित्वा पञ्चभक्तावशिष्टत्रयेणोनाः पञ्च जाताः। अत उक्तं—'स्वाक्षहृच्छेषवर्जिताः' इति। एकयोगे षट्। एवं सति पुनः सैव होरा। एवमिष्टघटीभिः कालहोरानयनं सुगमम्। वाराणां सप्तसङ्ख्यात्वात्तदाधिक्यमनुचितमिति—'नगैस्तष्टा' इत्युक्तम्। क्रमगणनायां त्वियं युक्तिः। द्वयोर्होरास्वामिनोरन्तरं पञ्चकं सम्भवति। एकयोगस्तु वर्तमानकालहोराज्ञानार्थम्। अतः षष्ठिक्रमगणनया भवद्विवक्षिता सैव होरा भवति।

विवाहवृन्दावने तु उदयमारभ्योक्ताः कालहोराः। यथा—'तत्कालार्कन्यूनलग्नांशपिण्डा भक्ताः पञ्च क्षोणिभिर्भुक्तहोराः। भास्वच्छुक्रज्ञेन्दुसौरेज्यभौमाः सङ्ख्यायेरन्वारतस्ते तदीशाः॥' इति। अनयोर्विषयविभागो वसिष्ठसंहितायाम्—'वारप्रवृत्तेर्विज्ञानं क्षणवारार्थमेव हि। अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनादिरुदयाद्भवेत्॥' इति। क्षणवारः कालहोरारूपः। तदर्थं वारप्रवृत्तिः। अन्यकार्येषु तिथिवारप्रयुक्तेषु चायोगेषु सुयोगेषु च सूर्योदयादेव वारा ग्राह्याः॥ ५५॥

हिन्दी—अपने-अपने देश में वार-प्रवृत्ति से इष्ट समय तक जितनी घटी पर कालहोरेश का ज्ञान करना हो, उस इष्ट घटी संख्या को दूना करके पृथक्-पृथक् दो स्थानों में रखे। एक स्थान में ५ का भाग देने से जो शेष बचे उसको दूसरे स्थान पर रखी हुई दूनी घटियों में घटाने से जो शेष बचे उसमें एक जोड़ कर ७ का भाग देने पर जो शेष बचे, वही वारपति से गिनने पर कालहोरेश होता है॥ ५५॥

सुगमता से कालहोरेश जानने की सारणी

होरा	रवि में	चन्द्र में	भौम में	बुध में	गुरु में	शुक्र में	शनि में	घटीपल
१	सूर्य	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	२।३०
२	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	५।०
३	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	७।३०
४	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	१०।०
५	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	१२।३०
६	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	१५।०
७	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	१७।३०
८	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	२०।०
९	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	२२।३०
१०	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	२५।०
११	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	२७।३०
१२	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	३०।०
१३	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	३२।३०
१४	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	३५।०
१५	सूर्य	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	३७।३०
१६	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	४०।०
१७	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	४२।३०
१८	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	४५।०
१९	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	४७।३०
२०	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	५०।०
२१	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	५२।३०
२२	सूर्य	सोम	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	५५।०
२३	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	बुध	गुरु	५७।३०
२४	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	भौम	६०।०

उदाहरणः—वि० सं० २०२७ आषाढ़ सुदी १३ शुक्रवार को ३१।३४ घटी पर कालहोरेश का ज्ञान करना है। उस दिन पूर्वानीत घट्यादि २।३३।४५ वारप्रवृत्ति काल को इष्ट घटी ३१।३४ में घटाया; ३१।३४—(२।३३।४५)=२९।०।१५ यह वार-प्रवृत्ति काल से गत घटी हुई इसे दूना करके ५८।०।३० दो स्थानों में रखा। एक स्थान में ५ का भाग देने पर जो (शेष $=\frac{५८।०।३०}{५}$ (लब्धि ११) शेष ३।०।३०) बचा, इसे दूसरे स्थान में रखी हुई दूनी घटी (५८।०।३०) में

घटा दिया; ५८।०।३०—(३।०।३०)=५५ शेष वचा। इसमें १ जोड़कर ७ का भाग देने पर $\frac{५५+१}{७}$ =शेष ० या ७ वचा। अतः शुक्र से गिनने पर ७वाँ गुरुवार आया। इसलिए उक्त समय में गुरुकाल होरेश हुआ।

अथ कालहोराप्रयोजनमन्यच्च शालिन्याह—

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य।
कुर्याद्दिक्शूलादि चिन्त्यं क्षणेषु नैवोल्लङ्घ्यः पारिघश्चापि दण्डः॥ ५६॥

वारे प्रोक्तमिति। यत्कर्म यस्मिन् वारे प्रोक्तं तद्दिनस्य सदोषत्वादत्यावश्यककृत्ये तस्य कालहोरायां कर्तव्यम्। यदाह नारदः—'यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते। ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा॥' इति॥

अत्र केचित्। यस्य वारे यत्कर्म प्रोक्तं तस्य बलिनो नवांशे सूर्यश्चन्द्रो वा चेत्तिष्ठेत् तदा तत्कर्म कार्यमित्याहुः। उक्तञ्च—'यस्य ग्रहदिने कर्म यत्किञ्चिदभिधीयते। तस्यांशे संस्थिते सूर्ये चन्द्रे वा तद्विधीयते॥' इति। कैश्चित्प्रत्येकं होराफलान्युक्तानि—'भानुहोरा मृतिं कुर्याच्चन्द्रहोरा स्थिरासनम्। कारावन्धं भौमहोरा बुधहोरा च पुत्रदा॥ वस्त्रालङ्कारदा जीवहोरा शौक्री विवाहदा। जडत्वं शनिहोरायां सप्तहोराफलं त्विदम्॥ प्रश्नकाले तु या होरा तस्याः फलमवाप्नुयात्।' इति।

उदयादारभ्य होरानयनप्रयोजनं तु—'पादः स्ववर्षे च दलं स्वमासे दिने स्वकीये चरणोनरूपम्। रूपं स्वहोरास्विति कालवीर्यमुक्तं हि होरानिपुणैः पुराणैः॥' इति। युक्तं चैतत्। वर्षेशादीनामुदयादितः प्रवृत्तानां साहचर्याद्वारेशा अप्युदयादेव गणनीयाः। अथ प्रसङ्गान्नक्षत्रप्रयुक्तानां कर्मणामनुष्ठाने प्राप्तेऽपवादमाह—धिष्ण्य इति। यस्मिन् धिष्ण्ये नक्षत्रे यत्कर्म वस्त्रपरिधानादिकमुक्तं तत्सत्यावश्यकत्वेऽस्य धिष्ण्यस्य स्वामितिथ्यंशके स्वामिमुहूर्ते कुर्यात्। उक्तञ्च नारदेन—'यस्मिन्नृक्षे तु यत्कर्म निखिलं कथितं च यत्। तद्दैवत्ये तन्मुहूर्ते कार्यं यात्रादिकं तथा॥' इति। मुहूर्तस्वामिनो विवाहप्रकरणे वक्ष्यति। अत्रापि स्वामितिथ्यंशे इदमवश्यं चिन्त्यं विचारणीयम्। किम्? दिक्शूलाद्यं वारशूलं नक्षत्रशूलं च। आदिशब्देन लालाटिकयोगोऽपि। क्षणेषु मुहूर्तेषु इदमवश्यं चिन्त्यं विचारणीयम्। एवं पारिघो दण्डः क्षणेषु नैवोल्लङ्घ्यः। यदाह वसिष्ठः—'यत्कर्म कथितमृक्षे यस्मिस्तत्कर्म तत्क्षणे कार्यम्। दिक्शूलादिकमखिलं पारिघदण्डादिविज्ञेयम्॥' इति। विज्ञेयमवश्यं विचारणीयम्। दिक्शूलादिकं तु यात्राप्रकरणे वक्ष्यति॥ ५६॥

हिन्दी—जिस वार में जो कार्य करना शास्त्र में कहा गया है, वह वार यदि वर्तमान समय में न हो और कार्य करना अत्यावश्यक हो तो वर्तमान निषिद्ध बार में भी विहित वार के काल होरा में उस कार्य को कर लेना चाहिए। यथा—किसी व्यक्ति ने शुक्रवार को ही श्मश्रुकर्म कराने का दृढ़ निश्चय किया है; आज भौमवार है और किसी ऐसे आवश्यक कार्य के निमित्त श्मश्रुकर्म करना आवश्यक है तो मंगलवार को शुक्र की (तीसरी) कालहोरा में श्मश्रुकर्म कर लेने में कोई दोष नहीं है।

एवं नक्षत्र में विहित कार्य को नक्षत्र के स्वामितिथ्यंश में किया जा सकता है। (नक्षत्र स्वामितिथ्यंश विवाह प्र० ६ श्लो० ५२ में कहेंगे।)

कालहोरा तथा स्वामितिथ्यंश में भी दिक्शूल तथा नक्षत्रशूल का विचार करना चाहिए (११।१०)। तथा स्वामितिथ्यंश में भी परिघदण्ड (११।३६) का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥ ५६ ॥

अथ कार्यमात्रनिषिद्धान्मन्वादीन् युगादींश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मन्वाद्यास्त्रितिथौ मधौ तिथिरवी ऊर्जे शुचौ दिक्तिथी
ज्येष्ठेऽन्त्ये च तिथिस्त्विषे नव तपस्यश्वाः सहस्ये शिवाः।
भाद्रेऽग्निश्च सिते त्वमाष्ट नभसः कृष्णे युगाद्याः सिते
गोऽग्नी बाहुलराधयोर्मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते[1] ॥ ५७ ॥

इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामज्योतिर्विद्विरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ शुभाशुभप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥ १ ॥

मन्वाद्या इति। एते चतुर्दश मन्वाद्या ज्ञेयाः। सिते इति वक्ष्यमाणं पदमनुकृष्य चैत्रादिमासेष्वपि सम्बध्यते। मधौ चैत्रमासे सिते शुक्लपक्षे त्रितिथी तृतीयापूर्णिमे। ऊर्जे कार्तिके शुक्लपक्षे तिथिरवी पूर्णिमाद्वादश्यौ। शुचावाषाढमासे शुक्लपक्षे दिक्तिथी दशमीपूर्णिमे। ज्येष्ठे अन्त्ये फाल्गुने च तिथिः पूर्णिमा। इषे आश्विने शुक्लपक्षे नव नवमी। तपसि मासे माघे मासि शुक्लपक्षे अश्वाः सप्तमी। सहस्ये पौषे शुक्लपक्षे शिवा एकादशी। भाद्रपदमासे शुक्लपक्षेऽग्निस्तृतीया। नभसः श्रावणस्य कृष्णे कृष्णपक्षे अमा अमावास्या अष्ट अष्टमी। अत्राष्टमी जन्माष्टमी तदनन्तरभाविनी अमावास्या च गृह्यते। यदाह नारदः—'द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्याश्वयुजे सिते। चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसंज्ञिता ॥ एकादशी सिता पौषेप्याषाढे दशमी सिता। माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्येऽप्यसिताष्टमी ॥ श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा। आषाढे कार्तिके मासि चैत्री ज्येष्ठस्य पूर्णिमा ॥ मन्वादयः स्नानदानश्राद्धेष्वानन्त्यपुण्यदाः ॥' इति। मत्स्यपुराणेऽपि—'आश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी तथा। तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ श्रावणस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा। आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पूर्णिमा। कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशी सिता ॥ मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥' इति। अत्र नारदवाक्ये—'नभस्येप्यसिताष्टमी' इति। तत् कृष्णादिमासाभिप्रायेण। मत्स्यपुराणवचनं तु—'श्रावणस्याष्टमी कृष्णा' इति। तच्छुक्लादिमासाभिप्रायेण। एवं सति जन्माष्टमी सिद्धा उभयमते। अमावास्या शुक्लमासाभिप्रायेण जन्माष्टम्यनन्तरभाविनी गृह्यते।

---

१. नारदपुराण (पू० २५।५१) में 'माघे पञ्चदशी तिथिः' ऐसा पाठ मिलता है।

अथ युगाद्याः युगादयश्चत्वार उच्यन्ते । बाहुलः कार्तिकः, राधो वैशाखः, गोग्नी नवमीतृतीये यथासङ्ख्यं ज्ञेये । सिते शुक्लपक्षे, कार्तिके शुक्लपक्षे नवमी, वैशाखे शुक्लपक्षे तृतीया, भाद्रमाघासिते यथासङ्ख्यं मदनदर्शौ भाद्रपदकृष्णपक्षत्रयोदशी माघकृष्णाऽमावास्या । एते युगादयश्चत्वारः । यदाह नारदः—'कार्तिके शुक्लनवमी चादिः कृतयुगस्य सा । त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसम्मिता ।। कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता । कल्पादि, स्यात्कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी ।' शुक्लादिमासाभिप्रायेण श्राद्धपक्षत्रयोदशी प्रसिद्धशिवरात्र्यनन्तरभाविन्यमावास्या च गृह्यते ।।

प्रसङ्गादनध्यायाः

उशनाः—'अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायं प्रकुर्वीत मन्वादिषु युगादिषु ।।' इति । याज्ञवल्क्यस्त्वष्टत्रिंशत्तात्कालिकाननध्यायानाह—

'सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ।।
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके । ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा च श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ।।
पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः । कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शुक्रपाते तथोच्छ्रये ।।
खरोष्ट्रगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तके ।।
देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसम्प्लवे । भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोभिरर्द्धरात्रेऽतिमारुते ।।
पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ।।
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे । अष्टत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकाञ्जगुः ।।' इति ।

अन्यच्च—'अहन्येते ह्यनध्यायाः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये मृते ।।' एवमादयोऽन्येप्यनध्याया धर्मशास्त्रोक्ता अनुसन्धेयाः । ते च व्रतबन्धे विद्यारम्भे व्रताविसर्गादौ नित्याध्ययने च यथायोग्यं वर्जनीयाः । सोपपदादीननध्यायान् ग्रन्थकृद् व्रतबन्धप्रकरणे वक्ष्यतीति शिवम् ।। ५७ ।।

शुभाशुभप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञेति । 'इति हेतुप्रकरणप्रकारादिसमाप्तिषु' इत्यमरः । श्रीशब्दो वाक्यालङ्कारे । शुभं सिद्धियोगादि अशुभं सिंहस्थादिः । तयोः प्रकरणनिरूपणम् । अन्यत्स्पष्टम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने हि शुभाशुभप्रकरणं पूर्णत्वमध्यागमत् ।।

इति श्रीविद्वद्वरदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां शुभाशुभप्रकरणं समाप्तम् ।। १ ।।

हिन्दी—मन्वादि तिथि (१४ मनुओं के आरम्भ होने का समय) कहते हैं । चैत्र मास के शुक्लपक्ष में तृतीया और पूर्णिमा, कार्तिक के शुक्लपक्ष में पूर्णिमा और द्वादशी, आषाढ शुक्ल में

दशमी और पूर्णिमा, ज्येष्ठ और फाल्गुन दोनों मासों की पूर्णिमा, आश्विन शुक्ल नवमी, माघ शुक्ल सप्तमी, पौष शुक्ल एकादशी, भाद्रपद शुक्ल तृतीया और श्रावण कृष्ण में अमावास्या तथा अष्टमी ये १४ मन्वादि तिथियाँ कही गई हैं। अब युगादि तिथियाँ कहते हैं—

कार्तिक शुक्ल में ९ (अक्षय नवमी), वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया), भाद्र कृष्ण में १३, माघ कृष्ण में अमावास्या ये ४ युगादि तिथियाँ हैं ॥ ५७ ॥

नारदपुराण १ पाद

मन्वादि तिथियाँ

क्रम	मनु नाम	प्रारम्भ तिथियाँ	क्रम	मनु नाम	प्रारम्भ तिथियाँ
१	स्वायम्भुव	चैत्र शुक्ल ३	८	सावर्णि	फाल्गुन शु. १५
२	स्वारोचिष	चैत्र शुक्ल १५	९	दक्षसावर्णि	आश्विन शु. ९
३	औत्तम	कार्तिक शु. १५	१०	ब्रह्मसावर्णि	माघ शुक्ल ७
४	तामस	कार्तिक शु. १२	११	धर्मसावर्णि	पौष शुक्ल १३
५	रैवत	आषाढ़ शु. १२	१२	रुद्रसावर्णि	भाद्र शुक्ल ३
६	चाक्षुष	आषाढ़ शु. १५	१३	दैवसावर्णि	श्रावण कृ. ३०
७	वैवस्वत	ज्येष्ठ शुक्ल १५	१४	इन्द्रसावर्णि	श्रावण कृ. ८

नारदपुराण पूर्वभाग ५६ अ०, १४७–४८ श्लोक

युगादि तिथियाँ

युग नाम	आरम्भ तिथि
सत्ययुग	कार्तिक शु० ९
त्रेतायुग	वैशाख शु० ३
द्वापरयुग	माघकृष्ण ३०
कलियुग	भाद्र कृ० १३

श्रीधर्मदत्तद्विवेदी-तनूज श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदीकृत शुभाशुभप्रकरण पर मणिप्रदीप नामक हिन्दी टीका समाप्त ॥ १ ॥

(२) अथ नक्षत्रप्रकरणम्[1]

शर्वाणीतनयमघाब्धिदावमीशं नत्वा श्रीगुरुपदभक्तिलब्धविद्यः ।
गोविन्दो विबुधवरप्रहर्षिणीं तां नक्षत्रप्रकरणटिप्पणीं तनोति ॥

अथ नक्षत्रप्रकरणं व्याख्यायते । तत्रादौ नक्षत्राणां प्रसिद्धत्वादेवावक्तव्यतायां सिद्धायां तत्स्वामिनः शार्दूलविक्रीडितेनाह—

नासत्यान्तक-वह्नि-धातृ-शशभृद्रुद्रादितीज्योरगा
ऋक्षेशाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्टा समीरः क्रमात् ।
शक्राग्नी खलु मित्र इन्द्रनिर्ऋतिक्षीराणि विश्वे विधि-
र्गोविन्दो वसुतोयपाऽजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ १ ॥

नासत्यान्तकेति । एते क्रमादृक्षेशा नक्षत्राधीशा ज्ञेयाः । यथा—अश्विन्या नासत्यावश्विनीकुमारौ । भरण्या अन्तको यमः । कृत्तिकाया वह्निरग्निः । रोहिण्या धाता ब्रह्मा । मृगस्य शशभृच्चन्द्रः । आर्द्राया रुद्रो महादेवः । पुनर्वसोरदितिर्देवमाता । पुष्यस्येज्यो बृहस्पतिः । आश्लेषाया उरगः सर्पः । मघायाः पितरः । पूर्वाफल्गुन्या भगः सूर्यविशेषः । उत्तराफल्गुन्या अर्यमा सूर्यविशेषः । हस्तस्य रविः सूर्यः । चित्रायास्त्वष्टा विश्वकर्मा । स्वात्या आशुगो वायुः । विशाखायाः शक्राग्नी इन्द्राग्नी । अत्र समुदितयोर्देवतात्वम् । अनुराधायाः मित्रः सूर्यविशेषः । ज्येष्ठायाः शक्र इन्द्रः । मूलस्य निर्ऋती राक्षसः । पूर्वाषाढायाः क्षीरमुदकम् । उत्तराषाढाया विश्वे विश्वेदेवाः । अभिजितो विधिः । श्रवणस्य गोविन्दो विष्णुः । धनिष्ठाया वसवोऽष्टौ देवताविशेषाः । शततारकायास्तोयपो वरुणः । पूर्वाभाद्रपदाया अज-चरणः सूर्यविशेषः । उत्तराभाद्रपदाया अहिर्बुध्न्यः सूर्यविशेषः । रेवत्याः पूषा सूर्यविशेषः । यदाह नारदः—'नक्षत्रेशाः क्रमाद्दस्रयमवह्निपितामहाः । चन्द्रेशादितिजीवाहिपितरो भगसंज्ञिताः ॥ अर्यमार्कस्त्वष्ट्वमरुच्छक्राग्निमित्रवासवाः । निर्ऋत्युदकविश्वेजगोविन्दो वसवोऽम्बुपः ॥ ततोऽजपादहिर्बुध्न्यः पूषा चेति प्रकीर्तिताः ॥' इति । प्रयोजनं तु तिथिप्रकरणे प्रोक्तमस्माभिः ।

अत्र वसव इति बहुवचनान्तत्वाद्बहूनामेव व्यासज्यवृत्तिदेवतात्वं प्रतीयते । 'धनिष्ठानक्षत्रं वसवो देवताः' इति श्रुत्युक्तेश्च । एवं सति केचिद्दीपिकाकारादयो बहुत्वमविवक्षितमिति मत्वा वसुशब्दं च द्रव्यवाचकं मत्वा स्वं धनं द्रव्यमित्यादिशब्दं धनिष्ठानक्षत्रवाचकं मन्यन्ते ते चिन्त्योक्तयो वेदितव्याः ।

प्रत्येकनक्षत्रकृत्यानि

अत्र प्रसङ्गात्प्रत्येकं नक्षत्रकृत्यानि ग्रन्थकृदनुक्तान्यप्युच्यन्ते । तान्याह नारदः—
'वस्त्रोपनयनक्षौरसीमन्ताभरणक्रिया । स्थापनाश्चेभयानस्त्रीकृषिविद्यादयोऽश्विगे ॥१॥

---

१. इस प्रकरण में विविध कार्यों की सम्पन्नता हेतु कहे गये नक्षत्रों के विषय का उल्लेख होने के कारण इसका नाम नक्षत्र-प्रकरण रखा गया है ।

वापीकूपतडागादिविषशस्त्रोग्रदारुणाः । बिलप्रवेशगणितनिःक्षेपा याम्यभे शुभाः ॥२॥
अग्न्याधानास्त्रशस्त्रोग्रसन्धिविग्रहदारुणाः । संग्रामौषधवादित्रक्रियाः शस्ताश्च वह्निभे॥३॥
सीमन्तोन्नयनोद्वाहवस्त्रभूषास्थिरक्रियाः । हयहस्त्यभिषेकाश्च प्रतिष्ठा ब्रह्मभे शुभाः ॥४॥
प्रतिष्ठाभूषणोद्वाहसीमन्तोन्नयनक्रियाः । क्षौरवास्तुगजोष्ट्राश्वयात्राः शस्ताश्च चन्द्रभे ॥५॥
ध्वजतोरणसंग्रामप्राकारास्त्रक्रिया शुभाः । सन्धिविग्रहवैराणि रसाद्याः शर्वभे शुभाः ॥६॥
प्रतिष्ठायानसीमन्तवस्त्रवास्तूपनायनम् । क्षौराश्वकर्मादितिभे विधेयं धान्यभूषणम् ॥७॥
यात्राप्रतिष्ठासीमन्तव्रतबन्धप्रवेशनम् । करग्रहं विना सर्वं कर्म देवेज्यभे शुभम् ॥८॥
अनृतं व्यसनं द्यूतं धातुवादौषधाहवम् । विवादरसवाणिज्यं कर्म कद्रुजभे शुभम् ॥९॥
कृषिवाणिज्यगोधान्यरणोपकरणादिकम् । विवाहनृत्यगीताद्यं निखिलं कर्म पैत्रभे ॥१०॥
विवादविषशस्त्राग्निदारुणोग्राहवादिकम् । पूर्वात्रियेऽखिलं कर्म कर्त्तव्यं मांसविक्रयः ॥११॥
प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्ताभिषेकव्रतबन्धनम् । प्रवेशस्थापनाश्वेभवास्तुकर्मोत्तरात्रये ॥१२॥
प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्तयानवस्त्रोपनायनम् । क्षौरवास्त्वभिषेकाश्च भूषणं कर्म भानुभे ॥१३॥
प्रवेशवस्त्रसीमन्तप्रतिष्ठाव्रतबन्धनम् । त्वाष्ट्रभे वास्तुविद्याश्च क्षौरभूषणकर्म यत् ॥१४॥
प्रतिष्ठोपनयोद्वाहवस्त्रसीमन्तभूषणम् । विवादश्चेभकृष्यादिक्षौरकर्म समीरभे ॥१५॥
वस्त्रभूषणवाणिज्यरसधान्यादिसङ्ग्रहम् । इन्द्राग्निभे नृत्यगीतशिल्पलेखनकर्म यत् ॥१६॥
प्रवेशस्थापनोद्वाहव्रतबन्धाष्टमङ्गलम् । वस्त्रभूषणवास्तुश्च मैत्रभे सन्धिविग्रहम् ॥१७॥
क्रूरोग्रशस्त्रवाणिज्यगोमहिष्यम्बुकर्म च । इन्द्रभे नृत्यवादित्रशिल्पलोहाश्मलेखनम् ॥१८॥
विवाहकृषिवाणिज्यदारुणाहवभेषजम् । निरृतिभे नृत्यशिल्पसन्धिविग्रहलेखनम्' ॥१९॥
इति ।

पूर्वाषाढोत्तराषाढयोः कृत्यमुक्तम्—

'प्रतिष्ठाक्षौरसीमन्तयानोपनयनौषधम् । पुरग्रामगृहारम्भा विष्णुभे पटबन्धनम् ॥२०॥
वस्त्रोपनयनक्षौरप्रतिष्ठायानभूषणम् । वसुभे वास्तुसीमन्तप्रवेशास्त्रविभूषणम् ॥२१॥
प्रवेशास्थापनक्षौरमौञ्जीबन्धनभेषजम् । अश्वारोहणसीमन्तवास्तुकर्म जलेशभे' ॥२२॥
इति । पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदयोः कृत्यमुक्तं पूर्वम् ।

विवाहव्रतबन्धाश्च प्रतिष्ठायानभूषणम् ।
प्रवेशवस्त्रसीमन्तक्षौरभेषजमन्त्यभे ॥ २३ ॥' इति ॥

हिन्दी—अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों के क्रम से स्वामी कहे गये हैं। यथा—अश्विनी के स्वामी नासत्य (दोनों अश्विनीकुमार), भरणी के स्वामी अन्तक (यमराज), कृत्तिका के स्वामी वह्नि (अग्नि), रोहिणी के स्वामी धाता (ब्रह्मा), मृगशिरा के स्वामी शशभृत् (चन्द्रमा), आर्द्रा के स्वामी रुद्र (महादेव), पुनर्वसु के स्वामी अदिति (देवताओं की माता), पुष्य के स्वामी ईज्य (बृहस्पति), आश्लेषा के स्वामी उरग (सर्प), मघा के स्वामी पितृगण, पूर्वाफाल्गुनी के स्वामी भग नाम के सूर्य, उत्तराफल्गुनी के स्वामी अर्यमा नाम के सूर्य, हस्त के स्वामी सूर्य, चित्रा के स्वामी त्वष्टा (विश्वकर्मा), स्वाती के स्वामी समीर (वायु), विशाखा के स्वामी शक्राग्नी (इन्द्र और अग्नि), अनुराधा के स्वामी मित्र नाम के सूर्य, ज्येष्ठा के स्वामी इन्द्र, मूल के स्वामी निर्ऋति (राक्षस), पूर्वाषाढा के स्वामी नीर (जल), उत्तराषाढा के स्वामी विश्वेदेव,

अभिजित् के स्वामी विधि (ब्रह्मा), श्रवण के स्वामी गोविन्द (विष्णु भगवान्), धनिष्ठा के स्वामी वसु,[1] शतभिषा के स्वामी वरुण, पूर्वाभाद्रपदा के स्वामी अजचरण नामक सूर्य, उत्तरा भाद्रपदा के स्वामी अहिर्बुध्न्य नामक सूर्य और रेवती के स्वामी पूषा नाम के सूर्य होते हैं ॥ १ ॥

विशेष—जिस नक्षत्र के जो देवता कहे गये हैं, उन देवताओं के जितने पर्याय वाचक शब्द हैं, उनसे उस-उस नक्षत्र का ज्ञान होता है। स्पष्ट ज्ञान के लिए नक्षत्रों के साथ कतिपय पर्याय वाचक शब्द नीचे निर्दिष्ट है—

क्रम	नक्षत्र	पर्यायवाचक शब्द
१	अश्विनी	नासत्य, दस्र, अश्वियुक् तुरग, वाजी, अश्व, हय
२	भरणी	अन्तक, यम, कृतान्त
३	कृत्तिका	अग्नि, वह्नि, अनल, कृशानु, दहन, पावक, हुतभुक् , हुताश
४	रोहिणी	धाता, ब्रह्मा, कः, विधाता, द्रुहिण, विधि, विरञ्चि, प्रजापति
५	मृगशिरा	शशभृत, शशी, शशांक, मृगांक, विधु, हिमांशु, सुधांशु
६	आर्द्रा	रुद्र, शिव, ईश, त्रिनेत्र
७	पुनर्वसु	अदिति, आदित्य
८	पुष्य	ईज्य, गुरु, जीव, तिष्य, देवपुरोहित
९	आश्लेषा	सर्प, उरग, भुजग, भुजंग, अहि, भोगी
१०	मघा	पितृ, पितर
११	पूर्वाफल्गुनी	भग, योनि, भाग्य
१२	उत्तराफल्गुनी	अर्यमा
१३	हस्त	रवि, कर, सूर्य, ब्रध्न, अर्क, तरणि, तपन
१४	चित्रा	त्वष्टृ, त्वाष्ट्र, तक्ष
१५	स्वाती	वायु, वात, अनिल, समीर, पवन, मारुत
१६	विशाखा	शक्राग्नी, वृषाग्नी, इन्द्राग्नी, द्वीश, राधा
१७	अनुराधा	मित्र
१८	ज्येष्ठ	इन्द्र, शक्र, वासव, आखण्डल, पुरन्दर
१९	मूल	निर्ऋति, रक्षः, अस्रप
२०	पूर्वाषाढा	जल, नीर, उदक, अम्बु, तोय
२१	उत्तरषाढा	विश्वे, विश्वेदेव
२२	अभिजित्	विधि, विरञ्चि, धाता, विधाता,
२३	श्रवण	गोविन्द, विष्णु, श्रुति, कर्ण, श्रवः
२४	धनिष्ठा	वसु, श्रविष्ठा
२५	शतभिषा	वरुण, अपांपति, नीरेश, जलेश
२६	पूर्वाभाद्रपदा	अजपाद, अजचरण, अजांघ्रि
२७	उत्तराभाद्रपदा	अहिर्बुध्न्य नाम के सूर्य
२८	रेवती	पूषा नाम के सूर्य, अन्त्य, पौष्ण

१. आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवाऽनिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ॥ (अग्निपुराण)

अथ ध्रुवगणं तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

उत्तरात्रय-रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्।
तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये ॥ २ ॥

उत्तरात्रयेति। उत्तरात्रयम् उत्तराफल्गुन्युत्तराषाढोत्तराभाद्रपदास्तिस्र उत्तराः रोहिणी च एतानि नक्षत्राणि ध्रुवसंज्ञकानि स्थिरसंज्ञानि चेति संज्ञाद्वयम्। तत्र ध्रुवनक्षत्रेषु स्थिरं कर्म कार्यम्। तथा बीजं यवादि, गेहं गृहम्; शान्त्यादि विनायकशान्त्यादि, आरामो नगरोपकण्ठवर्तिवनम्। आदिशब्दान्मृदुनक्षत्रोक्तमपि कर्म सिद्धये भवति। तदुक्तं वसिष्ठेन—'स्थिरसञ्ज्ञं भचतुष्टयमम्बुजजस्यर्क्षमुत्तरात्रितयम्। नरपतिपत्तनसदनप्रवेशबीजादि सिद्धयते तत्र। मृदुवृन्दे कथितान्यपि स्थिरवृन्दे तानि कार्याणि॥' इति। अथ संज्ञाद्वयप्रमाणमुच्यते—'ध्रुवमचलं क्षिप्रं लघु चरं चलं मैत्रमृदुसंज्ञे। साधारणमिश्राख्यं क्रूरोग्रं तीक्ष्णदारुणं तुल्यम्॥' इति वसिष्ठोक्तम्। एवं भास्करो रविरपि स्थिरः। यदाह वसिष्ठः–'सूर्यः स्थिरः शीतकरश्चरात्मा धराज उग्रः शशिजो विमिश्रः। देवेन्द्रपूज्यो लघुरिन्द्रशत्रुः पूज्यो मृदुस्तीक्ष्णतनुश्च सौरिः॥' इति। अत्रापि सामान्यतः स्थिरकृत्यं कार्यं मूलश्लोकोक्तम्। अन्यदपि वारोक्तकर्म कार्यमभिधानात्। यदाह नारदः—'नृपाभिषेकमाङ्गल्यसेवायानास्त्रकर्म यत्। औषधाहवधात्वादि विधेयं भानुवासरे॥' इति॥ २॥

हिन्दी—तीनों उत्तरा (उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा), रोहिणी ये ४ नक्षत्र और रविवार इन सभी की स्थिर और ध्रुव संज्ञा कही गई है। इनमें स्थिर कार्य (जलाशयारम्भ बीज बोना, गेहारम्भ, शान्तिकर्म, बगीचा लगाना आदि) सफल होते हैं। यहाँ आदि पद से वशिष्ठजी के **'मृदुवृन्दे कथितान्यपि स्थिरवृन्दे तानि कार्याणि'** इस वचन के अनुसार मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में कहे गये कार्य भी ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों में शुभफलदायक होते हैं॥ २॥

अथ चरगणं तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि चरं चलम्।
तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम्॥ ३॥

स्वात्यादित्य इति। स्वाती आदित्यमदितिर्देवतास्यादित्यम्। 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः' इति ण्यः। आदिवृद्धिः। 'यस्येति च' इतीकारलोपः। आदित्यं पुनर्वसुः। श्रुतेः श्रवणमारभ्य त्रीणि श्रवणधनिष्ठाशततारकाः सोमवारश्च चरसंज्ञाश्चलसंज्ञाश्चैते ज्ञेयाः। तस्मिंश्चरनक्षत्रे गजो हस्ती तदादयोऽश्वादयस्तेषामारोहः, वाटिका आरामस्तत्र गमनं यात्रा। आदिशब्दाल्लघुनक्षत्रोक्तमपि कर्म सिध्यतीति शेषः। तदाह वसिष्ठः–'अदितिः श्रुतिभात्रितयं चरसंज्ञं पञ्चकं मरुद्भं च। वाहनकर्मविभूषणचरकार्योद्यानमन्त्रसिद्धयै तत्॥ कथितान्यपि लघुवृन्दे चरसंज्ञे तानि कार्याणि। मणिमुक्ताफलहेमसद्रजतत्रपुसीसकर्माणि॥' इति। नारदः—'शङ्खमुक्ताम्बुरजतवृक्षेक्षुस्त्रीविभूषणम्। पुष्पगीतक्रतुक्षीरकृषिकर्मेन्दुवासरे॥' इति॥ ३॥

हिन्दी—स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा) ये ५ नक्षत्र और सोमवार इन सभी की चर और चल संज्ञा कही गई है। इसमें हाथी (घोड़ा, मोटर,

सायकिल) आदि यानों पर चढ़ना और बगीचा में यात्रा करना आदि कार्य शुभ होते हैं। यहाँ भी वशिष्ठ जी के **'कथितान्यपि लघुवृन्दे चरसंज्ञे तानि कार्याणि'** इस वचन के अनुसार लघुसंज्ञक नक्षत्र तथा वारों में कहे गये कार्य भी शुभफलद होते हैं ॥ ३ ॥

अथोग्रगणमनुष्टुभाह—

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा।
तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिद्ध्यति ॥ ४ ॥

पूर्वात्रयमिति । पूर्वात्रयं पूर्वाफाल्गुनीपूर्वाषाढापूर्वाभाद्रपदारूपं नक्षत्रत्रयं याम्यं भरणी मघा च तथा कुजो भौमश्च उग्रसंज्ञः क्रूरसंज्ञश्च। तस्मिन्नुग्रनक्षत्रे घातो हननम्, अग्निरग्निदाहः, शाठ्यं खलत्वं, विषं विषभक्षणादि, शस्त्रं शस्त्रमारणादि आदिशब्दादन्यदपि अरिष्टकृत्यं दारुणनक्षत्रोक्तं सिध्यतीति निष्पद्यते । उक्तञ्च वसिष्ठेन— 'पूर्वात्रितयं पित्र्यभमुग्राख्यमिदं च पञ्चकं याम्यम् । मारणभेदनबन्धनविषहननं पञ्चभे कार्यम् ॥ यद्दारुणभे चोक्तं तत्कर्म त्वथोग्रभे कार्यम् ॥' इति । नारदः—'विषाग्निबन्धनस्तेयसन्धिविग्रहमासनम् । धात्वाकरप्रवालस्त्रीकर्म भूमिजवासरे' ॥ ४ ॥

हिन्दी—तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा), भरणी, मघा ये ५ नक्षत्र और मंगलवार ये सभी उग्र और क्रूरसंज्ञक हैं। इनमें घातकर्म (किसी को मारना, धोखा देना), अग्निकार्य (पहले दिन भट्ठे में आग लगाना, चूल्हे में आग जलाना). शठता का कार्य (किसी को ठगना, चोरी करना), विष-प्रयोग (किसी को जहर देना, शंखिया आदि विषैली औषधियों का शोधन करना), शस्त्र का कार्य (शस्त्र चलाना सीखना, शस्त्र खरीदना, शस्त्र बनवाना, बन्दूक, पिस्तौल आदि का लाइसेन्स लेना) सफल होता है। यहाँ भी महर्षि वशिष्ठ के **'यद्दारुणभे चोक्तं तत्कर्म त्वथोग्रभे कार्यम्'** इस वचन के अनुसार दारुणसंज्ञक नक्षत्र में कहे कार्य भी सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

अथ मिश्रगणमनुष्टुभाह—

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम् ।
तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्ध्यति ॥ ५ ॥

विशाखेति । विशाखा, आग्नेयं कृत्तिका, सौम्या बुधश्च एतत्त्रयं मिश्रसंज्ञं साधारणसंज्ञं च । तत्र मिश्रसंज्ञेषु नक्षत्रेषु अग्निकार्यमग्निहोत्रं, मिश्रं नक्षत्रान्तरोक्तं कर्म, वृषोत्सर्गः काम्यः । आदिशब्दादुग्रमपि कर्म सिद्धये भवति । तदाह वसिष्ठः—'भद्वितयं श्वसनसखं सेन्द्राग्निभकं हि मिश्रसंज्ञं स्यात् । निखिलानि च साधारणकार्याण्युग्राणि तत्र कार्याणि' इति ॥ नारदः—'नृत्यशिल्पकलागीतलिपिभूरससङ्ग्रहम् । विवाहधान्यसङ्ग्राहकर्म सौम्यस्य वासरे' इति ॥ ५ ॥

हिन्दी—विशाखा और कृत्तिका ये दो नक्षत्र और बुधवार इनकी मिश्र और साधारण संज्ञा है। इनमें अग्नि का कार्य (इन्जन में, भट्ठे में आग लगाना, औषधियों को पुट देना, अग्निहोत्र आदि), मिश्रकार्य (अन्य नक्षत्र में कहे गये कर्म), काम्य वृषोत्सर्ग आदि सिद्ध होते हैं। आदि पद से उग्र नक्षत्रोक्त कर्म करना भी शुभदायक होता है ॥ ५ ॥

अथ लघुगणमनुष्टुभाह—

हस्ताश्वि-पुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा।
तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम् ॥ ६ ॥

हस्ताश्वीति। पूर्वार्द्धं स्पष्टम्। तस्मिन् लघुनक्षत्रे पण्यं विक्रेयवस्तु, रतिः स्त्रीभोगः ज्ञानं शास्त्रादे; भूषा आभरणं, शिल्पं चित्रादि, कलाश्चतुःषष्टिकला नृत्यादिकाः। आदिशब्दाच्चरनक्षत्रोक्तमपि कार्यम्। तदाह वसिष्ठः—'सुरसचिवाश्विनहस्तास्तारा: स्युः क्षिप्रसंज्ञकास्तासु। औषधपण्यविभूषणशिल्पकलाज्ञानकर्मसिद्धिः स्यात् ॥ चरधिष्ण्ये कथितान्यपि कार्याण्यखिलानि लघुगणे नूनम् ॥' इति। नारदोऽपि—'क्षिप्रं सूर्याश्वि-पुष्यभम्'। इत्याह। अत्राभिजिन्नोक्तो दैवज्ञमनोहरे 'आर्ष्टिषेण' इत्युक्त्वा पठितं 'लघु क्षिप्रं करस्तिष्योऽभिजिद्दास्त्रं बृहस्पतिः' इति। अत एवोक्तं श्रीपतिना—'अश्विनी-गुरुभमर्कदैवतं साभिजिल्लघुचतुष्टयं स्मृतम्' इति। वसिष्ठादिभिस्तु प्रत्येकं नक्षत्रकृत्येषु अभिजितोऽनुक्तेरित्यत्राप्यनुक्तिः। वारकृत्ये नारदः—'यज्ञपौष्टिकमाङ्गल्यस्वर्णवस्त्रादि-भूषणम्। वृक्षगुल्मलतायानकर्म देवेज्यवासरे ॥' इति ॥ ६ ॥

हिन्दी—हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् (विवाह प्र० ५५वें श्लोक को देखें) और गुरुवार इनकी लघु और क्षिप्र संज्ञा कही गई है। इनमें पण्य (दुकान बनवाना, दुकान करना, वस्तु बेचना आदि), रति (स्त्री के साथ सम्भोग), ज्ञान (सच्छास्त्रों का पठन-पाठन), भूषणनिर्माण, भूषणधारण, शिल्पकर्म सीखना, उसका व्यवसाय करना, कलाओं का सीखना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं। यहाँ भी आदि पद से चरसंज्ञक नक्षत्र में कहे गये कर्म भी करने चाहिए ॥ ६ ॥

अथ मृदुगणमनुष्टुभाह—

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा।
तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम् ॥ ७ ॥

मृगान्त्येति। मृगः, अन्त्यं रेवती, चित्रा मित्रर्क्षमनुराधा, भृगुः शुक्रः मृदुसंज्ञं मैत्र-संज्ञं च। तत्र गीतम्, अम्बरं वस्त्रम्, क्रीडा स्त्रिया सह क्रीडा, मित्रस्येष्टस्य कार्यं विभूषणमलङ्कार एतत्सिद्ध्यति। यदाह वसिष्ठः—'मृदुवृन्दं भचतुष्टयमन्त्यत्वाष्ट्राख्य-सौम्यमित्रर्क्षम्। मङ्गलवनिताभूषणमन्दिरगीतानि सिद्ध्यन्ति' इति। तत्र नारदः—'नृत्यवादित्रगीतादिस्वर्णस्त्रीरत्नभूषणम्। भूषण्योत्सवगोधान्यकर्म भार्गववासरे ॥' इति ॥ ७ ॥

हिन्दी—मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा ये ४ नक्षत्र और शुक्रवार इनकी मृदु और मैत्र संज्ञा होती है। इनमें गीत सीखना, गीत गाना, वस्त्र बनाना, वस्त्र धारण करना, वस्त्र सिलवाना, खेलना, खेलने की शिक्षा ग्रहण करना, मित्रों का कार्य-सम्पादन, मित्रता करना, भूषण निर्माण एवं धारण करना उत्तम होता है ॥ ७ ॥

अथ तीक्ष्णगणमनुष्टुभाह—

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम्।
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥ ८ ॥

मूलेन्द्रेति । मूलम्, ऐन्द्रं ज्येष्ठा, आर्द्रा, अहिभमाश्लेषा, सौरिः शनैश्चरः तीक्ष्णसंज्ञं दारुणसंज्ञं च । तत्र तीक्ष्णनक्षत्रे अभिचारकर्माणि, उग्रं भयङ्करकृत्यं मारणादि, भेदः अत्यन्तमित्रयोः कलहोत्पादनादि, पशूनां हस्त्यादीनां दमः शिक्षा, आदिशब्दाद् बन्धनादीनि । यदाह वसिष्ठः—'दारुणभानि पुरन्दरकोणपशिवसर्पदैवानि । दारुणबन्धनदहनप्रहरणकर्माणि सिद्धिमायान्ति ॥' इति । नारदः—'त्रपुसीसायसाश्मास्त्रविषपानासवानृतम् । स्थिरकर्माखिलं वास्तुसङ्ग्रहं सौरिवासरे ॥' इति ॥ ८ ॥

हिन्दी—मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा ये चार नक्षत्र और शनिवार इनकी तीक्ष्ण और दारुण संज्ञा होती है। इनमें अभिचार कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि तामस तान्त्रिक प्रयोग), घातकर्म, उग्र (भयङ्कर) कर्म, भेद (किसी में झगड़ा लगाना, किसी की चुगली करना), पशुदमन (पशुओं को शिक्षा देना, साँड़ों को बन्ध्य कराना, नाक छेदना) आदि कार्य सिद्ध होते हैं। यहाँ भी आदि शब्द से बन्धन (किसी को बाँधना) कार्यों का ग्रहण करना चाहिए ॥ ८ ॥

संज्ञा	नक्षत्र	वार	कार्य
ध्रुव-स्थिर	तीनों उत्तरा, रोहिणी	रवि	स्थिर-बीज-गृह-शान्ति वाटिकागमन
चर-चल	स्वाती, पुनर्वसु,श्रवण,धनिष्ठा,शतभिषा	सोम	गजाद्यारोहण, वाटिका-भ्रमण
उग्र-क्रूर	तीनों पूर्वा, भरणी, मघा	मंगल	घात, अग्नि, शाठ्य, विष, शस्त्रादि
मिश्र-साधा०	विशाखा, कृत्तिका	बुध	अग्निकार्य, मिश्रकार्य, वृषोत्सर्ग
क्षिप्र-लघु	हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्	गुरु	पण्य-रति-ज्ञान-भूषणादि
मृदु-मैत्र	मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा	शुक्र	गीत, वस्त्र, क्रीडा, मित्र-कार्य, भूषण
तीक्ष्ण-दारुण	मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा	शनि	घात, उग्र, पशुदमन आदि

अथाधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखनक्षत्राणीन्द्रवंशेनाह—

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम् ।
तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥ ९ ॥

मूलेति । मूलम्, अहिराश्लेषा, मिश्रं कृत्तिकाविशाखे, उग्रं पूर्वात्रयमघाभरण्यः एतानि नवनक्षत्राण्यधोमुखानि ज्ञेयानि । एष्वीदृशकृत्यमधोमुखकृत्यं वापिकूपादि तत्समीचीनमुक्तम् । तदुक्तं गरुडपुराणे—'भरणीकृत्तिकाश्लेषामघामूलविशाखिकाः । तिस्रः पूर्वास्तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः ॥' एषु । 'वापीकूपतडागादिखननं च तृणादिकम् । देवतागारखननं निधानखननं तथा ॥ गणितं ज्यौतिषारम्भं खनीबिलप्रवेशनम् । कुर्यादधोगतान्येव कार्याणि वृषभध्वज ॥' इति । अथार्द्रा, ईज्यः पुष्यः, हरित्रयं श्रवणधनिष्ठाशततारकाः, ध्रुवमुत्तरात्रयरोहिण्यः एतन्नक्षत्रनवकमूर्ध्वास्यमूर्ध्वमुखं भवेत् । अत्राप्येतादृशकृत्यं प्रासादादि सत्स्यात् । तदुक्तं गरुडपुराणे—'रोहिण्यार्द्रा तथा पुष्यो धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् । वारुणं श्रवणं चैत्र नव चोर्ध्वमुखाः स्मृताः । एषु राज्याभिषेकं च पट्टबन्धं च कारयेत् ॥' इति । ऊर्ध्वमुखानि उच्छ्रितानि सर्वाणि एषु

च कारयेत्। अथ मैत्रं मृदुनक्षत्रं मृगरेवतीचित्रानुराधाः, करो हस्तः, अनिलः स्वाती, अदितिः पुनर्वसुः ज्येष्ठा, आश्विनम् अश्विनी एतन्नक्षत्रनवकं तिर्यङ्मुखं पार्श्वमुखं भवेत्। अत्रापि तादृशमेव कृत्यं चक्ररथहलादिकं भवेत्। तदुक्तं गरुडपुराणे—

'रेवती चाश्विनी चित्रा स्वाती हस्तः पुनर्वसुः।
अनुराधामृगज्येष्ठा एताः पार्श्वमुखाः स्मृताः'॥

गजोष्ट्राश्वबलीवर्ददमनं महिषस्य च। बीजानां वपनं कुर्याद् गमनागमनादिकम्॥
चक्रयन्त्ररथादीनां नावादीनां प्रवाहणम्। पार्श्वेषु यानि कर्माणि कुर्यादितेषु तानि च॥' इति।

ननु सर्वेषामेव कर्मणां प्रार्थक्येन नक्षत्राभिधानादिदं पुनरुक्तं किमर्थमुक्तमिति चेन्न। विशेषनक्षत्रविहितानां कर्मणामवश्यकर्त्तव्यत्वे सति कतिपयदिनमध्यममुहूर्तालब्धौ सत्यां कर्मण आकारमधोमुखादिकं विदित्वा तत्तन्नक्षत्रेषु तानि तानि कर्माणि कार्याणि। यानि सर्वथा विशेषतोऽनुक्तान्येव विलप्रवेशनिधिखननचक्रयन्त्रहलपरिखाद्यूतक्रीडामेषगर्दभगर्तादीनि तेषामेष्वेव नक्षत्रेषु कृतिरुचिता। एवमन्येषामप्यप्रसिद्धानां कर्मणां तिर्यङ्मुखाद्याकारज्ञाने सत्येषु नक्षत्रेषु कर्त्तव्यतौचित्यात्। सामान्येन विशेषभावेन च सुदिनलब्धिः 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' इति न्यायादत्युत्तमैव। सद्यः कालपक्षे तु—'धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य' इति। वचनान्मुहूर्ते कार्यमित्यलमियता॥ ९॥

हिन्दी—मूल, आश्लेषा, मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका), उग्रसंज्ञक (पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी और मघा) ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे के मुखवाले) हैं। आर्द्रा, पुष्य, श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) और ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुख वाले) हैं। मैत्रसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा), हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अश्विनी ये नौ नक्षत्र तिर्यङ्मुख (सामने मुख वाले) हैं। इन नक्षत्रों में नक्षत्र-सदृश कार्य करना शुभ होता है। अर्थात् अधोमुख नक्षत्रों में अधोमुख वाले कार्य (कूप, बावड़ी, तडाग आदि बनवाना, तहखाना बनवाना आदि), ऊर्ध्वमुख वाले नक्षत्रों में ऊर्ध्व कार्य (गृह, देव-मन्दिर, मठ आदि बनवाना, बाग लगाना) और तिर्यङ्मुख के नक्षत्रों में हाथी-घोड़े की सवारी, यान्त्रिक यानों—मोटर-साइकिल इत्यादि से यात्रा, पुल-निमाण, सड़क-निर्माण, यात्रा आदि कार्य शुभ होते हैं॥ ९॥

सुगमता के लिए सारणी

नक्षत्र-संज्ञा	नक्षत्र	कार्य
अधोमुख	मूल आश्ले० विशा० कृ० ३ पूर्वा, भर० मघा	अधोमुख कार्य
ऊर्ध्वमुख	आर्द्रा पुष्य श्र० ध० शत० ३ उत्त० रोहि०	ऊर्ध्वमुख कार्य
तिर्यङ्मुख	मृ. रे. चि. अनु. हस्त. स्वा. पुन. अश्वि. ज्ये.	तिर्यङ्मुख कार्य

विशेष—ऊपर स्थिरादि अथवा अधोमुखादि संज्ञक नक्षत्रों में जिन-जिन कार्यों का करना शुभ कहा गया है, वे सामान्य कार्य हैं। विशेष कार्यों में जिन नक्षत्र वार तिथि के योग और लग्नों का विधान किया गया है और जो मुहूर्त (सायत) नाम से प्रसिद्ध हैं, उन्हीं में करना चाहिए क्योंकि **'सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्'** ऐसा आचार्यों का सिद्धान्त है।

अथ प्रवालदन्तशङ्खसुवर्णवस्त्रपरिधानमुहूर्तं वसन्ततिलकेनाह—

पौष्णध्रुवाश्विकरपञ्चकवासवेज्यादित्ये प्रवाल-रद-शङ्ख-सुवर्ण-वस्त्रम् ।
धार्यं विरिक्त-शनि-चन्द्र-कुजेऽह्नि रक्तं भौमे ध्रुवादितियुगे सुभगा न दध्यात् ॥

पौष्णेति । पौष्णं रेवती, ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरास्तिस्रः, अश्विनी, करपञ्चकं हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाः, वासवं धनिष्ठा, ईज्यः पुष्यः; आदित्यः पुनर्वसुः, अयं समाहारद्वन्दः—तत्र प्रवालं विद्रुमम् । 'पोवळें' इति महाराष्ट्रभाषायां, 'मूगा' इति कान्यकुब्जाः । रदा हस्तिदन्ता अर्थाद्वलयादि, शङ्खः शङ्खवलयं सुवर्णं वस्त्रं श्वेतम् । एतानि वस्तूनि धार्याणि । तानि रिक्तातिथिशनिचन्द्रभौमरहितेऽह्नि दिने धार्याणि । यदाह श्रीपतिः—'रोहिणीषु करपञ्चकेऽश्विभे त्र्युत्तरेऽपि च पुनर्वसुद्वये । रेवतीषु वसुदैवते शुभे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ॥' इति । प्रवालादीनां तु विशेषस्तेनैवोक्तः—करादिपञ्चकेऽश्विभे सपौष्णवासरे स्मृता । धृतिश्च शङ्खकाञ्चनप्रवालरक्तवाससाम् ॥' इति ।

वारानप्याह—'जीर्णं रवौ सततमम्बुभिरार्द्रमिन्दौ भौमे शुचे बुधदिने च भवेद्धनाय । ज्ञानाय मन्त्रिणि भृगौ प्रियसङ्गमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ॥' इति । अतः परिशेषात्सूर्यभौमशनयो निषिद्धाः ।

वस्त्रवर्णभेदे वारादि

अथ रक्तं कौसुम्भादिरङ्गेण रक्तं वस्त्रं भौमे धार्यम् । 'माञ्जिष्ठकौसुम्भकरागयोश्च महीसुतः काञ्चनभूषणेषु' इति तेनैवोक्तत्वात् । 'नासत्यपौष्णवसुभैः करपञ्चकेन मार्तण्डभौमगुरुदानवमन्त्रिवारैः । मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशङ्खदन्तरक्ताम्बराणि विधृतानि भवन्ति सिद्धौ ॥' इति दैवज्ञवल्लभोक्तेश्च ।

अथ स्त्रीणां विशेषः । ध्रुवादितियुगे उत्तरात्रयरोहिणीपुनर्वसुपुष्येषु सुभगा सभर्तृका स्त्री प्रवालादिकं न दध्यात् । उक्तञ्च दीपिकायाम्—'पुष्टन्दौ समये शुभे ध्रुवसुराचार्यादितिशेऽङ्गना नो रत्नं बिभृयात्प्रवालकमणिं शङ्खेभदन्तौ तथा ॥' इति ।

स्त्रीणां स्नानादौ निषेधसमयः

क्वचित्तु शततारानक्षत्रे स्त्रीणां स्नानमपि निषिद्धम् । उक्तञ्च—'रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या बिभर्ति नववस्त्रभूषणम् । सा न योषिदवलम्बते पतिं स्नानमाचरति वारुणेऽपि या ॥' इति । चण्डेश्वरोऽपि—'स्नानं कुर्वति या नार्यश्चन्द्रे शतभिषान्विते । सप्तजन्मभवेद्वन्ध्या विधवा दुर्भगा भृशम् ॥ प्रमादाच्छतभे स्नानं नारीणां यदि जायते । पूजयेत्स्वामिनं तत्र ह्यात्मना च धनेन च ॥' इति । विशेषो राजमार्तण्डे—'अस्तङ्गते भृगुसुते शयने च विष्णोर्जन्माद्यचापझषगे दिनपे न दध्यात् । रक्तेन्दुभानुदिवसेंऽशकवर्जिते च शङ्खं च रक्तपटकं युवतिः कथञ्चित् ॥' इति । दिनपः सूर्यः । रक्तः भौमः ॥ १० ॥

हिन्दी—रेवती, ध्रुवसंज्ञक (उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी), अश्विनी, करपञ्चक (हस्त से पाँच नक्षत्र=हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा), धनिष्ठा, पुष्य, पुनर्वसु इन १४ नक्षत्रों में, रिक्ता (४।९।१४) को छोड़कर शेष (१।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।

१३।१५) तिथियों में, शनि, सोम, भौम इन वारों को त्याग करके शेष (रवि, बुध, गुरु, शुक्र) वारों में मूँगा, हाथीदाँत के बने आभूषण, शंख के बने आभूषण और वस्त्र (सिले अथवा विना सिले हुए) धारण करना उत्तम है। मंगलवार को लाल वस्त्र धारण करना उचित है। ध्रुव-संज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और पुष्य इन ६ नक्षत्रों में, रविवार में सौभाग्यवती स्त्री उपर्युक्त वस्तुओं को धारण न करे ॥ १० ॥

विशेष—उक्त नक्षत्र वार तिथियों में कोई नक्षत्र किसी वार तिथि को हो तो तीनों के योग में कर्ता की जन्मराशि से उत्तम राशि (३।६।७।१०।११) पर चन्द्रमा हो, ३।५।७ वीं तारा को छोड़ कर शेष तारा हो। शुभाशुभ-प्रकरण के ३२ से ३४ इलोकों में कहे गये अशुभ समयों को त्याग कर कार्य आरम्भ करना चाहिए। एवं सर्वत्र मुहूर्त शुभ सायत का विचार ज्योतिर्विदों को करना चाहिए। यहाँ जो ६ नक्षत्र सौभाग्यवती स्त्री के लिए निषिद्ध कहे गये हैं, उनमें वस्त्र-धारण करने से स्त्री को पति-संयोग में बाधा पड़ती है। विधवा स्त्री और पुरुष तथा बालक के लिए दोष नहीं है। शतभिषा नक्षत्र के चन्द्रमा में सौभाग्यवती स्त्री को स्नान नहीं करना चाहिए। यदि भ्रम से शतभिषा में स्नान कर ले तो उसकी शान्ति अवश्य कर ले।

अथ वस्त्रस्य नवधाविभक्तस्य दग्धादिदोषे शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वस्त्राणां नवभागकेषु च चतुष्कोणेऽमरा राक्षसा
मध्यत्र्यंशगता नरास्तु सदशे पाशे च मध्यांशयोः।
दग्धे वा स्फुटितेऽम्बरे नवतरे पङ्कादिलिप्ते न स-
द्रक्षोंऽशे नृसुरांशयोः शुभमसत्सर्वांशके प्रान्ततः ॥ ११ ॥

वस्त्राणामिति। वस्त्राणां नव भागाः कार्याः। कोणचतुष्टये अमरा देवाः स्थाप्याः। राक्षसा मध्यभूतांशत्रयगता ज्ञेयाः। नराः सदशे दशासहितपाशे च पुनर्मध्ययोरंशयोः स्थाप्याः। एतदुपलक्षणम्—शयनासनपादुकास्वप्ययं विचारः। तत्र चेद्रक्षोंऽशे नवतरे अतिनूतने अम्बरे वस्त्रे दैवाद्दग्धे स्फुटिते पाषाणधात्वादिभिर्निहते पङ्केन कर्दमेन आदि-शब्दाद्गोमयादिभिर्लिप्ते उपहते सति तद्वस्त्रं न सत् शुभफलजनकं न भवति किन्तु मरणं विदधातीत्यर्थः। अथ नृसुरांशयोरेवं वस्त्रस्य दाहादिके सति शुभं कल्याणं स्यात् मनुष्यांशे पुत्रप्राप्तिरित्यर्थः। सर्वांशके राक्षसमनुष्यदेवांशेषु प्रान्ततः प्रान्तभागेऽनिष्टम-शुभफलजनकम्।

एवं शय्यासनादौ बोध्यम्

एतत्फलं शय्यासनपादुकास्वपि ध्येयम्। तदुक्तं श्रीपतिना—

'कर्दमकज्जलगोमयलिप्ते वाससि दग्धवति स्फुटिते वा।
चिन्त्यमिदं नवधाभिहितेऽस्मिन्निष्टमनिष्टफलं च सुधीभिः ॥
निवसन्त्यमरा हि वस्त्रकोणे मनुजाः पाशदशान्तमध्ययोश्च।
अपरेऽपि च रक्षसां त्रयोंशाः शयने चासनपादुकासु चैवम् ॥
भोगप्राप्तिर्देवतांशे नरांशे पुत्राप्तिः स्याद्राक्षसांशे च मृत्युः।
प्रान्ते सर्वांशेष्वनिष्टं फलं स्यात्प्लुष्टे वस्त्रे नूतने साध्वसाधु ॥'

अथ राक्षसांशे छत्रध्वजादिसदृशी छेदाकृतिः शुभफलेति विशेषो ध्येयः। देवांशेऽपि काकोलूकसदृशी छेदाकृतिः शुभफलदेत्यपि विशेषो ज्ञेयः। तदुक्तं तेनैव—'छत्रध्वजस्वस्तिकवर्द्धमानश्रीवत्सकुम्भाम्वुजतोरणानाम्। छेदाकृतिर्नैर्ऋतभागगापि पुंसां विधत्ते न चिरेण लक्ष्मीम्॥ कङ्कप्लवोलूककपोतकाकक्रव्यादगोमायुखरोष्ट्रसर्पाः। शुष्कद्रुमप्रेतसमा न शस्ताच्छेदाकृतिर्दैवतभागगापि॥' इति। अत एव कश्यपः--

'नवांशुकं समं कृत्वा चिन्तयेच्च शुभाशुभम्। वसन्ति देवताः कोणे चान्तमध्यद्वये नराः॥
मध्यांशत्रितये दैत्याश्चैवं शय्यासनादिपु। अर्थप्राप्तिर्देवतांशे पुत्रवृद्धिर्नरांशके॥
हानिः पीडा पिशाचांशे सर्वप्रान्तेष्वशोभनम्। शङ्खचक्राम्वुजच्छत्रध्वजतोरणसन्निभाः॥
श्रीवत्ससर्वतोभद्रनन्द्यावर्त्तगृहोपमाः। वर्द्धमानः स्वस्तिकेन मृगकूर्मझषाकृतिः॥
छेदाकृतिर्दैत्यभागेऽप्यायुरर्थप्रदा नृणाम्। खरोष्ट्रोलूककाकाहिजम्बूकश्ववृकोपमाः॥
त्रिकोणसूर्याकृतयो देवभागेऽप्यशोभनाः। निन्दितं वसनं दद्याद् द्विजेभ्यः स्वर्णसंयुतम्॥
आशिषो वाचनं कृत्वा त्वन्यद्वस्त्रं च धारयेत्॥" इति॥ ११॥

हिन्दी—नये वस्त्र के किसी प्रकार दूषित हो जाने (जलने, कटने, फटने, कीचड़, दाग आदि लगने) पर उसके शुभाशुभत्व का फल—वस्त्र के नौ भाग की कल्पना करके चारों कोनों में देवता, मध्य के तृतीयांश में राक्षस और कोने वाले दोनों पार्श्व के मध्य भागों में मनुष्य भाग की कल्पना करे। यदि नया वस्त्र राक्षस वाले भागों में जला हो, कटा हो, फटा हो अथवा गोबर, कीचड़ अथवा किसी वस्तु के दाग से लिप्त हो तो वह वस्त्र शुभफलदायक नहीं होता। एवं मनुष्य तथा देवताओं के भाग में दूषित हो जाय तो शुभ होता है। देवता, मनुष्य और राक्षस के भाग के किनारों पर दूषित हो जाय तब भी अशुभफलदायक होता है। इस भाँति चारपाई, विछौना, चद्दरा, आसन, खड़ाऊँ आदि का भी विचार करना चाहिए। अशुभ-सूचक वस्त्रादि को नहीं धारण करना चाहिए। उसे दान दे देना चाहिए या गरीब को दे देना चाहिए।

वस्त्रादि के नौ भागों का फल—

देवांश शुभ	राक्षसांश अशुभ	देवांश शुभ
मनुष्यांश शुभ	राक्षशांस अशुभ	मनुष्यांश शुभ
देवांश शुभ	राक्षशांस अशुभ	देवांश शुभ

अथ क्वचिद् दुष्टदिनेऽपि वस्त्रपरिधानमनुष्टुभाह—

विप्राज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्यार्पितं च यत्।
निन्द्येऽपि धिष्ण्ये वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः॥ १२॥

विप्रेति। धिष्ण्ये नक्षत्रे वारादौ वारतिथियोगादौ व्यतीपातभद्रादौ दुष्टयोगैर्निन्द्येऽपि दुष्टेऽपि यद्वस्त्रं ब्राह्मणानुज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा सन्तोषेणार्पितं दत्तं तद् वस्त्रं धार्यमिति बुधा जगुः। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'विप्रादेशात्तथोद्वाहे क्ष्मापालेन समर्पितम्। निन्द्येऽपि धिष्ण्ये वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः॥ कश्यपेनापि—'प्रीत्या क्ष्मापालदत्तं यद्विप्रादेशात्करग्रहे। निन्द्येऽपि धिष्ण्ये वारादौ धारयेच्च नवाम्बरम्॥'

इति। इदं चोपलक्षणं तुल्यन्यायत्वाद्राज्ञा तथा ब्राह्मणादिभिस्तथा विवाहादिशुभकृत्ये हस्त्यश्वद्रव्यादिकं तद्भद्रादिदुष्टदिनेऽपि ग्राह्यमित्यन्ये ॥ १२ ॥

हिन्दी—तिथि-वार-नक्षत्र के निन्दित रहने पर भी ब्राह्मण की आज्ञा से, उद्वाहादि के अवसर पर, राजा द्वारा प्रसन्नता से दिया हुआ वस्त्र धारण कर लेना चाहिए, ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ १२ ॥

अथ लतापादपारोपणराजदर्शनमद्यगोक्रयविक्रयमुहूर्त्तान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

राधामूलमृदुध्रुवर्क्षवरुणक्षिप्रैर्लतापादपा-
रोपोऽथो नृपदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः।
तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितं क्षिप्रान्त्यवह्नीन्द्रभा-
दित्येन्द्राम्बुपवासवेषु हि गवां शस्तः क्रयो विक्रयः ॥ १३ ॥

राधामूलेति। राधा विशाखा, मूलं, मृदुचित्रानुराधामृगरेवत्यः ध्रुवर्क्षं रोहिण्युत्तरास्तिस्रः, वरुणः शततारका, क्षिप्रमश्विनीपुष्याभिजितः। अत्राभिजित उत्तराषाढायामन्तर्भावात् पृथगुक्तिर्न भवतीति ज्ञेयम्। कुतः। अश्विनीपुष्यहस्तानां लाघवात्। मृदुत्वेनाभिधानादभिजिदुक्तिरप्यर्थाक्षिप्ता। एवं चतुर्दश भानि। एतैर्नक्षत्रैर्लतानां पादपानां वृक्षाणां चारोपो वापनं कार्यम्। उक्तञ्च वाराहेण—'ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणं तथाऽश्विनं हस्तम्। शस्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥' इति। यत्तु वसिष्ठवचनम्—'द्विदैववारीशशशाङ्कमूलध्रुवेषु तिष्यार्कभपौष्णभेषु। वनौषधीगुल्मलतादिकानामारोपणं तूत्तममत्र शस्तम् ॥' इति। तत्पादपव्यतिरिक्तवनाद्यारोपणविषयम्। यतः पादपारोपणे चतुर्दश नक्षत्राणि तद्व्यतिरिक्तलताद्यारोपणे एकादश भानि उक्तानि। ननु 'सावित्रतिष्याश्विनवारुणानि मूलं विशाखा च मृदुध्रुवाणि। लतौषधीपादपरोपणेषु शुभानि भानि प्रतिपादितानि ॥' इति श्रीपतिवचनं **कथं सङ्गच्छेत?** उच्यते। वराहपद्यस्थपादपग्रहणं लतादीनामुपलक्षणमिति मत्वा **तदुक्तिः।** अनेनैवाशयेन ग्रन्थकृदुक्तिरपि।

अथ राजदर्शनमुहूर्तः—तत्र ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैरुत्तरात्रयरोहिणीचित्रानुराधामृगरेवत्यश्विनीपुष्यहस्तश्रवणधनिष्ठाभिस्त्रयोदशनक्षत्रैर्नृपदर्शनं राजदर्शनं कुर्यात्। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—सौम्याश्विपुष्यश्रवणधनिष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्ट्रभपूषभानि। मैत्रेययुक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ॥' इति।

अथ मद्यारम्भमुहूर्तः—तत्र तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषापूर्वात्रयमघाभरणीशततारकासु मद्यं मद्यप्रारम्भ उदितः। तदाह श्रीपतिः—'रौद्रे पित्र्ये वारुणे पौरुहूते याम्ये सार्पे नैर्ऋते चैव धिष्ण्ये। पूर्वाख्येषु त्रिष्वपि श्रेष्ठ उक्तो मद्यारम्भः कालविद्भिः पुराणैः ॥' इति।

अथ गोक्रयविक्रयमुहूर्तः—तत्र क्षिप्रान्त्यवह्नीन्द्रभादित्येन्द्राम्बुपवासवेषु अश्विनीपुष्यहस्तरेवतीविशाखापुनर्वसुज्येष्ठाशततारकाधनिष्ठासु गवां क्रयो मूल्येन परस्माद् ग्रहणं विक्रयो मूल्यग्रहणपूर्वकं दानं सः शस्तः। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'शाक्रवासवकरेषु विशाखापुष्यवारुणपुनर्वसुभेषु। अश्विपूषभयुतेषु विधेयो विक्रयः क्रयविधिः सुर-

णीणाम् ॥' इति । एतानि नव भानि । भीमपराक्रमेण तु पञ्चदश भान्यभिहितानि—'हस्तेऽनुराधात्रितये सपौष्णे मृगे च पूर्वाश्विविशाखभेषु । पुष्ये धनिष्ठाद्वितयेऽदितीशे गवां क्रयं विक्रयमामनन्ति ॥' इति । अत्र श्रीपतिवाक्याद्यान्यधिकानि नक्षत्राणि तान्यात्ययिकविषयाणि ॥ १३ ॥

(क) विशाखा, मूल, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी और रविवार), शतभिषा, क्षिप्र-संज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य और गुरुवार) इन १४ नक्षत्रों और रवि, गुरु, शुक्र इन वारों में लता एवं वृक्षों का लगाना शुभ होता है।

(ख) ध्रुव-संज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी, रविवार), मृदु-संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा नक्षत्र, भृगुवार), क्षिप्र-संज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य और गुरुवार) और धनिष्ठा इन १२ नक्षत्रों, रवि, गुरु, शुक्रवारों में राजा का दर्शन (अपने उच्चाधिकारियों, राज-नेताओं से भेंट) करना लाभदायक होता है।[1]

(ग) तीक्ष्ण-संज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, शनिवार), उग्र-संज्ञक (तीनों पूर्वा, भरणी, मघा, भौमवार) और शतभिषा इन १० नक्षत्रों में मद्य का कार्य (मद्य-निर्माण, मद्य का क्रय-विक्रय, मद्यपान आदि) शुभ होता है।

(घ) क्षिप्र-संज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, गुरुवार), रेवती, विशाखा, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, शतभिषा, धनिष्ठा इन ७ नक्षत्रों में गौओं का खरीदना और बेचना उत्तम होता है।

विशेष—प्रसंगवशात् वृक्षचक्रम्—

सूर्यभादिनभं यावद् वृक्षचक्रं विधीयते। त्रयं मूले भवेद्रोगस्त्वचि त्रीणि धनागमः ॥
शाखायां वेदनाशः स्यात्पत्रे युग्मं दरिद्रता। शीर्षे त्रीणि शुभं प्रोक्तं पूर्वे एकस्तु मृत्युदः ॥
याम्ये पञ्च पुत्रहानिः पश्चिमे द्वे धनप्रदे। उत्तरे वेदलाभः स्यादित्युक्तं शक्तियामले ॥

सूर्यभात्—

नक्षत्र संख्या	३	३	४	२	३	१	५	२	४
स्थान	मूल	त्वचा	शाखा	पत्र	शीर्ष	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
फल	रोग	धनाप्ति	नाश	दरिद्रता	शुभ	मृत्यु	पुत्र हानि	धनाप्ति	लाभ
विशेष	अशुभ	शुभ	अशुभ		शुभ	अशुभ		शुभ	

अथ पशूनां रक्षामुहूर्तस्थितिनिवेशयानमुहूर्तं चेन्द्रवंशयाह—

लग्ने शुभे चाष्टमशुद्धिसंयुते रक्षा पशूनां निजयोनिभे चरे।
रिक्ताष्टमी-दर्श-कुज-श्रवो-ध्रुव-त्वाष्ट्रेषु यानं स्थितिवेशनं न सत् ॥ १४ ॥

---

(१) ज्योतिर्निबन्ध में लग्नशुद्धि भी कही गयी है—

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवैः कार्यं नृपेक्षणम्।
योगैर्यात्राभिषेकोक्तैः स्वीयकेन्द्रगतैः शुभैः ॥

लग्ने इति । शुभे शुभस्वामिके लग्नेऽष्टमशुद्धिसंयुते शुभपापाक्रान्ताष्टमभावरहिते सति स्वीययोनिनक्षत्रे पशूनां रक्षां शस्ता । यदाह श्रीपतिः—'शुभग्रहोदये शुद्धे नैधने स्वर्क्षयोनिषु । रक्षाविधिक्रिया शस्ता पशूनां मुनिभिः स्मृता ॥' स्वीययोनिनक्षत्राणि विवाहप्रकरणे—'अश्विन्यम्वुपयोर्हयः' इत्यादिना वक्ष्यति । चरे चरनक्षत्रेष्वपि रक्षा पशूनां विधेया । 'तीक्ष्णे पशूनां दमनं चरे स्यात्पशुपोषणम्' इति भीमपराक्रमोक्तेः । रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, अष्टमी, दर्शोऽमावास्याः कुजो मङ्गलः, श्रवणः, ध्रुवाणि उत्तरात्रयरोहिण्यः, त्वाष्ट्रं चित्रा । एषु भेषु पशूनां यानं गृहाद् बहिर्निस्सारणं स्थिति-र्गोष्ठादौ वेशनं प्रवेशनं च न सत् । सत्फलजनकं न भवतीत्यर्थः । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'त्वाष्ट्रध्रुवश्रीपतिभेषु रिक्ता दर्शाष्टमी भौमादिने पशूनाम् । यात्रा प्रवेशं न कदाचिदेव कुर्याच्च तेषामभिवृद्धिकाङ्क्षी ॥' इति । चशब्दात्स्थितिमपि न कुर्यात् । व्यवहारतत्त्वे तु वाराधिक्यमुक्तम्—'स्वयोनिधिष्ण्ये विकुजे पशूनां कर्माथ कुर्यादवुधेन्दुमन्दे । यानं प्रवेशं च तिथावशैवे चित्रोत्तरावैष्णवभान्यभेषु ॥' अशैवे चतुर्दशीरहिते ॥ उपलक्षण-त्वादमावास्यादिरहिते । व्यवहारोच्चये—'पूर्वात्रये धनिष्ठैन्द्रपौष्णे सौम्यविशाखयोः । आश्लेषायामथाश्विन्यां यात्रासिद्धिश्चतुष्पदाम् ॥' इति ॥ १४ ॥

हिन्दी—शुभग्रह की राशि (२।३।४।६।७।९।१२) के लग्न में लग्न से ८वाँ स्थान शुद्ध (पाप ग्रहों से रहित) हो, पशु की योनि-नक्षत्र (जैसे—घोड़े की अश्विनी-शतभिषा, हाथी की रेवती-भरणी, मेष की पुष्य-कृत्तिका इत्यादि) और चर-संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों में पशुओं की रक्षा (पालन-पोषण) करना शुभ होता है । रिक्ता (४।९।१४) अष्टमी और अमावास्या तिथियाँ, भौमवार, श्रवण, ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), चित्रा इन तिथिवार ६ नक्षत्रों में पशुओं की यात्रा (घर से बाहर दूसरे स्थान पर ले जाना), स्थिति (गोष्ठ) गौओं को वाड़े में रखना और बाहर से गोशाला में प्रवेश कराना शुभ नहीं होता । ज्योतिर्निबन्ध में सोम, बुध और शनि वारों में भी पशुकर्म त्याज्य कहा गया है—

सोमार्किवैधृतौ पाते लग्ने पञ्चानने बुधे ।
भद्रासङ्क्रान्तिरिक्तासु पशुकर्म विवर्जयेत् ॥

अथौषधसूच्योर्मुहूर्तं मन्दाक्रान्ताच्छन्दसाह—

भैषज्यं सल्लघुमृदुचरे मूलभे द्व्यङ्गलग्ने
शुक्रेन्दिज्ये विदि च दिवसे चापि तेषां रवेश्च ।
शुद्धे रिष्फद्युनमृतिगृहे सत्तिथौ नो जनेर्भे
सूचीकर्माप्यदिति-वसुभ-त्वाष्ट्र-मित्राश्वि-पुष्ये ॥ १५ ॥

भैषज्यमिति । लघुमृदुचरे अश्विनीपुष्यहस्तचित्रामृगानुराधारेवतीश्रवणधनिष्ठा-शततारकास्वातीपुनर्वसुभेषु मूले च भैषज्यमौषधं प्रारब्धं भक्षितं वा सत् । शुभफलदं भवतीत्यर्थः । तथा चाह श्रीपतिः—'पौष्णद्वये चादितिभद्वये च हस्तत्रये च श्रवणत्रये च । मैत्रे च मूले च मृगे च शस्तं भैषज्यकर्म प्रवदन्ति सन्तः ॥' इति । वसिष्ठोऽपि—'हस्तत्रये पुष्यपुनर्वसौ च विष्णुत्रये चाश्विनिपौष्णभेषु । मित्रेन्दुमूलेषु च सूर्यवारे भैषज्यमुक्तं शुभवासरेऽपि ॥' इति । द्व्यङ्गलग्ने द्विस्वभावराशिषु मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु

सत्सु शुक्रेंद्विज्ये विदि च शुक्रचन्द्रबृहस्पतिबुधेषु द्विस्वभावलग्नस्थेषु सत्सु च पुनस्तेषां शुक्रेन्द्विज्यबुधानां रवेश्च दिवसे वारे सत्तिथौ रिक्तामारहिते दिने भैषज्यं सत् । उक्तश्च दीपिकायाम्—'द्वयङ्गोदये गुरुबुधेन्दुसितेषु तेषां वारे रवेश्च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे ॥' इति । रिष्फद्युनमृतिगृहे लग्नाद् द्वादशसप्तमाष्टमगृहेषु शुद्धेषु शुभपापरहितेषु सत्सु भैषज्यं सत् । तत्र वर्षफलप्रश्नादिना सत्यायुर्दाययोगे औषधसेवनं हितमित्ययं विशेषो ध्येयः । तदुक्तं श्रीपतिना—'द्यूनशत्रुनिधनव्ययशुद्धौ सद्ग्रहेषु नितरां बलवत्सु । आयुषश्च हितकारिणि योगे कीर्तिता नियतमौषधसेवा ॥' इति । कश्यपोऽपि—'षट्-सप्ताष्टान्त्यशुद्धौ च बलिनः शुभखेचराः । आयुर्दायकरे योगे कर्त्तव्या ह्यौषधक्रिया ॥' इति । जनेर्भे जन्मनक्षत्रे नो भैषज्यं सत् । तदुक्तं दीपिकायाम्—'जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभेषजवादाध्वकर्त्तनेषु च वर्जयेत्' ॥ इति ।

अथ सूचीकर्ममुहूर्तः । अदितिवसुभत्वाष्ट्रमित्राश्विधिष्ण्ये पुनर्वसुधनिष्ठाचित्रानुराधाश्विनीषु सूचीकर्म सूच्याः सम्बन्धि घटनसीवनादि सकलं कर्म अपि-शब्दात्मकवचनमपि कुर्यात् । उक्तश्च व्यवहारोच्चये–'अदितिर्वासवं त्वाष्ट्रमैत्रमैन्दववाजिनः । सूचीकर्म तनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते ॥' इति । तनुत्राणं कवचम् ॥ १५ ॥

हिन्दी—(क) लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य और गुरुवार), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और सोमवार), मूल इन १३ नक्षत्रों में द्विस्वभाव राशि (३।६।९।१२ बुध-गुरु की राशि) के लग्न में, शुक्र, सोम, गुरु, बुध के रहने पर, इन्हीं शुक्र, चन्द्र, गुरु, बुध और रविवारों में, लग्न से १२।७।८वें स्थान शुद्ध (शुभ; पापग्रहों से रहित) हो शुभ (१।२।३।५।७।१०।११।१३) तिथियों में औषध का सेवन करना उत्तम कहा गया है । जातक शास्त्रोक्त दीर्घायुप्रद योगों में भी औषध-सेवन शुभ होता है। जन्मनक्षत्र में कदापि औषध ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

(ख) पुनर्वसु, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, अश्विनी और पुष्य इन ६ नक्षत्रों में सूचीकर्म (सिलाई का काम) एवं कवच धारण करना उत्तम होता है ॥ १५ ॥

अथ क्रयविक्रयनक्षत्रेषु परस्परनिषेधं वदन् क्रयविक्रयनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न ।
पौष्णाम्बुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ॥ १६ ॥

क्रयर्क्षे इति । वक्ष्यमाणक्रयनक्षत्रे विक्रयो न कार्यः । तथा विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न कार्यः । नन्विदमयुक्तं विक्रयो नाम मूल्यं गृहीत्वा वस्तुदानम् । क्रयो नाम मूल्यं दत्त्वा वस्तुग्रहणम् । यदा येन क्रयः कर्तव्यः तदान्येन विक्रयोऽपि कर्त्तव्यः । तत्र क्रयविक्रय-नक्षत्राणां महाभेदादुभयविधमुहूर्तानुपपत्तिः । उच्यते—विक्रेत्रा यदा मुहूर्तो विक्रयार्थं गृह्यते तदा क्रयिणोऽनुज्ञां लब्ध्वा यावदिष्टं वस्तु स्वगृहात्पृथक् क्रियते तत्कर्म विक्रय-शब्दवाच्यम् । यदा तु क्रयिणा क्रयमुहूर्त्तः प्राप्यते तदा विक्रेत्रे मूल्यं द्रव्यं दत्त्वा पृथक् कृत विक्रीतं वस्तु गृह्यते तत्कर्म क्रयशब्दवाच्यमिति मत्वात्र समाधिः । अथवा क्रयि-विक्रेत्रोरन्यतरस्य क्रयिणः कदाचिन्मुहूर्तासम्भवे ज्ञेयोऽनावश्यकत्वात् । आवश्यकत्वे तु मुहूर्त्तगवेषणायां कालविलम्बनिष्पत्तावन्येन तृतीयमुहूर्त्तविचारमनङ्गीकृत्य समवस्तु-

प्राप्त्या वस्तुग्रहणसिद्धिसम्भवात् । तदा विक्रेतुरेव मुहूर्त्तविचारः । एवञ्च क्रेतुरप्यवश्य-विक्रेतव्यस्य वस्तुनो यदा ग्रहीता सम्भवेत्तदैव मुहूर्त्तमनालोच्य वस्तुदानमावश्यकम् । मुहूर्त्तविचारतः कालविलम्बे तावद् द्रव्यानुपपत्तेः । तदा तु क्रयण एव मुहूर्त्तविचारः । नन्वेवमपि क्रयविक्रयनक्षत्राणां पार्थक्येनाभिधानात्तयोः परस्परगतनिषेधो न युज्यते । तथा राजदर्शनविहितनक्षत्रेभ्योऽन्यनक्षत्रेषु राजदर्शनं निषिद्धमित्यर्थाद् गम्यते । 'सर्वं वाक्यं सावधारणं भवति' इति न्यायात् । उच्यते । क्रयनक्षत्रे क्रयः कार्यं इत्युक्ते विक्रय-स्य स्वतन्त्रकर्मत्वात्तत्र क्रयर्क्षे निषेधाभावः । एवं विक्रयर्क्षेष्वपि क्रयनिषेधाभावः । तत्र निषेधे सत्यन्यनक्षत्राणां मध्यमत्वावगतेः । कदाचित्क्रयनक्षत्राणां मध्यमत्वमङ्गीकृत्य विक्रयस्य विहितमुहूर्त्तानुपलब्धौ तत्र मुहूर्त्तो मध्यमोऽपि ग्राह्यः । तदर्थमपि वाचनिकस्त-न्निषेधः । अतः क्रयविक्रयनक्षत्रेभ्यो भिन्ननक्षत्रेषु क्रयविक्रयौ मध्यमावित्यनुमिमीमः । निषेधस्य वाचनिकत्वमुक्तं दीपिकायाम्–'यमादिशक्रादिहुताशपूर्वा नेष्टाः क्रये विक्रयणे-ऽतिशस्ताः । पौष्णाश्विचित्राश्विनविष्णुवाताः शस्ताः क्रये विक्रयणे निषिद्धाः ॥' इति ।

अथ क्रयमुहूर्त उच्यते—तत्र पौष्णं रेवती, अम्बुपः, शततारका । अश्विनी, वातः स्वाती, श्रवः श्रवणः, चित्रा । एतानि भानि क्रये शुभानि । विक्रयणे निषिद्धानि च । सम्मतिरत्रोक्तैव ॥ १६ ॥

हिन्दी—क्रय (खरीदने) के नक्षत्र में बेचना ठीक नहीं और बेचने के नक्षत्र में खरीदना भी लाभप्रद नहीं होता । रेवती, शतभिषा, अश्विनी, श्रवण और चित्रा ये ५ नक्षत्र खरीदने में उत्तम कहे गये हैं ॥ १६ ॥

विशेष—जब बेचने के मुहूर्त में खरीदना और खरीदने के मुहूर्त में बेचना निषिद्ध है तो एक ही मुहूर्त में दोनों कार्य कैसे हो सकते हैं ? इसका उपाय यह हो सकता है कि 'विक्रेता अपनी वस्तु को विक्रय के मुहूर्त में क्रेता की अनुमति से अपने भण्डार से विक्रयार्थ अलग कर दे' यह विक्रय हो गया । अब 'क्रेता क्रय के मुहूर्त में मूल्य देकर (चुकता कर) उस वस्तु को अपने अधिकार में कर ले' यह क्रय हुआ । ऐसा करने से शास्त्राज्ञा की अवहेलना नहीं होगी और दोनों का निर्वाह भी हो जायेगा ।

अथ विक्रयविपण्योर्मुहूर्त्तौ शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केन्द्रत्रिकोणे शुभैः
षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ।
रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मैत्रध्रुवक्षिप्रभै-
र्लग्ने चन्द्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्द्व्यायखे[1] ॥ १७ ॥

पूर्वेति । पूर्वास्तिस्रः द्वीशं विशाखा, कृशानुः कृत्तिका, सार्पमाश्लेषा, यमभं भरणी । समाहारद्वन्द्वः । एषु नक्षत्रेषु विक्रयः सन् शुभो ज्ञेयः । क्रयो निषिद्धश्च । उक्तेवात्रापि सम्मतिः । अथ केन्द्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमस्थानेषु त्रिकोणे च शुभैः शुभग्रहस्थितैः

१. किसी विद्वान् ने 'शुभौ द्व्यायखे' ऐसा पाठ युक्तियुक्त कहा है । किन्तु प्राचीन पाठ 'शुभैः' तृतीयान्त है । 'शुभौ' प्रथमा का द्विवचन हो जाता है । यह विद्वानों के विवेचन का विषय है ।

षट्त्र्यायेषु षष्ठतृतीयैकादशस्थानेषु अशुभैः पापग्रहैस्थितैः कृत्वा घटतनु कुम्भलग्नं विहाय त्यक्त्वा सत्तिथौ शुभतिथौ विक्रयः सन् ज्ञेयः । तदुक्तं श्रीपतिना—'दशमैकादशे लग्ने वित्तकेन्द्रत्रिकोणगैः । शुभं पुण्यस्य कर्मोक्तं वर्ययित्वा घटोदयम् ॥' इति । केन्द्रसंज्ञा बृहज्जातके—'कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम् ॥' इति ।

अथ विपणिः—रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, भौमो मङ्गलवारः, घटः कुम्भलग्नम्, एतान्विना वर्जयित्वेत्यर्थः । अन्येषु तिथिवारलग्नेषु विपणिः हट्टे स्थित्वा क्रयविक्रयाख्यं कर्म तच्छुभम् । तथा मित्रध्रुवक्षिप्रभैश्चित्रानुराधामृगरेवतीरोहिण्युत्तरात्रयाश्विनी-पुष्यहस्तैर्विपणिः । लग्ने चन्द्रसिते मूर्तौ चन्द्र शुक्रे च सतीत्यर्थः । व्ययाष्टरहितैः पापैः क्रूरग्रहैर्द्व्यायखे द्वितीयैकादशदशमे शुभैः शुभग्रहैः । उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'कुम्भराशि-मपहाय साधुषु द्रव्यकर्म भवमूर्तिवर्तिषु । अव्ययेष्वशुभदायिषूद्गमे भार्गवे विपणिरिन्दु-संयुते ॥' इति ॥ १७ ॥

हिन्दी—(क) तीनों पूर्वा (पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा), विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा, भरणी इन ७ नक्षत्रों में, शुभग्रहों (बु० बृ० शु० पूर्ण चन्द्रमा) के लग्न से केन्द्र (१।४।७।१०) और त्रिकोण (२।५।९) में रहने पर और पापग्रहों (सू० मं० श० रा० के क्षीण चन्द्रमा) के तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थान में रहने पर, कुम्भलग्न को छोड़ कर अन्य लग्नों में, शुभ तिथियों (१।२।३।५।७।१०।११।१३) में विक्रय करना (वस्तुओं को वेचना) शुभ होता है।

(ख) रिक्तातिथि (४।९।१४), मंगलवार, कुंभलग्न इनको छोड़ कर शेष सभी तिथि वार लग्नों में मित्रसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), क्षिप्र-संज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) इन ११ नक्षत्रों में चन्द्रमा और शुक्र दोनों लग्न में स्थित हों, १२।८ इन दोनों में पापग्रह न हों, २।११।१० इन स्थानों में शुभग्रहों के रहने पर विपणि (दुकान खोलने) का मुहूर्त होता है।

तिथि—१।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।३०, रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि; लग्न १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।१२ ।

अथाश्वहस्तिमुहूर्त्तानिन्द्रवज्रयाह—

क्षिप्रान्त्यवस्विन्दुमरुज्जलेशादित्येष्वरिक्तारदिने प्रशस्तम् ।
स्याद्वाजिकृत्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृदुक्षिप्रचरेषु विद्वान् ॥ १८ ॥

क्षिप्रान्त्येति । क्षिप्रमश्विनीपुष्यहस्ताः, अन्त्यं रेवती, वसुर्धनिष्ठा, इन्दुर्मृगः । मरुत्स्वाती, जलेशः शततारका, आदित्यं पुनर्वसुः । एषु भेषु वाजिकृत्यमश्वसम्बन्धि क्रयविक्रयादिकृत्यं कार्यम् । तदुक्तं रत्नमालायाम्—'पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णा-निलादित्यकराव्ययेषु । सवासवर्क्षेषु बुधैः स्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरङ्गमाणाम् ॥' इति ।

अश्वचक्र-हस्त्यङ्कुशारोपण-अश्वगजारोहणचक्रम्

अश्वचक्रं दैवज्ञमनोहरे—'अश्वाकारं लिखेच्चक्रं साभिजिद्भानि विन्यसेत् । स्कन्धे च सूर्यभात्पञ्च पृष्ठे च दश भानि च ॥ पुच्छे द्वे स्थापयेत्प्राज्ञश्चतुष्पादे चतुष्टयम् । उदरे विन्यसेत्पञ्च मुखे द्वे तुरगस्य च ॥ अर्थलाभो मुखे सम्यग्वाजी नश्यति चोदरे ।

चरणस्थे रणे भङ्गः पुच्छे पत्नी विनश्यति ।। अर्थसिद्धिर्भवेत्पृष्ठे स्कन्धे लक्ष्मीपतिर्भवेत् ।।' इति । इदमश्वारोहणे विचार्यं न ग्रहणे । तथाऽरिक्तारदिने रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, आरो भौमः । 'आरो वक्रः क्रूरदृक् चावनेयः' इति वराहोक्तेश्च । रिक्ताभौमान् वर्जयित्वान्यदिने वाजिकृत्यं प्रशस्तम् । अत्र सामान्य एव निषेध उपनिबद्धो न विशेषतः ।। अथेति । अथ विद्वान् ज्ञाता । मृदूनि चित्रानुराधामृगरेवत्यः, क्षिप्राणि अश्विनीपुष्यहस्ताः, चराणि श्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वात्यः । एषु द्वादशनक्षत्रेषु हस्तिकार्यं कुर्यात् । तदाह वसिष्ठः—'हस्तत्रये सौम्यहरित्रये च पौष्णद्वये पुष्यपुनर्वसौ च । मैत्रेऽपि सर्वाण्यपि कुञ्जराणां कर्माणि शस्तान्यखिलानि यानि ।।' इति ।

अथ हस्तिष्वङ्कुशार्पणमुहूर्तो व्यवहारोच्चये—'शुभतारे शुभे लग्ने शुभांशे शोभने तिथौ । अङ्कुशाः करिणां योज्याः शनिलग्ने शनेर्दिने' ।। इति ।

अथाश्वगजाद्यारोहणमुहूर्तोऽपि तत्रैव—पौष्णाश्विनीवरुणमारुतशीतरश्मिचित्रादितिश्रवणपाणिसुरेज्यवित्तैः । वारेषु जीवशशिसूर्यसितेन्दुजानामारोहणं गजतुरङ्गरथेषु शस्तम् ।।' इति । पाणिर्हस्तः । वित्तं धनिष्ठा ।। १८ ।।

हिन्दी—(क) क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), रेवती, धनिष्ठा, मृगशिरा, स्वाती, शतभिषा और पुनर्वसु इन ९ नक्षत्रों में, रिक्ता (४।९।१४) तिथि और मंगलवार को त्याग कर शेष तिथि-वारों में घोड़े के कार्य (घोड़ा खरीदना-बेचना, घोड़े की शिक्षा, पालन-पोषण, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, लं आना, सवारी करना आदि) कल्याणकर होता है ।

(ख) मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) इन १२ नक्षत्रों में हस्ति का कार्य (हाथी खरीदना, बेचना, हाथी की यात्रा, प्रवेश आदि) शुभदायक होता है। (यहाँ भी रिक्ता और भौमवार वर्जित करना चाहिए) ।। १८ ।।

विशेष—घोड़ों का नख तथा वाल कटाना, औषध देना, उनका मैथुन कराना इत्यादि के लिए ज्योतिर्निबन्ध में निम्नलिखित शुभ समय का संकेत मिलता है—

चौलोक्तं क्षुरकर्मादौ भेषजे भेषजोदितम् ।
गर्भाधानोक्तमश्वानां मैथुने तु विलोकयेत् ।।
गृहारम्भोदिते काले ह्यश्वशाला विधीयते ।
शिक्षा विद्योक्तकाले च भूषणं भूषणोदिते ।।

शिर	पृष्ठ	पुच्छ	पाद	उदर	मुख	अंग
५	१०	२	४	५	२	२८ नक्षत्र
सुख	लाभ	स्त्रीहानि	भंग	नाश	लाभ	फल
१५ लाभ		११ हानि			२ लाभ	

प्रसङ्गादश्वारोहणचक्रम् । ज्योतिर्निबन्धे—

चक्रेश्वः शिरपञ्चके सुखकरः पृष्ठे च दिग्लाभदः
पुच्छे द्वे गृहिणीविनाशनकरः पादेऽङ्घ्रिभङ्गो भवेत् ।

नाशं चोदरपञ्चभिश्च कुरुते चाऽऽस्ये द्विलाभे भवेद्
गेहे चायनरोहणे फलमिदं सूर्यर्क्षतो वा क्रमात् ॥

हस्तिकर्मणि विशेषः—

न कुर्याद्दन्तिदन्तानां च्छेदं गुरुगृहे रवौ ।
हरौ सुप्ते सिते पक्षे रात्रौ भौमार्कवासरे ॥ १ ॥
कल्याणं च तनुमात्रे जययोगे शुभोदये ।
भेषजे भेषजे काले गजबन्धः शनेर्दिने ॥ २ ॥
शुभे तारे शुभे लग्ने शुभांशे शोभने तिथौ ।
अङ्कुशाः करिणां योज्याः शनिलग्ने शनेर्दिने ॥ ३ ॥

अथ भूषाघटनादिमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्याद् भूषाघटनं त्रिपुष्करचरक्षिप्रध्रुवे रत्नयुक्
तत्तीक्ष्णोग्रविहीनभे रविकुजे मेषालिसिंहे तनौ ।
तन्मुक्तासहितं चरध्रुवमृदुक्षिप्रे शुभे सत्तनौ
तीक्ष्णोग्राश्विमृगे द्विदैवदहने शस्त्रं शुभं घट्टितम् ॥ १९ ॥

स्याद् भूषेति । त्रिपुष्करलक्षणम्—'भद्रातिथि रविजे'त्यादिना वक्ष्यति । एवंविधे त्रिपुष्करदिवसे चरक्षिप्रध्रुवे श्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वातीपुष्याश्विनीहस्त-रोहिण्युत्तरात्रितयेषु भेषु भूषाघटनम् आभरणघटनं शुभं स्यात् । यदाह वसिष्ठः—'क्षिप्रचलाचलऋक्षे रिक्तामावर्जितेषु दिवसेषु । निखिलेषु वासरेष्वपि त्रिपुष्करे भूषणं कार्यम् ॥' इति ।

अथ तद् भूषाघटनं रत्नयुतं माणिक्यहीरकादिरत्नयुतं चेच्चिकीर्षितं तदा तीक्ष्णोग्र-विहीनभे मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषापूर्वात्रयभरणीमघास्त्यक्त्वान्येष्वष्टादशनक्षत्रेषु कार्यम् । तथा रविभौमवारे कार्यम् । तथा मेषालिसिंहे मेषवृश्चिकर्कसिंहलग्ने कार्यम् । तदुक्तं वसिष्ठेन–'स्थिरसाधारणचरभे लघुमैत्रेष्वर्ककुजवारे । तेषामेव विलग्ने माणिक्यमयं विभूषणं कार्यम् ॥' इति । माणिक्यग्रहणमुपलक्षणं रत्नादेः ।

अथ चरध्रुवमृदुक्षिप्रसंज्ञेषु नक्षत्रेषु तद् भूषणघटनं मुक्तासहितं शुभं भवति । मुक्ता-फलग्रहणं रजतादेरुपलक्षणम् । अत्र चन्द्रशुक्रयोर्वारे कर्कवृषतुलालग्नेषु कार्यमित्यपि विशेषो ध्येयः । तदुक्तं वसिष्ठेन—'क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे शशिसितयोर्वासरेषु तल्लग्ने । मुक्ताफलरजतमयं भूषणमखिलं सवज्रकं कार्यम् ॥' इति ।

केचिदिदं निष्पन्नमेवाभरणमस्मिन्नेव मुहूर्ते धार्यमित्याहुः । अथ तीक्ष्णानि चत्वारि भानि, उग्राणि पञ्च भानि, अश्विनी, मृगः, द्विदैवं, विशाखा, दहनः कृत्तिका एषु नक्षत्रेषु घट्टित शस्त्रं शुभ स्यात् । 'घट्ट चलने' संयोगान्तश्चुरादिर्धातुस्ततः स्वार्थण्य-न्तान्निष्ठा क्तः । 'आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः' इतीट् । 'निष्ठायां सेटि' इति णिलोपः । उक्तञ्च ज्योतिःसागरे—'कृत्तिकासु विशाखासु भौमार्कशनिवासरे । तद्दिने घट्टितं शस्त्रं नृपाणां जयदायकम् ॥' इति । दीपिकायाम्–'मूलेन्दुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राश्विसर्पानलशूलिनश्च । खड्गादिसाधारणकर्म कुर्यात्तिथौ विलग्ने च शुभे शुभाहे ॥' इति । साधारणं घट्टनो-ज्ज्वलीकरणादिकम् ।

रौप्यसुवर्णपात्रे भोजनमुहूर्तः

अथ सुवर्णरूप्यादिभाजने भोजनमुहूर्तोऽपि प्रसङ्गादुच्यते । तत्र वसिष्ठः—'लघुमैत्रध्रुवमृदुभे सितेन्दुबुधजीववारेषु । हेमरजतादिभाजने भोजनमारोग्यममृतयोगेषु' ॥ इति । आरोग्यं नीरोगत्वं भोजनकर्तुः स्यादित्यर्थः ॥ १९ ॥

हिन्दी—(क) त्रिपुष्करयोग (२।५० में कहा गया है कि भद्रातिथि–२।७।१२ शनि, भौम, रविवार, विशाखा, उत्तराफल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, पुनर्वसु, कृत्तिका, उत्तराषाढा, इन ६ नक्षत्रों के योग को त्रिपुष्करयोग कहते हैं), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी) इन १२ नक्षत्रों में आभूषणों का निर्माण कराना शुभ होता है।

(ख) तीक्ष्णसंज्ञक और उग्रसंज्ञक नक्षत्रों को छोड़कर शेष (अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती) १८ नक्षत्रों में रवि, मंगलवारों में मेष, वृश्चिक, सिंह लग्नों में रत्नजटित (अंगूठी, नाक की कील, कर्णभूषण, हार, कंकण, माँगटीका आदि) आभूषणों का बनवाना उत्तम कहा गया है।

(ग) चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) और क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) इन १६ नक्षत्रों में, शुभ (च० बु० बृ० शु०) वारों में शुभ (२।३।४।६।७।९।१२) लग्नों में मोती से जड़े आभूषणों का निर्माण कल्याणप्रद होता है। कतिपय रत्नों का उल्लेख वराहमिहिराचार्य ने बृहत्संहिता के अध्याय ८० में किया है—

वज्रेन्द्रनीलमरकतकर्केतरपद्मराग-रुधिराख्याः ।
वैदूर्य-पुलक-विमलक-राजमणि-स्फटिक-शशिकान्ताः ॥
सौगन्धिक-गोमेदक-शङ्ख-महानील-पुष्परागाख्याः ।
ब्रह्ममणि-ज्योतीरस-सस्यक-मुक्तामणि-प्रवालानि ॥

(घ) तीक्ष्णसंज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा), उग्रसंज्ञक (तीनों पूर्वा, भरणी, मघा), अश्विनी, मृगशिरा, विशाखा, कृत्तिका इन १३ नक्षत्रों में शस्त्रों (तलवार, पिस्तौल, गडासी, छूरा, त्रिशूल, बर्छी, भाला, बन्दूक, बम इत्यादि) का बनाना शुभ होता है ॥ १९ ॥

अथ मुद्रापातनवस्त्रक्षालनमुहूर्तं स्रग्धराच्छन्दसाह—

मुद्राणां पातनं सद्ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभैर्वीन्दुसौरे
घस्रे पूर्णाजयाख्ये न च गुरुभृगुजास्ते विलग्ने शुभैः स्यात् ।
वस्त्राणां क्षालनं सद्वसुहयदिनकृत्पञ्चकादित्यपुष्ये
नो रिक्तापर्वषष्ठीपितृदिनरविजज्ञेषु कार्यं कदापि ॥२०॥

मुद्राणामिति । ध्रुवमृदुक्षिप्रसंज्ञकैर्नक्षत्रैः कृत्वा राजमुद्राङ्कितसुवर्णरूप्यादिनिष्पादनं मुद्रापातनमित्युच्यते । 'टङ्कसाल' इति यवनभाषयाहुः । तत् सत् शुभमित्यर्थः । तथा वीन्दुसौरे सोमशनिरहिते दिवसे । तथा पूर्णाजयाख्ये पञ्चमीदशमीपूर्णिमातृतीयाष्टमीत्रयोदश्यः, एतत्संज्ञके घस्रे दिवसे एतत्संज्ञितासु तिथिषु शुभम् । तथा गुरुशुक्रास्तयोर्मुद्रा-

पातनं न कार्यम् । तत्र विलग्ने शुभैः लग्ने शुभग्रहैः । सद्भिरित्यर्थः । उक्तञ्च सारमुच्चये—'मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचन्द्रवर्ज्ये । वारे तिथौ पूर्णजयाख्ययोश्च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा नराणाम् ॥ गुर्वस्ते वा सितास्ते वा मुद्राया घट्टनं क्वचित् । क्रूरग्रहर्क्षांशलग्ने न कार्यं भूतिमिच्छता ॥' इति । अथ वसुर्धनिष्ठा, हयोऽश्विनी, दिनकृत्पञ्चकानि हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाः, आदित्यं पुनर्वसुः, पुष्यः एषु नक्षत्रेषु वस्त्राणां क्षालनं स्वतः शक्तौ स्वयं क्षालनं कार्यम्, नोचेद्रजकाय धावनार्थं देयमित्यर्थः । रिक्तेति । रिक्ताः प्रसिद्धाः पर्वाणि प्राङ्मयोक्तानि षष्ठी, पितृदिनममावास्या, रविजज्ञेषु शनैश्चरबुधदिवसेषु कदापि वस्त्रधावनं नो कार्यम् । उक्तञ्च गणेशदैवज्ञैः—'पौष्णादित्यादिपञ्चाश्विवसुषु च भवेद्वाससां क्षालनाद्यं हित्वा षष्ठीं च पर्वाब्जसुतशनिदिनं श्राद्धघस्रं शुभं स्यात् ।' इति । अदितिः पुनर्वसुः आदिरादित्यः । क्वचिद्भौमशनिवारौ सङ्क्रान्त्यादिकं निन्द्यम् । यदाह चण्डेश्वरः—'शनौ भूमिसुते श्राद्धे षष्ठ्यमावास्ययोस्तथा । वस्त्रक्षालनजो दोषो दहत्यासप्तमं कुलम् । सङ्क्रात्यां पञ्चदश्यां च द्वादश्यां च रवेर्दिने । वस्त्रं निष्पीडयेन्नैव क्षारेणापि न योजयेत्' इति ॥ २० ॥

हिन्दी—ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) और क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) इन १६ नक्षत्रों में सोम, शनि वारों को छोड़कर अन्य (रवि, भौम, बुध, गुरु, शुक्र) वारों में, पूर्णा (५।१०।१५), जया (३।८।१३) तिथियों में (भद्रा को त्याग कर), गुरु और शुक्र के अस्त बाल्य-वृद्ध को छोड़ कर अन्य शुभ समय में लग्न में शुभग्रह स्थित हो, ऐसे समय में टकसाल में सिक्कों (रुपया, मोहर, अशर्फी, गिन्नी, नोटों) का बनाना उत्तम होता है ।

(ख) धनिष्ठा, अश्विनी, हस्त से ५ (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा), पुनर्वसु, पुष्य इन ९ नक्षत्रों में धोबी से कपड़ों को धुलाना शुभ होता है । रिक्ता (४।९।१४) पर्वतिथि, षष्ठी, माता-पिता के निधन के दिन, शनि और बुधवार को (किसी आचार्य के मत से मंगलवार को भी) धुलाना कदापि श्रेयस्कर नहीं है ॥ २० ॥

अथ खड्गादिधारणं शय्याद्युपभोगं च स्रग्धरयाह—

सन्धार्याः कुन्त-वर्मेष्वसन-शर-कृपाणासिपुत्र्यो विरिक्ते
शुक्रेज्यार्केऽह्नि मैत्रध्रुव-लघुसहितादित्यशाक्राद्विदैवे ।
स्युर्लग्ने हि स्थिराख्ये शशिनि च शुभदृष्टे शुभैः केन्द्रगैः स्या-
द्भोगः शय्यासनादेर्ध्रुव-मृदु-लघु-हर्यन्तकादित्य इष्टः ॥ २१ ॥

सन्धार्या इति । विरिक्ते रिक्तावर्जिते शुक्रबृहस्पतिरविवारे तथा मैत्रध्रुवलघुसंज्ञभसहिते पुनर्वसुज्येष्ठाविशाखानक्षत्रेषु कुन्तादयो धार्याः । कुन्तः । 'प्रासस्तु कुन्तः स्यात्' इत्यमरः । वर्म कवचम्, इषवो बाणा अस्यन्ते क्षिप्यन्तेऽनेनेतीष्वसनं धनुः, कृपाणः खड्गः । असिपुत्री छुरिका । सन्नाहोपीति केचित् । तथा स्थिराख्ये वृषसिंहवृश्चिककुम्भानामन्यतमे राशौ लग्ने स्थिते सति शशिनि च समीचीनस्थानस्थिते शुभग्रहदृष्टे शुभग्रहैः केन्द्रगैः सद्भिः कुन्तादयो धार्याः स्युः । तदुक्तं व्यवहारोच्चये—'पुष्ये चादितिचित्रपद्मतनये शक्रोत्तरारेवतीवाजीहस्तविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ

भार्गवे। कुम्भे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चन्द्रे शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तछुरिका धार्या नृपाणां हिताः ॥' इति ।

अथ ध्रुवमृदुलघुनक्षत्रेषु हरौ श्रवणे अन्तकं भरणी आदित्ये पुनर्वसावेषु शय्यासनादेः—शय्या खट्वादिरूपा। आसनमौर्णपीठमृगत्वगादि। आदिशब्दात्पादुकाः। एषामुपभोग इष्टो हितः। उक्तञ्च दीपिकायाम्—'मैत्रेन्दुपुष्ययमभादितिवाजिचित्राहस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि। एतेष्वतीव शयनासनपादुकानां सम्भोगकार्यमुदितं मुनिभिः शुभाहे ॥' इति। शुभाहे शुभग्रहवारे ॥ २१ ॥

हिन्दी—(क) रिक्ता (४।९।१४) को छोड़कर अन्य तिथियों (१।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५) में शुक्र, बृहस्पति, रवि वारों में मैत्रसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), पुनर्वसु, ज्येष्ठा, विशाखा इन १४ नक्षत्रों में स्थिर (२।५।८।११) लग्नों में चन्द्रमा स्थित हो और उस पर शुभग्रहों की दृष्टि हो, केन्द्र (१।४।७।१०) में शुभग्रहों की स्थिति हो तो कुन्त (भाला), वर्म (कवच), इष्वासन (चाप), शर (बाण=तीर), कृपाण (तलवार), असिपुत्री (छूरी), आधुनिक शस्त्र-पिस्तौल, बन्दूक आदि को धारण करना चाहिए।

(ख) ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), हरि (श्रवण), भरणी, पुनर्वसु इन १४ नक्षत्रों में शय्या (चारपाई, पलंग, मशहरी, चौकी, बिछौना आदि), आसन (छोटी चौकी, कम्बलासन, कुशासन, चटाई, कुर्सी, मृगचर्म, मचिया, पीढ़ा, खड़ाऊँ) आदि का भोग (प्रथम बार उपयोग) करना श्रेष्ठ होता है ॥ २१ ॥

अथान्धकादिनक्षत्राणि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

अन्धाक्षं वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमान्त्याभिधं
मन्दाक्षं रविविश्वमैत्रजलपाश्लेषाश्विचान्द्रं भवेत् ।
मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरणत्वाष्ट्रैन्द्रविध्यन्तकं
स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षो भगम् ॥ २२ ॥

अथान्धादिनक्षत्राणां फलान्यनुष्टुप्छन्दसाह—

विनष्टार्थस्य लाभोऽन्धे शीघ्रं मन्दे प्रयत्नतः ।
स्याद् दूरे श्रवणं मध्ये श्रुत्याप्ती न सुलोचने ॥ २३ ॥

अन्धाक्षमिति। अन्धाक्षमिति जात्यभिप्रायेणैकवचनम्। एवं मन्दाक्षमित्यादावपि।

वसुर्धनिष्ठा, पुष्यः, धाता रोहिणी, जलभं पूर्वाषाढा, द्वीशं विशाखा, अर्यमा उत्तराफल्गुनी, अन्त्यं रेवती एतान्यन्धनक्षत्राणि।

अथ रविर्हस्तः, विश्वे उत्तराषाढा, मैत्रमनुराधा, जलपं शततारका, आश्लेषा, अश्विनी, चान्द्रं मृगः, एतानि मन्दाक्षनक्षत्राणि।

अथ शिव आर्द्रा, पितरो मघा, अजैकचरणः पूर्वाभाद्रपदा, त्वाष्ट्रं चित्रा, ऐन्द्रं ज्येष्ठा, विधिरभिजित्, अन्तकं भरणी एतानि मध्याक्षनक्षत्राणि।

स्वाती, अदितिः पुनर्वसुः, श्रवः श्रवणं, दहनभं कृत्तिका, अहिर्बुध्न्यमुत्तराभाद्रपदा, रक्षो मूलम्, भगं पूर्वाफल्गुनी सुलोचननक्षत्राणि । यदाह वसिष्ठः—'अन्धकमथ मन्दाक्षं मध्यमसंज्ञं सुलोचनं पश्चात् । पर्यायेण च गणयेच्चतुर्विधं ब्रह्मधिष्ण्यातः ॥' इति । धिष्ण्याशब्दः स्त्रीलिङ्गे आर्षः । ब्रह्मधिष्ण्या रोहिणी । ततश्चतुर्द्धा पुनः पुनः उक्तान्येव नक्षत्राणि भवन्ति । ननु लाघवार्थं ग्रन्थकृत् प्रवृत्तोऽतो वसिष्ठवचनवल्लघुपद्येनैव तदर्थ-सिद्धेः प्रत्येकं नक्षत्रगणनारूपं गौरवं व्यर्थं कृतमिति चेन्न । यद्यपि तत्र शब्दलाघवमस्ति तथापि पुनः पुनर्गणनया प्रमादादन्यथापि गणनया मन्दाक्षादिनक्षत्राणां विपर्याससिद्धौ गौरवमर्थतोऽस्त्येव । प्रस्तुते पद्येऽपि शब्दबाहुल्यम् । तथाप्यर्थस्य निःसन्देहोपनिबन्धाद-तीव लाघवमस्तीत्यस्मिन् पाठे महागुणः ॥ २२ ॥

विनष्टार्थस्येति । अन्धनक्षत्रेषु विनष्टस्यापहृतस्यार्थस्य शीघ्रं लाभः प्राप्तिर्भवति । मन्दाक्षनक्षत्रेषु विनष्टार्थस्य प्रयत्नतो लाभो भवति । मध्ये मध्याक्षनक्षत्रेषु विनष्टार्थस्य दूरे स्वनगरादतीव दूरे भूभागे श्रवणं त्वदीयं द्रव्यममुकेन हृतममुकस्मिन् स्थले तिष्ठति इति लोकश्रुतिर्भवति लब्धिस्तु नास्त्येव । सुलोचननक्षत्रेषु श्रुत्याप्ती न श्रवणमपि न लब्धिरपि नेत्यर्थः । उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'लाभोऽन्धके निकट एव हृतस्य चौरैर्द्र-व्यस्य लब्धिरिह केकरभे प्रयत्नात् । दूरश्रुतिश्चिपिटभेषु कथञ्चिदेव न प्राप्तिरुत्तम-विलोचनभे कदाचित् ॥' इति । केकरभे मन्दाक्षनक्षत्रे । चिपिटभे मध्यनक्षत्रे ॥ २३ ॥

हिन्दी—धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, पूर्वाषाढा, विशाखा, उत्तराफल्गुनी, रेवती ये ७ नक्षत्र अन्धसंज्ञक हैं। हस्त, उत्तराषाढा, अनुराधा, शतभिषा, आश्लेषा, अश्विनी, मृगशिरा ये ७ नक्षत्र मन्दनेत्र संज्ञा वाले हैं। आर्द्रा, मघा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित् और भरणी ये ७ नक्षत्र मध्याक्ष हैं। स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा, मूल और पूर्वाफल्गुनी ये ७ नक्षत्र सुलोचन कहे जाते हैं।

अन्धसंज्ञक नक्षत्रों में नष्ट (खोई हुई, चोरी गई वस्तु, भूल कर चला गया छोटा बालक, या रूठ कर कहीं चला गया कोई मनुष्य) वस्तु का शीघ्र लाभ होता है। मन्दाक्ष नक्षत्रों में गयी हुई वस्तुओं का लाभ प्रयत्न (बहुत खोज, उपाय) करने पर होता है। मध्याक्ष नक्षत्रों में खोई हुई वस्तुओं का पता दूर सुनने में आता है (अर्थात् वह वस्तु दूर चली गई है और उसकी प्राप्ति में सन्देह है)। सुलोचन संज्ञक नक्षत्रों में खोये हुए धन[1] का, चोरी गयी वस्तु का, भागकर चले गये मनुष्य का न तो पता लगता है और न ही प्राप्ति होती है ॥ २२-२३ ॥

सरलता से ज्ञान के लिए सारणी

संज्ञा	अठ्ठाईस नक्षत्र							दिशा	परिणाम
अन्धाक्ष	रोहि०	पुष्य	उ.फा.	विशा.	पू०षा	धनि	रेवती	पूर्व	शीघ्रलाभ
मन्दाक्ष	मृग	आश्ले	हस्त	अनु०	उ० पा	शत.	आश्वि.	दक्षिण	प्रयत्न से लाभ
मध्याक्ष	आर्द्रा	मवा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि०	पू०भा.	भरणी	पश्चिम	दूर श्रवण
सुलोचन	पुन०	पू.फा.	स्वाती	मूल	श्रव०	उ.भा.	कृत्ति.	उत्तर	न श्रवण न लाभ

१. खोये हुए धन की प्राप्ति के लिए कार्तवीर्य की आराधना करनी चाहिए।

अथ धनप्रयोगे निषिद्धनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रैर्यद् द्रव्यं दत्तं निवेशितम् ।
प्रयुक्तं च विनष्टं च विष्टयां पाते न चाप्यते ॥ २४ ॥

तीक्ष्णेति । तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रसंज्ञकैर्नक्षत्रैर्यद् द्रव्यं सुवर्णादि दत्तं कालान्तरं विनैव दत्तं न तु स्वसत्तापरित्यागेन दत्तमित्युच्यते । निवेशितं स्वेष्टसमीपे प्रत्ययार्थं स्थापितं प्रयुक्तं कालान्तररीतिपुरःसरोत्तमर्णाधमर्णव्यवहारेण कस्मैचिद्दत्तं विनष्टं चौरादिना हृतं स्वयमेव वा क्वचित्त्यक्तं तद् द्रव्यं निश्चयेन कदाचिदपि नाप्यते । तथा विष्टयां भद्रायां पाते व्यतीपाते महापाते वा हृतं द्रव्यं न प्राप्यते । चकराद् ग्रहणेऽपि न देयमिति व्याख्येयम् । वसिष्ठवाक्यस्वरसात् । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'ध्रुवोग्रसाधारणदारुणर्क्षे निक्षिप्तमर्थं च तथा प्रनष्टम् । चौरैर्हृतं दत्तमुपप्लवे वा विष्टयां च पाते न च लभ्यते तत्' इति । उपप्लवे ग्रहणे । यत्तु केचिद्व्याकुर्वते । निश्चयेन चौरहृतस्य द्रव्यस्य प्राप्त्यप्राप्तिविचारोऽन्धकादिनक्षत्रैरेव वा । 'लाभोऽन्धके निकट एव हृतस्य चौरैः' इत्युक्तत्वात् । चौरानिर्णये त्वनेनैव विचार इति । तच्चिन्त्यम् । वशिष्ठवाक्येऽपि चौरैर्हृतमिति साक्षाच्चौरपदोपादानाद्येन केनापि विचारः कर्तव्य इति युक्तमुत्पश्यामः । एवं चौरानिर्णयेऽपि स्वेच्छया विचारः तत्रोभयैक्ये प्राप्त्यप्राप्तिनिश्चय एव । उभयैक्याभावे तु प्रयत्नेनेति ॥ २४ ॥

हिन्दी—तीक्ष्णसंज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा), मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका), ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), उग्रसंज्ञक (३ पूर्वा, भरणी, मघा) इन १५ नक्षत्रों में, भद्रा, करण और व्यतीपात योग में जो द्रव्य किसी को ऋण रूप में दिया जाय, या कहीं पर (सन्दूक में या जमीन में गाड़ कर) रख दिया जाय, किसी व्यवसाय में लगा दिया जाय या नष्ट (खो जाय या चोरी) हो जाय तो वह नहीं मिलता है ॥ २४ ॥

विशेष—प्रसङ्गवश चोरों का नाम जानने का एक प्राचीन प्रकार—

इष्टं दशघ्नं रवियुक् शरघ्नं बाणेन्दुयुक्तं शरयुग्मभक्तम् ।
लब्धं त्रिगुण्यं दलितं ह्यधस्तात् कृष्णे च शुक्ले गणयेद्विलोमम् ॥

जिन लोगों पर सन्देह हो, उनका नाम क्रम से लिख लेना चाहिए । चोरों की जितनी संख्या हो उसको इष्ट संख्या कहते हैं । इष्ट संख्या को १० से गुणा करके १२ जोड़ देना चाहिए । इस योग को ५ से गुणा कर गुणनफल में १५ जोड़ कर २५ का भाग देना चाहिए । जो लब्धि आवे उसको ३ से गुणा कर देना चाहिए । अब जो संख्या आवे, कृष्णपक्ष में अन्त से और शुक्लपक्ष में आदि से गिनने से चोर का नाम ज्ञात हो जाता है । यथा—चोरों के नाम— १. गणेश, २. महेश, ३. सुरेश, ४. दिनेश, ५. रमेश, ६. वरुण तथा ७. कुवेर । यहाँ चोरों की संख्या ७ है और प्रश्नकर्ता शुक्ल पक्ष में प्रश्न कर रहा है तो $\frac{(७\times१०+१२)५+१५}{२५}=$

$\frac{८२\times५+१५}{२५}=\frac{४१०+१५}{२५}=$१७ लब्धि प्राप्त हुई । इसको ३ से गुणा कर के आधा कर दिया

$\frac{१७\times३}{२}=२५\frac{१}{२}$ संख्या प्राप्त हुई । चूँकि शुक्ल पक्ष है और चोरों की संख्या ७ है, अत $२५\frac{१}{२}$ में

७ का भाग देने से ५वीं संख्या शेष बची; पाँचवे नाम अर्थात् आदि से गिनने पर रमेश ने चोरी की है। इस प्रकार चोर का नाम ज्ञात हुआ।

अथ जलाशयखनननृत्यारम्भयोर्मुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः
पापैर्हीनबलैस्तनौ सुरगुरौ ज्ञे वा भृगौ खे विधौ।
आप्ये सर्वजलाशयस्य खननं व्यम्भोमघैः सेन्द्रभै-
स्तैर्नृत्यं हिबुके शुभैस्तनुगृहे ज्ञेऽब्जे ज्ञराशौ शुभम् ॥ २५ ॥

मित्रार्केति । मित्रोऽनुराधा, अर्को हस्तः ध्रुवं रोहिण्युत्तरात्रयम् । वासवं धनिष्ठा, अम्बुपः शततारका, तोयं पूर्वाषाढा, अन्त्यं रेवती, पुष्यः, इन्दुर्मृगः, एतैर्नक्षत्रैस्त्रयोदशभिः सर्वेषां जलाशयानां वापीकूपतडागनाम्नां तोयाधाराणां खननं शुभमुक्तम् । उक्तञ्च व्यवहारतत्त्वे—'आप्याम्बुपान्त्यपितृमित्रवसूत्तरार्ककेन्द्वीज्यभेषु खननं सलिलाश्रयाणाम्' ॥ इति ।

जलाशयखनने लग्नविचारः । पापैः पापग्रहैर्बलरहितैः सद्भिः तनौ लग्ने सुरगुरौ बृहस्पतौ ज्ञे बुधे स्थिते सतीत्यर्थः । लग्नात्खे दशमस्थाने आप्ये जलचरराशौ विधौ सति जलाशयखननं हितम् । उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'लग्ने जीवे ज्ञेऽथवा दुर्बलैश्च क्रूरैः शुक्रे चापि मेषूरणस्थे । आप्ये चन्द्रे सर्वतोयाश्रयाणामारम्भाः स्युः सिद्धये निर्विकल्पम् ॥' इति । कश्यपेनाप्युक्तम्—'गुरौ ज्ञे वा लग्नगते शुक्रे कर्मगते विधौ । आप्यभे जलकार्याणामारम्भः सिद्धिदः स्मृतः ॥' दीपिकायां तु विशेषः—'पुष्ये मित्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभिः शस्तेऽर्के शुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्ववीर्येषु च । पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रे शुभांशोदये प्रारम्भः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दुपुत्रोदये ॥' इति । स्वं धनिष्ठा । ग्रन्थे तु वापीकूपतडागानामाकृतिभेदात्प्रत्येकं भिन्नानि नक्षत्राण्युक्तानि । तत्र वापीखननमाह ऋक्षोच्चयः—स्वात्यश्विपुष्यहस्तेषु सर्वदा च पुनर्वसौ । रेवत्यां वारुणे चैव वापीकर्म प्रशस्यते ॥' इति ।

कूपतडागारम्भमुहूर्तौ

अथ कूपारम्भमाह श्रीपतिः—'हस्तः पुष्यो वासवं वारुणं च मैत्रं पित्र्यं त्रीणि चैवोत्तराणि । प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः कूपारम्भे श्रेष्ठमाद्या मुनीन्द्राः ॥' इति ॥

तडागारम्भमाह वसिष्ठः—मैत्रेन्दुपौष्णोत्तररोहिणीषु देवेज्यवारीश्वरवारिभेषु । प्रारम्भणं सर्वजलाशयानां कार्यं सितेन्द्वंशकवारलग्ने ॥' इति । अत्र वापीकूपनक्षत्राणां पार्थक्येनाभिधानात् तडागारम्भार्थमिदं वचनमवसीयते । बहुवचनमाश्रयाभिप्रायेण । सर्वशब्दोपादानं छन्दःपरिपूरणार्थम् । तत्र कूपतडागनक्षत्रेषु सदृशनक्षत्रत्यागावशिष्टानां मेलने त्रयोदशनक्षत्राणि भवन्ति । तत्र सङ्क्षेप्तुकामेन व्यवहारतत्त्वकर्त्रा सर्वजलाशयानामारम्भे सामान्यतो जलाश्रयत्वसाधर्म्यादेतानि त्रयोदशभान्युक्तानि तान्येव च ग्रन्थकर्त्रोक्तानि । तत्र वापीकूपतडागानां भेदो लोकप्रसिद्ध एव ।

यत्तु पुनर्वसिष्ठेनोक्तम्—'शशाङ्कतोयांशकरार्यमित्रध्रुवाम्बुपित्र्ये वसुरेवतीषु । उद्यानवाप्यादितडागकूपकार्याणि सिध्यन्ति जलं ध्रुवं स्यात् ॥' इति । तज्जीर्णोद्धारविषयम् । प्रागुक्तवाक्यं प्रारम्भणपदोपादानान्नूतनखननविषयमिति पुनरुक्तिपरिहारः ।

अथ नृत्यारम्भः । तैः प्रागुक्तैर्नक्षत्रैर्व्यम्भोमघैः पूर्वाषाढामघारहितैः सेन्द्रभैर्ज्येष्ठासहितैः मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपान्त्यपुष्येन्दुज्येष्ठानक्षत्रे नृत्यं शुभम् । नृत्यारम्भः शुभ इत्यर्थः । नृत्यं नर्त्तनम् । यदाह वसिष्ठः—'तिस्रोत्तरामित्रगुरुश्रविष्ठाहस्तेन्द्रवारीश्वरपौष्णभेषु । सङ्गीतनृत्यादिसमस्तकर्म कार्यं विभौमार्कजवासरेषु ॥' इति । श्रीपतिरपि—'हस्तः पुष्यो वासवं चानुराधा ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तराश्च । पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्चन्द्रवर्त्ती नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ॥' इति । अथ लग्नशुद्धिः—तत्र हिबुके लग्नाच्चतुर्थस्थाने स्थितैः शुभग्रहैः । वीक्षिते इत्यध्याहारः । कश्यपवाक्यानुरोधात् । तनुग्रहे लग्ने बुधसहिते सति अब्जे चन्द्रे ज्ञराशौ मिथुनकन्यास्थे चतुर्थस्थैः शुभग्रहैर्वीक्षिते सति नृत्यारम्भः । यदाह कश्यपः—'लग्नसंस्थे बुधे चन्द्रे बुधराशौ तु वीक्षिते । शुभग्रहैश्चतुर्थस्थैर्नाट्यारम्भः प्रशस्यते ॥' इति । अत एव रत्नमालायामपि—'बुधे विलग्ने शशिनि ज्ञराशौ शुभवीक्षिते । हिबुकस्थैः शुभैर्नाट्यप्रारम्भः सद्भिरिष्यते ॥' इति । इदं पद्यमेव व्याख्येयम् ॥ २५ ॥

हिन्दी—(क) अनुराधा, हस्त, ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), धनिष्ठा, शततारका, मघा, पूर्वाषाढा, रेवती, पुष्य और मृगशिरा इन १३ नक्षत्रों में, पापग्रह (सू० मं० श०) निर्बल[1] रहने पर, लग्न में गुरु या बुध (अथवा दोनों हो) लग्न से १०वें स्थान में शुक्र और जलचर राशि (४।१०।११।१२) के चन्द्रमा हों तो तभी जलाशयों (कूप, बावड़ी, तालाब, झील, नलकूप आदि) का खनना-बनाना शुभ होता है ।

(ख) पूर्व लिखित १० नक्षत्रों में से पूर्वाषाढा और मघा को छोड़ कर तथा ज्येष्ठा को जोड़ कर १२ नक्षत्रों में, लग्न से चौथे स्थान में शुभग्रहों के रहने पर, लग्न में बुध एवं बुध की राशि मिथुन, कन्या) में चन्द्रमा के रहने पर पहले-पहल नृत्य का आरम्भ करना (नृत्य सीखना, राज-दरबार में नृत्य-प्रदर्शन आदि) शुभ होता है ॥ २५ ॥

विशेष—उक्त १२ नक्षत्रों में चन्द्रमा, वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, कुम्भ और मीन इन राशियों पर रहते हैं । अतः बुध की राशि में चन्द्रमा रहने का क्या प्रयोजन ? केवल शुभाधिक्य द्योतनार्थ प्रयोजन है ।

कूपारम्भ में कूपचक्र का भी आचार्यों ने बड़ा महत्त्व माना है । ४ प्रकार के कूपचक्र हैं । जिस दिन चारों प्रकार के कूपचक्र मिल जायें उस समय निर्जल भूमि पर भी जलोपलब्धि होती है । यथा—

रोहिण्यर्क्षात्सूर्यभाद्भौमभाच्च राहो ऋक्षाद् गण्यते कूपचक्रम् ।
यस्मिन्काले सर्वमेतत्प्रशस्तं तस्मिन् भूमौ निर्जलायां जलत्वम् ॥

अतः चारों चक्रों को क्रम से लिखा है—

---

१. जब ग्रह अपनी नीच राशि, शत्रु की राशि में होता है, अस्त रहता है, शत्रुदृष्ट होता है, आकाश में धूमिल दीखता है, तब वह निर्बल कहा जाता है ।

(१) रोहिणीचक्रम्—

रोहिण्यादिलिखेचक्रं त्रयं मध्ये प्रतिष्ठितम् ।
पूर्वादि दिक्षु सर्वासु सृष्टिमार्गेण दीयते ॥ १ ॥
मध्ये शीघ्रं जलं स्वादु पूर्वभूमौ च खण्डितम् ।
आग्नेय्यां सुजलं प्रोक्तं दक्षिणे निर्जलं भवेत् ॥ २ ॥
नैर्ऋते चामृतं वारि पश्चिमे शोभनं जलम् ।
वायव्येऽपि जलं हन्ति ह्युत्तरे स्वादुकं जलम् ॥ ३ ॥
ईशाने कटुकं क्षारं प्रत्यक्तीक्ष्णस्य सम्भवः ।
दिग्विभागेन विज्ञेयमेवं वारिविनिश्चयम् ॥ ४ ॥

मध्य	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशाएँ
३	३	३	३	३	३	३	३	३	नक्षत्र सं०
रोहि. मृग. आर्द्रा	पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा	मघा पू.फा उ. फा	हस्त चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा	मूल पू. षा. उ. षा.	श्रवण धनिष्ठा शतभिषा	पू.भा. उ.भा. रेवती	अश्विनी भरणी कृत्तिका	नक्षत्र नाम २७
शीघ्र स्वादु	खण्डित	सुजल	निर्जल	अमृत	शोभन	जल हानि	स्वादु	कटु	फल

(२) सूर्यनक्षत्रात्—

कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः स्वादूदकं पूर्वदिशस्त्रिभिर्भैः ।
स्वल्पं जलं स्वादुजलं जलक्षयं स्वादूदकं क्षारजलं शिलाश्च ॥
मिष्टं जलं क्षारजलं क्रमात्फलं ज्ञेय बुधैर्भास्करभात्सदा ग्रहैः ।

मध्य	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशाएँ
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७ नक्षत्र
स्वादु	स्वल्प	स्वादु	जलहानि	स्वादु	क्षार	शिला	मिष्ट	क्षार	फल

(३) भौमभात् कूपचक्रम्—

शशिशणब्धित्रित्र्यब्धिगुणाब्धयो वध जलं हि सुसिद्धिरभङ्गदम् ।
रुजभसिद्धियशोऽर्थप्रसिद्धये जलविभङ्गकरः कुजभादिति ॥

१	५	४	३	३	४	३	४	२७ नक्षत्र
वध जल	सिद्धि	शुभ	रोग	अशुभ	रोग	धनाप्ति	जलभङ्ग	फल

(४) राहुभात्कूपचक्रम्—

राहु ऋक्षात्त्रयं पूर्वे त्रयमाग्नेयतः क्रमात् ।
मध्ये चत्वारि देयानि फलं वाच्यं शुभाशुभम् ॥

पूर्वे शोककरो राहुराग्नेयां जलदो भवेत्।
दक्षिणे स्वामिमरणं[1] नैर्ऋत्यां बहुदुःखदः॥
पश्चिमे सुखसौभाग्यं वायव्ये जलवर्धनम्।
उत्तरे निर्जलं विद्यादीशाने जलवृद्धिदम्॥
मध्ये च सजलं वाच्यं नान्यथा रुद्रभाषितम्।

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	दिशाएँ
३	३	३	३	३	३	३	३	४	२८ नक्षत्र
शोक	जलद	स्वामि मरण	बहु दुःख	सुख	जलवृद्धि	निर्जल	जल वृद्धि	सजल	फल

अथ सेवकस्य स्वामिसेवायां मुहूर्तं शालिन्याह—

क्षिप्रे मैत्रे वित्सितार्केज्यवारे सौम्ये लग्नेऽर्के कुजे वा खलाभे।
योनेर्मैत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा कार्या स्वामिनः सेवकेन॥ २६॥

क्षिप्रे मैत्रे इति। क्षिप्रे मैत्रे अश्विनीपुष्यहस्तचित्रानुराधामृगरेवतीनक्षत्रेषु वित्सितार्केज्यवारे बुधशुक्रसूर्यगुरुवारेषु तथा सौम्यग्रहे लग्नसंस्थे सति अर्के सूर्ये वाऽथवा कुजे भौमे वा खलाभे दशमैकादशस्थे सति सेवकेन भृत्येन स्वामिनो राजादेः सेवा कार्या। राजादिदर्शनं प्रागुक्तम्। वेतनग्रहणकार्याद्यङ्गीकाररूपा सेवास्मिन् मुहूर्ते कार्या। तत्रापि स्वामिसेवकयोर्योनिमैत्र्यां सत्याम्। च पुनः राशिपोः स्वामिसेवकयोर्यौ जन्मराशी तयोर्यावधिपती तयोरपि मैत्र्यां प्रीतौ सत्यां कार्या। उक्तञ्च श्रीपतिना—'शुभे विलग्ने दशमायगे च रवौ कुजे वाथ वशेन योनेः। विद्यायुधाभ्यासरतेन कार्यः समाश्रयः स्वामिनि सेवकेन॥' इति। कश्यपोऽपि—'दशमैकादशे सूर्ये कुजे वा शुभलग्नगे। विद्यायुधाभ्यासयुक्तसेवाकर्मापि सिद्ध्यति'॥ इति। राशिमैत्रीसाहित्यं तु—'बभ्रूरगं श्वैणमिभेन्द्रसिंहमोत्वाखुसंज्ञं त्वजवानरं च। गोव्याघ्रमश्वोत्तममाहिषं च वैरं नृनार्योर्नृपभृत्ययोश्च॥' इति। वसिष्ठोक्तिमङ्गीकृत्य तुल्यन्यायत्वादत्राप्युक्तं ग्रन्थकृता। योनिमैत्री राशिमैत्री च विवाहप्रकरणे 'अश्विन्यम्बुपयोः' इति 'मित्राणि द्युमणेः' इति च वक्ष्यति॥ २६॥

हिन्दी—क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) मैत्रसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) इन ७ नक्षत्रों में बुध, शुक्र, रवि, गुरु वारों में शुभग्रह लग्न में हो, सूर्य या मंगल १०वें या ११वें हों, योनि की मित्रता हो (स्वामी और सेवक दोनों के व्यावहारिक नाम की योनियों[2] में मित्रता हो) और राशिस्वामियों में भी मैत्री हो, ऐसी स्थिति में सेवक को स्वामी की सेवा आरम्भ करनी चाहिए। सेव्य का नक्षत्र सेवक के नक्षत्र से पहले नहीं होना चाहिए॥ २६॥

---

१. मरणमष्टविधम् (वृ० दै० रञ्जन)—"यथा दुःखं भयं लज्जा रोगः शोकस्तथैव च। मरणं चापमानं च मृत्युरष्टविधः स्मृतः॥" इति।

२. योनिमैत्री और ग्रहमैत्री के लिए विवाहप्रकरण २५–२८ देखिये।

अथ द्रव्यप्रयोगऋणग्रहणमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्वात्यादित्यमृदुद्विदैवगुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे
लग्ने धर्मसुताष्टशुद्धिसहिते द्रव्यप्रयोगः शुभः।
नारे ग्राह्यमृणं तु सङ्क्रमदिने वृद्धौ करेऽर्केऽह्नि यत्
तद्वंशेषु भवेदृणं न च बुधे देयं कदाचिद्धनम् ॥ २७ ॥

स्वात्यादित्येति। स्वातीपुनर्वसुचित्रानुराधामृगरेवतीविशाखापुष्यश्रवणधनिष्ठाशततारकाश्विनीष्वेकादशनक्षत्रेषु द्रव्यप्रयोगः शुभः। द्रव्यं परस्मै ऋणत्वेन देयम्। यदाह भीमपराक्रमः—'मृदुपुष्याश्विनी चैव विशाखाश्रवणत्रयम्। पुनर्वसौ च शंसन्ति धनादिनिधिवर्त्तनम् ॥' इति। वर्त्तनमृणादिरूपेण दानम्। मिश्रनक्षत्रत्वाद्विशाखानिषेधे प्राप्ते ऋणदाने एव निषेध इति विशेषः। हृतनष्टादौ तु निषिद्धैव। अथ लग्ने चरे मेषकर्कतुलामकराणामन्यतमे। धर्मो नवमम्, सुतः पञ्चमम्, अष्टशब्देन लक्षणयाष्टमस्थानमुच्यते तेषां शुद्धिः नवमपञ्चमस्थानयोः शुभग्रहसत्त्वं पापग्रहराहित्यं च। अष्टमे तूभयराहित्यमित्यर्थः। एवंरूपया शुद्धया सहिते लग्ने ऋणं देयम्। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'शुद्धेषु धर्मात्मजनैधनेषु चरे विलग्ने द्रविणप्रयोगः' इति। आरे मङ्गलवारे ऋणं न ग्राह्यम्। तदुक्तं ज्योतिःप्रकाशे—'ऋणं भौमे न गृह्णीयान्न देयं बुधवासरे। ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्सञ्चयं सोमनन्दने ॥' इति। ऋतुविशेषे सङ्क्रमः सङ्क्रान्तिः। तद्दिवसे वृद्धौ वृद्धियोगे करेऽर्केऽह्नि हस्तनक्षत्रसहिते रविवारे हस्तार्के इति यावत्। तत्रापि ऋणं न ग्राह्यमिति प्रत्येकं सम्बन्धः। ननु कुतो न ग्राह्यमित्यत आह—यदिति। यद्यस्माद्धेतोस्तदृणं तद्वंशेषु ऋणग्रहीतृकुलेषु भवेत्। तदृणं तत्पुत्रपौत्रादिभिरपि परिहर्तुमशक्यमित्यर्थः। अर्थादेषु भौमसङ्क्रात्यादिदिनेषु ऋणमवश्यं परिहर्त्तव्यमिति निष्कृष्टोऽर्थः। 'हस्तेऽर्कवारे सङ्क्रान्तौ यदृणं स्यात्कुलेषु तत्। वृद्धियोगे तथा ज्ञेयमृणच्छेदं तु कारयेत् ॥' इति ज्योतिःप्रकाशकारोक्तेश्च। अथ बुधे बुधवारे कदाचिदपि ऋणं न देयम्। 'न देयं बुधवासरे' इत्यधुनैवोक्तत्वात् ॥ २७ ॥

हिन्दी—स्वाती, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) विशाखा, पुष्य, श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) अश्विनी, इन १२ नक्षत्रों में, चरसंज्ञक (१।४।७।१०) लग्नों में, लग्न से ९।५।८ स्थान शुद्ध हों, तो द्रव्य का प्रयोग (रुपयों का आदान-प्रदान, बैंक में जमा करना, वीमा कराना आदि) शुभ होता है।

मंगलवार को महाजन से ऋण (कर्ज) नहीं लेना चाहिए। सूर्य की संक्रान्ति के दिन, वृद्धियोग में, हस्तनक्षत्र तथा रविवार को जो ऋण लिया जाता है वह ऋण लेने वाले के वंश-परम्परा के लिए हो जाता है (कभी चुकता नहीं)। अतः इन दिनों में ऋण कदापि नहीं लेना चाहिए। और बुधवार को धन कदापि नहीं देना चाहिए। (जिन दिनों में ऋण लेना निषेध किया गया है, उन दिनों में ऋण का शोध करने से ऋण से मुक्ति हो जाती है) ऋणग्रस्त कुडम्ब को भौमव्रत करने से ऋणमुक्ति अवश्य होती है)। बुधवार को धनसंग्रह उत्तम होता है ॥ २७ ॥

अथ हलप्रवहणमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मूलद्वीशमघाचरध्रुवमृदुक्षिप्रैर्विनाऽर्कं शनिं
पापैर्हीनबलैर्विधौ जललवे शुक्रे विधौ मांसले।
लग्ने देवगुरौ हलप्रवहणं शस्तं न सिंहे घटे
कर्काजैणघटे तनौ क्षयकरं रिक्तासु षष्ठ्यां तथा ॥ २८ ॥

मूलेति। मूलविशाखामघाभिश्चरध्रुवमृदुक्षिप्रैश्च एकोनविंशतिनक्षत्रैः हलप्रवहणं हलप्रवृत्तिं कुर्यात्। यदाह नारदः—'मृदुध्रुवक्षिप्रचरविशाखापितृभेषु च। हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यान्मूलभे वृषः ॥' इति। विशेषमाह श्रीपतिः—'मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूले मघाविशाखासहितेषु भेषु। हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यान्नीरोगमुष्कान्वितसौरभेयैः ॥' इति। नीरोगाः पीडारहिता ये मुष्का वृषणास्तैरन्विता ये सौरभेया वृषास्तैर्विदध्यादित्यर्थः। उक्तञ्चैतत्। वृषाणां वृषणास्तु फलरूपा अतस्तादृशैर्वृषैः कृतं कर्षणं सफलं स्यात्। चूर्णितवृषणैर्वृषैः कृतं कर्षणं निष्फलमेव भवती। तथार्कं सूर्यवारं शनिवारं च त्यक्त्वा अन्यवारेषु चन्द्रमङ्गलबुधबृहस्पतिशुक्रवारेषु हलप्रवहणं शुभम्। 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' इति विनायोगे द्वितीया। उक्तञ्च व्यवहारतत्त्वे—'पूर्वाद्वीशयमाग्निभेऽर्कयमयो रिक्तासु नेष्टा कृषिः ॥' इति।

अथ सामान्यतो लग्नशुद्धिः। तत्र पापग्रहैर्हीनबलैर्निर्बलैरुपलक्षिते लग्ने विधौ चन्द्रे शुभे मांसले बलिनि पुष्टे उदित इत्यर्थः। तत्र विधौ चन्द्रे जलगृहे जलराशिस्थे सति देवगुरौ लग्नस्थे च सति हलप्रवहणं शुभम्। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'शक्तिशालिनि सितेऽथ शीतगौ दुर्बलैरसितभौमभास्करैः। आश्रिते शशिनि वारिजोदये लग्नवर्तिनि गुरौ कृषिक्रिया ॥' इति। कश्यपोऽपि—'गुरौ लग्नगते शुक्रे बलिन्यापोदये विधौ। शस्ता कृषिक्रिया तत्र दुर्बलैः क्रूरखेचरैः ॥' इति ॥

अथ विशेषतो लग्नशुद्धिः। तत्र सिंहे, घटे कुम्भे, कर्के, अजे मेषे, एणे मकरे, घटे तुलायामेषु लग्नेषु कृषिकर्म न शस्तम्। यतस्तत् क्षयकरं पीडाकरम्। तथा रिक्तासु चतुर्थीनवमीचतुर्दशीषु षष्ठ्यां च क्षयकरम्। तथाशब्दोनुक्तसमुच्चयार्थः। तेनाष्टम्यामपि न शस्तं कृषिकर्म। उक्तञ्च ज्योतिःसारसागरे—'मेषलग्ने पशून् हन्ति कर्कटे जलजं भयम्। सिंहे सस्यभयं ज्ञेयं तुलायां हलसङ्क्षयः। मकरे सस्यनाशः स्यात्कुम्भे चौरभयं तथा ॥ हन्त्यष्टमी बलीवर्दान्नवमी सस्यघातिनी। षष्ठी च कीटजननी पशून् हन्ति चतुर्दशी ॥' इति। चतुर्थ्यामपीदं फलं ध्येयम् ॥ २८ ॥

हिन्दी—मूल, विशाखा, मघा, चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) इन १९ नक्षत्रों में, रवि और शनि को छोड़ कर अन्य वारों (सो० मं० बु० बृ० शु०) में, पापग्रहों (सू० मं० श०) के निर्बल रहने पर, चन्द्रमा जलचर राशि (४।१०।११।१२) के नवांश में हो, शुक्र और चन्द्रमा पूर्णबली[1] हो, लग्न में बृहस्पति हो,

---

१. जब ग्रह अपनी उच्च राशि, अपनी राशि, अपने नवांश, अपने मूल त्रिकोण में अपने मित्र की राशि वर्गोत्तम राशि में रहता है, अपने मित्र और शुभग्रह से देखा जाता है, आकाश में निर्मल चमकीला दिखाई पड़ता है तो सबल कहा जाता है।

तो हल-प्रवहण (वर्ष के आरम्भ में हल जोतना) शुभ कहा गया है। सिंह, कुम्भ, कर्क, मेष, मकर और तुला लग्नों में, रिक्ता (४।९।१४) और षष्ठी तिथियों में पहले-पहल हल चलाने से कृषि में हानि होती है ॥ २८ ॥

अथ बीजोप्तिमुहूर्तफणिचक्रहलचक्राणि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

एतेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि भौमं विना
बीजोप्तिर्गदिता शुभा, त्वगुभतोऽष्टाग्नीन्दुरामेन्दवः।
रामेन्द्वग्नियुगान्यसच्छुभकराण्युप्तौ हलेऽर्कोज्झिताद्
भाद्रामाष्टनवाष्टभानि मुनिभिः प्रोक्तान्यसत्सन्ति च ॥ २९ ॥

एतेष्विति। श्रुतिः श्रवणः, वारुणं शततारका, अदितिः पुनर्वसुः, विशाखा प्रसिद्धा, एतैरुडुभिर्नक्षत्रैर्विनैतेषु पूर्वोक्तनक्षत्रेषु मूलमघाध्रुवमृदुक्षिप्रधनिष्ठास्वातीषु पञ्चदशनक्षत्रेषु बीजोप्तिर्बीजवपनं शुभम्। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'हस्ताश्विपुष्योत्तररोहिणीषु चित्रानुराधामृगरेवतीषु। स्वातौ धनिष्ठासु मघासु मूले बीजोप्तिरुत्कृष्टफला प्रदिष्टा ॥' इति। वसिष्ठेनाप्येतावन्त्येव नक्षत्राण्युक्तानि—'धातृद्वये कौणपपित्र्यपुष्ये हस्तत्रये त्र्युत्तरमैत्रभेषु। पौष्णे धनिष्ठास्वथ वाश्विनीषु बीजोप्तिरुत्कृष्टफलप्रदा स्यात् ॥' इति। कौणपो मूलम्। नारदेनाप्युक्तानि—'मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु पितृवायुवसूडुषु। समूलभेषु बीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा ॥' इति। कश्यपेनापि—'वसुवायुजनैर्ऋत्यक्षिप्रध्रुवमृदूडुषु। सीतां स्मृत्वाथ बीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा ॥' इति। अत्र मघा नोक्ता। भौमो मङ्गलवारो निषिद्धः। अर्थात् सूर्यचन्द्रबुधगुरुशुक्रशनीनां वारेषु बीजोप्तिः शुभा। अत्र विनायोगे द्वितीया। 'एष्वैन्द्रश्रुतिवारुणेषु च कुजे बीजोप्तिः' इति व्यवहारतत्त्वे उक्तत्वात्। 'नेष्टा कृषिः' इत्यतो नशब्दोऽत्रानुवर्त्तते। तेन बीजोप्तिर्नेष्टेत्यर्थः। अत्र कालविशेषनिषेधो राजमार्तण्डे—'रवौ रौद्राद्यपादस्थे भूमेः सञ्जायते रजः। तस्माद् दिनत्रयं तत्तु बीजवापे परित्यजेत् ॥' इति।

अथ बीजोप्तौ फणिचक्रमुच्यते। अगुभतो न विद्यन्ते गावः किरणा यस्यासावगुः। यस्य स्वरूपाभावः तस्य कुतस्तरां किरणाः तादृशोऽगू राहुस्तस्य भं नक्षत्रं तस्मादित्यर्थः। राह्वधिष्ठितनक्षत्रादष्टौ भानि असदसमीचीनानि। ततस्त्रीणि शुभानि। तत एकमशुभम्। ततस्त्रीणि शुभानि। ततोप्येकमशुभम्। ततस्त्रीणि शुभानि। ततोप्येकमशुभम्। ततस्त्रीणि शुभानि। ततश्चत्वार्यशुभानि। एवं बीजोप्तौ सप्तविंशतिनक्षत्राणां शुभाशुभत्वम्। उक्तञ्च नारदेन—'भवेद्भत्रितयं मूर्ध्नि धान्यनाशाय राहुभात्। गले त्रयं कज्जलाय वृद्ध्यै द्वादश चोदरे ॥ निस्तण्डुलत्वं लाङ्गूले भचतुष्टयमीरितम्। नाशो बहिःपञ्चके स्याद् बीजोप्ताविति चिन्तयेत् ॥' इति। राहुर्यस्मिन्नृक्षेऽस्ति तस्मान्नक्षत्रत्रयं मूर्ध्नि मस्तके स्थाप्यं धान्यनाशकरं भवति। ततस्त्रयं गले स्थाप्यं कज्जलाय श्यामिकासम्पादनाय स्यात्। ततो द्वादशभानि बहिर्नक्षत्ररहितानि उदरे स्थाप्यानि। तानि धान्यवृद्धये स्युः। ततो नक्षत्रचतुष्टयं पुच्छे निस्तण्डुलत्वकरं स्यात्। ततोऽवशिष्टं बहिर्नक्षत्रपञ्चकं धान्यनाशकरं स्यात्। रत्नमालायामपि—'मूर्ध्नि त्रीणि गले त्रयं च जठरे धिष्ण्यानि च द्वादश। स्यात्पुच्छे च चतुष्टयं बहिरतो भानां स्थितं

पञ्चकम् । क्ष्वेडं कज्जलमन्नवृद्धिरधिका निस्तण्डुलत्वं क्रमात्स्यादीतिप्रभवं भयं च फणिभाद् बीजोप्तिकाले स्फुटम्' ।। इति । अत्र केचित्फणिभात्सूर्यनक्षत्रादिति व्याचख्युः । तत्र युक्तिः—'सूर्यभादुरगः स्थाप्यः' इति स्वरोदयवाक्यैकवाक्याभावात् । तत्र नारदवाक्ये साक्षाद्राहुभादित्युक्तत्वात् । 'राहुधिष्ण्यात्समारभ्य धिष्ण्येष्वष्टसु निष्फलम्' इति कश्यपोक्तेश्च । 'सूर्यभादुरगः स्थाप्यः' इति तु स्वरोदयवचनम् । बीजवापने लग्नशुद्धिमाह वसिष्ठः—'भवरिपुसहजे पापैस्त्रिकोणकेन्द्रस्थितैश्च शुभैः । कथितेषु च धिष्ण्येष्वपि शुभलग्ने बीजवापनं कार्यम्' ।। इति ।

अथ हलप्रवहणे चक्रमुच्यते—हले इति । हले हलचक्रेऽर्कोज्झितात्सूर्यभुक्तान्नक्षत्रात्क्रमेण त्रीणि नक्षत्राणि असन्ति अशुभफलानि । ततोऽष्टभानि सन्ति शुभफलदानि । ततो नवभान्यसन्ति । ततोऽष्टौ भानि सन्ति । यथा सूर्ये आर्द्रायां भुक्तभं मृगः । तत आरम्य त्रीणि मृगार्द्रापुनर्वसुभान्यशुभानि । ततः पुष्याश्लेषामघापूर्वाफल्गुन्युत्तराफाल्गुनीहस्तचित्रास्वातीनक्षत्राणि शुभानि । ततो विशाखानुराधाज्येष्ठामूलपूर्वाषाढोत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणधनिष्ठानक्षत्राणि अशुभानि । ततः शततारकापूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदारेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकारोहिणीनक्षत्राणि शुभानि । एवमष्टाविंशतिभानि भवन्ति । यदाह वसिष्ठः—'अर्कगतागतसंस्थं भत्रितयं नेष्टमुभयतस्त्विष्टम् । षोडशधिष्ण्यं नवकं शिष्टमनिष्टं च लाङ्गले चक्रे ।।' इति अर्केण गतं भुक्तम् । आगतं भोग्यसंस्थमाक्रान्तम् । एतद्भत्रितयं नेष्टम् । तत उभयतः षोडशधिष्ण्यम् इष्टम् । यथा सूर्यभुक्तभात्प्राक्तनान्यष्टौ शुभानि सूर्यभोग्यभादग्रेतनानि शुभानि स्युरित्यर्थः । शिष्टमुर्वरितं मध्यगतनक्षत्रनवकमनिष्टम् । एवमत्राप्यष्टाविंशतिभानि । नारदोऽपि—'हलादौ वृषनाशाय भत्रयं सूर्यभुक्तभात् । अग्रे ऋक्षत्रयं लक्ष्म्यै सौख्यं पार्श्वस्थपञ्चके । शूलत्रयेऽपि नवकं मरणायान्यपञ्चकम् । श्रियै पुच्छत्रयं श्रेष्ठं स्याच्चक्रे लाङ्गले शुभे' ।। इति । अस्यार्थः—हलप्रवहणसमये सूर्यभुक्तनक्षत्रान्नक्षत्रत्रयं वृषनाशाय स्यात् । तदग्रे नक्षत्रत्रयं लक्ष्म्यै स्यात् । तदग्रे पार्श्वनक्षत्रपञ्चकं सौख्याय स्यात् । तदग्रे शूलत्रयगतं नक्षत्रनवकं मरणाय स्यात् । तदग्रेऽन्यत्पार्श्वपञ्चकं श्रियै स्यात् । तदग्रे पुच्छगतं नक्षत्रत्रयं श्रेष्ठं शुभफलदमिति । अनेनापि प्रकारेण मृगादीनि तान्येव शुभाशुभानि सम्भवन्ति ।

तत्र हलचक्राकृतिर्लिख्यते । कश्यपोऽपि—'त्रिष्वष्टसु नवर्क्षेषु सप्तस्वर्कविमुक्तभात् । हानिवृद्धिः कर्तृमृत्युर्लक्ष्मीश्चैव यथाक्रमम् ।।' इति हलनक्षत्रोक्त्यनन्तरमुक्तवान् । अस्यायमर्थः—अर्कविमुक्तभात्त्रिषु हानिः, ततो नवसु भेषु कर्तुर्नाशः, ततः सप्तसु भेषु लक्ष्मीप्राप्तिरिति यथाक्रमं फलं ज्ञेयम् । अत्र सप्तविंशतिनक्षत्रोक्तेरभिजिद्गणना नास्ति । एवं बहुमुनिसंवादे सति 'इनप्रोज्झितर्क्षात्त्रिवह्नीषुत्रीषुत्रीषुत्रिरामाण्यशुभदशुभदानि (३।३।३।५।३।५।३।३) क्रमाल्लाङ्गलाख्ये ।।' इति । यदुक्तं केशवदैवज्ञैर्मुहूर्ततत्त्वे तच्चिन्त्यम् । ऋषिवाक्यमूलाभावात् । नन्विदम् 'अर्काक्रान्तगतागतान्यनडुहां नाशाय भान्यग्रतो वृद्ध्यै भत्रितयं ततश्च कृषिकृद्घाताय शूलत्रये । धिष्ण्यानां नवकं तदन्तर्गते स्यातां श्रियै पञ्चके यच्चान्यत्त्रितयं तदत्र कथितं चक्रे शुभं लाङ्गले ।।' इति श्रीपतिवाक्यालोचनेनोक्तम् । तथाहि । अर्काक्रान्तगतागतानि भान्यनडुहां नाशाय स्युः ।

तदग्रतो भत्रयं वृद्धयै । ततः शूलत्रये धिष्ण्यानां नवकं लेख्यं कृषिकृद्घाताय स्यात् । शूलत्रयमध्यगते पञ्चके नक्षत्रदशकमित्यर्थः । श्रियै स्याताम् । यच्चान्यत्त्रितयं नक्षत्रत्रयं शुभं स्यादिति । एवं सति चक्रन्यासः । अनेन प्रकारेण प्रोज्झितर्क्षात्त्रीणीत्यादीनि शुभाशुभानि भानि सम्भवन्तीति चेत् । तदेतदविचारितरमणीयम् । नायं श्रीपतिवाक्ये शब्दार्थ उच्यते किन्तु मूलवाक्यादर्शनाबोधपुरस्सरस्वाज्ञानप्रकाशकः । शब्दार्थस्त्वयम् । अर्काक्रान्तगतागतानि त्रीणि भानि वृषनाशकराणि स्युः । हलमध्यमभागप्रान्ते ततस्त्रीणि वृद्धयै हलदण्डाधोभागे ततः पञ्चनक्षत्राण्यपास्याग्रिमाणि नवभानि शूलत्रये त्रिकं त्रिकं कृषिकृद्घाताय स्थाप्यानि । नन्वत्र पञ्चनक्षत्रत्यागे को हेतुरित्यत आह—तदन्तर्गत इति । तच्छब्देन हलोर्ध्वदण्डशूलोर्ध्वदण्डावुच्येते । तयोरन्तर्गते मध्ये विद्यमाने पञ्चकं पञ्चकं च पञ्चके श्रियै स्थाप्ये । नक्षत्रदशकमिति यावत् । तच्चान्यद्भत्रितयं हलदण्डोर्ध्वभागे शुभफलदं लेख्यम् । एवं सति ऋषिवाक्यैः सहास्यैकार्थता सम्पद्यते । यत्तु महेश्वरः—'सूर्याधिष्ठितभात्त्रिवेदविषयार्कांशेशविश्वार्ककैस्तुल्यान्येव गतानि भानि मुनिभिः प्रोक्तानि शस्तानि च । आद्ये लाङ्गलयोजने' इत्युवाच—तदपि चिन्त्यमेव । यत्त्वेवमेव टोडरानन्दे—'अर्काक्रान्ते' इत्यादिपद्यव्याख्यानं पितृचरणकृतं, तदपि स्पष्टार्थवसिष्ठाद्यृषिवाक्यविशेषादर्शनकृतं प्रतिभाति । विशेषवाक्यादर्शने तु सामान्यवाक्यस्य नानाविधोऽर्थो व्याकर्तुं शक्यते । विशेषदर्शने तु सामान्यवाक्यस्य विशेष एव पर्यवसानमित्यलमतिप्रसक्तानुप्रसक्तेन । अत्र हलचक्रे बीजोप्तिचक्रे वा विहितनक्षत्राणामिष्टफलदस्थानपातसत्त्वे च परिग्रहो न्याय्यः, अन्यथात्वे त्यागः । निषिद्धानां तु सर्वथैव त्याग इति निकृष्टोऽर्थः ॥ २९ ॥

हिन्दी—हल-प्रवहण में कहे गये तिथिवार नक्षत्रों में श्रवण, शतभिषा, पुनर्वसु, विशाखा, नक्षत्र और भौमवार को छोड़कर शेष (मूल, मघा, स्वाती, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य इन १५ नक्षत्रों में, सोम, बुध, गुरु, शुक्र वारों में), भद्रा को छोड़ १।२।३।५।७।८।१०।११।१२।१३।१५ तिथियों में बीज बोना उत्तम होता है ॥ २९ ॥

बीज बोने में राहुचक्र—राहु जिस नक्षत्र पर हो उससे ८।३।१।३।१।३।१।३।४ नक्षत्र क्रम से अशुभ एवं शुभ होते हैं (अर्थात् राहु के नक्षत्र से ८।१२।१६।२०वाँ तथा २४।२५।२६।२७वाँ नक्षत्र अशुभ और शेष (९।१०।११।१३।१४।१५।१७।१८।१९।२१।२२।२३वाँ नक्षत्र) शुभ कहे गये हैं । निम्नलिखित उपयोगी पद्य पर ध्यान दें—

राहुभादष्टमं यावद् द्वादशं षोडशं तथा ।
विंशं जिनाच्चतुष्कं च बीजवापे परित्यजेत् ॥

बीज बोने में राहु नक्षत्र से फणिचक्र

२७ नक्षत्र	८	३	१	३	१	३	१	३	४
फल	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ

हल चक्र में सूर्य से त्यक्त नक्षत्र से ३।८।९।८ नक्षत्रों में क्रम से अशुभ और शुभ होता है ।

(अर्थात् ३ अशुभ, ८ शुभ, ९ अशुभ और ८ शुभ है) विहित नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो तथा चक्र में भी शुभ नक्षत्र रहे तो हल-प्रवहण या बीज-वपन करना चाहिए।

सूर्यभुक्त नक्षत्र से हलचक्र

२८ नक्षत्र	३	८	९	८
फल	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ

अथ शिरोमोक्षणविरेकादिधर्मक्रियामुहूर्तान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

त्वाष्ट्राग्निमित्रकभाद् द्वयेऽम्बुपलघुश्रोत्रे शिरामोक्षणं
भौमार्केज्यदिने विरेकवमनाद्यं स्याद् बुधार्की विना।
मित्रक्षिप्रचरध्रुवे रविशुभाहे लग्नवर्गे विदो
जीवस्यापि तनौ गुरौ निगदिता धर्मक्रिया तद् बले ॥ ३० ॥

त्वाष्ट्रादिति। त्वाष्ट्राद् द्वयं चित्रास्वाती, मित्राद् द्वयमनुराधाज्येष्ठा, कभाद् द्वयं रोहिणीमृगौ, अम्बुपः शततारका, लघूनि अश्विनीपुष्यहस्ताभिजितः, श्रोत्रं श्रवणः, एषु नक्षत्रेषु तथा भौमार्केज्यदिने मङ्गलगुरुरविवासरेषु शिरामोक्षणं रुधिरवाहिनी नाडी शिरा तस्या मोक्षणं सूक्ष्मशस्त्रघातेन शिरातो रक्तमोक्षणं कुर्यादित्यर्थः। उक्तञ्च ज्योतिःसारसागरे—'चित्रायुगे त्रिधियुगे मित्रयुगे लघुषु वारुणे विष्णौ। वस्तिविरेचनवेधाः शुभदिनतिथिचन्द्रलग्नेषु ॥' इति। वारे सम्मत्यभावः। बुधार्की बुधशनैश्चरात्रपास्यान्यवारेषु पूर्वोक्तनक्षत्रेषु च विरेकं वमनाद्यम्। औषधेन सुखप्रवृत्तिर्विरेकः वमनं प्रसिद्धमेव। तदाद्यं कर्म कार्यमुक्तम्। अथ मित्रक्षिप्रचरध्रुवेषु त्रयोदशनक्षत्रेषु तथा रवौ रविवारे शुभाहे चन्द्रबुधगुरुशुक्रवारेषु धर्मक्रिया कोटिहोमरुद्रानुष्ठानादिका कार्या। उक्तञ्च दीपिकायाम्—'शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवोडुषु। शुभराशिविलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम् ॥' इति। शान्तिकं धर्मकृत्यं कोटिहोमादिकम् ॥ अथ विदो बुधस्य जीवस्य गुरोर्लग्नवर्गे यस्मिन् कस्मिंश्चिल्लग्ने गुरुबुधयोः षड्वर्गे सति तनौ लग्ने च गुरौ सति कर्तुश्च गुरुबले च सति धर्मक्रिया हिता निगदिता। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'हिबुकेऽर्के गुरौ लग्ने धर्मारम्भो रवेर्दिने।' इति। अन्यच्च—'श्रुतिस्मृतिपुराणादिप्रोक्तानां धर्मकर्मणाम्। गुरुज्ञलग्नवर्गेषु प्रारम्भस्तद् बले सति ॥' इति। षड्वर्गज्ञानं विवाहप्रकरणे ग्रन्थकर्तैव वक्ष्यति ॥ ३० ॥

हिन्दी—(क) चित्रा, अनुराधा, रोहिणी से दो-दो नक्षत्र (चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा) शतभिषा, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) और श्रवण इन ११ नक्षत्रों में भौम, रवि, गुरु वारों में शिरामोक्षण (तुम्बी लगवाना, नस को काट कर विकृत रुधिर को निकालना) शुभ होता है।

(ख) बुध और शनिवार को छोड़ कर शेष वारों (सू० च० मं० बृ० शु०) में और शिरामोक्षण में विहित नक्षत्रों (चि० स्वा० अनु० ज्ये० रो० मू० शत० हस्त० अश्वि० पुष्य श्रव०) में विरेचन (स्वास्थ्य-लाभ के लिए उदर-शुद्धि हेतु औषध खाना 'जुलाब लेना') और वमन (उलटी) हेतु औषध का सेवन उत्तम कहा गया है।

(ग) मित्रसंज्ञक[1] (मृग० रेव० चित्रा० अनु०), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), चर-संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) इन १६ नक्षत्रों, शुभग्रह के वार (सोम, बुध, गुरु, शुक्र) और रविवारों में, बुध एवं बृहस्पति के लग्न तथा षड्वर्ग में, लग्न में बृहस्पति के रहने पर और बृहस्पति के वली (अपनी उच्चराशि, राशि, मित्र की राशि, अपने नवांश, अपने वर्ग में) रहने पर धर्म का कार्य (यज्ञ, अनुष्ठान, विशिष्ट पूजा-पाठ नव-शत-सहस्रादि चण्डीपाठ, दान आदि) कर्म उत्तम होता है ॥ ३० ॥

अथ धान्यच्छेदमुहूर्त्तं वसन्ततिलकेनाह—

तीक्ष्णाजपादकरवह्निवसुश्रुतीन्दु-
स्वातीमघोत्तरजलान्तकतक्षपुष्ये ।
मन्दाररिक्तरहिते दिवसेऽतिशस्ता
धान्यच्छिदा निगदिता स्थिरभे विलग्ने ॥ ३१ ॥

तीक्ष्णाजपादेति । तीक्ष्णसंज्ञानि मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषाः अजपादः पूर्वाभाद्रपदा अन्यानि प्रसिद्धानि । तथा चित्रा पुष्यश्च । एतेष्वेकोनविंशतिनक्षत्रेषु तथा मन्दः शनिः, आरो मङ्गलः, रिक्तातिथयः प्रसिद्धाः एतेषां समाहारः मन्दाररिक्तं तेन रहिते विहीने दिवसे तथा स्थिरभे स्थिरराशौ लग्ने सति धान्यच्छिदा धान्यच्छेदनम्—'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' इत्यङ् । स्त्रियां टाप् । धान्यानां यवादीनां छिदा निगदितोक्ता । निष्पन्नधान्यानां छेदनं कार्यमित्यर्थः । यदाह राजमार्त्तण्डः—'रौद्रे पित्र्ये तथा सौम्ये हस्ते पुष्येऽनिले तथा । सस्यच्छेदं प्रशंसन्ति मूलश्रवणवासवे ॥' इति । दीपिकायां तु—'याम्याजपादहिधनान-लतोयशक्रचित्रोत्तरोडुषु कुजार्कजवारवर्ज्यम् । शस्तेन्दुयोगकरणेषु तिथावरिक्ते धान्य-च्छिदा स्थिरतरस्वगृहोदयेषु ॥' इति । अहिराश्लेषा । अत्र पूर्ववाक्ये नव नक्षत्राणि युक्तानि । द्वितीयवाक्ये एकादशभानि । वाक्यद्वये धनिष्ठोपादानात्तत्त्यागे एकोनविंशति-भान्येव सम्पद्यन्ते । तानि वचनद्वयप्रामाण्याद् ग्रन्थकर्त्रोपनिबद्धानि । व्यवहारतत्त्वे तु वारावुक्तौ 'धान्यानां लवनं कुर्याद् गुरौ शुक्रे च सर्वदा ।' इति ॥ ३१ ॥

हिन्दी—तीक्ष्णसंज्ञक (मू० ज्ये० आर्द्रा, आश्लेषा), पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, कृत्तिका, वसु (धनिष्ठा), श्रवण, मृगशिरा, स्वाती, मघा, तीनों उत्तरा, पूर्वाषाढा, भरणी, चित्रा और पुष्य इन १९ नक्षत्रों में, शनि, मंगल, रिक्ता तिथि को छोड़ कर अन्य वारों और तिथियों (सू० सो० बु० बृ० शु० वार, १।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५ तिथियों) में, स्थिरसंज्ञक (२।५।८।११) लग्नों में फसलों का काटना उत्तम होता है ॥ ३१ ॥

---

१. यहाँ मित्र शब्द का अर्थ अनुराधा मान कर पीयूषधाराकार श्रीगोविन्द दैवज्ञ ने १३ नक्षत्रों का निर्देश किया है । किन्तु मित्र शब्द का अर्थ मित्रसंज्ञक करने से १६ नक्षत्र होते हैं और इसकी पुष्टि भी ग्रन्थारम्भ से हो जाती है—

मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारैर्भैर्धर्मसत्क्रिया ।
ह्विज्ञुक्रेऽर्के गुरौ लग्ने धर्मारम्भो रवेर्दिने ॥ ज्यौ० नि० ।

'मित्र' नक्षत्र मानने से क्षिप्र-चर-ध्रुव संज्ञा वाचक शब्दों के साथ समास करना भी अयुक्त सा प्रतीत होता है । अतः मित्र शब्द से मित्रसंज्ञक नक्षत्र अर्थ ही युक्ति-संगत है ।

अथ कणमर्दनसस्यरोपणमुहूर्तौ वसन्ततिलकेनाह—

भाग्यार्यमश्रुतिमघेन्द्रविधातृमूल-
मैत्रान्त्यभेषु कथितं कणमर्दनं सत् ।
द्वीशाजपान्निर्ऋतिधातृशतार्यमर्क्षे
सस्यस्य रोपणमिहार्किकुजौ विना सत् ॥ ३२ ॥

भाग्येति । भाग्यं पूर्वाफल्गुनी, विधाता रोहिणी, अन्यान्यतिप्रसिद्धानि । एषु नवनक्षत्रेषु कणाश्चणकादयस्तेषां मर्दनं यष्टयाद्याघातादिना वितुषीकरणं सत्समीचीनमित्यर्थः । तदुक्तं व्यवहारोच्चये—'फल्गुन्यौ श्रवणश्चैव मघा मूलं तथा मता । अनुराधा तथा ज्येष्ठा रेवती धान्यमर्दने ॥ केवले सिंहलग्ने वा गुरुशुक्रोदयेऽथवा ।' इति । एवमत्राष्टौ भान्युक्तानि । 'रोहिण्यां मर्दनं कुर्यात्' इति राजमार्तण्डोक्तेः । रोहिण्युपादानं च तद्वाक्यविदाम्—'हस्ते च वापयेद् बीजं सङ्ग्रहं वैश्वदैवते । रोहिण्यां मर्दनं कुर्यादुत्तरासु प्रवेशयेत् ॥' इति । अत्र कर्मविशेषेणैकस्यैव नक्षत्रस्योपादानमतिमुख्यतासूचनार्थं न त्वितरनिषेधार्थम् । कुतः । वाक्यान्तराणां वैयर्थ्यापत्तेरिति । अथ द्वीशं विशाखा, अजपात्पूर्वाभाद्रपदा निर्ऋतिर्मूलम्, धाता रोहिणी, शतं शततारका, अर्यमर्क्षं उत्तराफल्गुनी, एषु षट्सु भेषु सस्यस्य धान्यस्य रोपणं पूर्ववापितस्थानात्स्थलान्तर आरोपणं सच्छुभम् । इह सस्यरोपणे । आर्किकुजौ शनिभौमौ विना त्यक्त्वान्यवारेषु सूर्यचन्द्रबुधगुरुशुक्रवारेषु कार्यं सस्यस्य रोपणम् । उक्तञ्च राजमार्तण्डे—'पूर्वाभाद्रपदामूलरोहिण्युत्तरफल्गुनी । विशाखा वारुणं चैव धान्यानां रोपणं वराः ॥' इति ॥ ३२ ॥

हिन्दी—(क) पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, श्रवण, मघा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मूल, अनुराधा, रेवती इन ९ नक्षत्रों में, कणमर्दन (दवरी करना, खलिहान में भूसा और अन्न को अलग करने के लिए बैलों से कुचलवाना अथवा आधुनिक यान्त्रिक प्रयोगों का व्यवहार करना) शुभ होता है ।

(ख) विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, रोहिणी, शतभिषा, उत्तराफाल्गुनी—इन ६ नक्षत्रों में, शनि, भौम को छोड़कर अन्य (सू० सो० बु० गु० शु०) वारों में धान्य का रोपना (अन्न के पौधों को एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाना) उत्तम कहा गया है ॥ ३२ ॥

अथ धान्यस्थितिधान्यवृद्धिमुहूर्तौ वसन्ततिलकेनाह—

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेन्द्रविभिन्नभेषु
कर्काजतौलिरहिते च तनौ शुभाहे ।
धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता ध्रुवेज्य-
द्वीशेन्द्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥ ३३ ॥

मिश्रोग्रेति । मिश्रं विशाखाकृत्तिके, उग्रं पूर्वात्रयभरणीमघाः, रौद्रमार्द्रा, भुजग आश्लेषा, इन्द्रो ज्येष्ठा, एभ्यो दशभ्यो विभिन्नेष्वन्येषु सप्तदशसु भेषु नक्षत्रेषु । तथा कर्कः, अजो मेषः, तौलिस्तुला, एतैर्विहीनतनौ मकरे स्थिरे द्विस्वभावे राशौ लग्नेषु तथा शुभाहे शुभग्रहाणां वारे धान्यस्थितिरेकत्र राशीकरणं नाम सा निगदिता । उक्तञ्च दीपि-

कायाम्—'याम्याग्निरुद्राहिविशाखपूर्वामहेन्द्रपित्र्येतरभैः शुभाहे। धान्यादिसंस्थापनमेषु शस्तं मृगस्थिरद्वयङ्गगृहोदयेषु ॥' इति। ध्रुवाणि प्रसिद्धानि। इज्यः पुष्यः द्वीशं विशाखा, इन्द्रो ज्येष्ठा, दस्रावश्विनी, चराणि प्रसिद्धानि। एषु धान्यवृद्धिः—त्वं मह्यं तावत् धान्यं देहि ततोऽहं मासद्वयेन तुभ्यं सपादं सार्धं वा दास्यामीत्येवंरूपा सा निगदिता। उक्तञ्च दीपिकायाम्—'श्रवणत्रयं विशाखाध्रुवपुष्यपुनर्वसूनि वायुश्च। अश्विन्यथ च ज्येष्ठा धनधान्यविवर्द्धने शस्ताः ॥' इति ॥ ३३ ॥

हिन्दी—(क) मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका), उग्रसंज्ञक (तीनों पूर्वा, भरणी, मघा) आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा इन १० नक्षत्रों को छोड़कर अन्य (अश्विनी, रो०, मृ०, पुन०, पुष्य, उ० फा०, हस्त, चि०, स्वा०, अनु०, मूल, उ० षा०, श्र०, ध०, श०, उ० भा०, रेवती इन १७ नक्षत्रों में, शुभग्रह के (सो० बु० बृ० शु०) वारों में कर्क, मेष, तुला को छोड़कर अन्य लग्नों (२।३।५।६।८।९।१०।११।१२) में धान्य स्थिति (अन्नों का वखार के अन्दर भूसा में ढँककर सुरक्षित रखना) अच्छा है। किन्तु ध०, श०, उ० भा०, रे०, ये ४ पंचक नक्षत्र हैं। इनको छोड़कर शेष १३ नक्षत्रों में धान्यस्थिति उत्तम होती है।

(ख) ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, अश्विनी, चरसंज्ञक (स्वा० पुन० श्र० ध० श०) इन १३ नक्षत्रों में धान्यवृद्धि (सवाई, ड्योढी, व्याज पर कर्ज के रूप में देना) उत्तम होती है ॥ ३३ ॥

अथ शान्तिकपौष्टिकादिकृत्येषु मुहूर्तं वसन्ततिलकेनाह—

क्षिप्रध्रुवान्त्यचरमैत्रमघासु शस्तं
स्याच्छान्तिकं च सह मङ्गलपौष्टिकाभ्याम्।
खेऽर्के विधौ सुखगते तनुगे गुरौ नो
मौढ्यादिदुष्टसमये शुभदं निमित्ते ॥ ३४ ॥

क्षिप्रेति। क्षिप्रादीनि मघान्तानि प्रसिद्धानि। तेषु पौष्टिकं पुष्टिकामकं मङ्गलं विनायकशान्त्यादि शान्तिकं दुष्टफलदमूलनक्षत्राद्युत्पन्नशान्त्यादि एतानि कर्माणि कार्याणि। उक्तञ्च दीपिकायाम्—'मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीविरञ्च्याच्युतस्वर्गाधीश्वरपूज्यपौष्णरविषु स्फीते तुषारत्विषि। रिक्तां पर्व विहाय सौम्यदिवसे शस्ते नृणां भूतये सर्वैः शान्तिकपौष्टिकं निगदितं गर्गादिभिर्निश्चयात्।' इति।

अथ लग्नशुद्धिः। तत्रार्के सूर्ये खे दशमे सति विधौ चन्द्रे सुखगते चतुर्थस्थे गुरौ तनुगे लग्नस्थे सति शान्त्यादिकं कर्म कार्यम्। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'पूर्णे चन्द्रे वेश्मगेऽर्केऽम्बरस्थे लग्ने जीवे वाक्पतेर्वासरे च। श्रीमत्यायुष्याणि कर्माणि कार्याणि ॥' इति। तच्छान्तिकादिमौढ्ये गुरुशुक्रयोरस्तादिके बाल्यवार्द्धक्यसिंहस्थगुर्वादिरूपे दुष्टसमयेऽपि शुभदम्। तथा निमित्ते केत्वाद्युत्पातदर्शने सति शुभदम्। उक्तञ्च दीपिकायाम्—'शान्तिकर्माणि कुर्वीत रोगे नैमित्तिके तथा। गुरुभार्गवमौढ्येऽपि दोषस्तत्र न विद्यते।' इति। उक्तञ्चैतत्—यतोऽस्तीदं शान्तिकं नैमित्तिकम्। 'अनिमित्तकृता शान्तिर्निमित्तायोपजायते' इति स्मरणात्। तत्र निमित्ते रोगरूपे केत्वाद्युत्पातान्तरदर्शनरूपे च भवति नैमित्तिकम्। तच्च बहुदिनव्यापके गुरुशुक्रास्तादिदोषेप्यवश्यं विधेयम्। ततो जन्मा-

न्तरीयदुरदृष्टसूचकमिदं निमित्तमुत्पन्नं तस्य शान्त्या निरासादशुभादृष्टस्यापि निरासः। बहुदिनप्राप्ये निर्दूषणे काले क्रियमाणं शान्तिकं किञ्चिद् दुरदृष्टशामकं यद्यपि भवति। तथापि तावद्भिर्दिनैर्दुरदृष्टस्य प्राबल्याद् दुःखप्राप्तिः। यथाऽल्पोऽग्निरल्पेनैव जलेन शान्तो भवति। तथा सकलनगरदाहको मनुष्यैर्बहुभिर्युगपद्गृहीतजलपूर्णघटैरेकदेशनिर्वापितोऽपि सकलोग्निर्न निर्वाप्यते इत्यर्थः। सर्वथा मौढ्यादिदोषं विनैव यथाकथञ्चित्कथितं तत्प्रकारेण दिनशुद्धिमङ्गीकृत्य शान्तिकाद्यवश्यं विधेयम् ॥ ३४ ॥

हिन्दी—क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी) रेवती, चरसंज्ञक (स्वा० पुन० श्र० ध० शत०), अनुराधा और मघा इन १५ नक्षत्रों में, लग्न से १०वें सूर्य, चौथे चन्द्रमा (यह सूर्य-चन्द्र की स्थिति पूर्णिमा के समीप ही सम्भव है) लग्न में वृहस्पति के रहने पर मंगल (विनायकशान्ति, पौष्टिक शरीरारोग्यता प्राप्त्यर्थ) शान्ति, शान्तिक मूलनक्षत्रोत्पत्ति शान्ति आदि करनी चाहिए। गुरु शुक्र के अस्तादि दोष में नहीं करनी चाहिए किन्तु नैमित्तिक शान्ति (रोगोत्पत्ति, काकमैथुन दर्शन, केतूदय दर्शन, जन्मनक्षत्रादि पर ग्रहण आदि) मौढ्य दोष नहीं देखना चाहिए। विशेष पीयूषधारा में देखिये ॥ ३४ ॥

अथ होमाहुतेः शुद्धमुहूर्तमनुष्टुप्छन्दसाह—

सूर्यभात्त्रित्रिभे चान्द्रे सूर्यविच्छुक्रपङ्गवः।
चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले ॥ ३५ ॥

सूर्यभादिति। सूर्यः स्पष्टमानेन यन्नक्षत्रेऽस्ति तस्मात्त्रित्रिभे आदितो भत्रयमेकत्रिकमेवं सप्तविंशतिभेषु नवत्रिकानि भवन्ति। तत्र सूर्यनक्षत्रादारभ्य प्रथमद्वितीयादित्रिकस्थे चन्द्रे सति क्रमाद् देवमुखे आहुतिः पतति। यथा प्रथमत्रिके सूर्यस्य ततो बुधस्य ततः शुक्रस्य ततः पङ्गोः शनेस्ततश्चन्द्रस्य तत आरस्य भौमस्य तत इज्यस्य गुरोस्ततोऽगो राहोः ततः शिखिनः केतोः। एवं सति यद्दिने पापग्रहमुखे होमाहुतिः पतति सा नेष्टा न शुभदा। अर्थादेव शुभग्रहमुखे आहुतिपातः शुभफलदः। उक्तञ्च कश्यपेन—
'नक्षत्रे यत्र भानुः स्यात्तदाद्यं भत्रिकं त्रिकम्। सूर्यज्ञशुक्रसौरीणामिन्दुभौमबृहस्पतेः ॥
राहोः केतोश्च निर्दिष्टं वदनादौ शुभाशुभम्। सौख्यार्थनाशः सूर्ये स्यादिंदौ जलमयी कृषिः ॥
भौमेग्निदाहो राष्ट्रस्य बुधे वृद्धिविवर्द्धनम्। गुरौ लब्धिरभीष्टस्य राज्यं सौभाग्यनन्दितम् ॥
भार्गवे कार्यसम्पत्तिरैहिकामुष्मिकी भवेत्। शनेर्मुखाहुतौ ज्ञेयो राज्यभङ्गो धनक्षयः ॥
राहोर्मुखाहुतौ हानिः सर्वस्य परिकीर्तिता। केतोर्मुखाहुतौ ज्ञेयं दुर्भिक्षं देशविप्लवम् ॥
मरणं प्राणिनां चैव राज्यभङ्गस्तथैव च। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ग्रहनक्षत्रसङ्गमे ॥
दुष्टे न कुर्याद्धवनमित्याहुर्भार्गवादयः ॥' इति।

तदयमत्र निष्कृष्टोऽर्थः। सूर्याक्रान्तनक्षत्राच्चन्द्रनक्षत्रस्थत्रिकत्रिकगणनया पापमुखे आहुतिर्निन्द्या। शुभग्रहमुखे समीचीना। अत एव पितृचरणैरप्युक्तम्—'विवस्वदृक्षात्त्रिकमेकमेवं विधौ स्थितेऽर्कज्ञसितार्कजानाम्। चन्द्रारजीवागुशिखावदास्ये होमाहुतिः पापमुखे निषिद्धा ॥' इति। गुर्जरदेशे प्रसिद्धमिदम्।

अथ दैवात्कृतस्य पापग्रहमुखे हवनस्य शान्तिरुक्ता विष्णुधर्मोत्तरे—'क्रूरग्रहमुखे चैव सञ्जाते हवने शुभे। शान्तिं विधाय गां दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ आयसीं

प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखीम् । गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः ॥ कुण्डे निधाय सम्पूज्य तत्र होमो विधीयते' ॥ ३५ ॥

हिन्दी—सूर्याक्रान्त नक्षत्र से ३।३ नक्षत्र क्रम से सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति, राहु और केतु के भाग में पड़ती है। चन्द्रनक्षत्र तक गिनने पर यदि पापग्रह के भाग में आहुति पड़े तो अशुभ और शुभग्रह के भाग में आहुति पड़े तो उत्तम फल होता है ॥ ३५ ॥

सुगमता से जानकारी के लिए चक्र और पी० धा० के अनुसार संक्षिप्तफल

ग्रह	सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरु	राहु	केतु
नक्षत्र	३	३	३	३	३	३	३	३	३
फल	शुभहानि	बुद्धिवृद्धि	सम्पत्प्राप्ति	राजपीड़ा	वृष्टि जलमग्न	अग्निभय	मनोरथसिद्धि	हानि	दुर्भिक्ष

अथ यद्दिने होममश्चिकीर्षितस्तद्दिने वह्निवासवशेन शुभाशुभफलमिन्द्रवज्रयाह—

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः ।
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ॥ ३६ ॥

संकेति । शुक्लादिमासगणनया वर्त्तमानतिथिर्गण्यैकयुता वर्त्तमानवारयुता चतुर्भक्ता यच्छेषं तद् गुणमितं शून्यमितं च तदा वह्नेर्वासो वसतिस्थानं भुवि वर्त्तते । तत्फलमाह सौख्यायेति । होमदिवसे भुवि वह्निवासः सौख्यजनको भवतीत्यर्थः । अथ शशियुग्मशेषे क्रमेणैकद्विमिते शेषेऽग्निवासो दिवि स्वर्गे । तत्फलं कर्तुः प्राणनाशो मरणं भवेत् । द्विमिते शेषेऽग्निवासो भूतले पातालेऽस्ति । तत्फलं कर्तुरर्थनाशो द्रव्यनाशः । उक्तञ्च—तिथिवारयुतिः सैका वेदभक्तावशेषकात् । निवासोऽग्नेर्व्योम्नि रूपे वित्तप्राणविनाशकः ॥ पाताले द्विकशेषेण धनसञ्चयनाशकः । गुणवेदावशेषेण भूमौ विपुलसौख्यदः ॥

संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नापि वैष्णवे ।
नित्ये नैमित्तिके कार्ये न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः ॥' इति ॥ ३६ ॥

हिन्दी—शुक्ल प्रतिपदा से इष्ट तिथि पर्यन्त गिनने से जो संख्या हो उसमें १ जोड़ें फिर उसमें सूर्यादि वार की संख्या मिलाकर ४ से भाग देने पर ३ और ० शेष बचे तो अग्नि का निवास पृथिवी पर होता है। उस दिन आहुति करने से सुख की प्राप्ति होती है। १ शेष बचे तो स्वर्ग में अग्निवास होता है। उस दिन हवन करने से प्राण की हानि होती है। २ शेष बचे तो पाताल में अग्निवास होता है। उस दिन हवन करने से धन का नाश होता है ॥ ३६ ॥

विशेष—यहाँ शुक्लपक्षादि से गणना करने के लिए वास्तुप्रदीप में प्रतिपदोक्त वचन उपलब्ध है—

शुक्लादितो भुक्ततिथिः कुयुक्तो वारान्वितश्चाब्धिहृतोऽथ शेषात् ।
मर्त्येऽग्निवासो वियदग्निशेषे सौख्याय होमे मुनिभिः प्रदिष्टः ॥

दिव्यैकतः प्राणविनाशनाय पातालगो द्विप्रमितेऽर्थनाशः ।
कृष्णे च कृष्णप्रतिपन्मुखाच्च वह्नेर्निवासो नहि युक्तियुक्तः ॥

बृहद्दैवज्ञरञ्जन में १ शेष बचने पर स्वर्ग में अग्निवास का शुभ फल कहा गया है—

एके स्वर्गे धनं राज्यं शून्ये (त्रिखे) भुवि सुखास्पदम् ।
द्विशेषे दोषकृद्वह्नेः पाताले वसतेः फलम् ॥ इति ॥

जिस दिन शान्ति का मुहूर्त, शुभग्रहों के भाग में आहुति, अग्निवास सब उत्तम हों, उस दिन अग्नि-स्थापन करने से कर्ता का सब प्रकार से कल्याण होता है ।

अथ प्रतिवर्षोत्पन्ननवान्नभक्षणमुहूर्तमनुष्टुभाह—

नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम् ।
विना नन्दा-विषघटी-मधु-पौषार्कि-भूमिजान् ॥ ३७ ॥

नवान्नमिति । चरक्षिप्रमृदुसंज्ञकद्वादशभेषु तथा सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभग्रहैर्युते दृष्टे चेत्यर्थः । परन्तु नन्दाः प्रतिपत्षठ्येकादश्यः विषघटीर्विवाहप्रकरणे वक्ष्यमाणाः मधुं चैत्रमासं पौषं च आर्कि शनिं भूमिजं मङ्गलवारम् एतान्विना वर्जयित्वा नवान्न-भक्षणं शुभं स्यात् । यदाह भुजबलः—'नवान्नभोजनं नृणां मृदुक्षिप्रचरैः शुभम् । शुभे-क्षितयुते लग्ने विषनाडीं विवर्जयेत् । नवान्नं न च नन्दायां मासे पौषे मधौ तथा ॥' इति ॥ ३७ ॥

हिन्दी—चरसंज्ञक (स्वा० पुन० श्र० ध० शत०), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) इन १२ नक्षत्रों में, शुभलग्नों (२।३।४।६।७।९।१२) में, नन्दा तिथि (१।६।११), विषघटी, चैत्र, पौष का महीना, शनि और मंगलवार इनको छोड़कर, अन्य तिथि, मास, वारों में नये अन्न का भक्षण शुभ कहा गया है । दोषाचार, कुलाचार के अनुसार इसका बड़ा महत्त्व है ॥ ३७ ॥

अथ नौकाघटनमुहूर्तमनुष्टुभाह—

याम्यत्रयविशाखेन्द्रसार्पपित्र्येशभिन्नभे ।
भृग्वीज्यार्कदिने नौकाघटनं सत्तनौ शुभम् ॥ ३८ ॥

याम्येति । याम्यत्रयं भरणीकृत्तिकारोहिण्यः, विशाखा इन्द्रो ज्येष्ठा, सार्यमाश्लेषा, पित्र्यं मघा, ईश आर्द्रा एतैर्वर्जिते रहिते अवशिष्टेष्वष्टादशनक्षत्रेषु तथा शुक्रगुरुसूर्यवारे सत्तनौ प्राग्व्याख्यातगुणविशिष्टे लग्ने नौकाघटनं निर्माणं शुभम् । उक्तञ्च दीपिका-याम्—'ज्ञभहरिघटलग्ने शुक्रपित्र्यद्विदैवे त्रिनयनविधियाम्यद्वन्द्वसार्पान्त्यभेषु । सुकरण-तिथियोगे शुक्रजीवार्कवारे तरणिघटनमिष्टं चन्द्रताराविशुद्धौ ॥' इति । ज्ञभे मिथुन-कन्ये । हरिः सिंहः । तरणिर्नौः ।

नौकाचालनं यात्रामुहूर्तञ्च

अथ घटनस्थानान्नौचालनमुहूर्तो मयोच्यते । दीपिकायाम्—'शुभाहे विष्णुयुग्मे-न्दुभगमैत्राश्विपाणिषु । चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथीन्दुषु ॥' इति । दीपिकायां नौकायात्रामुहूर्तोऽपि—'अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वामित्रधनाच्युतभे शुभलग्ने । तारक-योगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे ॥' इति ॥ ३८ ॥

हिन्दी—भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, आर्द्रा इन ८ नक्षत्रों से भिन्न (अ० मृ० पुन० पुष्य पू०फा० उ०फा० हस्त चि० स्वा० अनु० मू० पू०पा० उ०षा० श्र० ध० श० पू० भा० उ० भा० रे०) इन १९ नक्षत्रों में; शुक्र, गुरु, रवि वारों में, शुभलग्नों (२।३।४।६।७।९।१२) में नौका-निर्माण शुभ होता है ॥ ३८ ॥

विशेष—नौका चलाने और नौका पर यात्रा करने का मुहूर्त पीयूषधारा में देखिये।

अथ वीरसाधनाभिचारयोर्मुहूर्त्तमनुष्टुभाह—

मूलार्द्राभरणीपित्र्यमृगे सौम्ये घटे तनौ।
सुखे शुक्रेऽष्टमे शुद्धे सिद्धिर्वीराभिचारयोः॥ ३९ ॥

मूलेति। मूलार्द्रादिनक्षत्रपञ्चके तथा घटे तनौ कुम्भलग्ने तत्र स्थिते सौम्ये बुधे सति तथा शुक्रे सुखे चतुर्थस्थे अष्टमे शुद्धे। शुद्धत्वं प्राग्व्याख्यातम्। तादृशे लग्ने वीरस्य वीरसाधनाय अभिचारकर्मणः सिद्धिर्निष्पत्तिः। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'शशिनैर्ऋते यमपितृभेष्वष्टमशुद्धौ भृगौ च पाताले। घटलग्नगते शशिजे निखिला वेतालसिद्धिः स्यात्॥' इति। आर्द्राग्रहणं रत्नमालायाम्—'पित्र्येशयाम्यमूलेन्दुभेषु शुद्धेऽष्टमेऽपि च। वेतालसिद्धिः पाताले भृगौ ज्ञे घटलग्नगे॥' इति। वेतालो नाम वीरसाधनम्॥ ३९ ॥

हिन्दी—मूल, आर्द्रा, भरणी, मघा, मृगशिरा इन ५ नक्षत्रों में, कुम्भ लग्न में बुध, लग्न से चतुर्थ में शुक्र, आठवाँ स्थान शुद्ध (शुभ, पाप रहित) हो तो वीर साधन (वेताल आदि की सिद्धि) और अभिचार (मन्त्र-तन्त्र आदि तामसी क्रिया द्वारा मारण-मोहन-आकर्षण-उच्चाटन आदि) कर्मों में सफलता मिलती है ॥ ३९ ॥

अथ रोगनिर्मुक्तस्नानमुहूर्त्तं वसन्ततिलकेनाह—

व्यन्त्यादितिध्रुवमघानिलसार्पधिष्ण्ये
रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवीन्दुवारे।
स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं
हीने विधौ खलखगैर्भवकेन्द्रकोणे॥ ४० ॥

व्यन्त्येति। अन्त्यं रेवती, अदित्यादीनि भानि प्रसिद्धानि एतानि नवधिष्ण्यानि विगतानि येषु तान्यवशिष्टान्यष्टादशभानि तेषु तथा रिक्तासंज्ञासु तिथिषु तथा कविः शुक्रः, इन्दुश्चन्द्रः, आभ्यां रहितेषु वारेषु तथा विधौ चन्द्रे हीने निषिद्धस्थानस्थिते। निषिद्धस्थानानि गोचरप्रकरणे वक्ष्यति। तथा भवे एकादशे केन्द्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमस्थाने कोणे नवपञ्चमे एँषु स्थानेषु स्थितैः पापग्रहैरुपलक्षिते लग्ने सति रुजा रोगेण विरहितस्य निर्मुक्तस्य जनस्य स्नानं आरोग्यस्नानं शस्तं शुभम्। उक्तञ्च कश्यपेन—'पितृमारुतसर्पान्त्यस्थिरर्क्षेष्विन्दुशुक्रयोः। न कुर्याद्वारयो रोगमुक्तः स्नानं कदाचन॥' इति। पुनर्वसोरपि निषेधो रत्नमालायाम्—'इन्दोर्वारे भार्गवे च ध्रुवेषु सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु। पित्र्ये चान्त्ये चैव कुर्यात्कदाचिन्नैव स्नानं रोगमुक्तस्य जन्तोः॥ इति। पुष्यशततारकयोर्निषेधो नारदसंहितायाम्—'स्थरेज्यादितिसार्पान्त्यपितृवारुणभेषु च। न कुर्याद्रोगमुक्तस्य स्नानं वारेज्यशुक्रयोः॥' इति। अर्थादन्यनक्षत्रेषु कार्यमित्यर्थः।

अथ लग्नादिशुद्धिमाह श्रीपतिः—'लग्ने चरे सूर्यकुजेज्यवारे रिक्ते तिथौ चन्द्रबले च हीने। त्रिकोणकेन्द्रोपगतैश्च पापैः स्नानं हितं रोगविमुक्तकानाम् ॥' इति। दीपिकायां तु विशेषः—'व्यादित्येषु चरेषु शक्रदिनकृत्पुष्योग्रचन्द्रेषु च क्रूराहव्यतिपातविष्टिदिवसेष्विन्दावशस्ते तिथौ। केन्द्रस्थेष्वशुभेष्वकामतिथिषु स्नानं गदान्मुक्तिदं शस्तं नात्र सुशोभना विधिभुजङ्गर्क्षेन्दुसद्वासराः ॥' इति। अकामतिथिषु त्रयोदशीरहितासु तिथिषु ॥ ४० ॥

हिन्दी—रेवती, पुनर्वसु, ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मघा, स्वाती, आश्लेषा इनको छोड़कर शेष (अ० भ० कृ० मृग० आर्द्रा पुन० पु० पू०फा० ह० चि० वि० ज्ये० मू० पू०षा० श्र० ध० शत० पू०भा०) इन १८ नक्षत्रों में, रिक्ता (४।९।१४) तिथियों में, चरलग्नों (१।४।७।१०) में, शुक्र-सोम को छोड़ अन्य (सू० मं० बु० गु० श०) वारों में, चन्द्रमा के हीन (जन्मराशि से ४।८।१२) स्थान में होने पर पापग्रह (क्षीणचन्द्र सूर्य भौम शनि राहु और केतु) के लग्न से (११।१।४।७।१०।९।५) स्थानो में रहने पर रोग से छुटकारा पाये हुए मनुष्य का स्नान करना उत्तम होता है ॥ ४० ॥

अथ शिल्पविद्यामुहूर्तमनुष्टुभाह—

मृदु-ध्रुव-क्षिप्र-चरे ज्ञे गुरौ वा खलग्नगे।
विधौ ज्ञजीववर्गस्थे शिल्पविद्या प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

मृदुध्रुवेति। मृदुगणध्रुवगणक्षिप्रगणचरगणेषु शिल्पं काष्ठतक्षणपाषाणादिघटननानावर्णनिर्मितमूर्त्यादिकल्पनं तद्विद्यायाः प्रारम्भः प्रशस्यते।

अथ लग्नशुद्धिः। तत्र ज्ञे बुधे खलग्नगे दशमस्थे लग्नस्थे च वा अथवा गुरौ वृहस्पतौ खलग्नगे दशमस्थे च सति तथा विधौ चन्द्रे ज्ञजीववर्गस्थे बुधगुरुषड्वर्गस्थे च सति शिल्पविद्या प्रशस्यते। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'लग्नकर्मगते सौम्ये जीवे वामृतदीधितौ। तयोर्वर्गस्थिते शिल्पविद्यारम्भः प्रशस्यते ॥' इति। वसिष्ठेन त्वन्यथैवोक्तम्—'शशितनये जीवे वा चन्द्रे वा लग्नबलिनि धर्मे वा। तद्वर्गे लग्नगते शिल्पारम्भः प्रशस्यते सततम् ॥' इति ॥ ४१ ॥

हिन्दी—मृदुसंज्ञक (मृग० रेव० चि० अनु०), ध्रुवसंज्ञक (३ उत्तरा, रोहिणी), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्वि, पुष्य), चरसंज्ञक (स्वा० पुन० श्रवण धनि० शत०) इन १६ नक्षत्रों में, चन्द्रमा, बुध एवं गुरु के वर्ग हों तब शिल्पकर्म (चित्रकारी, फोटोग्राफी, मूर्ति-निर्माण आदि) प्रशस्त होता है ॥ ४१ ॥

अथ सन्धानमुहूर्त्तमनुष्टभाह—

सुरेज्यमित्रभाग्येषु चाष्टम्यां तैतिले हरौ।
शुक्रदृष्ट-तनौ सौम्यवारे सन्धानमिष्यते ॥ ४२ ॥

सुरेज्येति। सुरेज्यमित्राः प्रसिद्धाः। भाग्यं पूर्वाफल्गुनी एषु भेषु तथाष्टम्यां हरौ द्वादश्यां वा तैतिले करणे वा तथा शुक्रदृष्टे शुक्रयुत इत्यपि वक्तव्यम्। तादृशे तनौ लग्ने तथा सौम्यग्रहाणां वारे सन्धानं मैत्री प्रीतिरिष्यते। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—

'भाग्ये मैत्रे शीतरश्मौ सपुष्ये द्वादश्यां वा शुक्रदृष्टे च लग्ने । अष्टम्यां वा तैतिलाख्ये प्रदिष्टा पूर्वाचार्यैस्तत्र सन्धानसिद्धिः ॥' अत्र केचिदेवं व्याकुर्वते—पुष्येण सहिते सपुष्ये भाग्ये मैत्रे च एतन्नक्षत्रत्रयसंस्थे शीतरश्मौ चन्द्रे सति सन्धानं कार्यम् । अनेन भाग्य-मैत्रपुष्यात्मकं नक्षत्रत्रयमुक्तं भवति । यदाह वसिष्ठः—'सुरगुरुमैत्रे भाग्ये द्वादश्यां वाथ पक्षमध्यतिथौ । सितयुतवीक्षितलग्ने तैतिलकरणे च सन्धिः स्यात् ॥' इति । कश्यपोऽपि—'भाग्ये पुष्ये समैत्रे च लग्ने शुक्रेक्षिते युते । करणे तैतिलेऽष्टम्यां द्वादश्यां सन्धिरिष्यते ॥' इति । एतदेव रत्नमालापद्यव्याख्यानं ज्यायः । सम्मतिवाक्ययोरार्षत्वात् । 'भाग्ये मैत्रे शीतरश्मौ' इति वक्रोक्तावाशयं न विद्मः । एवं च मूलपद्ये देवेज्य-मित्रभाग्येष्वित्येव पठनीयम् ॥ ४२ ॥

हिन्दी—पुष्य, अनुराधा, पूर्वाफाल्गुनी ३ नक्षत्रों में, अष्टमी तिथि (भद्रा छोड़कर), तैतिल करण (शुक्लपक्ष में ३ का पूर्वार्ध, ६ का उत्तरार्ध, १० पूर्वार्ध, १३ का उत्तरार्ध, कृष्ण पक्ष में २ का पूर्वार्ध, ५ का उत्तरार्ध, ९ का पूर्वार्ध, १२ का उत्तरार्ध तैतिल करण होता है) और द्वादशी में शुभग्रह के (च० बु० वृ० शु०) वारों में लग्न पर शुक्र की दृष्टि हो तो सन्धान (सन्धि करना=युद्ध में संधि करना, मैत्री करना, मुकदमे में सुलह करना) उत्तम माना गया है ॥ ४२ ॥

अथ परीक्षामुहूर्त्तं वसन्ततिलकेनाह—

त्यक्त्वाऽष्टभूतशनिविष्टिकुजाञ्जनुर्भ-
मासौ मृतौ रविविधू अपि भानि नाड्याः ।
द्व्यङ्गे चरे तनुलवे शशिजीवतारा-
शुद्धौ करादितिहरीन्द्रकपे परीक्षा ॥ ४३ ॥

त्यक्त्वेति । अष्ट अष्टमी, भूतश्चतुर्दशी, शनिकुजौ वारौ प्रसिद्धौ, विष्टिर्भद्रा, जनुर्भमासौ जननकालीननक्षत्रं जन्ममासं च, मृतावष्टमस्थाने रविविधू जन्मराशेः सकाशादष्टमं सूर्यं चन्द्रं च तथा नाड्याः भान्यपि नाडीनक्षत्राण्यपि । रविविधू अपीत्यत्र—'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' इति प्रगृह्यसंज्ञायाम्—'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इति प्रकृतिभावः । एतावत्पदार्थकदम्बकं त्यक्त्वा परीक्षा कार्या । परीक्षानाम सुवर्णस्तेयादिमहापातकाभिशस्तशुद्ध्यशुद्धिविचारात्मिका तप्तमाषादिरूपा । दिव्यमिति यावत् । सामान्यतो भद्रानिषेधेऽपि पुनर्भद्रानिषेधो, 'रात्रिभद्रा यदाह्नि स्यात्' इत्यादिपरिहाराणामप्यनवकाशतां सूचयितुमुपात्तः । जन्मभस्य नाडीनक्षत्रत्वादेव निषेधे पुनरुपादानमावश्यकत्वं द्योतयितुम् । जन्ममासस्य तु पुनर्निषेधो नाद्यगर्भविषये यथा स्यादित्येवमर्थम् । सामान्यवाक्यमाद्यगर्भविषयमेव, एतच्चाग्रे निर्णेष्यते । एवं परीक्षायां निषिद्धनिमित्तान्यभिधाय विहितनिमित्तान्याह—द्व्यंग इति । तनुलव इति प्रत्येकं सम्बन्धः । द्व्यंगे द्विस्वभावे मिथुनकन्याधनुर्मीनरूपे तनौ लग्ने अंशे नवांशे च द्विस्वभावे तथा चरे मेषकर्कतुलामकररूपे लग्ने नवांशे तथा शशिजीवताराशुद्धौ चन्द्रशुद्धौ गुरुशुद्धौ, ताराशुद्धौ च सत्याम् । एषां शुद्धिश्च गोचरप्रकरणेऽभिधास्यते । तथा करादितिहरीन्द्रकपे करो हस्तः, अदितिः पुनर्वसुः, हरिः श्रवणः इन्द्रो ज्येष्ठा, कपो वरुणः तद् भं शततारका एषु च भेषु परीक्षा स्यादित्यर्थः । अत्रानुक्तोऽपि प्रातःकालोऽतिशस्तः ।

उक्तञ्च दीपिकायाम्—'नो शुक्रास्तेऽष्टमार्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ। नाडीनक्षत्रहीने सुरगुरुरजनीनाथ-ताराविशुद्धौ प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ॥' इति। व्यवहारो-च्चयः—'अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे। न परीक्षाधिवासश्च शनिभौम-दिने भवेत् ॥ ज्येष्ठाश्रवणहस्ताश्च तथा ज्ञेयः पुनर्वसुः। तद्वच्छतभिषा प्रोक्ता त्वभियुक्त-विचारणे ॥' इति। अभियुक्तः सुवर्णस्तेयादिपातकसम्भावनावांस्तस्य विचारणे शुद्धय-शुद्धिनिर्णये। नाडीनक्षत्राणि दीपिकायामुक्तानि। 'जन्माद्यं कर्म ततो दशमभं साङ्घा-तिकं च षोडशकं। समुदायमष्टादशभं विनाशसंज्ञं त्रयोविंशम् ॥ 'आद्यात्तु पञ्चविंशं मानसमेवं नरः षष्ठः स्यात्। नव नक्षत्रान्नृपतिः स्वजातिदेशाभिषेकर्क्षैः ॥' इति। एतानि नाडीनक्षत्राणीति वाक्यशेषो दीपिकाकृतेऽभिहितः। जातिर्ब्राह्मणादिका तन्नक्षत्राणि—'पूर्वात्रयं सानिलमग्रजानाम्' इति वराहोक्तानि। तद्वाक्यं च मया यात्रा-प्रकरणे लिखिष्यते। देशोऽर्गलापुरादिकः। तन्नक्षत्राणि शतपदचक्रानुसारेण ज्ञेयानि। तद्वाक्यं च नामकर्मप्रकरणे लिखिष्यते। यस्मिन् पुष्यादिके नक्षत्रेऽभिषिक्तो राजा तदभिषेकर्क्षम् ॥ ४३ ॥

हिन्दी—अष्टमी, चतुर्दशी, तिथि शनि-भौमवार भद्रा[1] जन्मनक्षत्र, जन्ममास, जन्मराशि से आठवें सूर्य और आठवें चन्द्रमा, नाडीनक्षत्र[2], इनको छोड़कर अन्य तिथि वारों में, द्विस्वभाव और चर (३।६।९।१२।१।४।७।१०) लग्नों तथा उन्हीं के नवमांशों में, चन्द्रमा, बृहस्पति और तारा के शुद्ध रहने पर, हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, ज्येष्ठा, शतभिषा इन नक्षत्रों में परीक्षा (चोरी व्यभिचारादि महापातकों से कलंकित व्यक्तियों के सत्यासत्य की परीक्षा लेना) शुभ होता है ॥४३॥

विशेष—प्राचीन काल में सुवर्णादि चोरी आदि महापातकों की शुद्धि के लिए तपे हुए धातु,

---

१. सामान्यरूप से (१।३४) में भद्रा का निषेध कर देने पर भी यहाँ भद्रा शब्द देने का तात्पर्य यह है कि 'विष्टिस्तिथ्यपराधजा' 'कुम्भकर्कद्वये' इत्यादि परिहार कहे गये हैं, उनका निरा-करण हो जाये। एवं जन्मर्क्ष जन्ममास का उल्लेख भी परिहारों के निराकरणार्थ ही दिया गया है।

२. नाडीनक्षत्र पीयूषधारा में दिया हुआ है। जन्म के नक्षत्र से पहला जन्मनक्षत्र, १०वाँ कर्म, १६वाँ सांघातिक, १८वाँ समुदाय, २३वाँ विनाश, और २५वाँ नक्षत्र मानस कहा जाता हैं। ये ६ नाडीनक्षत्र साधारण जन-समुदाय के लिए कहे गये हैं। राजाओं के लिए जातिनक्षत्र, देशनक्षत्र और अभिषेकनक्षत्र ये ३ मिलकर ९ नाडीनक्षत्र होते हैं।

जातिनक्षत्र यात्राप्रकरण ९वें श्लोक की पीयूषधारा से—

पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि।
स पौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीबलानाम् ॥
आदित्यहस्ताभिजिदश्वभानि वणिग्जनानां प्रभवन्ति भानि।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥
सौम्येन्द्रचित्रावसुदैवतानि भानि ग्रहस्वाम्यमुपागतानि।
सार्पं विशाखाश्रवणाभरण्यश्चाण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति ॥

देश के नाम के आदि अक्षर से जो नक्षत्र अबकहड़ाचक्रानुसार आये, उसी नक्षत्र में राजा का अभिषेक करें, क्योंकि उसी को अभिषेक नक्षत्र कहते हैं।

तेल आदि से मन्त्रों के प्रयोग द्वारा दोषी व्यक्ति की दिव्य परीक्षा होती थी। इस परीक्षा से निर्दोष व्यक्ति की कोई क्षति नहीं होती थी।

अथ सामान्यतः समस्तशुभकार्येषु लग्नशुद्धिमनुष्टुभाह—

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते।
चन्द्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्ध्यति ॥ ४४ ॥

व्ययेति। व्ययो द्वादशस्थानमष्ट अष्टमस्थानमेतत्स्थानद्वयं शुद्धं शुभपापग्रह-साहित्यदोषरहितं यस्मिन् तादृशे स्वजन्मराशेः स्वजन्मलग्नाद्वोपचयभवने त्रिषडेका-दशदशमस्थाने लग्नगते शुभग्रहैर्दृष्टे युते तथा चन्द्रे त्रिषड्दशमायस्थानस्थिते सति सर्वेषां शुभकार्याणामारम्भः प्रसिद्ध्यति। यदाह वसिष्ठः—उपचयभे लग्नगते व्ययनैधन-शुद्धिसंयुते लग्ने। उपचयगे शीतकरे मङ्गलकर्माणि कार्याणि ॥' इति ॥ ४४ ॥

हिन्दी—कार्यकर्ता के जन्मलग्न और जन्मराशि से ३।६।१०।११ राशि का लग्न हो और वह शुभग्रह से युक्त वा दृष्ट हो, लग्न से १२।८ स्थान शुद्ध (पापग्रह-शुभग्रह रहित) हो और लग्न से उपचय (३।६।१०।११) में चन्द्रमा हो तो उस समय समस्त कार्यों का आरम्भ शुभ कहा गया है ॥ ४४ ॥

विशेष—वराहमिहिराचार्य ने बृहत्संहिता (९८।१६) में कहा है कि सर्वारम्भ के लिए १३।१।४।७।१०।८ इन स्थानों में शुभग्रह हो (पापग्रह न हो) और पापग्रह ३।६।११ स्थानों में हो, केन्द्र में अथवा केन्द्र में गुरु-शुक्र हो तो ऐसी लग्नशुद्धि उत्तम होती है।

अथ नक्षत्रेषु ज्वरोत्पत्तौ सत्यां तन्निवृत्तौ दिनसङ्ख्यादिकं द्वितीयोपजातिकयो-पेन्द्रवज्रया चाह—

स्वातीन्द्र-पूर्वा-शिव-सार्पभे मृतिर्ज्वरेऽन्त्यमैत्रे स्थिरता भवेद्रुजः।
ग्राम्यश्रवोवारुणतक्षभे शिवा घस्रा हि पक्षो द्व्यधिपार्कवासवे ॥
मूलाग्निदास्रे नव पित्र्यभे नखा बुध्न्यार्यमेज्यादितिधातृभे नगाः।
मासोऽब्जवैश्वेऽथ यमाहिमूलभे मिश्रेशपित्र्ये फणिदंशने मृतिः ॥४५-४६॥

स्वातीन्द्रेति। स्वाती, इन्द्रो ज्येष्ठा, पूर्वास्तिस्रः, शिव आर्द्रा, सार्पभमाश्लेषा, एषु भेषु ज्वरे पुंसः स्त्रियो वा ज्वरोत्पत्तौ मृतिरेव स्यात्। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'पूर्वात्रय-स्वातिभुजङ्गरौद्रसुरेश्वरर्क्षेषु च यस्य रोगः। स्याद्रक्षितुं देवचिकित्सकोऽपि क्षिताव-शक्तः खलु रोगिणं च ॥' इति। देवचिकित्सको देववैद्यो धन्वन्तरिः। अथान्त्यमैत्रे रेवत्यनुराधयोर्ज्वरोत्पत्तौ रुजो रोगस्य स्थिरता भवेत्। बहुकालेन रोगनिवृत्तिः स्यादि-त्यर्थः। तथा भरण्यादिनक्षत्रचतुष्के शिवा एकादश घस्रा दिवसाः रोगस्थैर्यं स्यात्तद-नन्तरं रोगमुक्तिरिति सर्वत्र व्याख्येयम्। 'घस्रो दिनाहनी वा तु' इत्यमरः। द्व्यधिपं विशाखा, अर्को हस्तः, वासवं धनिष्ठा; एषु त्रिषु भेषु पक्षः पञ्चदश दिवसा रोगस्थैर्यस्य। मूलाग्निदास्रे मूलकृत्तिकाश्विनीषु त्रिषु नव दिवसाः। पित्र्यभे मघायां नखा विंशतिर्दि-वसाः। 'नामैकदेशे नामग्रहणम्' इति न्यायेन बुध्न्योऽहिर्बुध्न्य उत्तराभाद्रपदा अर्यमोत्त-राफल्गुनी इज्यादितिधातृभानि प्रसिद्धानि एषु पञ्चभेषु नगाः सप्त दिवसाः। अब्जवैश्वे मृगोत्तराषाढयोर्द्वयोर्मासस्त्रिंशद्दिनानि रोगस्थैर्यं ततो रोगनिवृत्तिः। यदाह वसिष्ठः—

'कृच्छ्रात्स्फुटं प्राणिति मित्रपौष्णधिष्ण्ये च मासाच्छशिविश्वधिष्ण्ये। रोगस्य मुक्तिः पितृदेवधिष्ण्ये वारैर्भवेद्विंशतिभिश्च नूनम् ॥' इति। प्राणिति जीवतीत्यर्थः। 'पक्षाद्वसुद्वीशकरेषु भेषु मूलाश्विनाग्नित्रितये नवाहात्। तोयेशचित्रान्तकविष्णुभेषु नैरुज्यमेकादशभिर्दिनैश्च ॥ पुष्ये त्वहिर्बुध्न्यपुनर्वसौ च ब्रह्मार्यमर्क्षेषु च सप्तरात्रात् ॥' इति।

अशुभनक्षत्रे रोगोत्पत्तौ मृत्युः

अत्र शीघ्रं रोगविमुक्तये सङ्क्षिप्ता शान्तिरप्यभिहिता वसिष्ठेन ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैश्च सुगन्धिपुष्पैः। वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलधूपदीपनैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक्। पूजां च कृत्वाऽऽमयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलं शिवाय ॥' इति। आमयो रोगः। अतुलमपरिमितद्रव्यम्। प्रत्येकनक्षत्रशान्तिर्विशदा नक्षत्रशान्त्यध्याये वसिष्ठेनोक्ता। सा तत एव सम्यगवधार्या।

अथ सर्पदंशे नक्षत्राण्याह—अथेति। अथानन्तरं यमाहिमूलभे भरण्याश्लेषामूलेषु तथा मिश्रेशपित्र्ये कृत्तिकाविशाखार्द्रामघासु एवं सप्तसु भेषु यस्य कस्यचित्फणिदंशने सर्पदंशे मृतिर्मरणमेव भवेदित्यर्थः। यदाह वसिष्ठः—'मघाविशाखानलसार्पयाम्यनैर्ऋत्यरौद्रेषु च सर्पदष्टः। सुरक्षितो विष्णुरथेन सोऽपि प्राप्नोति कालस्य मुखं मनुष्यः ॥' इति। विष्णुरथेन गरुडेन। अत्र सर्पदंशे यस्येषु नक्षत्रेषु गोचरवशेन चन्द्रबलं न भवति तस्यैव सर्पदंशेऽवश्यमरणं स्यात्। उक्तञ्च दीपिकाटीकाकृताच्युतभट्टेन—'यद्यत्र चन्द्रस्तस्यैव गोचरे चाशुभप्रदः। तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः ॥' इति ॥ ४५–४६ ॥

हिन्दी—स्वाती, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा इन ७ नक्षत्रों में जिसको ज्वर (रोग) आ जाय तो मृत्यु होती है। रेवती, अनुराधा में ज्वरोत्पत्ति हो तो स्थिरता (ज्वर बहुत दिनों तक सताता है) होती है। भरणी, श्रवण, शतभिषा, चित्रा इन ४ नक्षत्रों में रागोत्पत्ति हो तो रोग का प्रकोप ११ दिनों तक रहता है। विशाखा, हस्त, धनिष्ठा में रोग हो तो १ पक्ष (१५ दिन) रोग

रोगोत्पत्ति तथा सर्पदष्ट विचार

नक्षत्र नाम	दिन संख्या
स्वाती, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा	मृत्यु
रेवती, अनुराधा	रोग मुक्ति में देर
भरणी, श्रवण, शतभिषा, चित्रा	११
विशाखा, हस्त, धनिष्ठा	१५
मूल, कृत्तिका, अश्विनी	९
मघा	२०
उ० भा०, उ० फा०, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी	७
मृगशिरा, उत्तराषाढा	३०
भरणी, आश्ले०, मूल, कृत्तिका, विशाखा, आर्द्रा, मघा	सर्पदंशे मृतिः

सताता है। मूल, कृत्तिका, अश्विनी में ९ दिन, मघा में २० दिन, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफल्गुनी, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी इन ५ नक्षत्रों में ७ दिन, मृगशिरा, उत्तराषाढा में ३० दिन तक रोग कष्ट देता है।

भरणी, आश्लेषा, मूल, मिश्रसंज्ञक (कृत्तिका, विशाखा) आर्द्रा एवं मघा इन ७ नक्षत्रों में साँप काटने से मृत्यु होती है। यदि सर्पदष्ट व्यक्ति की राशि से ४।८।१२ चन्द्रमा हो या क्षीण चन्द्रमा हो तो अवश्य मृत्यु होती है। रोग शान्ति का उपाय भी पीयूषधारा में देखें ॥ ४५-४६ ॥

अथ शीघ्रं रोगिमरणे विशिष्टं योगं द्वितीयोपजातिकयाह—

रौद्राहिशाक्राम्बुपयाम्यपूर्वाद्विदैववस्वग्निषु पापवारे।
रिक्ताहरिस्कन्ददिने च रोगे शीघ्रं भवेद्रोगिजनस्य मृत्युः ॥ ४७ ॥

रौद्राहीति। रौद्रादीनि भानि प्रसिद्धानि; पापवाराः सूर्यभौमशनयः, रिक्ताः प्रसिद्धाः, हरिर्द्वादशी, स्कन्ददिनं षष्ठी एतास्तिथयः एवंविधे विशिष्टयोगे यस्य रोगोत्पत्तिर्भवेत्तस्य रोगीजनस्य शीघ्रं मृत्युर्भवेत्। उक्तञ्च दैवज्ञमनोहरे—'उरगवरुणरुद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः। तिथिषु नवमी षष्ठीद्वादशी वा चतुर्थी सहजमरणयोगो रोगिणां कालहेतुः ॥ इति। चतुर्थीग्रहणं चतुर्दश्युपलक्षकं मत्वा मूले रिक्ताग्रहणं कृतम्। अत एवाह वसिष्ठः—'आश्लेषार्द्रात्रिपूर्वायमवरुणमरुच्छक्रताराऩलाः स्युर्द्वादश्यां स्कन्दरिक्तातिथिषु च रविजार्कारवारेषु येषाम्। रोगः सञ्जायते ते यमपुरमचिरात्प्राप्नुदन्त्येव चन्द्रे जन्मन्यष्टाख्यबन्धुव्ययभवनगते मृत्युलग्ने च राशौ ॥' इति ॥ ४७ ॥

हिन्दी—आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनों पूर्वा, विशाखा, कृत्तिका इन ११ नक्षत्रों में पापग्रह के (सू० मं० श०) वारों में, रिक्ता (४।९।१४) तथा १२।६ इन तिथियों में (उक्त नक्षत्र, वार, तिथियों के योग में) यदि मनुष्य बीमार पड़े तो उसकी शीघ्र मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

विशेष—इस रुग्णावस्था में रोग त्रिनाडी में (सूर्यनक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र तथा नामनक्षत्र एक नाडी में) दिखलाई पड़ें और दशा-अन्तर्दशा अनिष्टकारी हो तो अवश्य मृत्यु हो जाती है अन्यथा उपचार से अदृष्ट मूलक रोग से मुक्ति मिल जाती है।

अथ प्रेतदाहमुहूर्तं प्रेतदाहादिनिषिद्धदिनं चेन्द्रवंशाछन्दसाह—

क्षिप्राहिमूलेन्दुहरीशवायुभे प्रेतक्रिया स्याज्झषकुम्भगे विधौ।
प्रेतस्य दाहं यमदिग्गमं त्यजेच्छय्यावितानं गृहगोपनादि च ॥ ४८ ॥

क्षिप्रेति। अश्विनीपुष्यहस्ताश्लेषामूलज्येष्ठाश्रवणार्द्रास्वातीनक्षत्रेषु प्रेतक्रिया प्रेतानां प्रेतत्वविमुक्तिपूर्वकोत्तमलोकप्राप्तिकारकं श्राद्धादिकर्म क्रिया शब्देनोच्यते। सा यदि कारणवशाच्छवदाहसमये अकृता सत्येषु भेषु कार्या स्यात्। उक्तञ्च हेमाद्रौ ज्योतिःपराशरेण—'साधारणध्रुवोग्रैर्मैत्रेषु न शस्यते मनुष्याणाम्। प्रेतक्रिया न शस्ता त्रिपुष्करे यमलधिष्ण्ये च ॥' इति। अत्रैतानि निषिद्धानि कृत्तिकाविशाखारोहिण्युत्तरात्रयं पूर्वात्रयं मघाभरणीमृगचित्रानुराधारेवतीत्येवं पञ्चदश भानि तथा त्रिपुष्करे त्रिपादनक्षत्रे तत्रान्येषु त्रिपादनक्षत्राणां उक्तभेष्वन्तर्भूतत्वात्पुनर्वसुरवशिष्टः। तथा यमल-

धिष्ण्ये द्विपादनक्षत्रे इति हेमाद्रिणा व्याख्यातम्। तत्र मृगचित्रयोर्मैत्रनक्षत्रेष्वन्तर्भावाद् धनिष्ठायमलधिष्ण्ये अत्र गृह्येते। धनिष्ठापञ्चकनिषेधश्चाधुनैव वक्ष्यते। एवमष्टादश भानि प्रेतक्रियायां निषिद्धानि। अवशिष्टानि भानि अश्विनीपुष्यहस्ताश्लेषाज्येष्ठामूलश्रवणा-र्द्रास्वातीषु नव ऋक्षेषु प्रेतक्रिया कार्येत्यर्थादुक्तं भवति। अत एव तान्येव ग्रन्थकर्त्रा निबद्धानि—'क्षिप्राहि' इत्यादिना। अत एव 'कराश्वहिरुद्रपुष्यस्वातीन्द्रमूलहरिभेषु मृतक्रियेऽष्टे'ति व्यवहारतत्त्वकर्त्रोक्तम्। झषकुम्भराशिस्थिते चन्द्रे सति धनिष्ठोत्तरार्द्धा-दारभ्य शततारकापूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदारेवतीषु प्रेतस्य मृतस्य दाहं ज्वलनं त्यजेन्न कुर्यात्। च पुनर्यमदिग्गमं दक्षिणदिशि गमनं यात्रां त्यजेत्। तथा शय्यायाः खट्वाया वितानं वयनं तथा गृहगोपनं गृहाच्छादनमादिशब्देन तृणकाष्ठसङ्ग्रहं च त्यजेत्। यदाह वसिष्ठः—'वस्वपरार्द्धात्पञ्चकधिष्ण्ये कार्यं गृहस्य गोपनं नैव। दक्षिणदिङ्मुखगमनं दाहं प्रेतस्य काष्ठसङ्ग्रहणम्॥' इति। नारदः—'वस्वन्त्यार्द्धादिपञ्चर्क्षे सङ्ग्रहं तृणकाष्ठयोः। याम्यदिग्गमनं शय्यां न कुर्याद् गृहगोपनम्॥' इति। श्रीपतिरपि—'वासवोत्तरदलादि-पञ्चके याम्यदिग्गमनगेहगोपनम्। प्रेतदाहतृणकाष्ठसङ्ग्रहं शय्यकावितननं च वर्जयेत्॥' इति। त्रिविक्रमोऽपि—'शय्यावितानं प्रेतादिक्रियां काष्ठतृणार्जनम्। याम्यदिग्गमनं कुर्यान्न चन्द्रे कुम्भमीनगे॥' इति ननु प्रेतदाहे किं नक्षत्रान्तरे मृतस्य धनिष्ठोत्तरार्द्धा-दिके दाहो न कार्य इति, उत पञ्चक एव मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति, आहो-स्विद्यस्मिन्कस्मिंश्चिनक्षत्रे पञ्चकातिरिक्ते पञ्चके वा मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति त्रयः पक्षाः सम्भवन्ति। तत्र यदि विज्ञायते–नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति तर्हि पञ्चके मरणस्य दोषवत्ता न प्राप्नोति। तच्चायुक्तम्। यस्मादुक्तं ब्रह्मपुराणे—'कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते। न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा सन्ततौ न शुभं भवेत्॥' इति। अथ विज्ञायते—पञ्चक एव मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति तदापि न। श्रवणे धनिष्ठापूर्वार्धे च मृतस्य पञ्चके दाहनिषेधो न प्राप्नोति किन्तु दाहः कर्तव्य इत्येव प्राप्नोति। अस्त्वेवमिति चेन्न। प्रेतस्य दाहं त्यजेदिति दाहस्यैव क्रियाकारकसम्बन्धेन प्राधान्यतो निषेधात्। किञ्च—'त्रिगुणफलदो वृद्धौ नष्टे हृते च मृतेऽपि वा' इति त्रिपुष्करयोगफलवत्पञ्चकमरणनिषेध एव वक्तव्ये दाहनिषेधस्य पृथगुपादानात्कर्तव्य-तापत्तिः। तस्माद्यस्मिन्कस्मिंश्चिन्नक्षत्रे मृतस्य पञ्चके दाहो न इति तृतीयः पक्षः साधीयान्। प्राधान्याद्दाहस्यैव निषेध इत्युक्तं प्राक्। अतः पञ्चकात्प्राङ्मरणदोषो नास्ति तथा तत्रैव दाहोऽपि न दोषाय। यदि क्रियाकरणवशात्कालातिक्रमे सति पञ्चकप्रवृत्तिस्तदा शान्तिं विधाय दाहः कार्यः। पञ्चके तु द्वयमपि निषिद्धं मरणं दाह-श्चेति। उक्तञ्च ब्रह्मपुराणे—'कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते। न तस्योर्ध्व-गतिर्दृष्टा सन्ततौ न शुभं भवेत्॥ न तस्य दाहः कर्त्तव्यो विनाशः स्वेषु जन्तुषु। पञ्चकानन्तरं कार्यं कार्यं दाहादिकं खलु॥ अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम्॥' रेवतीप्रान्ते मृतस्य रेवतीमपहाय दाहः कार्य इत्यर्थः। धनिष्ठोत्तरार्द्धादिमृतस्य दाहस्तु सद्य एव। पञ्चकस्य बहुकालव्यापित्वात्पर्युषितदाहनिषेधाच्च। स च दाहः शान्ति-विधिपूर्वकः कार्यः। स विधिरुक्तो ब्रह्मपुराणे—'दाहदेशे शवं नीत्वा स्नापयेच्च प्रयत्नतः। दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः। यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः

सह शवं दहेत् । प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः । प्रेतहर्त्ता पञ्चमश्च नामान्येतानि च क्रमात् ॥' इति । विशेषस्त्वन्त्येष्टिपद्धत्यादौ द्रष्टव्यः । नन्वत्र—'त्रिगुणफलदो वृद्धौ नष्टे हृते च मृतेऽपि वा' इति मरणनिषेध एव वक्तव्ये किं पुनर्दाहनिषेधेन । उच्यते । दोषाधिक्यसूचनार्थं हि पुनर्दाहनिषेधः । अत एव पञ्चके मृतस्य पुत्तलकविधानं कृत्वा दाहः कार्यः । ततः सूतकान्ते पुत्रादिभिः शान्तिकं च विधेयम् । उक्तञ्च गरुडपुराणे—'ततो दाहः प्रकर्त्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते तदा पुत्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम् । पञ्चके तु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नरः । तिलांश्चैव हिरण्यं च तमुद्दिश्य घृतं दहेत् ॥' इति । अतो नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहप्राप्तौ पुत्तलकविधिरेव भवति । ततः सूतकान्ते शान्तिकं च । एवं पञ्चकान्ते मृतस्याश्विन्यां दाहप्राप्तौ पुत्तलकविधिर्न । किन्तु सूतकान्ते शान्तिकमेव विधेयमित्यलमतिप्रसङ्गेन । अत्र दीपिकायाम्—'छेदनं सङ्ग्रहं चैव काष्ठादीनां न कारयेत् । श्रवणादौ बुधः षट्के न गच्छेद्दक्षिणां दिशम्' ॥ इति यदुक्तं तच्चिन्त्यम् । आर्षमूलवाक्यानुपलब्धेर्वसिष्ठादिमुनिवाक्यविरोधाच्च । अत एव तट्टीकाकृताच्युतभट्टेनाप्यस्य श्लोकस्य व्याख्यानान्ते कदाचिच्छ्रवणधनिष्ठापूर्वार्द्धयोरेतानि समाचरेत् न जातु धनिष्ठोत्तरार्द्धादिपञ्चके । तथा च रत्नमालायाम्—'वासवोत्तरदलादिपञ्चके' इत्यादिसम्मतिवाक्यमुक्तम् । काष्ठादीनामित्यत्रादिशब्देन गृहगोपनं प्रेतदाहं खट्वाया वयनं च न कुर्यादिति व्याख्यातम् ॥४८॥

हिन्दी—क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), आश्लेषा, मूल, मृगशिरा, श्रवण, आर्द्रा, स्वाती इन नक्षत्रों में प्रेतकार्य करना उत्तम होता है । कुम्भ और मीन के चन्द्रमा (धनिष्ठा के उत्तरार्ध से रेवती पर्यन्त चन्द्रमा के रहने पर) प्रेत का दाह-कर्म, दक्षिण दिशा की यात्रा, चारपाई पलंग आदि का बुनना और गृहाच्छादन (आदि पद से जलाने के निमित्त काष्ठ-संग्रह अथवा किसी प्रकार के काष्ठ सम्बन्धी कार्य को) कदापि नहीं करना चाहिए ॥ ४८ ॥

विशेष—मरने के अनन्तर वेद-धर्मशास्त्र के कथनानुसार वर्णाश्रम के अनुकूल मृतक की सद्गति के लिए श्राद्ध आदि की व्यवस्था होती है । यदि मृत्यु के समय किसी कारणवश श्राद्धादि कर्म यथा समय नहीं किये गये तो उसके लिए यह मुहूर्त बतलाया गया है । मृत्यु के बाद ही यदि सभी क्रियाएँ की जाती हैं तो मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं है ।

पंचक के विषय में ३ प्रकार की स्थिति हो सकती है—

(१) पंचक आरम्भ होने के पहले मृत्यु हो जाय और पंचक में दाहसंस्कार हो ।

(२) पंचक में मृत्यु और दाह दोनों हों ।

(३) पंचक मृत्यु और पंचक समाप्त हो जाने पर दाहसंस्कार ।

पहली स्थिति में केवल पंचकशान्ति, दूसरी स्थिति में नारायणबलि और पंचकशान्ति तथा तीसरी परिस्थिति में अपमरण दोष निवृत्यर्थ नारायणबलि करनी चाहिए ।

अथ काष्ठ-गोमयपिण्डादीनां सङ्ग्रहमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सूर्यर्क्षाद्रसभैरधःस्थलगतैः पाको रसैः संयुतः
शीर्षे युग्ममितैः शवस्य दहनं मध्ये युगैः सर्पभीः ।
प्रागाशादिषु वेदभैः स्वसुहृदां स्मात्सङ्गमो रोगभीः
श्वाथादेः करणं सुखं च गदितं काष्ठादि-संस्थापने ॥ ४९ ॥

सूर्यर्क्षादिति । स्पष्टार्थम् ॥ ४९ ॥

हिन्दी—रसोई-निर्माण हेतु काष्ठ, कोयला, गोहरी आदि का संग्रह करने के लिए सूर्य नक्षत्र से ६ नक्षत्रों की अधःस्थल में कल्पना करे, उनमें काष्ठादि संग्रह करने से अति स्वादिष्ट भोजन सम्पन्न होता है। उसके बाद २ नक्षत्र शिर में कल्पना करे, उसमें संग्रह करने से उस संगृहीत काष्ठ से शवदाह (मुर्दा जलाने का काम) होता है। उसके बाद ४ नक्षत्रों की बीच में कल्पना करे, उसमें काष्ठ-संग्रह करने से सर्प से भय बना रहता है। उसके अनन्तर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में ४-४ नक्षत्रों की कल्पना करे, जिसका फल क्रम से—मित्र-समागम, रोग-भय, क्वाथ-निर्माण और सुख होता है। अर्थात् ४ नक्षत्र पूर्व में मित्रों के स्वागत में काष्ठ खर्च होता है; ४ दक्षिण दिशा के नक्षत्रों में संग्रह करने से रोग का भय (कुटुम्ब में कोई न कोई किसी न किसी रोग से पीडित) रहता है; ४ पश्चिम के नक्षत्रों में संगृहीत काष्ठ क्वाथ (काढ़ा) बनाने के काम में आता है (अशुभ है) तथा ४ उत्तर के नक्षत्रों में काष्ठादि संग्रह करने से कुटुम्ब के सभी लोग प्रसन्न रहते हैं। इसीलिए किसी फलितज्ञ ने हिन्दी में दोहा कहा है—

रवि नक्षत्र से षट् भलो, षट् खोटो शुभ चारि।
आठ अशुभ शुभ चारि है, उपरी धरो बिचारि॥

शीघ्रबोधार्थ काष्ठादि संग्रह चक्र

स्थान	अधः	शीर्ष	मध्य	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
नक्षत्र	६	२	४	४	४	४	४
फल	स्वादुपाक	शवदाह	सर्पभय	मित्र समागम	रोगभय	क्वाथ	शुभ

अथ त्रिपुष्करयोगं सफलं वसन्ततिलकयाह—

भद्रातिथौ रविजभूतनयार्कवारे द्वीशार्यमाजचरणादितिवह्निवैश्वे।
त्रैपुष्करो भवति मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदो द्विगुणकृद्वसुतक्षचान्द्रे ॥ ५० ॥

भद्रेति। भद्रासंज्ञिका तिथिः, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी। अत्र 'रोरि' इति रेफलोपे 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इति पूर्वस्याणो दीर्घः। तथा शनिभौमयोर्वारे तथा द्वीशं विशाखा, अर्यमोत्तराफल्गुनी, अजचरणः पूर्वाभाद्रपदा, अदितिः पुनर्वसुः, वह्निः कृत्तिका, विश्वमुत्तराषाढा, एषु षट्सु नक्षत्रेषु उक्ततिथिवारनक्षत्ररूपे विशिष्टयोगे सति त्रिपुष्कर एव त्रैपुष्करः। 'प्रज्ञादिभ्यश्च' इति स्वार्थेऽण्। त्रिपुष्करयोगो भवतीत्यर्थः। कीदृशः। मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदः। तद्दिने यदि कश्चिन्म्रियेत तदा तदीयास्यत्सहितास्त्रयो म्रियेरन्। यदि किञ्चिद्वस्तु विनष्टं तदा तस्य वस्तुत्रयनाशः। तथा किञ्चिद्वस्तुलब्धं तदा त्रिगुणतद्वस्तुलाभ इत्यर्थः। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'रविरविजभौमवारे भद्रायां विषमपादमृक्षं चेत्। त्रैपुष्कराख्ययोगस्त्रिगुणफलो यमलभैर्द्विगुणः ॥' इति नारदेनापि—'अर्कार्किभौमवारे चेद्भद्रायां विषमाङ्घ्रिभम्। त्रिपुष्करस्त्रिगुणदो द्विगुणो यमलाङ्घ्रिभे ॥' इति। अत्र यस्मिन्नक्षत्रे प्रथमपादान्ते तृतीयपादान्ते वा राशिसमाप्तिस्तद्विषमपादमृक्षमुच्यते। तदेव स्पष्टम् 'द्वीशार्यमा' इत्यादिनोपनिबद्धम्। अथ वासवो धनिष्ठा, तक्षा

चित्रा, चान्द्रं मृगः, एतानि भानि भद्रास्तिथयो रविजभूतनयार्कवाराश्च । अत्रापि विशिष्टयोगे सति द्विपुष्करनामा योगो भवति । यत्फलम्—मृत्युविनाशवृद्धौ द्वैगुण्यकृत् । मृते नष्टे वृद्धौ द्विगुणतां करोतीत्यर्थः । 'द्विगुणो यमलाङ्घ्रिभे' इत्युक्तेः । यन्नक्षत्रे द्वितीयचरणान्ते राशिसमाप्तिस्तद्यमलाङ्घ्रिभम् । तच्च मृगाचित्राधनिष्ठारूपमेव।

अथ दैवात्त्रिपुष्करादिके तिथिवारनक्षत्रात्मके विशिष्टयोगे सति कस्यचिन्मरणसम्भवस्तदा तद्दोषशान्त्यर्थं दानं विधेयम् । यदाह वसिष्ठः—'त्रितयं गवां हि दद्याद्दोषस्यापनुत्तये विद्वान् । द्वितयं द्विपुष्करेऽपि च तिलपिष्टैर्विप्रमुख्येभ्यः ॥' इति । द्वितयं गवामिति शेषः । अत्र तिथिवारयोरभावे केवलं विषमाङ्घ्रिभे यमलाङ्घ्रिभे वा मरणसम्भवे दोषो नास्तीत्यर्थः । अमुमर्थं स्पष्टमाह नारदः—'दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा । द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वर्क्षमात्रतः ॥' इति । अत्र त्रिपुष्करयोगे क्वचिद् बृहस्पतिवारोऽप्युक्तः । यदाह कश्यपः—'भद्रातिथिशनीज्यारवारे चेद्विषमाङ्घ्रिभम् । त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं द्व्यङ्घ्रिभे मृतौ ॥' इति । इदमेव दृष्ट्वा श्रीपतिनाप्युक्तम्—'विषमचरणं धिष्ण्यं भद्रातिथिर्यदि जायते सुरगुरुशनिक्ष्मापुत्राणां कथञ्चन वासरे । मुनिभिरुदितः सोऽयं योगस्त्रिपुष्करसंज्ञितस्त्रिगुणफलदो वृद्धौ नष्टे हृते च मृतेऽपि वा ॥' इति । अस्य पूर्वोक्तवाक्यस्य चैकवाक्यतां देवाः कर्त्तुमर्हंति । कश्यपवाक्ये मृताविति पदोपादानान्मरण एवायं विचारो न तु नष्टे वृद्धौ च । तदुक्तं ब्रह्मपुराणेऽपि—'धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथञ्चन । त्रिपुष्करे याम्यभे च कुलजान्मारयेद् ध्रुवम् ॥ तदनिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीरयेत् ।' इति । ग्रन्थकर्त्रा तु श्रीपत्युक्तिमङ्गीकृत्य मृत्युविनाशवृद्धावित्युक्तम् । वसिष्ठनारदवाक्ययोः सामान्यतोऽभिधानं दानं च मृतावेवेति विषयविवेकः ॥ ५० ॥

हिन्दी—भद्रासंज्ञक (२।७।१२) तिथि, शनि-भौम-रविवार में और विशाखा, उत्तराफल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, पुनर्वसु, कृत्तिका एवं उत्तराषाढा ये तीन पाद वाले ६ नक्षत्र अर्थात् जिस दिन उक्त तिथि-वार-नक्षत्रों का योग हो, उसे त्रिपुष्करयोग कहते हैं। यह त्रिपुष्करयोग मृत्यु, विनाश तथा वृद्धि में त्रिगुणित फल देता है अर्थात् यदि किसी की मृत्यु हो जाय तो उस कुटुम्ब में ३ व्यक्ति की मृत्यु होती है। यदि कोई वस्तु खो जाय या नष्ट हो जाय तो ३ वस्तु खो जायेंगी या नष्ट हो जायेंगी एवं किसी वस्तु का लाभ हो तो ३ वस्तुएँ मिलेंगी, ऐसा जानना चाहिए। इसी प्रकार धनिष्ठा, चित्रा, मृगशिरा (२ चरण वाले नक्षत्र) यदि भद्रा तिथि, शनि-भौम-रविवार को पड़ जाय तो द्विपुष्करयोग होता है। यह द्विगुणित फल देता है॥ ५० ॥

विशेष—इन त्रिपुष्कर या द्विपुष्कर योगों में यदि कोई दुर्घटना या अप्रिय कार्य हो जाय तो पञ्चकशान्ति की भाँति त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर शान्ति करनी चाहिए अथवा श्रीनारद जी के वचनानुसार ३ गोदान, २ गोदान करना चाहिए—

दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा ।
द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वृक्षमात्रतः ॥

अथ शवप्रतिकृतिदाहे निषिद्धकालं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शुक्रारार्किषु दर्शभूतमदने नन्दासु तीक्ष्णोग्रभे
पौष्णे वारुणभे त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासेऽयने ।

याम्येऽब्दात्परतश्च पातपरिघे देवेज्यशुक्रास्तके
भद्रावैधृतयोः शवप्रतिकृतेर्दाहो न पक्षे सिते ॥ ५१ ॥

शुक्रारेति । एवंविधे दिने शवस्य मृतस्य प्रतिकृतिः पर्णशरादिना सावयवत्वकल्पनं तस्य दाहो न कार्यः । कुतः ? यतो द्विविधः प्रेतसंस्कारः प्रत्यक्षशरीरस्यैकः । प्रतिकृतेरन्यः । तत्र प्रत्यक्षशरीरसंस्कृतौ शुभाशुभदिनविचाराभावः । यदाह गार्ग्यः—

'प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् ।' इति ।

प्रतिकृतिसंस्कारस्य हि कालत्रयम्—आशौचमध्ये वर्षमध्ये वर्षानन्तरं चेति । अत्राशौचमध्ये यदि प्रतिकृतिसंस्कारश्चिकीर्षितस्तदा यथासम्भवं दिनशुद्धिर्विचार्या । वर्षमध्ये वर्षानन्तरं वा प्रतिकृतिसंस्कारे अवश्यं कालशुद्धिर्विचार्या । एतदप्याह गार्ग्य एव—'आशौचमध्ये क्रियते पुनः संस्कारकर्म चेत् । शोधनीयं दिनं तत्र यथासम्भवमेव तु ॥ आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यपि ॥ प्रेतकार्याणि कुर्वीत' इति । अत एवोक्तम् 'आशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासम्भवम्' इति एतद्वाक्यमत्रैव स्पष्टं व्याख्यास्यते । तत्र दिनशुद्धिरुच्यते । शुक्रारेत्यादिना । शुक्रः प्रसिद्धः, आरो मङ्गलः, आर्किः, शनिः, एषां वारे प्रतिकृतेर्दाहो नेति प्रत्येकं सम्बन्धः । तथा दर्शोऽमावास्या, भूतश्चतुर्दशी, मदनस्त्रयोदशी, नन्दाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः आसु तिथिषु दाहो न कार्यः । यदाह मरीचिः—'नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे । पितृश्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् । एकादश्यां तु नन्दायां सिनीवाल्यां भृगोर्दिने । नभस्ये च चतुर्दश्यां कृत्तिकासु त्रिपुष्करे ॥' इति ।

द्वितीयवाक्यमतिदुष्टताकथनार्थम् । सिनीवाल्याममावास्यायां भृगोर्दिने शुक्रवारे इति सम्बन्धो व्याख्येयः । अत्र श्राद्धं न कुर्वीतेत्यनुषङ्गः । श्राद्धशब्देनात्र प्रेतक्रिया विवक्षिता । तथा तीक्ष्णोग्रभे—मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषास्तीक्ष्णानि, उग्राणि पूर्वात्रयभरणीमघाः, पौष्णे रेवत्याम्, वारुणे शतभे त्रिपुष्करदिने—भद्रातिथयः सूर्यभौमशनिवाराः, कृत्तिकापुनर्वसूत्तराफलगुनीविशाखोत्तराषाढापूर्वभद्रापदाः, एतत्त्रितयसंहतिरूपे दिने, प्रतिकृतेर्दाहो न कार्य इति केचिद् व्याकुर्वते । तत्र पूर्वपद्येनैव निषेधसत्त्वात् । ननु प्रत्यक्षमृतौ स निषेधो न तु प्रतिकृतिदाहे । एवं तर्हि सम्मतिवाक्याभावान्नायमर्थ इति ब्रूमः । तदुक्तं ज्योतिःपराशरेण—'साधारणे ध्रुवोऽग्रे मैत्रे नो शस्यते मनुष्याणाम् । प्रेतक्रिया कथञ्चित्त्रिपुष्कर यमलधिष्ण्ये वा ॥' इति । त्रिपुष्करशब्देन विशिष्टो योगो विवक्षित इति चेत् । अत्र ब्रूमः—त्रिचरणनक्षत्राण्येव त्रिपुष्करपदेनोच्यन्ते । अतो हेमाद्रिणापि कृत्तिकादीन्येव त्रिचरणानि भानि त्रिपुष्करशब्देन व्याख्यातानि । अत एवाह कश्यपः—'भरण्यार्द्रा-मघाश्लेषा-मूलं त्रिचरणानि च । प्रेतक्रियातिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पञ्चकम् ।' इति । पराशरवाक्ये बहूनि प्रेतकृत्ये सामान्यतो निषिद्धानि । कश्यपवाक्येऽन्यान्यतिदुष्टान्युक्तानि । इदमेवाभिप्रेत्य ग्रन्थकृतोक्तानि । तत्र धनिष्ठायाः अग्रहणं मध्यमेषु भेषु वक्ष्यमाणत्वात् ।

अथ न्यूनाधिमासे, क्षयमासे, अधिमासे च शवप्रतिकृतिदाहो न कार्यः । उक्तञ्च ज्योतिर्निबन्धे गरुडपुराणे—'न कुर्याद् गुरुशुक्रास्ते पौषे स्वापे मलिम्लुचे । विलम्बितं

प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं विना ॥' इति । मेधातिथिः—'अस्तङ्गते गुरौ शुक्रे पौषाषाढाधिमासके । प्रेतकार्यं न कुर्वीत गयां गोदावरीं विना ॥' इति । अधिमासस्योपलक्षणत्वात् क्षयमासेऽपि न कार्यं प्रेतकार्यमित्यर्थः । अत एव मूले न्यूनमासनिषेधः । अथाब्दादेकस्माद्वर्षात्परतः ऊर्ध्वं याम्यायने दक्षिणायने कर्कादिषड्राशिस्थिते सूर्ये न दाहः कार्यः । अर्थादुत्तरायणं सम्यक् । उपलक्षणत्वादवमदिनमपि निषिद्धम् । उक्तञ्च गार्ग्येण—'ऊर्ध्वं संवत्सराद्यदि । प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु दिनक्षयम् ॥' इति । गरुडपुराणेऽपि—'न कुर्याद् गुरुशुक्रास्ते पौषे स्वापे मलिम्लुचे । विलम्बितं प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं विना ॥' इति । यदत्र वाक्ये पौषस्वापयोर्निषिद्धत्वान्मार्गशीर्षस्य मध्यमत्वं प्रतीयते तदावश्यकविषयम् । प्रथमवर्षे तु दक्षिणायनमपि शुभमेव । पातपरिघे व्यतीपाताख्ये योगे गणितागते । व्यतीपाताख्ये महापात इत्यपि केचित् । परिघाख्ये योगे तथा देवेज्यशुक्रास्तके । गुरुशुक्रयोरस्ते । अत्र स्वार्थे कः । तथा भद्रावैधृतयोः भद्रावैधृतौ प्रसिद्धौ । गणितसाध्ये वैधृताख्ये महापाते इत्यपि केचित् । तथा सिते पक्षे शुक्ले पक्षे शवप्रतिकृतेर्दाहो न कार्यः । तदुक्तं नारदेन श्राद्धलक्षणाध्याये—'चतुर्दशी तिथिं नन्दां शुक्रभौमार्किवासरम् । सितेज्ययोरस्तमयं द्व्यङ्घ्रिभं विषमाङ्घ्रिभम् ॥ शुक्लपक्षं च सन्त्यज्य पुनर्दहनमुच्यते ।' इति ॥ ५१ ॥

हिन्दी—शुक्र, मंगल, शनिवारों में अमावास्या, चतुर्दशी, त्रयोदशी, नन्दा (१।६।११) तिथियों में तीक्ष्णसंज्ञक (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा), उग्रसंज्ञक (३ पूर्वा, भरणी, मघा) रेवती, शतभिषा इन ११ नक्षत्रों में त्रिपुष्कर योग (श्लोक २।५० में कहा हुआ) में मलमास और क्षयमास में एक वर्ष के बाद दक्षिणायन (एक वर्ष के भीतर दक्षिणायन उत्तरायण का भेद नहीं माना जाता) में, व्यतीपात और परिघ योग में, गुरु और शुक्र के अस्तादि में भद्रा तथा वैधृति योग में और शुक्लपक्ष में शवप्रतिकृति (पुत्तल का) दाह-कर्म नहीं करना चाहिए। प्रत्यक्ष शरीर के दाह में मुहूर्त का विचार नहीं किया जाता।

'प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत्' । इति ॥ ५१ ॥

अन्यदपि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जन्मप्रत्यरितारयोर्मृतिसुखान्त्येऽब्जे च कर्तुर्न सन्
मध्यो मैत्रभगादितिध्रुवविशाखाद्व्यङ्घ्रिभे ज्ञेऽपि च ।
श्रेष्ठोऽर्केज्यविधोर्दिने श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्ये तथा
त्वाशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासम्भवम् ॥ ५२ ॥

जन्मप्रत्यरितारयोरिति । अन्यत्रापि—'नन्दामदनभूतायां पातवैधृतिविष्टिषु । शुक्रार्किभौमपरिघध्रुवमिश्रोग्रमैत्रभे ॥ कर्त्तुश्चन्द्रेष्टवेदान्त्ये जन्मप्रत्यरितारके । त्रिपादभे सिते पक्षेऽयने याम्येऽब्दतः परम् । शवप्रतिकृतेर्दाहः शुक्रेऽस्ताधिकमासके । नेष्टो मध्यो द्विपान्मैत्रद्वीशादितिभगध्रुवे ॥' इति । तथा कर्त्तुः प्रेतश्राद्धाद्यधिकारिणो जन्मप्रत्यरितारयोः जन्मतारा उत्पत्तिनक्षत्रं दशममेकोनविंशं चेति । प्रत्यरितारा जन्मभात्पञ्चमं चतुर्दशं त्रयोविंशं चेति । तथा कर्त्तुर्मृतिसुखान्त्येऽब्जे स्वजन्मराशेरष्टमचतुर्थद्वादशस्थे चन्द्रे सति दाहो न सत् न प्रशस्तः । तदुक्तं वाराहपुराणे—'चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे द्वादशे

च विवर्जयेत् । प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृतौ परिघे तथा । करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा ॥' इति । विष्टिसंज्ञं करणं भद्रा । महाभारते—'नक्षत्रे न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः । न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथाग्नेयेऽपि भारत ॥ दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत् ॥' इति । प्रोष्ठपदयोः पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदयोः । आग्नेये कृत्तिकायाम् । कालविशेषादिकं नारदेनोक्तम्—'दिनोत्तरार्द्धे तत्कर्तुश्चन्द्रताराबलान्विते । पापग्रहे बलयुते शुक्रलग्नांशवर्जिते ॥ तत्पुनर्दहनं प्रोक्तम्' इति ।

अथ शवप्रतिकृतिदाहे मध्यनक्षत्राण्युच्यन्ते । मैत्रमनुराधा भगः पूर्वाफल्गुनी, अदितिध्रुवविशाखाः प्रसिद्धाः, द्व्यङ्घ्रिभं मृगचित्राधनिष्ठाः, ज्ञेऽपि बुधवारेऽपि शवप्रतिकृतिदाहो मध्यमः । न शुभफलदो नाप्यनिष्टफलद इत्यर्थः । उक्तञ्च कश्यपेन—'फल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनुराधापुनर्वसुः । द्वे आषाढे विशाखा च भानि द्विचरणानि च ॥ एतानि किञ्चिद् दुष्टानि वर्जयेत्सति सम्भवे ॥' इति । 'नेष्टो मध्यो द्विपान्मैत्रद्वीशादितिभगध्रुवे' इति चेत्युक्तेर्बुधे सम्मत्यभावः । अर्केज्यविधोरर्केज्याभ्यां सहितो विधुरिति मध्यपदलोपी समासः । सूर्यगुरुचन्द्राणां दिने वारे दाहः श्रेष्ठः । तथा केन कारणेन श्रुतिकरस्वात्याश्वपुष्ये एषु निषिद्धनक्षत्रगणादुर्वरितेषु पञ्चसु भेषु शवप्रतिकृतेर्दाहः श्रेष्ठोऽनुष्ठीयमानः शुभफलद इत्यर्थः । आशौचात्परत इत्यादिव्याख्यातार्थम् । ननु प्रतिकृतिसंस्कारः किं निमित्तः । उच्यते, दैवान्मानुषाद्वापराधान्मृतस्य विधिवद्दाहो नाभूत्किन्तु काष्ठवद्दाहो जातोऽथवा परदेशगतस्य चौरदंष्ट्र्यादिहतस्य तद्भीतेरेव केनचित्काष्ठवद्दाहोऽपि न कृतोऽथवैकाकित्वान्न जातस्तदा प्रतिकृतिदाहो विधेयः । उक्तञ्च ब्रह्मपुराणे—'अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः । तदभावे पलाशोत्थैः पत्रैः कार्यः पुमानपि ॥ सुपिष्टैर्जलसम्मिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबान्धवैः । एवं पर्णशवं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥' इति । तदभावे देहाभावे । तथाग्निना गृह्याग्निना । अपि शब्दात् स्त्रीमरणे तद्देहाभावे स्त्र्यपि पलाशोत्थैः पत्रैः कार्येत्यर्थः ॥

आहिताग्निमरणे विशेषः

आहिताग्नेस्तु श्रौतसूत्रे विधिमाहापस्तम्बः—'यद्याहिताग्निः प्रोषितः प्रमीतो न प्रज्ञायेत स यां दिशमभिप्रस्थितस्तां दिशमस्याग्निभिः कक्षं दहेयुरपि वा वाजसनेयकमिति त्रीणि षष्टिशतानि पलाशवृन्तानि तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तामस्याग्निभिर्दहेयुः' इति वा । अत्र पक्षद्वयम् । यथा—प्रवासगतो यदि न प्रज्ञायेत प्रमीत इति यतो मृत इत्येव निर्णयः—(१) स यां दिशं प्रति प्रस्थितो भवेत्तस्यां दिशि यः कक्षोऽकृष्टो भूमिप्रदेशस्तृणवाँस्तं देशमस्य मृतस्य प्रतिकृतिभावनया श्रौताग्निभिस्तूष्णीं दहेयुर्बान्धवाः पितृमेधविधिना । अयमेकः पक्षः । (२) अपि वा अथवा त्रीणि षष्ट्युत्तराणि शतानि ३६० पलाशवृन्तानि पलाशानि पर्णानि यत्र तिष्ठन्ति तादृशानि वृन्तानि सम्पाद्य तैर्वृन्तैः पलाशवृक्षीयस्त्रिपत्रैर्वृन्तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा तामाकृतिमस्याग्निभिः पितृमेधविधिना दहेयुरिति वाजसनेयिनां मतमिति द्वितीयः पक्षः । (३) पराशरेण तु—'कुशैः प्रतिकृतिः कार्या' इत्युक्त्वा—'कृष्णाजिने समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम्' इति ।

कुर्यादिति शेषः । अत्र पलाशवृन्तकुशविध्योरन्यतरेणानुष्ठानम्, व्रीहियववत्तुल्यबलत्वात् । शवप्रतिकृतिदाहानुष्ठानविधिस्तु शौनकाद्युक्तदिशा ज्ञेया । नात्राप्रस्तुतत्वाल्लिख्यते ।

अयञ्च पलाशवृन्तादिभिः प्रतिकृतिविधिरस्थ्यलाभे । यदा तु मृतास्थ्नां लाभस्तदा तैरेव प्रतिकृतिः कार्या । तदुक्तं छन्दोगसूत्रे—'अथातः पुनर्दाहविधिं व्याख्यास्यामो यदि शरीरं नश्येदस्थीन्यादायास्थीनि क्षीरोदकेन प्रक्षाल्यास्थिभिः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा पूर्ववद्दहेत्तेषामलाभे पलाशवृन्तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा चत्वारिंशता शिरो दशभिर्ग्रीवां विंशत्योरस्त्रिंशतोदरं पञ्चाशता पञ्चाशता बाहू तयोरेव पञ्चभिः पञ्चभिरङ्गुलीः सप्तत्या सप्तत्या पादौ तथैवाङ्गुलीरष्टाभिः शिश्नं द्वादशभिर्वृषणम् । तां कुशैर्वेष्टयित्वा तस्मिन्नेव पूर्ववद्दहेत्' इति । अस्यार्थः—चत्वारिंशत्पलाशवृन्तैः शिरः सम्पाद्य दशभिर्ग्रीवां विंशत्योरस्त्रिंशता जठरं पञ्चाशतैकबाहुं तथैव पञ्चाशतापरबाहुं पञ्चभिः पञ्चभिरङ्गुलीस्तथा सप्तत्या सप्तत्या पादद्वयं तत एव पञ्चभिः पञ्चभिरङ्गुलीरेवं पञ्च सप्तत्यैकः पादः । अष्टाभिः शिश्नं द्वादशभिर्वृषणद्वयम् । एवञ्च षष्टयधिकत्रिशता पलाशवृन्तैरवयवकल्पना भवति । तां प्रतिकृतिं तस्मिन्नेव कृष्णाजिने च पूर्ववदिति पितृमेधविधिना दहेदित्यर्थः । एतादृशे विषये कालनियमः—'शुक्रारार्किषु' इत्यादिनोक्तः । यतः—'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यत्पुनर्दहनं नृणाम्' इत्यादिना पद्यसमुदायेन कालशुद्धिमुक्त्वा 'अतीतविषये काम्ये न्यूने श्राद्धे महालये । एतत्सर्वं विचिन्त्याशु कुर्याच्छ्राद्धमतन्द्रितः ॥' इति कश्यपेन कालातीतविषयत्वेनाभिधानात् ।

आशौचारम्भकालनिर्णयः

तत्राधिकारी पुत्रादिर्यस्मिन्नेव क्षणे पित्रादिमरणं शृणुयात्तद्दिनमारभ्यैव यथोक्ताशौचाधिकारी भवति । तदाह पैठीनसिः—'पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥' इति । अन्येषां तु देशान्तरमरणे विशेषमाह वृद्धवसिष्ठः—'मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षिणी तथा । अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥' इति । पक्षिणी सार्द्धं दिनम् । 'आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी' इत्यमरोक्तेः । अत्र श्रुत्वेत्युक्तेर्मरणश्रवणमेवाशौचनिमित्तम् । 'निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा' इति मनूक्तेश्च । दशाहेभ्यो निर्गतं निर्दशम् । दशाहेभ्यो बहिरित्यर्थः । दशाहपदं स्वस्ववर्णाशौचोपलक्षणम् । षट्त्रिंशन्मतेऽपि—'उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत् । एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दोषमुपावहेत् ॥' इति । यदि तु दशाहमध्ये शृणुयात्तदा शेषाहोभिरेवाशौचं तस्य स्यात् । उक्तञ्च मिताक्षरायाम्—'विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥' इति । दशरात्रस्येत्युपलक्षणम् । वर्णापेक्षया वयोवस्थापेक्षया यस्य यावानाशौचकाल उक्तस्तन्मध्ये एव विदेशगतमरणश्रवणे सत्याशौचावशिष्टैरेवाहोभिर्विशुध्यतीत्यर्थः । अत एव—'जनने मरणे नित्यमाशौचमनुधावति । सपिण्डांश्चैव बन्धूंश्च यत्र क्वचन गच्छति ॥' इत्याद्येवंविधानि देवलादिमुनिवाक्यानि श्रवणनिमित्ताशौचपराणि व्याख्येयानि ।

तत्र वर्णाशौचदिनसङ्ख्यामाह दक्षः—'शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥' इति।

तत्र यदा मरणदिनादारभ्य यथोक्ताशौचदिनमध्ये एव चेन्मरणं शृणुयात्तदावशिष्टाशौचदिनमध्ये अथवा स्वस्ववर्णोक्ताशौचदिवसातिक्रमानन्तरं चेन्मरणं शृणुयात्तदा तद्दिनादारभ्य यथोक्ताशौचदिनमध्ये प्रतिकृतिसंस्कारश्चिकीर्षितः तदा यथासम्भवं दिनशुद्धिर्विचार्या। अत एवोक्तं गर्गेण—'आशौचमध्ये क्रियते' इत्यादि। भद्राभरणीधनिष्ठापञ्चकादिदोषराहित्यमपेक्षितम्। नैव बहुकालव्यापिशुक्रास्तादिदोषराहित्यापेक्षा कार्येति गर्गवाक्ये यथासम्भवपदस्यार्थः। सर्वथा त्वाशौचदिनेषु दुष्टेषु दोषतारतम्येन महादोषत्यागोऽल्पदोषाङ्गीकारो यथा लोकप्रसिद्धिः, तादृशे दिने शवप्रतिकृतिदाहो विधेयः। सर्वथा दोषरहिते दिने तूत्तम एव सः।

अथ यदि मरणश्रवणानन्तराशौचदिनानां राजिकदैविकब्राह्मणाद्यलाभरूपप्रतिबन्धादतिक्रमणमभूत्तदाशौचमस्ति न वेति विचारः। राजिकदैविकसम्भावनायां सत्यां सद्य एव शौचं स्यान्न त्वाशौचम्। यदाह पराशरः—'दुर्भिक्षे राष्ट्रसन्तापे आपदां च समुद्भवे। उपसर्गमृते चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥' इति। यमबृहस्पती—'दैवे भये समुत्पन्ने प्रधानांशे विनाशिते। सद्यः शौचं समाख्यातं कान्तारापदि संयति ॥' इति। पैठीनसिरपि—'विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि। न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत् ॥' इति। कालान्तरालभ्यायां गयादियात्रायां तादृशे एव तीर्थकर्मणि तीर्थस्नानदानादिकर्मणि तादृशे विषये आशौचग्रहाभावादेव शवप्रतिकृतिदाहाभावः। यदा तु ब्राह्मणाद्यलाभस्तदाशौचपरिग्रहः स्यादेव। परं त्वाशौचदिनानन्तरं वर्षमध्ये दिनशुद्धिमपेक्ष्यैव शवप्रतिकृतिदाहो विधेयः। 'आशौचस्य निवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः। संशोध्यैव दिनं ग्राह्यम्' इति गर्गेणैवकारसहितदिनपदोक्तेः। अयमर्थः—अत्रापि भद्राभरणीपञ्चकादिर्दोषः कतिपयदिनव्यापी त्याज्य एव न तु शुक्रास्तादिकबहुकालव्यापिदोषप्रतीक्षा। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे पितृखण्डे—'शुक्रस्यास्तमने चैव देवेज्यस्य तथैव च। प्रेतकार्यं प्रदुष्येत प्रथमं वत्सरं विना ॥' इति।

अथ यदि वर्षमध्ये राजिकदैविकाद्युपद्रवः सम्पन्नस्तदा वर्षोत्तरं निषिद्धदक्षिणायनशुक्रास्तादिमहादोषरहिते भद्राभरणीपञ्चकादिदोषरहिते च काले शवप्रतिकृतिदाहः कार्यः। उक्तञ्च गार्ग्येण—'ऊर्ध्वं संवत्सराद्यदि। प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम्' इत्यादीनि मूलवाक्यानि प्रागभिहितानि। अत एव मूलपद्येप्यब्दात्परतो याम्येऽयने तथा देवेज्यशुक्रास्तके शवप्रतिकृतिदाहो न कार्य इति व्याख्येयम्। प्रथमे वर्षे तु नायं दोषः।

सर्वत्रापि गयागोदावर्योस्तीर्थयोः प्राप्तयोः सतोरयं शुक्रेज्यास्तदक्षिणायनादिमहादोषविचारः कोऽपि नास्ति। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे प्रेतमञ्जर्याम्—'प्रेतकार्याणि सर्वाणि व्रतस्नानजपादिकम्। वर्ज्यं शुक्रेज्ययोरस्ते गयां गोदावरीं विना ॥' इति। अन्यानि तु गयागोदावरीसम्बन्धीनि वचांसि प्रागुक्तानीत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ५२ ॥

हिन्दी—(क) प्रेतकर्म करने वाले व्यक्ति की जन्म और प्रत्यरि (पाचवीं) तारा में (जन्मनक्षत्र ५।१०।१४।१९।२३वें नक्षत्रों में) जन्मराशि से, ४।८।१२वीं राशि पर चन्द्रमा की स्थिति होने पर कर्ता के लिए अशुभकर होता है।

(ख) अनुराधा, पूर्वाफल्गुनी, पुनर्वसु, ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) विशाखा, दो चरण वाले (मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा) इन १२ नक्षत्रों में पुत्तलदाह मध्यमश्रेणी का कहा गया है।

(ग) रविवार, वृहस्पति, सौमवारों में, श्रवण, हस्त, स्वाती, अश्विनी और पुष्य इन ५ नक्षत्रों में पुत्तलदाह करना उत्तम होता है।

(घ) अशौच के बाद श्लोक ५१-५२ में कहे गये समस्त विचार करने चाहिए। अशौच के बीच में पुत्तलदाह करना हो तो यथासम्भव विचार करना चाहिए।

विशेष—उपर्युक्त दोनों श्लोकों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि शवदाह के २ भेद होते हैं—

१. प्रत्यक्ष शवदाह।

२. परदेश में मरने पर विधिवत् दाह-कर्म न करके नदी-तालाब आदि में फेंक दिया गया; जल में डूब कर मृत जलचरों द्वारा भक्षित; जंगल, पर्वत आदि बीहड़ स्थानों में हिंस्र जानवरों से भक्षित होने से; शीतला रोग से, सर्पदंश से मरने पर जल-प्रवाह कर देने से शरीर के अलाभ में कुश, पलास, यवपिष्ट आदि से निर्मित पुत्तलदाह।

प्रत्यक्ष शवदाह में पंचक के अतिरिक्त समय में मरने पर दाह के लिए कोई मुहूर्त नहीं देखा जाता। पंचक की उपस्थिति में ३ परिस्थितियों के आ जाने पर शवदाह करने का निर्देश किया जा चुका है। पुत्तलदाह के लिए ३ परिस्थितियाँ आती है—१. अशौच के बीच में २. अशौच के बाद वर्षान्त पर्यन्त तथा ३. वर्ष के बाद।

(१) अशौच के बीच में मुहूर्त का निर्णय करने के लिए आचार्य ने 'यथा सम्भवम्' कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि अशौच के बीच में ही यदि किसी की मृत्यु का दिन मालूम हो जाय तो पंचक से अतिरिक्त समय में पुत्तलदाह कर देना चाहिए और उसके बाद देशाचार, कुलाचार को लेते हुए शास्त्रोक्त समय पर दशगात्र, एकादशाह, षोडशश्राद्ध, सपिण्डन आदि कार्य सम्पादित करने चाहिए। यदि अशौच के भीतर पंचक में ही पुत्तलदाह करना पड़ जाय तो उसके लिए शास्त्रानुसार पंचकशान्ति हेतु प्रेत-दाह की समस्त क्रियाएँ करनी चाहिए।

(२) यदि अशौच के बाद वर्ष के भीतर शवप्रतिकृति का दाह करना हो तो अयन विचार को छोड़कर सभी मुहूर्तों का विचार करना चाहिए।

(३) यदि वर्ष के बाद पुत्तलदाह करना हो तो अयन के विचार के साथ समस्त मुहूर्त का विचार करना उचित है।

(४) यदि कोई परदेश चला गया हो, तीर्थयात्रा पर गया हो, लौट कर न आवे तो १२ वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए; उसके बाद पुत्तलदाह करके और्ध्वदैहिक कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

अशौच की दिन-संख्या शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है—

शुद्ध्येद् विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥

आज कल भिन्न-२ देशों में प्रायः १०वें दिन दशगात्र और एकादशाह या ११वें दिन एकादश, ब्राह्मण-क्षत्रियों के यहाँ १२वें दिन और अन्य जातियों के यहाँ १३वें दिन षोडशश्राद्ध और

सपिण्डन करके शुद्धि मान ली जाती है। कहीं-२ सोलहवें दिन षोडशश्राद्ध और सपिण्डन किया जाता है। विशेष जानकारी के लिए पीयूषधारा टीका देखें ॥ ५२ ॥

अथ नक्षत्रसम्बन्धेन मुहूर्त्तानुक्त्वा नक्षत्रप्रसङ्गान्नक्षत्रविशेषोत्पन्नस्याभुक्तमूलदोषमनेकविधमुपजातिकयाह—

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं हि नारदः।
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणकम् ॥ ५३ ॥

अभुक्तमूलमिति। अत्राभुक्तमूलस्यानेके भेदाः–(१) तत्रैकस्तावदयं भेदः। ज्येष्ठानक्षत्रान्ते भवं ज्येष्ठान्त्यं, मूलादौ भवं मूलादिभवं, ज्येष्ठान्त्यजातं घटीचतुष्टयं मूलादिजातं घटीचतुष्टयं मिलित्वाष्टौ घटिकाः। प्रहर इति यावत्। तावान्कालोऽभुक्तमूलाख्यमिति नारदमतम्, (२) उपलक्षणत्वादाश्लेषान्तिमघटीचतुष्टयं मघादिमघटीचतुष्टयं चाभुक्तमूलाख्यः कालः। यदाह नारदः—'यो ज्येष्ठामूलयोरन्तरालप्रहरजः शिशुः। अभुक्तमूलजः सार्पमघानक्षत्रयोरपि' इति। (३) तथापरो भेदः। एकेति। ज्येष्ठान्ते एकघटीमितं मूलादौ घटीद्वयमितमेवं मिलित्वा त्रिघटिकमभुक्तमूलं स्यादिति वसिष्ठो मुनिर्जगौ। यदाह वसिष्ठः—'ज्येष्ठान्त्यपादघटिकामितमेव केचिन्मूलं ह्यभुक्तमपरे पुनरामनन्ति। मूलाद्यपादघटिकाद्वितयेन सार्द्धमष्टौ समाः परिहरेदिह जन्मभाजम् ॥' इति। समा वर्षाणि। (४) अत्रान्यो भेदः। एकेति। ज्येष्ठान्त्यार्द्धघटिकामूलाद्यर्द्धघटिकेति मिलित्वा एकघटीप्रमाणमस्य तदेकघटीप्रमाणकम्। 'शेषाद्विभाषा' इति कप्। तादृशमभुक्तमूलं स्यादिति बृहस्पतिर्जगौ। यदाह गुरुः—'ज्येष्ठान्त्यघटिकार्द्धं च मूलादौ घटिकार्द्धकम्। तयोरन्तर्गता नाडी ह्यभुक्तं मूलमुच्यते' इति ॥ ५३ ॥

हिन्दी—ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त्य की ४ घटी (ज्येष्ठाभभोग ÷ १५) और मूलनक्षत्र के आदि की ४ घटी (मूलभभोग ÷ १५ घटी) दोनों मिलकर ८ घटी ($\frac{\text{ज्येष्ठाभभोग}}{१५} + \frac{\text{मूलभभोग}}{१५}$ घटी) अभुक्त मूल होता है। यह नारद का मत है। ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त्य की १ घटी, मूलनक्षत्र के आदि की २ घटी (दोनों मिलकर ३ घटी) ऐसा वशिष्ठ जी कहते हैं। ज्येष्ठा के अन्त्य और मूल के आदि की आधी आधी घटी (दोनों मिलकर १ घटी) अभुक्त मूल होती है; ऐसा बृहस्पति का मत है ॥ ५३ ॥

तदेव सफलमुपजातिकयाह—

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्चनाड्यः।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत् ॥ ५४ ॥

अथोचुरन्य इति। अथशब्दः पादपूरणे। मूलनक्षत्रस्य प्रथमा आदिमा अष्टघटिकाः, शाक्रस्य ज्येष्ठाया अन्तिमाः पञ्च नाड्यो घटिका एवमुभयोर्ज्येष्ठामूलयोरन्तरालवर्तिन्यस्त्रयोदश घटिका अभुक्तमूलमिति लोका ऊचुः। 'ज्येष्ठान्त्यघटिकाः पञ्च मूलाद्या वसुनाडिकाः। अभुक्तमूलमित्युक्तं तत्र जातं शिशुन्त्यजेत् ॥' इति स्मरणात्।

एवमभुक्तमूलस्यानेकभेदसम्भवे कः साधीयान् पक्ष इति चेत्। उच्यते—नारदोक्तः पक्ष एव साधीयान्। किमत्र प्रमाणमिति चेत्, शृणु। बहुमुनिसंवाद एवात्र प्रमाणम्।

तदाह कश्यपः—'ज्येष्ठान्त्यमूलयोरन्तरालयामोद्भवः शिशुः। अभुक्तमूलजः सोप्याश्लेषापितृभयोरपि ॥' इति। वसिष्ठोऽपि—'भुजङ्गपौरन्दरपौष्णभानां तदग्रभानां च यदन्तरालम्। अभुक्तमूलं प्रहरप्रमाणं त्यजेत्सुतं तत्र भवां सुतां च ॥' इति। अत एव पूर्वमुक्तं वसिष्ठवाक्यं केचिन्मताभिप्रायेण। यतस्तद्वाक्ये 'केचिदिति अपरे' इति चेत्युक्तिरस्ति। यद्येवं घटीन्यूनाधिकभावाभिधायिनां प्रागुक्तवाक्यानां का गतिरिति चेत्। उच्यते—दोषस्याधिक्यात्पत्वसूचनमेव गतिः।

अथाभुक्तमूलसंज्ञाकथनस्य प्रयोजनमाह—जातमिति। तत्राभुक्तमूलाख्ये काले जातं शिशु बालकम्, उपलक्षणत्वात्तत्र जातां कन्यां वा पिता परित्यजेन्निष्कासयेत्। 'त्यजेत्सुतं तत्र भवां सुतां च' इति वसिष्ठोक्तेः।

यद्यशक्यं निष्कासनं स्यात्तदा किं कार्यमित्यत आह—वेति। वा अथवा पूर्वपक्षकर्तव्यताशक्तौ पिताऽस्य शिशोः कन्याया वा मुखमष्टसमाः अष्टौ वर्षाणि। 'सम्वत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः। तावत्कालं न पश्येत्। यदाह नारदः—'अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीमपि परित्यजेत्। अथवाब्दाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेत् ॥' इति। च्यवनोऽपि—'अभुक्तमूलभे भवं परित्यजेच्च बालकम्। समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥' इति। गण्डान्तदोषस्तु विवाहप्रकरणे वक्ष्यत इति कृत्वात्र नोक्तः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—ज्येष्ठानक्षत्र के अन्त्य की ८ घटी और मूलनक्षत्र के आदि की ५ घटी (दोनों मिल कर १३ घटी) अभुक्त मूल होती है, ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं। इस अभुक्त मूल में जन्म लेने वाले बालक या बालिका को त्याग देना चाहिए (अर्थात् यदि कोई सन्तानहीन व्यक्ति उसे लेना चाहे तो उसे दे देना चाहिए)। यदि मोहवश त्याग न कर सके तो पिता उस बालक का मुख ८ वर्ष तक न देखे। ८ वर्ष के बाद शान्ति करके उसका मुँह देखे।

विशेष—वसिष्ठ, वृहस्पति और अन्य आचार्यों के मतों से त्याज्य घटी को त्रैराशिक गणित से स्पष्ट कर लेना चाहिए। जैसे—ज्येष्ठा के अन्त्य और मूल के आदि की घटियों के बीच में अभुक्त मूल का उल्लेख ५३वें श्लोक में आचार्य ने किया है, उसी प्रकार कश्यपजी ने आश्लेषा-मघा की सन्धि में भी अभुक्तमूल कहा है और वशिष्ठजी ने तो आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती के अन्त्य और मघा, मूल अश्विनी के आदि की अन्तराल की ८ घटियों में उत्पन्न पुत्र-पुत्री को त्यागने के लिए कहा है। यथा—

भुजङ्गपौरन्दरपौष्णभानां तदग्रभानां च तदन्तरालम्।
अभुक्तमूलं प्रहरप्रमाणं त्यजेत् सुतं तत्र भवां सुतां च ॥

इन अनेक मतों में विभिन्नता के कारण किसका मत मान्य है, ऐसा प्रश्न मन में उठता है। इसका समाधान आजकल के विद्वान् गुरुजनों के अनुसार नारद और वशिष्ठ के उपर्युक्त मत में समानता होने के कारण वही मत मान्य है ॥ ५४ ॥

अथ प्रसङ्गान्मूलाश्लेषाजातस्य बालस्य चरणवशेन शुभाशुभफलमुपजात्याह—

आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये।
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ॥ ५५ ॥

आद्ये इति। मूलनक्षत्रस्याद्यपादे प्रथमे चरणे चतुर्थांशे इति यावत्। तत्र जातस्य शिशोः कन्याया वा पिता नाशं मरणमुपैति प्राप्नोति। तथा मूलद्वितीयपादे जननी माता नाशमुपैति। तथा तृतीयमूलपादे धनं द्रव्यं नाशमुपैति। चतुर्थो मूलपादोऽस्य शिशोः शुभः शुभफलदः। उक्तञ्च ब्रह्मपुराणे—'मूलाद्येंऽशे पितुर्नाशो द्वितीये मातुरेव च। तृतीये धनधान्यादिनाशस्तुर्ये धनागमः॥' इति। तुर्ये चतुर्थे। रत्नमालायाम्—तदाद्यपादके पिता विपद्यते जनन्यथ। तृतीयके धनक्षयश्चतुर्थकः शुभावहः॥' इति।

अत्र पितुर्बहुस्त्रीत्वेऽपि स्वमातुरेव नाशो वाच्यो न सापत्नमातुः। यदाह कश्यपः–मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः। मातरं स्वां तृतीयोऽर्थान्सुहृदश्च तुरीयजः॥' इति। अन्येऽत्र स्वमातुरिव सापत्नमातुरपि नाशो वाच्यः यतो मातृशब्दः सापत्नमातुरपि वाचकः। यदाह गौतमः—'पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तदपत्यानि मातुलेयानि' इति। स्पष्टार्थमेव कश्यपवाक्ये स्वामितिपदोपादानम्।

अत्र विशेषो वसिष्ठसंहितायाम्—

'मूलाद्यपादो दिवसे यदि स्यात्तज्जः पितुर्नाशनकारणं स्यात्।
द्वितीयपादो यदि रात्रिभागे तदुद्भवो मातृविनाशकः स्यात्॥
मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पुनर्विनाशः।
द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः॥' इति।

नारदसंहितायाञ्च—

'दिवा जातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा।
आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति ततो गण्डं विवर्जयेत्॥' इति।

एतदेव मातापितृगण्डमिति जीर्णा व्यवहरन्ति।

अथ दोषसत्त्वे किं कार्यमत आह—अथेति। अथानन्तरं शान्त्या मूलाश्लेषाशान्त्या स्वनुष्ठितया सर्वत्र चरणचतुष्टयेऽपि शुभमनिष्टफलनाशकं कल्याणकरं स्यात्। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'नैर्ऋत्यभौजङ्गमगण्डदोषनिवारणायाभ्युदयाय नूनम्। पितामहोक्तां रुचिरां च शान्तिं प्रवच्मि लोकस्य हिताय सम्यक्॥ शास्त्रोक्तरीत्या खलु सूतकान्ते मासे तृतीयेप्यथ वत्सरान्ते॥' इति। नैर्ऋत्यं मूलं तद्दोषः। भौजङ्गममाश्लेषा तद्दोषः। गण्डो वक्ष्यमाणस्तद्दोषश्च। 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति न्यायात्। तद्दोषाणां निवारणाय तदर्थम्। अत एव कश्यपेन—'तद्दोषशमनार्थं हि शान्तिं कुर्यात्प्रयत्नतः' इति सामान्यत उक्तम्।

अत्र वशिष्ठवाक्ये कालत्रयकथनं सामर्थ्यासामर्थ्यकृतं ध्येयम्। तथापि—यदि मातुः शीतोदकस्नानेऽसामर्थ्यं स्यात्तदा सूतकान्त एव शान्तिः। तत्राप्यशक्तौ तृतीये मासि शान्तिः। दीर्घरोगादीनां तदाप्यशक्तिश्चेत्तर्हि वर्षसमाप्तिदिवसे शान्तिः।

मातृगण्डे तु विशेषस्तेनैवोक्तः—'मातृगण्डे सुते जाते सूतकान्ते विचक्षणः। कुर्याच्छान्तिं तदृक्षे वा तद्दोषस्यापनुत्तये॥' इति।

शिष्टास्तु सर्वत्र यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्र एव शान्तिरिति व्यवहरन्ति। ननु मूलपादचतुष्टयेऽपि शान्तिः कर्तव्येत्युक्तम्। तत्र चतुर्थचरणस्य शुभफलत्वात्—शान्ति-

रयुक्तेति प्रतिभाति। 'अनिमित्तकृता शान्तिर्निमित्तायोपजायते' इति स्मरणात्। उच्यते—यद्यपि चतुर्थचरणे धनागमरूपं शुभफलमभिहितम्, तथापि कश्यपेन—'सुहृदश्च तुरीयजः' इति सुहृन्नाशरूपफलस्यानिष्टस्योक्तेस्तदपाकरणार्थमवश्यं कर्त्तव्या शान्तिः। नहि कस्यचिद्वैरिनाशवन्मातुलाद्यनेकसुहृन्नाश इष्टः। किञ्च मूलवृक्षविचारेऽपि चतुर्थपादे पुरुषकन्ययोरशुभफलकथनाच्च। मूलवृक्षस्तु समनन्तरमेव मया वक्ष्यते।

यदि मूलाश्लेषादिदोषसम्भवे शान्तिर्न क्रियते तदानिष्टं भवत्येवेत्याह नारदः—

'वत्सरात्पितरं हन्ति मातरं तु त्रिवर्षतः। द्युम्नं वर्षद्वयेनैव श्वसुरं नववर्षतः॥
जातं बालं वत्सरेण वर्षैः पञ्चभिरग्रजम्। श्यालकं चाष्टभिर्वर्षैरनुक्तान् सन्ति सप्तभिः॥
तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत प्रयत्नाद्विधिपूर्वकम्॥' इति। द्युम्नं धनम्।
तस्मादवश्यं चरणचतुष्टयेऽपि शान्तिर्विधेयेति॥

अहिभे विलोममिति। अहिभे आश्लेषायामुक्तं फलं विलोमं विपरीतं ज्ञेयम्। तद्यथा मूलस्य प्रथमे पादे पितृनाश इति फलमुक्तम्। तत्फलमाश्लेषाचतुर्थपादोत्पन्नस्य स्यात्। मूलस्य द्वितीयपादे मातृनाश इत्युक्तं फलं तदाश्लेषातृतीयचरणोत्पन्नस्य स्यात्। मूलस्य तृतीयचरणे धननाश इत्युक्तं फलं तदाश्लेषाद्वितीयचरणोत्पन्नस्य स्यात्। मूलस्य चतुर्थपादः शुभ इत्युक्तं फलं तदाश्लेषाप्रथमचरणोत्पन्नस्य स्यादित्यर्थः। तदाह कश्यपः—'फलं तदेवं सार्पर्क्षे प्रतीपं त्वन्त्यपादतः।' इति वसिष्ठोऽपि—'मूलाद्यपादजनितः पितरं निहन्ति द्वैतीयजः स्वजननीं त्रिपदेऽर्थवृन्दम्। तौरीयजः शुभकरः फलमेतदेव वैलोमतो भुजगधिष्ण्यभवस्य सर्वम्॥' इति। द्वितीय एव द्वैतीयः। प्रज्ञादेराकृतिगणत्वात्स्वार्थेऽण्। एवं तौरीयवैलोमशब्दौ साध्यौ। अयमर्थः स्पष्टमुक्तो भास्करव्यवहारे—'सार्पांशे प्रथमे राज्यं द्वितीये तु धनक्षयः। तृतीये जननीनाशश्चतुर्थे मरणं पितुः॥' इति। अंशश्चरणः। अत्र लग्नदौष्टये सति दुष्टं फलमविकलं भवतीत्याह बादरायणः—'मूलसार्पादिजं दौष्टयं स्यात्सम्पूर्णं तु लग्नपे। सक्रूरेऽब्जे च विवले शुभदृष्टिविवर्जिते॥' इति। अत आश्लेषादौष्टयेऽपि शान्तिकं विधेयम्। तथाश्लेषान्त्यमघादिस्थान्तरालप्रहरात्मकोऽभुक्तमूलाख्यकालो विहितः तत्रोत्पन्नस्यापि शान्तिकं विधेयम्। अत्र सम्मतिवाक्यं प्रागभिहितम्। तत्र मूलशान्तिराश्लेषाशान्तिश्च 'गण्डान्तेन्द्रभ' इति पद्यव्याख्यानानन्तरं लिख्यते।

मूलवृक्षफलम्

अत्र प्रसङ्गान्मूलवृक्षविचारोऽभिधीयते जयार्णवे—

मूलं स्तम्भस्त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा।
मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पञ्चाब्धयोऽग्नयः॥
मूले तु ७ मूलनाशः स्यात्स्तम्भे ८ वंशविनाशनम्।
त्वचि १० मातुर्भवेत्क्लेशः शाखायां ११ मातुलस्य च॥
पत्रे १२ राज्यं विजानीयात्पुष्पे ५ मन्त्रिपदं स्मृतम्।
फले ४ च विपुला लक्ष्मीः शिखाया ३ मल्पजीवितम्॥' इति।

मूलपुरुषाङ्गेषु घटी विन्यासस्तत्फलञ्च

अस्य मूलाख्यस्य पुरुषस्याङ्गेषु घटीविन्यासस्तत्रैव—

'मूलस्य घटिकान्यासो मूर्ध्नि पञ्च ५ नृपो भवेत् ।
मुखे सप्त ७ मृतिः पित्रोः स्कन्धे वेदा ४ महाबलः ॥
बाह्वोरष्टौ ८ बली पाण्योस्तिस्रो ३ हस्तान्वितो भवेत् ।
हृदि खेटा ९ भूपमन्त्री नाभौ द्वौ ब्रह्मविद्भवेत् ॥
गुह्ये दशा १० तिकामी स्याज्जानुनोः षण् ६ महामतिः ।
पादयोः षण् ६ मतिस्तस्येत्युक्तवान् कमलासनः ॥' इति ॥

अथ मूलोद्भूतायाः कन्यायाः फलार्थं मूलाङ्गविभागस्तत्रैव—'चतस्रो ४ नाडिकाः शीर्षे कुर्वन्ति पशुनाशनम् । मुखे षड् ६ धनहानिश्न कण्ठे पञ्च ५ धनागमः ॥ कौटिल्यं हृदये पञ्च ५ बाह्वोर्वित्तागमं च तत् । वेदाः ४ पाण्योर्दयाधर्मं वेदा ४ गुह्येतिकामिनि ॥ ज्येष्ठमातुलनाशश्च जङ्घयोर्युग ४ नाडिकाः । ज्येष्ठभ्रातृविनाशश्च चतस्रो ४ जानुयुग्मके ॥ पादयोर्दश १० नाड्यश्च तत्र वैधव्यमादिशेत् । इति मूलजकन्यायाः फलमीरितमीदृशम् ॥' इति ।

अस्यार्थः—शीर्षे चतस्रो ४ घटिकाः मुखे षट् ६ कण्ठे पञ्च ५ हृदये पञ्च ५ बाह्वोर्बाहुद्वये पञ्च पञ्चेति ५।५ कल्प्यावीप्सा । पाण्योर्मणिबन्धादधोभागयोश्चतस्रश्चतस्र ४।४ इत्यत्रापि वीप्साकल्प्या । गुह्ये चतस्रः ४ जङ्घयोर्जङ्घाद्वये द्वे द्वे २।२ एवं चतस्रः जानुद्वये द्वे द्वे २।२ एवं चतस्रः । पादयोः पादद्वये पञ्च पञ्चेत्येवं दश १० एवं मिलित्वा षष्टि ६० घटिका भवन्ति ।

आश्लेषावृक्षफलम्

आश्लेषाजातयोः पुत्रकन्ययोरङ्गविभागेन फलं तत्रैवोक्तम्—

'मूर्ध्नि पञ्च ५ सुपुत्रा(राज्या)प्तिर्मुखे सप्त ७ पितृक्षयः । नेत्रे द्वे २ जननीनाशो ग्रीवायां स्त्रीषु लम्पटः ॥ स्कन्धे वेदा ४ गुरौ भक्तिर्हस्तेऽष्टौ ८ च बली भवेत् । हृद्येकादश ११ भिश्चात्मघाती सञ्जायते नरः ॥ श्रीमान्नाभौ भ्रमः ६ षड्भिर्गुदे नन्दै ९ स्तपोधनः । पादे पञ्च ५ धनं हन्ति सार्पदितत्फलं क्रमात् ॥' इति ।

आश्लेषावृक्षोऽपि तत्रैवोक्तः—फलं पुष्पं दलं शाखा त्वग्लताकन्द एव च ।
सर्पवल्यां दशा १० क्षां ५ क ९ स्वर ७ विश्वा १३ र्क १२ सागराः ४ ॥
नाडिकास्तद्भवे बाले फलं ज्ञेयं यथाक्रमम् ।
श्रीः श्री राजभयं हानिर्मातृपित्रात्मसङ्क्षयः ॥ इति ।

अयञ्च विभागो नक्षत्रस्य षष्टि ६० घटिकात्मकत्वे ज्ञेयः । न्यूनाधिकत्वे तु त्रैराशिकमूह्यम् ।

चित्रापुष्यपूर्वोत्तराषाढाजातस्य फलसमयः

वसिष्ठेनान्येष्वपि कियत्सु नक्षत्रेषु जातस्यारिष्टमुक्तम्—

'चित्राद्यर्द्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये ।
जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते मातापित्रोर्भ्रातरं चात्मनाशम् ॥

द्विमासस्योत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः ।
पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् ॥' इति ।

अत्रोत्तराशब्देनोत्तराषाढा गृह्यते । पूर्वाषाढासाहचर्यात् । अत एष्वपि नक्षत्रेषु यथाशक्ति मूलवच्छान्तिकं दोषपरिहारार्थं विधेयम् । परन्त्वत्र देवताभेद एवं केवलं ध्येयः । स च तत्स्वामिकृतः, तत्तन्मन्त्राश्च वेदादेवावगन्तव्यास्तच्छान्तिकश्च तिथि-गण्डान्तशान्तावस्माभिर्वक्ष्यत इत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ५५ ॥

हिन्दी—मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में बालक या बालिका का जन्म हो तो पिता का नाश होता है । द्वितीय चरण में जन्म हो तो माता का नाश होता है । तृतीय चरण में जन्म हो तो धन की हानि होती है । चतुर्थ चरण में जन्म हो तो शुभ होता है । शान्ति करने से सर्वत्र (चारों चरणों में) शुभ होता है, मूल का दोष नष्ट हो जाता है । और आश्लेषा नक्षत्र में बालक का जन्म हो तो मूलनक्षत्र के विपरीत फल होता है । अर्थात् आश्लेषा का प्रथम चरण शुभ फल देने वाला, द्वितीय चरण में धन की हानि, तृतीय चरण में माता को हानि या कष्ट और चतुर्थ चरण में पिता को कष्ट होता है ॥ ॥ ५५ ॥

विशेष—यहाँ मातृ शब्द से विमाता का भी ग्रहण आचार्यों ने किया है । मूल के प्रथम चरण में रात्रि में जन्म हो तो पिता के लिए दोषकारक नहीं होता । एवं द्वितीय पाद में दिन में जन्म हो तो माता को दोष नहीं होता, ऐसा वशिष्ठ जी का मत है । शान्ति न करने से १ वर्ष में पिता का, ३ वर्ष में माता का, २ वर्ष में धन का अनिष्ट होता है, अतः शान्ति अवश्य करनी चाहिए । (देखें–पीयूषधारा) । पूरे मूलनक्षत्र को वृक्ष मानकर उसकी घटियों का फल (बालक के लिये) लिखा है ।

बालक के जन्म का फल

वृक्षाङ्ग	मूल	स्तम्भ	त्वचा	शाखा	पत्र	पुष्प	फल	शिखा
घटी	७	८	१०	११	१२	५	४	३
फल	मूलनाश (सर्वनाश)	वंशनाश	मातृनाश	मातुलकष्ट	राज्यलाभ	मंत्रीपद	विपुल धनाप्ति	अल्पायु
	३६ घटी अशुभ				२१ घटी शुभ			३ नेष्ट

बालिका के जन्म का फल

स्थान	शीर्ष	मुख	कण्ठ	हृदय	बाहु	पाणि	गुह्य	जंघा	जानु	पाद
घटी	४	६	५	५	१०	८	४	४	४	१०
फल	पशुनाश	धनहानि	धनाप्ति	कुटिलता	धनागम	दया	कामिनी	ज्येष्ठ मातुल हानि	ज्येष्ठ भ्रातृ हानि	वैधव्य

आश्लेषा फल दोनों के लिए

स्थान	मूर्धा	मुख	नेत्र	ग्रीवा	स्कन्ध	हस्त	हृदय	नाभि	गुदा	पाद
घटी	५	७	२	३	४	८	११	६	१	५
फल	राज्याप्ति	पितृहानि	मातृनाश	लम्पट	गुरुभक्ति	बली	आत्मघात	श्रीमान्	तपस्वी	धननाश

अथ मूलनिवासं सफलमिन्द्रवज्राच्छन्दसाह—

स्वर्गे शुचिप्रौष्ठपदेषमाघे भूमौ नभः कार्त्तिकचैत्रपौषे ।
मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र ॥ ५६ ॥

सौरमासेषु स्वर्गादिवासफलम्

स्वर्गे इति । शुचिराषाढः, प्रौष्ठपदो भाद्रपदः, इष आश्विनः, माघः प्रसिद्धः, एषु मासेषु मूलं मूलनक्षत्रं स्वर्गेऽस्ति । स्वर्गे निवासस्तस्य । नभः श्रावणः, अन्ये प्रसिद्धाः श्रावणकार्त्तिकचैत्रपौषेषु भूमौ मूलं तिष्ठति । तपस्यः फाल्गुनः, शुक्रो ज्येष्ठः, अन्यौ प्रसिद्धौ । फाल्गुनमार्गशीर्षवैशाखज्येष्ठेष्वधस्तात्पाताले मूलं तिष्ठति ॥ एष मूलनिवास उक्तः ।

एतत्फलं च मूलनक्षत्रं यदा यस्मिन्मासे यत्र वसति तत्रैव स्वर्गभूमिपातालेष्वेव स्वोक्तशुभाशुभफलं ददाति । अयमत्र तात्पर्यार्थः । द्रव्याद्यभावेन शान्तिकं कर्त्तुमशक्नुवतः पुंसः स्वर्गपातालनिवासित्वेन मूलस्यारिष्टदोषस्तथा न प्रभवेत् । यदा तु भूमावेव निवासस्तदा दोषनिवारणं नैव स्यादित्यशक्तेनापि शान्तिकं विधेयम् । नैतावता प्रागुक्ते विषये शान्त्यभाव एव किन्तु यथाशक्ति तत्रापि शान्तिकं विधेयम् । शक्तेन तु सर्वत्रैव विधेयम् ! तदुक्तं ज्यौतिषार्णवे—
'मार्गफाल्गुनवैशाखज्येष्ठे मूलं रसातले । माघाश्विननभस्येषु शुचौ मूलं सुरालये ॥
पौषश्रावणचैत्रेषु कार्त्तिके भूमिसंस्थितम् । भूमिष्ठं दोषबहुलं स्वल्पमन्यत्र संश्रितम् ॥' इति ।

क्वचित्सङ्क्रान्तिपरत्वेन मूलनिवासोऽभिहितः—

'वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये ।
पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मृत्याविति संस्मरन्ति ॥
स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले च धनागमः ।
मृत्युलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥' इति ज्योतिषरत्नेऽभिहितत्वात् ॥५६॥

हिन्दी—आषाढ, भाद्रपद, कुँवार (आश्विन) और माघ इन ४ महीनों में मूल का वास स्वर्ग में होता है । श्रावण, कार्तिक, चैत्र, पौष मास में मूल का निवास भूमि पर होता है । फाल्गुन, मार्गशीर्ष, वैशाख और ज्येष्ठ मास में मूल का वास पाताल में होता है । मूल जहाँ (जिस लोक में) रहता है वहीं अशुभ फल देता है ।

विशेष—इसका आशय यह है कि द्रव्यादि के अभाव में मूलशान्ति करने में असमर्थ हों तो (आषाढ, भाद्रपद, आश्विन, माघ, फाल्गुन, अगहन, वैशाख और ज्येष्ठ इन ८ महीनों में जन्म होने पर दौर्बल्य के कारण शान्ति न भी की जाय तो भी कोई भयंकर घटना का भय नहीं होता ।

यदि श्रावण, कार्तिक, चैत्र, पौष इन ४ महीनों में जन्म हो तो मूलशान्ति अवश्य करनी चाहिए। सामर्थ्य रहने पर सभी महीनों में जन्म होने पर शान्ति करना आवश्यक है। तथा अभुक्त मूल में जन्म होने पर भी सभी महीनों में शान्ति करनी चाहिए। यह विचार चान्द्रमास के अनुसार किया गया है। किसी आचार्य ने सौरमास से भी विचार करने की अनुमति दी है। (देखें—पीयूषधारा) ॥ ५६ ॥

अथ मूलप्रसङ्गाद् दुष्टेषु गण्डान्तादिनिमित्तेषु सत्सु जातस्यारिष्टं सपरिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गण्डान्तेन्द्रभशूलपातपरिघव्याघातगण्डावमे
सङ्क्रान्तिव्यतिपातवैधृतिसिनीवालीकुहूदर्शके ।
वज्रे कृष्णचतुर्दशीषु यमघण्टे दग्धयोगे मृतौ
विष्टौ सोदरभे जनिर्न पितृभे शस्ता शुभा शान्तितः ॥ ५७ ॥

गण्डान्तेति। एतेषु पदार्थेषु सत्सु जनिः शिशोरुत्पत्तिर्न शस्ता दुष्टफलदा। गण्डान्तः सन्धिविशेषः। स त्रिविधो नक्षत्रतिथिलग्नभेदेन। तल्लक्षणम्—'ज्येष्ठा-पौष्णभ' इत्यादिना वक्ष्यति। इन्द्रभं ज्येष्ठानक्षत्रम्, शूलः शूलाख्यो दुष्टयोगः, पातो महापातो गणितसाध्यो व्यतीपाताख्यो वैधृताख्यश्च। परिघव्याघातगण्डा अपि दुष्ट-योगाः। अवमस्तिथिक्षयः। सङ्क्रान्तिः सूर्यस्य राश्यन्तरसङ्क्रमपुण्यकालः। व्यतीपात-वैधृती सप्तदशसप्तविंशतितमौ दुष्टयोगौ। १. सिनीवाली दृष्टेन्दुरमावास्या, २. कुहू-र्नष्टेन्दुरमावास्या—'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः' इत्यभिधानात्। ३. दर्शश्चन्द्रदर्शनरहितामावास्या। एतच्चाग्रे सम्यक् प्रतिपादयिष्यते। वज्रे दुष्टयोगे कृष्णे कृष्णपक्षे चतुर्दशी। बहुवचनमावृत्यभिप्रायम्। यमघण्टे 'मघाविशाखा' इत्युक्ते दुष्टयोगे। दग्धयोगे—'सूर्येशपञ्चाग्निरसाष्टनन्दा' इत्युक्ते दुष्टयोगे। केचित्तु—'चापान्त्यगे गोघटगे पतङ्गे' इति वक्ष्यमाणो दुष्टयोग इति व्याचख्युः। मृतौ 'द्वीशात्तोयात्' इत्यादिनोक्ते मृत्युयोगे, विष्टौ भद्रायाम्, सोदरस्य भ्रातुर्भगिन्या वा भे नक्षत्रे, पितृभे माता च पिता च पितरौ तयोर्भे मातृभे पितृभे च। एषु निमित्तेषु सुतस्य सुताया वा जन्म चेत्स्यात्तदनिष्टकृत्स्यादित्यर्थः।

ग्रहणज-त्रीतरजयोरप्यनिष्टम्

दुष्टनिमित्तस्योपलक्षणत्वात्सूर्यचन्द्रग्रहणजन्मत्रीतरजन्माप्यनिष्टम्। सजातीया-पत्यत्रयप्रसवानन्तरं विजातीयापत्यप्रसवस्त्रीतरः। यथा पुत्रत्रयप्रसवानन्तरं कन्याया जननम्। कन्यात्रयप्रसवानन्तरं पुत्रस्य जननम्। अत एव त्रिभ्यः सजातीयेभ्य इतरो विजातीयः स्त्रीतरः, स्त्री च त्रीतरेति। व्युत्पत्तिश्च त्रीतरश्च त्रीतरा च त्रीतरौ। 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः।

परिहारोप्युच्यते—सा जनिः शान्तितो वसिष्ठाद्यृषिप्रोक्तायाः शान्त्याः स्वनुष्ठितायाः शुभा परिणामे सुखदायिनी। शारीरक्लेशानुभवपूर्वकनीरोगदीर्घायुष्यट्वं शिशोः स्यादित्यर्थः।

मूलशान्तिविधिः

अत्र मूलवाक्यानि सशान्तिकानि लिख्यन्ते। तत्र प्राक्प्रतिज्ञातसकलशान्तिसामान्यभूता औपयिकी च मूलशान्तिस्तावदुच्यते। शौनक उवाच—

'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मूलजातहिताय च। मातापित्रोर्धनस्यापि कुले शान्ति हिताय च॥
त्यागो वा मूलजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम्। अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते॥
अदर्शने वाऽपि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम्। एवं च दुहितुर्ज्ञेयं मूलजातफलं बुधैः॥
मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमस्य यत्नतः। जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे वा शुभे दिने॥
समाष्टके वा मतिमान्कुर्याद्वै शान्तिमादरात्। यदैव शान्तिकं कुर्यात्कर्म तत्र प्रचक्ष्महे॥
सुसमे पुण्यदेशे तु मण्डपं कारयेद् बुधः।' इति।

मण्डपपरिमाणं च वसिष्ठेनोक्तम्—

'ईशान्यामथवा प्राच्यामुदीच्यां दिशि कल्पयेत्। मण्डपं त्वष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वा समन्ततः॥
चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलङ्कृतम्। कदलीस्तम्भसंयुक्तमाम्रपल्लवराजितम्॥
पुष्पमालायुतं सम्यक् तूर्यघोषनिनादितम्। पिष्टेन कल्पयेत्सर्वं तथा गोमयमण्डले॥
कुण्डं च तद् बहिः कुर्याद् ग्रहयज्ञोक्तमार्गतः।' इति।

मूलशान्तिप्रकारः तत्र जातदोषपरिहारार्थः—

'पुण्यैर्गिभर्मन्त्रितैस्तोयैः प्रोक्षितायां क्षितौ ततः। तत्रोदकुम्भं सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणविवर्जितम्॥
अकृष्णं मलनिर्णिक्तं पूरयेन्निर्मलाम्भसा। वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा॥
कूर्चहेमसमायुक्तं नूत्नपल्लवसंयुतम्। स्वस्तिकोपरि विन्यस्य क्षीरिद्रुमसुपल्लवैः॥
द्रोणव्रीहींश्च निक्षिप्य ऐशाने च निधापयेत्। पञ्चरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम्॥
अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैः श्रीरुद्रं स्थापयेत्ततः। तत्राप्रतिरथं सूक्तं शतरुद्रानुवाककम्॥
रक्षामन्त्रं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशञ्जपेत्। त्रियम्बकं जपेत्सम्यगष्टोत्तरसहस्रकम्॥
एकैकवारं जापी च पावमानीः स्पृशञ्जपेत्। जपस्य पञ्च कुम्भांश्च द्वयं वा तदलाभतः॥
श्रीरुद्रस्यैककुम्भश्च सर्वसूक्तानि तत्र तु।

ततो देवताप्रतिष्ठा-अग्निस्थापनञ्च—

अथान्यं पञ्चमं कुम्भं पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम्। चतुःप्रस्रवणं कुर्यात्पञ्चवक्त्रञ्च तद्भवेत्॥
वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा। पञ्चरत्नसमायुक्तमाम्रपल्लवसंयुतम्॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्॥
कुम्भस्य नैर्ऋते देशे होमदेशं प्रकल्पयेत्। गोमयालेपिते देशे कुर्यात्स्थण्डिलमुत्तमम्॥
कृत्वाग्निमुखपर्यन्तमुल्लेखादि स्वशाखतः। पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा पूजां समारभेत्॥
नक्षत्रदेवतारूपं सुवर्णेन प्रयत्नतः। निष्कमानेन चार्द्धेन पादेनापि स्वशक्तितः॥
प्रतिमां लक्षणेनैकां कारयित्वा विचक्षणः। यद्वा मूल्यं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत्॥
सुवर्णं सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनलः। सर्वदेवात्मको विप्रः सर्वदेवमयो हरिः॥
संस्मरेन्निर्ऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम्। रक्षोऽधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम्॥
प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं प्रकल्पयेत्। पङ्कजं कारयेद् भूमौ रक्ताभैर्व्रीहितण्डुलैः॥
चतुर्विंशद्दलोपेतं शुक्लैर्वा कर्णिकान्वितम्। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्वर्णं वा रौप्यमृण्मयम्॥

शुद्धवस्त्रेण सञ्छाद्य तत्र मूलानि निक्षिपेत् ।
विष्णुक्रान्ता सहदेवी तुलसी तु शतावरी । मूलानीमानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः ॥
स्थापयेत्कर्णिकामध्ये वस्त्रगन्धाद्यलङ्कृतम् ॥
कूर्चहेमजलोपेतं कुङ्कुमौषधिसंयुतम् । कुम्भोपरि न्यसेद्विद्वान्मूलनक्षत्रदैवतम् ॥
अधिप्रत्यधिदेवौ च दक्षिणोत्तरदेशयोः । अधिदेवं जपेदादौ ज्येष्ठानक्षत्रदैवतम् ॥'

(पूर्वाषाढायां जलम् । उत्तराषाढा २१ ऋक्षे विश्वेदेवाः । विष्णुः २२ वसवः २३ वरुणः २४ अजैकपात् २५ अहिर्बुध्न्यः २६ पूषा २७ अश्विनौ १ यमः २ अग्निः ३ प्रजापतिः ४ सोमः ५ रुद्रः ६ अदितिः ७ बृहस्पतिः ८ सर्पाः ९ पितरः ० भगः ११ अर्यमा १२ सविता १३ त्वष्टा १४ वायुः १५ इन्द्राग्नी १६ मित्रः १७ इत्याद्यनुराधान्तमर्चयेत् ।) ततः पूजा—

ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं पूजयेत्स्वस्वनामतः । स्वलिङ्गोक्तैश्च मन्त्रैश्च प्रधानादीन्प्रपूजयेत् ॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य आवाह्याथ समर्चयेत् । उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥
रक्तचन्दनगन्धाढ्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः । मेषशृङ्गादिधूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च ॥
सुरापौलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यैर्भोजनादिभिः । मत्स्यमांससुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् ॥
सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैन्धवमिश्रितम् । पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् ॥
उक्तगन्धाद्यलाभे तु यथालाभं समर्पयेत् ।
पुष्पान्तं तु समभ्यर्च्य होमं कुर्याद्यथोदितम् । निर्वापप्रोक्षणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि ॥
हविर्गृहीत्वा विधिवन्नैर्ऋत्यां च ऋचा हुनेत् । मोषुणः परापरेति यत्ते देवेति वा पुनः ॥
पायसं घृतसम्मिश्रं हुनेदष्टोत्तरं शतम् । समिदाज्यचरूंश्चाच्छक्तितः सङ्ख्यया हुनेत् ॥
अधिदैवतयोश्चैव जुहुयात्स्वस्वमन्त्रतः । चतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैश्च स्वाहान्तैः स्वस्वमन्त्रकैः ॥
नक्षत्रदेवताभ्यश्च पायसेन तु होमयेत् । कृणुष्वेति पञ्चदशभिर्जुहुयात्कृसरं ततः ॥
'गायत्र्या जातवेदेति 'त्रियम्बक'मिति क्रमात् ।
सीरायुञ्जन्ति तामग्निं वास्तोष्पत्यग्निमेव च ॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसितरसे नमः सुतरसितरसे नमः ॥
क्षेत्रस्य पतिना गणानाग्निं दूतं तथैव च । श्रीसूक्तेन तथा विद्वान् समिदाज्यचरून् क्रमात् ॥
अष्टोत्तरशतैर्वापि अष्टाविंशतिभिः क्रमात् । अष्टाष्टसङ्ख्यया वापि जुहुयाच्छक्तितो बुधः ॥
त्वं नः सोमेन पायसं जुहुयात्तु त्रयोदश । चतुर्गृहीतमाज्यं च याते रुद्रेति मन्त्रतः ॥
स्रुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृतिभिः क्रमात् । हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चात्प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत् ॥
आचार्यो यजमानो वा अग्नौ पूर्णाहुतिं हुनेत् । होमशेषं समाप्याथ वह्निमारोपयेद् बुधः ॥
कुम्भाभिमन्त्रणं कुर्याद्दक्षिणेनाभिमन्त्रयेत् । मृत्युप्रशमनार्थाय जपेत्त्रैयम्बकं शतम् ॥
रुद्रकुम्भोक्तमार्गेण रुद्रमन्त्रं स्पृशञ्जपेत् । धूपं दीपं च नैवेद्यं कुम्भयुग्मे निवेदयेत् ॥
प्रसादयेत्ततो देवमभिषेकार्थमादरात् । तस्मिन् काले ग्रहातिथ्यं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥
पृथक्प्रशस्तं तच्चैव नक्षत्रेष्ट्या सहेव च ।
अभिषेकविधिं वक्ष्ये सर्वाचार्यैरुदीरितम् । भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः ॥
दारपुत्रसमेतस्य कुर्युस्तस्याभिषेचनम् । अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ॥

आपोहिष्ठेति नवभिराप इद्वा द्वयेन च । सहस्राक्षत्र्यृचेनापि देवस्य त्वेति मन्त्रकैः ॥
शिवसङ्कल्पमन्त्रेण वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रकैः । योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ॥
मूलजातशिशोर्दोषं मातापित्रोर्व्यपोहतु । योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुग्मेषवाहनः ॥
सप्तजिह्वश्च देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु । योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मो महिषवाहनः ॥
मूलजातशिशोर्दोषं व्यपोहतु यमो मम । योऽसौ खड्गधरो देवो निर्ऋती राक्षसाधिपः ॥
प्रशामयतु मूलोत्थदोषं गण्डान्तसम्भवम् । योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः ॥
नक्रवाहः प्रचेताह्वो मूलोत्थाघं व्यपोहतु । योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः ॥
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालकशान्तिदः । योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गभृद्वाजिवाहनः ॥
मातापित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु । योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः ॥
आश्लेषामूलगण्डान्तदोषमाशु व्यपोहतु । विघ्नेशः क्षेत्रपो दुर्गा लोकपाला नवग्रहाः ॥
सर्वदोषप्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः । तच्छन्दयोरभिषेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम् ॥
सर्वकामप्रदं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् । वस्त्रान्तरितकुम्भाभ्यां पश्चात्तु स्नापयेत्ततः ॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । यजमानो दक्षिणाभिस्तोषयेदृत्विगादिकान् ॥
धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् । निर्ऋतिप्रतिमां वस्त्रकुम्भहेमादि दापयेत् ॥
श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वात् प्रयत्नतः । तत्कुम्भवस्त्रप्रतिमास्तस्मै दद्यात्प्रयत्नतः ॥

इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।
उक्तालाभे ततो दद्यादाचार्यब्रह्मर्त्विजाम् ॥

तन्मूल्यं च प्रदातव्यं शक्त्या वापि प्रदापयेत् । आचार्याय च यद्दत्तं तदर्द्धं ब्राह्मणे भवेत् ॥
सदस्याय ब्रह्मणोऽर्द्धमृत्विग्भ्यश्च तदर्द्धकम् । आशीश्च तेभ्यो गृह्णीयात्प्रणम्याथ क्षमापयेत् ॥
दद्यादन्नं पायसादि ब्राह्मणान् भोजयेच्छतम् । अलाभे सति पञ्चाशद्दशकं तदभावतः ॥
सर्वशान्तेश्च पठनं ब्राह्मणैराशिषस्तथा । गृही क्षमापयेद्विद्वान् निर्ऋतिः प्रीयतामिति ॥
विधाने चरितेऽस्मिंस्तु ततः शान्तिर्भवेद्ध्रुवम् । गण्डान्तेऽपि तथा कार्यं पुष्यार्थे तद्वदेव तु ॥
समाष्टके द्वादशाहे कुर्याद्वा शान्तिमादरात् । इत्युक्तं मनुना सम्यङ्मूलजातहिताय च ॥

मातापित्रोर्धनस्यापि बन्धोः शोकोपशान्तये ॥' इति ।

इति श्रीशौनकप्रोक्तो मूलजननशान्तिविधिः समाप्तः ।

आश्लेषाशान्तिविधिः

आश्लेषाशान्तिविधिरुच्यते—

'आश्लेषायां तु जातानां शान्तिं वक्ष्याम्यतः परम् ।
जातस्य द्वादशाहे च शान्तिहोमं समाचरेत् ॥
असम्भवे तु जन्मर्क्षे ह्यन्यस्मिन्वा शुभे दिने ।
स्नातोऽभ्यङ्गादिभिस्तस्मिन्वरयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥

विभवे पञ्च कुम्भांस्तु द्वयं वा तदलाभतः । देवतास्थापने चैकमेकं रुद्राभिमन्त्रणे ॥
मूलर्क्षोक्तप्रकारेण कुम्भे निक्षिप्य पूजयेत् । गोमयालेपिते देशे धात्वाद्यैः परिशोभिते ॥
पङ्कजं कारयेत्तत्र चतुर्विंशद्दलान्वितम् । तण्डुलैः कारयेद्वा रक्तपीतसितासितैः ॥
कर्णिकायां न्यसेद् व्रीहीन्स्थापयेत्तेषु कुम्भकम् । आकलशेष्वित्यनया कलशस्थापनं शुभम् ॥

'इमं मे' इति मन्त्रेण पूरयेत्तीर्थवारिणा। कुम्भं सुवस्त्रगन्धाद्यैस्तत्तन्मन्त्रैश्च पूजयेत् ॥
याः फलिनीरित्यनया क्षिपेद्रत्नौषधादिकान् ॥
कुम्भोपरिस्थपात्रे तु आश्लेषाप्रतिमां यजेत्। निष्कनिष्कार्द्धपादैर्वा कारयित्वा स्वशक्तितः॥
तत्पूर्वोत्तरनक्षत्रे दक्षिणोत्तरयोर्यजेत्। ऐन्द्रादीशानपर्यन्तमितरर्क्षाणि पूजयेत् ॥
मूलोक्तेन विधानेन कुम्भयोरभिमन्त्रणम्। रुद्राच्चर्ा रुद्रकुम्भे तु पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥
'नमोस्तु सर्पेभ्य' इति पूजामन्त्र इहोदितः। सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विभुजः पीतवस्त्रकः ॥
फलकासिधरस्तीक्ष्णो दिव्याभरणभूषितः।
एवं ध्यात्वा ततोऽभ्यर्च्य होमकर्म समाचरेत्। कर्त्तुः शाखोक्तमार्गेण आचार्यस्याथवा चरेत् ॥
मुखान्तं कर्म निर्माय हविरादाय शास्त्रतः। 'इदं सर्पेभ्यो' जुहुयात्साधिप्रत्यधिदैवतम् ॥
अष्टोत्तरशतं वाऽथ अष्टाविंशतिमेव च। मूलनक्षत्रवच्छेषहोमं तत्र समापयेत् ॥
पूर्णाहुत्यन्तकर्माणि कृत्वा सम्पातकं तथा ॥
कुम्भाज्जलं तु प्रक्षिप्य त्वभिषेकमथाचरेत्। दारपुत्रसमेतस्य यजमानस्य पूर्ववत् ॥
अभिषिञ्चेत्तदाऽऽचार्य ऋत्विग्भिः सहितस्ततः।
अभिमन्त्रितकुम्भाद्भिरभिषेचनमाचरेत्। तथा पौराणमन्त्रैश्च पल्लवैरभिषेचयेत् ॥
आश्लेषाऋक्षजातस्य मातापित्रोर्धनस्य च ॥
भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु। योऽसौ वागीश्वरो नाम चाधिदेवो बृहस्पतिः ॥
मातापित्रोः शिशोश्चैव गण्डान्तं च व्यपोहतु। त्रातारः सर्वभूतानां रक्षन्तु पितरः सदा ॥
सर्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबान्धवान्। एवं कृतेऽभिषेके तु सर्पशान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥

ततः शुक्लाम्बरधरो यजमानः सुभूषितः।
दक्षिणाभिस्ततो विप्रान्मूलवच्च प्रतोषयेत् ॥
भुक्तवद्भ्यश्च विप्रेभ्यः स्वीकुर्यादाशिषं गृही।
इत्युक्तेन विधानेन सर्वारिष्टं व्यपोहति ॥
सर्वे कामाश्च सिद्ध्यन्ति वेदोक्तायुर्भविष्यति।
इत्युक्तं सर्पशान्त्यर्थं सारभागमचोदितम् ॥
मानवानां हितार्थाय मनुना सार्वकामिकम्।
सर्पाधीश ! नमस्तुभ्यं नागानां च गणाधिप ! ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वारिष्टप्रशान्तये।
इत्यर्घमन्त्रः। 'मूलनक्षत्रवत्कुर्यात्सर्पगण्डे स्वनामतः'।

इति श्रीमानवसंहितायामाश्लेषाजननशान्तिविधिः समाप्तः।

विवाहे मूलाश्लेषोत्पन्नवधूवरयोः शान्तिविधिः

एतच्च मूलाश्लेषाशान्तिकद्वयं विवाहे उपस्थिते श्वशुरस्य श्वश्र्वाश्च सत्त्वे मूलाश्लेषोत्पन्नयोरपि वधूवरयोस्तत्तदनिष्टनिवृत्त्यर्थं विधेयम्। उपलक्षणत्वाच्च ज्येष्ठाविशाखयोरुत्पन्नाया वध्वास्तत्रोत्पन्नवरस्य ज्येष्ठबन्धुकनिष्ठबन्धुपीडाशान्तये च। यदाह वसिष्ठः—नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रं त्ववश्यं श्वशुरं निहन्ति। तदन्त्यपादे जनिता निहन्ति नैवोत्क्रमेणाहिभवः कलत्रम्' इति। अहिराश्लेषा। अहिभव इति पुंस्त्वम-

विवक्षितम् । तदाह—'सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम् ।' इति । नारदोऽपि—'मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनम् । ऐन्द्री पत्यग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा ।। शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तर्हि दोषो न कश्चन' इति ।।

अथान्याः शान्तयः श्लोकक्रमेणोच्यन्ते ।

नक्षत्रगण्डान्तशान्तिविधिः

तत्र तावन्नक्षत्रगण्डान्तशान्तिविधिरुच्यते—

गण्डशान्तिं प्रवक्ष्यामि सोममन्त्रेण भक्तिमान् । कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम् ।।
अष्टभिश्च चतुर्भिर्वा द्वाभ्यां वा शोभनं तथा । तन्मध्ये पायसं शङ्खे नवनीतेन पूरिते ।।
राजतं चन्द्रमर्चेत्तु सितपुष्पसहस्रकैः । दैवज्ञः क्षौमवासाश्च शुक्लमाल्याम्वरार्चितः ।।
सोमोऽहमिति सञ्चिन्त्य पूजां कुर्यादतन्द्रितः । जपेत्साहस्रकं मन्त्रं श्रद्दधानः समाहितः ।।
आप्यायस्वेति मन्त्रेण पूजां कुर्यात्समाहितः । दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गण्डदोषप्रशान्तये ।।
शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम् । गण्डदोषोपशान्त्यर्थं दद्याद्वेदविदे शुचिः ।।

इति श्रीमानवसंहितायां नक्षत्रगण्डान्तजननशान्तिविधिः समाप्तः ।

नक्षत्रगण्डान्तलक्षणमन्यैर्मुनिभिरेवमुक्तम्—

अश्विनीमघमूलादौ त्रिषट्कनवनाडिकाः । रेवतीसार्पशाक्रान्ते मासाश्च ऋतुसायकाः ।।
अश्विनीमघमूलादौ नाडिकाद्वितयं तथा । रेवतीसार्पशाक्रान्ते नाडिकाद्वितयं तथा ।।
अश्विनीमघमूलानां पूर्वार्द्धे बाध्यते पिता । पूषाहिशक्रपश्चार्द्धे जननी बाध्यते शिशोः ।।

पितृहा तु दिवाजातो रात्रिजातस्तु मातृहा ।
आत्मध्रुक् सन्ध्ययोर्जातो नास्ति गण्डो निरामयः ।।

सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते । वर्जयेद्दर्शनं तावत्तच्च षाण्मासिकं भवेत् ।।' इति ।

तिथिलग्नगण्डान्तशान्तिविधिः

अथ तिथिलग्नगण्डान्तशान्तिविधिरुच्यते—

अभुक्तेतरजातस्य सूतकान्त्यदिने पिता । शान्तिं शुभेऽह्नि वा कुर्यात्तावत्पुत्रं न लोकयेत् ।।
तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते । काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ।।
आद्यभागे पितुर्गण्डं त्रयाणामभिषेचनम् । इतरत्र शिशोर्मातुरभिषेकं च कारयेत् ।।
उत्तरे तिलपात्रं स्यात्तिष्ये गोदानमुच्यते । अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे च पूर्वाषाढे च काञ्चनम् ।।
उत्तरातिष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च । कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजां बुधः ।।
सुवर्णेन तदर्द्धेन यथावित्तानुसारतः । नक्षत्राधिपते रूपं कृत्वा वस्त्रद्वयान्वितम् ।।
वरुणस्यार्चनं कार्यं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । शतौषधानि रत्नानि मृत्त्वक्पल्लवसंयुतान् ।।
पूजान्ते समिदन्नाज्यैर्होमं तिलयवैस्तथा । ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा वेदाध्यायिकुटुम्बिने ।।
उत्तराप्रथमे पादे तिलपात्रं तथैव च । तिष्ये तु गां सवत्सां च सुशीलां च पयस्विनीम् ।।
अजां चित्रासु वै दद्यात्पूर्वाषाढे तु काञ्चनम् । यवांश्च व्रीहिमाषांश्च तिलमुद्गांश्च दापयेत् ।।
यथा वित्तानुसारेण कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् । पितुरायुष्यवृद्ध्यर्थं शान्तिरत्र विधीयते ।।
एवं यः कुरुते सम्यक्शान्तिकर्म समाहितः । न दोषैर्लिप्यते नूनं पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं सम्प्राप्नोति दिने दिने । धनधान्यसमृद्धिं च पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥'

इत्युत्तरगार्ग्योक्ततिथ्यादिगण्डान्तजननशान्तिविधिः ॥

अथ ज्येष्ठाशान्तिविधिरुच्यते । तत्र जन्मनि फलम्—तत्र प्रत्येकं घटिकाषट्कस्य फलान्याह भारद्वाजः—

'ज्येष्ठादौ मातृजननीं मातामहं द्वितीयके । तृतीये मातुलं हन्ति मातरं तु चतुर्थके ॥
आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् । सप्तमे कुलनाशः स्यादष्टमे ज्येष्ठसोदरम् ॥
नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वस्वं दशमे तथा ॥' इति ।

'सुखासीनमृषिश्रेष्ठं गर्गं मुनिगणान्वितम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा पप्रच्छ किल शौनकः ॥

शौनक उवाच—

ज्येष्ठानक्षत्रसम्भूतगण्डदोषविनिर्णयम् । तस्य शान्तिविधानं च वद मे मुनिसत्तम ॥
शौनकस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महामुनिः । शृणु शौनक यत्नेन गण्डदोषविनिर्णयम् ॥
तस्य शान्तिविधानं च यथावत्कथयाम्यहम् । घटिकैका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम् ॥
तयोः सन्धिरिति ज्ञेयं शिशुगण्डं समीरितम् । प्रथमे च द्वितीये च ज्येष्ठर्क्षे च तृतीयके ॥
पादत्रये जातनरः श्रेष्ठोऽप्यत्र प्रजायते । ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य विनाशनः ॥
जायते नात्र सन्देहो दशाहाभ्यन्तरे तथा । ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम् ॥
तच्छान्ति तस्य वक्ष्यामि गण्डदोषप्रशान्तये । सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रतारावलान्विते ॥
सूतकान्ते तथा कुर्याज्ज्येष्ठाशान्ति विधानतः ।
वज्राङ्कुशधरं देवमैरावतगजान्वितम् । कुर्याच्छचीपतिं रम्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥
कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षार्द्धेनाथ पादतः । यथाविधि प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥
शालितण्डुलसम्पूर्णकुम्भस्योपरि पूजयेत् ॥
इन्द्रायेन्दोमरुत्वते इति मन्त्रेण वाग्यतः । गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नानाभक्ष्यनिवेदनैः ॥
पूजयेद्विधिना विप्रो लोकपालान्गणान्वितान् । पुण्योदकसमायुक्तान्वस्त्रयुग्मेन वेष्टितान् ॥
कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान्पञ्चगव्यं समन्त्रकम् । पञ्चवृक्षकषायांश्च पञ्चपल्लवकांस्तथा ॥
सुवर्णकुशदूर्वाश्च निक्षिपेच्छतमोषधीः । पूजयेद्वारुणैर्मन्त्रैः कुम्भान्धीमान्प्रयत्नतः ॥
त्वं नो अग्ने जपेदादौ सत्वं नोऽपि द्वितीयकम् । समुद्रज्येष्ठा इति चेमम्मे गङ्गे चतुर्थकम् ॥
पूजयेद्वस्त्रयुग्माद्यैश्चतुरः कलशानपि । जपं कुर्युः प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिर्द्विजोत्तमाः ॥
आनोभद्राजपं चादौ भद्रा अग्नेर्द्वितीयकम् । इन्द्रसूक्तं रुद्रजाप्यं जपं मृत्युञ्जयं ततः ॥
इत्थं सम्पूज्य देवेशं वरुणं कुम्भसंस्थितम् ।
सुसङ्कल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत् । समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं तथा ॥
सर्पिषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः । हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इन्द्रभयेति च ॥
तिलान्व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक् । भार्याशिशुसमोपेतं यजमानं विशेषतः ॥
अभिषेकं प्रकुर्वीत सूक्तैर्वारुणसंज्ञितैः । समुद्रज्येष्ठादिभिर्मन्त्रैरिमं मे वरुणस्तथा ॥
द्यौःशान्तिरित्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत् । अभिषेकनिवृत्तौ तु यजमानः समाहितः ॥
शुक्लाम्बराणि धृत्वा च कुर्यादाज्यावलोकनम् । रूपं रूपेति मन्त्रेण चित्रं तच्चक्षुरेव च ॥
देवतापुरतः स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम् । दद्यादाचमनं सम्यक् ताम्बूलार्थं तथैव च ॥
नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये ॥

कार्यं तत्पूजकादीनां कर्मणा यत्फलं शुभम् । लब्ध्वा तु तत्फलं सर्वं देवेन्द्राय समर्पयेत् ॥
आचार्याय च गां दद्यात्सुशीलां च पयस्विनीम् । रक्तवर्णां वत्सयुतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥
वस्त्रयुग्मपिधानां च यथाविभवसारतः । यक्षगन्धर्वसिद्धैश्च पूजितोऽसि शचीपते ॥
दानेनानेन देवेश गण्डदोषं विनाशय । अष्टोत्तरशतं सद्यः कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥
तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् । ज्येष्ठाशान्तिमिमां कृत्वा यथाविध्युक्तमार्गतः॥
गण्डदोषं विनिर्जित्य आयुष्मान्जायते नरः । इत्युक्तं वृद्धगार्ग्येण शौनकाय विशेषतः ॥
ज्येष्ठानक्षत्रसम्भूतगण्डदोषप्रशान्तये । अज्ञानाद्वाथवा ज्ञानाद्वैकल्याद्वा धनस्य च ॥
यन्न्यूनमतिरिक्तं च तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।'

इति श्रीवृद्धगार्ग्यसंहितायां ज्येष्ठानक्षत्रप्रसूतिशान्तिः ॥

शूलादियोगेषूत्पन्नस्य शिशोः शान्तिविधिः

शूलयोगस्य गणितसाध्ययोर्वैधृतिव्यतीपाताख्ययोः पातयोश्च परिघव्याघातगण्डाव-मानाञ्च भद्रायाश्च वज्रस्य यमघण्टस्य मृत्युयोगदग्धयोगयोश्च शान्तिर्वि धिरभिधीयते—
'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जन्मकाले विशेषतः । गण्डान्तानां च नामानि महादोषकराणि च ॥
दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टिवैधृतौ । शूले गण्डे च परिघे वज्रे च यमघण्टके ॥
कालगण्डे मृत्युयोगे दग्धयोगे सुदारुणे । तस्मिन्गण्डदिने प्राप्ते प्रसूतिर्यदि जायते ॥
अतिदोषकरी प्रोक्ता तत्र पापयुते सति । विचार्य तत्र दैवज्ञं शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ॥
यजनं देवतानां च ग्रहाणां चैव पूजनम् । दीपं शिवालये भक्त्या घृतेन परिदापयेत् ॥
अभिषेकं शङ्कराय चाश्वत्थस्य प्रदक्षिणम् । आयुर्वृद्धिकरं जाप्यं सर्वारिष्टविनाशनम् ॥
गुरुदैवतविप्राणां पूजनं गोत्रवर्द्धनम् । पुष्ट्यायुस्तुष्टिशान्त्यर्थमभीष्टफलसिद्धये ॥
सर्वारिष्टपरिहारार्थाय यज्ञं समाचरेत् । शिवाय विधिवद्भक्त्या दीपदानं करोति यः ॥
अखण्डं गोघृतेनैव स वै मृत्युञ्जयेन्नरः । विष्णुमूर्तिं महापुण्यमश्वत्थं श्रीकरं सदा ॥
प्रदक्षिणं नरो भक्त्या कृत्वा मृत्युञ्जयं जपेत् । सर्वसम्पत्समृद्ध्यर्थं नित्यं कल्याणवृद्धये ॥
अभीष्टफलसिद्ध्यर्थं कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् । अभिषेकं शिवे शान्तिं कृत्वा भक्त्या नरोत्तमः ॥
अकालमृत्युं निर्जित्य दीर्घायुर्जायते नरः । गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं शुभम् ॥
शान्तिजाप्यं पुनश्चैव कृत्वा मृत्युञ्जयी भवेत् ।
मूले वा सार्पगण्डे वा कुर्यादेतानि यत्नतः । आयुर्वृद्धिफलार्थाय गण्डदोषप्रशान्तये ॥
इति श्रीउत्तरगार्ग्यप्रोक्तशूलादिदुष्टयोगजननशान्तिविधिः ।

सूर्यसङ्क्रान्ति-व्यतीपात-वैधृति-योगेषु जन्मनि शान्तिः—

सूर्यसङ्क्रान्तिव्यतीपातवैधृतियोगानां शान्तिरभिधीयते—

गार्ग्य उवाच—

'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जन्मकाले विशेषतः । वैधृतौ च व्यतीपाते महादोषोऽभिजायते ॥
कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः । सङ्क्रान्तिश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्रयकारकः ॥
दरिद्राणां महद्दुःखं व्याधिपीडा महद्भयम् । अश्रियं मृत्युमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥
स्त्रीणाञ्च शोको दुःखञ्च सर्वनाशकरं भवेत् । शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तत्र दोषो न कश्चन ॥
गोमुखप्रसवं कुर्याच्छान्तिं कुर्यात्प्रयत्नतः । जपाभिषेकदानैश्च होमादपि विशेषतः ॥

नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषोपशान्तये । प्रथमं गोमुखाज्जन्म ततः शान्ति समाचरेत् ॥
गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनानुलिप्य च । अलङ्कृतं स्वदेशे तु व्रीहिराशिं प्रकल्पयेत् ॥
पञ्चद्रोणमितं धान्यं तदर्द्धं तण्डुलेन च । तदर्द्धं तु तिलैः कुर्यादन्योऽन्योपरि कल्पयेत् ॥
तृतीयराशौ द्रव्यस्य चाष्टपत्रं लिखेद् बुधः । पुण्याहं वाचयित्वा तु आचार्यं वृणुयात्पुरा ॥
आचारवन्तं धर्मज्ञं कुलीनं च कुटुम्बिनम् । मन्त्रतत्त्वार्थतत्त्वज्ञं शान्तिकर्मणि कोविदम् ॥
पञ्चाङ्गभूषणं दद्यात्पट्टवस्त्राङ्गुलीयकम् । राशौ प्रतिष्ठितं कुम्भमव्रणं सुमनोहरम् ॥
तीर्थोदकेन सम्पूर्य समृदौषधिपल्लवम् । पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सूक्ष्मवस्त्रेण संयुतम् । प्रतिमां स्थापयेद् धीमान्साधिप्रत्यधिदेवताम् ॥
चन्द्रादित्याकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत् । एवमेव व्यतीपातशान्तौ सङ्क्रमणस्य च ॥
भानोरुत्तरतो रुद्रमग्निं दक्षिणतो यजेत् । निष्कमात्रेण चार्द्धेन पादेनापि स्वशक्तितः ॥
प्रतिमाः कारयेद्धीमांस्तत्तल्लक्षणलक्षिताः । प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् ॥
अधिदैवं भवेत्सूर्यश्चन्द्रः प्रत्यधिदैवतम् । तत्तद्वयाहृतिपूर्वेण तत्तन्मन्त्रेण पूजयेत् ॥
त्रैयम्बकेण मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां यजेत् । उत्सूर्य इति मन्त्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् ॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण सोमपूजां समाचरेत् । उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥
अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैर्गुडनैवेद्यमर्पयेत् । मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां स्पृशन् ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा । अष्टाविंशति वा चाथ प्रजप्याथ स्वशक्तितः ॥
सर्वसौरं प्रजप्याथ सोमार्थं सोममन्त्रतः । आनोभद्रेति सूक्तञ्च भद्रा अग्नेश्च सूक्तकम् ॥
जपेच्च पौरुषं सूक्तं त्रैयम्बकमतः परम् । कुम्भं स्पृष्ट्वा चतुर्दिक्षु जपं कुर्युस्त्वथर्त्विजः ॥
कुम्भस्य पश्चिमे देशे स्थण्डिलेऽग्निं प्रकल्पयेत् । स्वगृह्योक्तविधानेन कारयेत्संस्कृतानलम् ॥
त्रैयम्बकेण मन्त्रेण समिदाज्यचरूञ्जुहुनेत् । अष्टोत्तरसहस्रं वा त्वष्टोत्तरशतं तु वा ॥
अष्टाविंशतिहोमं वा स्वेस्वशक्त्यनुसारतः । मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण तिलहोमं समाचरेत् ॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा ह्यभिषेकं च कारयेत् । समुद्रज्येष्ठाःसूक्तेन चापोहिष्ठा त्र्यृचेन च ॥
अक्षिभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च । त्रैयम्बकेण उत्सूर्य आप्यायस्वेति मन्त्रतः ॥
सुरास्त्वामिति मन्त्रेण त्वभिषेकं समाचरेत् । अभिषेकाप्लुतं वस्त्रमाचार्याय प्रदापयेत् ॥
श्वेतवस्त्रधरो भूत्वा भूषणाद्यैरलङ्कृतः । यजमानः स्त्रिया युक्त आज्यावेक्षणमाचरेत् ॥
आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रहेमाङ्गुलीयकैः । गोदानं वस्त्रदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ॥
तद्दोषशमनार्थाय आचार्याय प्रदापयेत् । प्रच्छादनपटं दद्यात्ततः शान्तिर्भविष्यति ॥
जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणाभिश्च तोषयेत् । दीनान्धकृपणेभ्यश्च प्रदद्याद् भूरिदक्षिणाः ॥
ब्राह्मणाञ्छतसङ्ख्याकान्मिष्टान्नैर्भोजयेच्च तान् ॥
बन्धुभिः सह भुञ्जीत यथाविभवसारतः । एवं यः कुरुते मर्त्यो नैव दुःखमवाप्नुयात् ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं मातापित्रोः शिशोरपि । सर्वदुःखनिवृत्त्यर्थं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति शान्ति कुर्वन् हि मानवः ॥

इति श्रीउत्तरगार्ग्योक्तव्यतीपातवैधृतिसङ्क्रान्तियोगजन्मशान्तिविधिः ॥

अथ कुहूसिनीवालीदर्शशान्तिरुच्यते । तत्रेयमुपपत्तिः । यथा त्रिविधो दर्शः—१. कुहूरूपः, २. सिनीवालीरूपः, ३. उभयलक्षणव्यतिरिक्तश्चेति । यतो द्विविधामावास्या ।

'अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमः । सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः ॥' इत्यमरोक्तेः । निशि चन्द्रवती या तु पूर्णिमा सानुमतिः । सा दिवा चन्द्रवती राका । तद्वदेव द्विधाऽमा । 'सिनीवाली चन्द्रवती नष्टचन्द्रा कुहूर्मता' इति कश्यपोक्तेश्चामावास्याया द्विविधत्वमेवावसीयते । युक्तञ्चैतद् दृष्टचन्द्रात्वं नष्टचन्द्रात्वममावास्यायाः सम्भवति न पुनरुभयाभावेन तृतीयामावास्येति । नन्विदमप्ययुक्तम् । यतो रवेर्द्वादशांशविप्रकर्षे चन्द्रदर्शनं कालांशवशेनोक्तम् । तदाह भास्करः—'दस्रेन्दवः शैलभुवश्च शक्रा रुद्राः खचन्द्रास्तिथयः क्रमेण । चन्द्रादितः काललवा निरुक्ता ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः ॥' इति । द्वादशांशमितेन चान्तरेणामावास्यालक्षणस्य तिथेर्निष्पत्तिः । उक्तञ्च सूर्यसिद्धान्ते—'अर्काद्विनिःसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी । तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेयो द्वादशभिस्तिथिः ॥' इति । एवञ्च कथं दृष्टचन्द्रा सिनीवालीत्युक्तं, कथं च नष्टचन्द्रा कुहूः, कथं चानयोर्भेद इति । विना प्रयोजनं चैकस्य वस्तुनोऽनेकसंज्ञाकरणं न युक्तमिति चेत्, उच्यते । नहि कालांशवशेन ग्रहणामस्तोदयौ । किं तर्हि ? क्षेत्रांशवशेन । तदुक्तं सूर्यसिद्धान्ते–'अष्टादशशताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदयासुभिः । विभज्य लब्धं क्षेत्रांशास्तैर्दृश्यादृश्यता मता ॥' इति । तथा च—'सूर्यास्तकालिकौ पश्चात्प्राच्यामुदयकालिकौ । दिवाकरग्रहौ कुर्याद् दृक्कर्म्मार्थं ग्रहस्य तु' ॥ इत्यादिना प्रकारेण द्विविधदृक्कर्म्मसंस्कृताच्चन्द्रादे राश्युदयवैषम्येण देशभेदेन च नियतत्वात्कदाचिदमावास्यायामपि सार्धैर्दशभिरंशैरन्तरितश्चन्द्रो दर्शनगोचरो भवति । कदाचित्षोडशांशान्तरितो द्वितीयायामपि चन्द्रो दृग्गोचरो भवति । एवमेव कदाचिच्चतुर्दशीशेषे च न दृश्यते । कदाचिदल्पावशिष्टायां प्रतिपद्यपि दृश्यते ।

प्रतिपच्चन्द्रदर्शने फलविशेषः

अत एव गर्गेण प्रतिपदुदितस्य चन्द्रस्य फलविशेषोऽभिहितः । यथा च गर्गसंहितायाम्—'यदा चन्द्रः प्रतिपदि नौसंस्थाय प्रदृश्यते । उत्तरोज्ज्वलशृङ्गः स्यात्स्निग्धश्चातिमनोहरः ॥ क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सर्वभूतेषु निर्दिशेत् ।' इति । अत एव भारविणापि—'प्रणमन्त्यनपायमुत्थितं प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम्' इति किरातार्जुनीये प्रयुक्तम् । अत्रैतस्य टीकाकाराः—प्रतिपच्छब्देन प्रतिपत्सहचरिता द्वितीया गृह्यते । प्रतिपदि चन्द्रदर्शनाभावादिति व्याचख्युस्ते चिन्त्योक्तयो ध्येयाः । ननु प्रतिपदि चन्द्रोदय उत्पातः, तद्दर्शनमशुभफलमिति चेन्न । गणितविसंवादिबुधादिदर्शनं गणितज्ञानाशक्यमेव । केत्वादिदर्शनं चोत्पात इति । तल्लक्षणं प्रागुक्तं मया । चन्द्रोदयस्तु कदापि गणितं न व्यभिचरति, इति प्रत्यक्षदर्शनात्, प्रतिपदुदितचन्द्रस्य गर्गेण प्रशस्तफलाभिधानाच्च । न ह्युत्पातानां समीचीनं फलं कुत्राप्युक्तं स्वर्तुजानुत्पातान्विहाय वचनात् । येन प्रतिपदि चन्द्रोदय उत्पात इत्युच्यते तेन चतुर्दशीशेषे प्रातश्चन्द्रोदयाभावो ह्युत्पातो वाच्य इति, तच्चायुक्तम् । उक्तादेव हेतोः । तस्मात् क्षेत्रांशवशेनैव ग्रहाणामस्तोदयौ भवतः । कालांशोक्तिस्तु क्षेत्रांशनिदानभूतत्वाय सामान्यत उदयास्तज्ञानसिद्ध्यैव । तदेतत्पितृचरणैस्तोडरानन्दे चन्द्राचारविलासे सम्यक् प्रतिपादितम् । तस्माद् दृक्कर्मसंस्कारवशेन चतुर्दशीशेषे प्रातश्चन्द्रोदयो दृश्यते न दृश्यते । एवं च प्रातरमावास्यायामपि

चन्द्रोदयो न दृश्यते, दृश्यते । तस्मात्सुष्ठूक्तम्—'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः' इति, तद्वदेव द्विधा ह्यमा । 'सिनीवाली चन्द्रवती नष्टचन्द्रा कुहूर्मता' इति । कश्यपोऽपि 'द्विधैवामादास्या' इत्याहुस्म । युक्तमेव । यद्यमावास्यायां चन्द्रो दृश्यते तदामावास्या सिनीवाली, यदा चन्द्रोऽमावास्यायां न दृश्यते तदा कुहूरिति । परन्त्विद-मयुक्तम् । यदुभयराहित्येनामावास्यान्तरमप्यस्तीति । अस्यासम्भवात् । अत्र समाधिं यावदूकास्तावदाहुः । यस्याः कस्याश्चिदमावास्याया अष्टौ विभागान्कृत्वा प्रथमविभागे चन्द्रदर्शनमस्ति न वेति विचार्य । यदा चन्द्रदर्शनं तदा सिनीवाली, यदा चन्द्रादर्शनं तदामावास्या सकलचन्द्रक्षये कुहूरिति । तदेतदुक्तं छन्दोगपरिशिष्टे 'इन्दुक्षयकालः श्राद्धकालः' इति प्रस्तुत्येन्दुलयकालपरिमाणमुक्तम्—'अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः । अमावास्याष्टमे भागे पुनः किल भवेदणुः' इति 'आग्रहायण्यमा-वास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् । विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः ॥ अत्रेन्दुराद्ये प्रथमेऽवतिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्टः । तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्न एवं ज्योतिश्चक्र-विज्ञा वदन्ति' ॥ इति । आभ्यामिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । एते अमावास्ये प्रकृत्येत्यर्थः । एतत्कारिकात्रयं तद्भाष्यकारेण व्याख्यातम्—'प्रहरनवात्मकश्चन्द्रक्षयकालः' इति । तत्रामायाः सप्तमाष्टमयामौ कृत्स्नक्षयकालः चतुर्दशीशेषयामदर्शादियामौ चन्द्रसूक्ष्मता-काल इति । पुनः किलशब्दाभ्यामयमर्थो द्योत्यते । चतुर्दश्याः क्षैण्यं सूक्ष्ममन्त्यभागे कृत्स्नक्षयकाल इति । अमावास्याविशेषे ज्येष्ठादावमाद्ययामे चन्द्रो दृश्यत इत्यर्थः । ज्योतिश्चक्रविज्ञा इत्यस्यार्थः पितृचरणैरभिहितः । तेन देशकालगणनाकुशला यथा यथा गणयन्ति तदेवाङ्गीकार्यमिति सूच्यते । ततश्च ज्येष्ठादिकालभिन्नकालेऽप्येवंविधोपलम्भः । ज्येष्ठादौ च नोपलम्भो देशकालभेदेन सम्भवतीति । तदयमत्र विवेकः—यस्याममावा-स्यायां प्रथमे प्रहरे शास्त्रात्प्रत्यक्षतो वा चन्द्रदर्शनं स्यात्सा सिनीवाली सर्ववादिसिद्धा । तत्रोत्पन्नस्य सिनीवालीजननफलमादेश्यं सिनीवालीप्रयुक्ता शान्तिश्च विधेया । अथ यस्याममावास्यायां यदा नष्टेन्दुकलात्वं स्यात्तदा कुहूरिति । तत्रैकस्याश्चन्द्रकलायाः किञ्चिन्नाशो वा अखिलनाशो वेति सन्देहे विनिगमनाविरहात्कृत्स्नकलाक्षय एव विवक्षितः, मुख्यत्वात् । यत्किञ्चिन्नाशस्त्वपचीयमानत्वाद् गौणः । 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' इति न्यायान्मुख्यस्यैव ग्रहणं युक्तम् । स च कृत्स्नक्षयकालोऽमावास्यान्तिमक्षण एव । यस्य चातिसूक्ष्मत्वाद् दुर्ज्ञानत्वात्सङ्क्रान्तिकालवदित्यमावास्यायाः सप्तमाष्टमप्रहरयोः कृत्स्नक्षयकालस्य भाष्यकारेण परिभाषितत्वात् सप्तमाष्टमप्रहरात्मकः कालः कुहूशब्द-वाच्यः, तत्रोत्पन्नस्य कुहूजननफलं तच्छान्तिश्चादेश्या । पुनस्तस्यामेवामावास्यायां प्रथम-प्रहरानन्तरं सप्तमप्रहरादर्वाक् प्रहरपञ्चकात्मकः कालो दर्शशब्दवाच्य इति । तत्रोत्पन्नस्य दर्शजननफलं तच्छान्तिश्चादेश्या । एवमेकस्यामेवामावास्यायां कालभेदेन त्रयं सम्भवति । अत्र केचित्सिनीवाल्यां विशेषमाहुः—चतुर्दशीशेषे सूर्योदयात्प्राक् चन्द्रदर्शने जाते सति परदिने याऽमावास्या सा सिनीवाली । तथा च जगन्मोहने बौधायन इत्युक्त्वा पठितम्—'मध्याह्नसमयं यावच्चतुर्दश्यनुवर्त्तते । सिनीवालीति सा त्वेषा पितृकर्मणि शस्यते ॥' इति । धर्मशास्त्रेऽप्येतादृशानि भूयांसि वचनानि सन्ति । तेषामिदं श्राद्धकालनिर्णयोप-योगिपारिभाषिकं सिनीवालीत्वं, न पुनर्जननादौ । कुतः ? निरुक्तिविरोधात् । तथाहि,

'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली' इत्यादिवाक्येषु दृष्टश्चन्द्रो यस्यां सा सिनीवालीति बहुव्रीहिः । स च 'अनेकमन्यपदार्थे' इति विहितः । तत्रान्यपदार्थतयोपस्थितामावास्यैव गृह्यते, प्रकरणात् । न चैवं सति चतुर्दश्यां चन्द्रोदये सिनीवालीत्वं स्यात् । 'दृष्टचन्द्रा सिनीवाली' इत्येतावतैव लक्षणेन सर्वासामपि दृष्टेन्दुत्वात्सिनीवालीति तच्छान्तिकोक्तिरनर्थिका स्यात् । ननु दृष्टश्चन्द्रो यस्यामित्यन्यपदार्थे सप्तमी सामीप्यपरेति व्याख्यायते इति चेत्, न । तस्याः सामीप्यसप्तम्या गौणाधारपरत्वात् । मुख्यासम्भवे हि गौणग्रहणं युक्तम् । अत्र तु मुख्य एवाधारः अमावास्यारूपः सम्भवतीति गृह्यते । गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' इति न्यायात् । ननु दृष्टश्चन्द्रो यस्या इति षष्ठ्यर्थेऽन्यपदार्थे बहुव्रीहौ सम्बन्धमात्रं मुख्य एव षष्ठ्यर्थ इति सामीप्यसम्बन्धवत्षष्ठ्यन्तेऽन्यपदार्थे बहुव्रीहिरयं भविष्यतीति चेत्, न । सामीप्यादिसम्बन्धे मत्वर्थीयः प्रत्ययो बहुव्रीहिर्वा न कैरपि वैयाकरणैरिष्यते । तदेतत् 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' इत्यत्र महाभाष्यकारेण प्रत्यपादि । न चैवमपि—'कुहूः सिनीवाल्यपि नष्टदृष्टचन्द्रे स्मृते चासितपञ्चदश्यौ' इत्यादिवाक्येषु बहुव्रीहिनिर्देशो मतुब्निर्देशो वा नास्ति । तत्र कृष्णचतुर्दश्यामपि चन्द्रोदयस्य दृष्टत्वादमावास्यायाः सिनीवालीति संज्ञा स्यादिति चेत्, न सम्भवति । 'सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्यस्यान्याय्यत्वात्' इति न्यायाच्चन्द्रोदयसमानाधिकरणामावास्याग्रहणस्यैव युक्तत्वात् । किञ्च सिनीपदेन श्वेतचन्द्रकलोच्यते । सितशब्दः श्वेतवर्णवाची । तस्मात् स्त्रियां 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः' इति ङीप्नकारौ । सिनी तां वलते प्राप्नोतीति सिनीवालीति व्युत्पत्तेश्चतुर्दश्युदितं चन्द्राश्रयायाममावास्यायां न युज्यते 'कृत्तद्धितसमासानामभिधानं नियामकम्' इति भाष्यकारस्मरणादिति । तस्माद् दृष्टेन्दुः सिनीवालीत्यमावास्यैवाभिधीयत इति यत्प्रागुक्तं तदेव ज्यायः । एवमेकस्यामेवामावास्यायां सिनीवालीकुहूदर्शरूपं भेदत्रयं युक्तम् । अथ सिद्धान्तविदोऽन्यथा समादधुः । तत्र 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः' इत्यादिषु हि दर्शनशब्देन चाक्षुषं दर्शनं विवक्षितम् । तच्चोदयास्ताधिकाररीत्या दर्शनयोग्यत्वे सति पूर्वक्षितिजक्रान्तिवृत्तसम्बन्धवत्त्वं ग्रहादेर्दर्शनशब्दवाच्यम् । मेघाद्यावरणे हि शास्त्रीये दर्शने दृशिर्वर्तते, आत्मा द्रष्टव्य इत्यादिवत् । अत्रार्थे 'पश्यार्थैश्चानालोचने' इति पाणिनिरप्यनुकूलः । अतो भास्करेणाप्युक्तम्—'निजनिजोदयलग्नसमुद्गमे समुदयोऽपि भवेद्धनभःसदाम्' इति । तयैव रीत्या दर्शनायोग्यत्वे पूर्वक्षितिजक्रान्तिवृत्तसम्बन्धवत्त्वमदर्शनशब्दवाच्यम् । यत्तु—'भवति चास्तविलग्नसमुद्गमे प्रतिदिनेऽस्तमयः प्रवहभ्रमात्' इति भास्करेणोक्तं तद्धनभःसदां क्रान्तिवृत्तपश्चिमक्षितिजसन्निधिवशेनास्तलक्षणमुक्तं न तु पूर्वक्षितिजदर्शनाभावलक्षणमिति मयोक्तं दर्शनाभावलक्षणम्, अतो दर्शनलक्षणवत्यमावास्या सिनीवाली नामादर्शनलक्षणवत्यमावास्या कुहूर्नाम, लक्षणद्वयानाक्रान्तामावास्या दर्शशब्दवाच्येति ।

सिनीवालीकुहूदर्शानां तच्छान्तीनां च व्यवस्था

यदा खल्वमावास्या सूर्योदयात्प्राग्घटिकात्रयवती तदा दृक्कर्मसंस्कारवशेन चन्द्रस्य दृश्यत्वमागतं चेत् तदा सा सम्पूर्णामावास्या सिनीवाली नाम । तादृश्याममायां द्वितीय-

सूर्योदयावधिकायामुत्पन्नस्यारिष्टशान्तये सिनीवालीशान्तिस्तत्फलं चादेश्यम्। अतिवृद्धौ वा तस्या अमावास्याया द्वितीयसूर्योदयानन्तरमत्रशिष्टामावास्याघटीपूत्पन्नस्य कुहूशान्तिरेव चन्द्रदर्शनलक्षणसत्त्वात्। यदि सैवामावास्या सूर्योदयात्प्राग्घटिकाचतुष्टयं वा प्रतिपत्सम्बद्धा तदा सिनीवाल्येव। अथ तादृश्यामेव न्यूनायामधिकायां वामावास्यायां तु दृक्कर्मसंस्कारवशेन चन्द्रस्यादृश्यत्वमागतं सामावास्या सम्पूर्णा कुहूर्नाम, चन्द्रादर्शनलक्षणसत्त्वात्। तत्र कुहूजननफलं सा शान्तिश्चादेश्या। यदा तु सूर्योदयानन्तरं कियतीषु घटीष्वतिक्रान्तास्वमावास्याप्रवृत्तिस्ततः पूर्वं चतुर्दश्येवावस्थिता तस्यामुषसि दृक्कर्मवशतश्चन्द्रो दृष्टोऽमावादर्शि। तस्याममावास्यायां चन्द्रदर्शनादर्शनलक्षणानाक्रान्तत्वात्सामावास्या सम्पूर्णा दर्शो नाम। तत्र दर्शजननफलं शान्तिश्च विधेयेति। एवममावास्याभेदेन सिनीवालीकुहूदर्शरूपसंज्ञात्रयं सावकाशमित्यस्मन्मतम्।

अन्यथापि भेदत्रयम्

तत्र सिनीवाली सर्ववादिसिद्धा सैव। कुहूस्तु प्रकारान्तरेण पारिभाषिकी। यदाह वसिष्ठः—'नक्षत्रे यस्य दर्शान्तो विषनाड्यां भवेद्यदि। कुहूयोग इति ख्यातो व्याधिमृत्युभयादिकृत् ॥' इति। अयमर्थः। यस्मिन्नक्षत्रे या विषनाड्य उक्तास्तस्मिन्काले यदि दर्शस्य समाप्तिर्दर्शचरमनाडी भवेत् तन्नक्षत्रं यस्य पुरुषस्य जन्मर्क्षं जन्मकाले कालान्तरे वा स्यात्तस्य पुंसो व्याधिमृत्युभयकृत्कुहूः, योगो ध्येयस्तत्र कुहूजननफलं शान्तिश्च स्यात्, कालान्तरेऽपि कुहूयोगसम्भवे शान्तिर्विधेया। अत्र कुहूयोगे विशेषमाह स एव—'जन्मांशे यदि कुहूः स्यात्षण्मासान्मृत्युमाप्नुयात्। जन्मलग्नेऽथ जन्मांशे मृत्युर्मासत्रयाद्भवेत् ॥' इति। पूर्वोक्तकुहूयोगकाले यदि जन्मनवांशे चन्द्रस्तदा षण्मासमध्ये मृत्युः। यदि जन्मलग्नं तस्मिन्काले जन्मांशगश्चन्द्रश्चेत्युभयसम्भवे मासत्रयेण मृतिरिति भावः। अत एवोक्तं जगन्मोहने वसिष्ठः—'यस्य जन्मर्क्षगश्चन्द्रो विषनाड्यां कुहूर्भवेत्। अभिचारेण किं तस्य स्वयमेव मरिष्यति ॥' इति। अतो विषघटिकातः पूर्वकालो दर्शशब्दवाच्य इति। एवमस्माभिः प्रकारत्रयेण सिनीवालीकुहूदर्शानां भेद उपपादितः। तत्र यथासम्प्रदायं व्यवस्थेत्यलमतिप्रसङ्गेन।

ज्योतिःशास्त्रमहोदन्वदवगाहनिविष्टधीः। नीलकण्ठांशगोविन्दहनूमान्केन गीर्यताम् ॥

सिनीवालीकुह्वोर्जन्मनि शान्तिः

प्राक्प्रतिज्ञाता सिनीवालीकुहूशान्तिस्तावदुच्यते, गार्ग्यः—

'सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा।
गवाश्वं महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥

ये च सन्ति द्विजाश्चान्ये स्वप्रसादोपजीविनः। वर्जयेत्तानशेषांस्तु पशुपक्षिमृगादिकान् ॥
कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी नृणाम्। यस्य प्रसूतिरत्र स्यात्तस्यायुर्धननाशनम् ॥
सर्वगण्डसमस्तत्र दोषस्तु प्रबलो भवेत्। नारीं विना विशेषाणां परित्यागो विधीयते ॥'

गोमहिष्यादीनां सिनीवालीकुह्वोः जातानां त्यागो न तु नारीणामिति भावः।

'परित्यागात्तत्र शान्तिं कुर्याद्धीमान्विचक्षणः। तत्फलं तत्क्षणार्द्धेन पुनरेव विलीयते ॥
न त्यजेत्पण्डितो मोहादर्थादज्ञानतोऽपि वा। तद्योगं नाशयेदाशु स्वयं वा नाशमृच्छति ॥

कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या शीघ्रं दोषानुपत्तये । रुद्रः शक्रश्च पितरः पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ॥
कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः । अथ वा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥
प्रतिमां कारयेच्छम्भोश्चतुर्भुजसमन्विताम् । त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमात् ॥
श्वेतवर्णां श्वेतपुष्पां श्वेताम्बरवृषस्थिताम् । त्रैयम्बकेण मन्त्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥
इन्द्रश्चतुर्भुजो वज्राङ्कुशचापससायकः । रक्तवर्णो गजारूढो यत इन्द्रेति मन्त्रतः ॥
पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्हस्ता विमानगाः । यष्टचक्षसूत्रकमण्डलवभयानां च धारिणः ॥
ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्यादनन्तरम् । आग्नेयीं दिशमारभ्य कुम्भान्कोणेषु विन्यसेत् ॥
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् । तेष्वेव पञ्चगव्यादींस्तत्तन्मन्त्रैश्च निःक्षिपेत् ॥
कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या शीघ्रमेव प्रयत्नतः । गोदानं वस्त्रदानं च सुवर्णं चौर्णकं शुभम् ॥
दशदानानि चोक्तानि क्षीरमाज्यं गुण्डन्तथा । आज्यावेक्षणमेतानि तत्तन्मन्त्रैश्च कारयेत् ॥
समिदाज्यचरोर्होमं तिलमाषैश्च सर्षपैः । अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खदिरैः शुभैः ॥
अष्टोत्तरशतं मुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद् द्विजः । त्रैयम्बकेण मन्त्रेण तिलान्व्याहृतिभिः पुनः ॥
चतुर्भिः कलशैर्युक्तं वृहत्कुम्भसमन्वितम् । शान्तिवत्कलशैः कार्यमभिषेकं च मन्त्रतः ॥
पितृमातृशिशूनां च अभिषिञ्चेत्तु वारुणैः । शङ्करस्याभिषेकं च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥
अन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च तर्पणम् । यथाशक्ति तदा कार्यं द्विजवाचनकं तथा ॥'

इत्युत्तरगार्ग्योक्तसिनीवालीकुहूशान्तिविधिः ।

अथ नारदोक्ता दर्शजन्मशान्तिः—

'अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता । तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं वक्ष्यामि नारदः ॥
पुण्याहं वाचयित्वादौ क्रतुसङ्कल्पपूर्वकम् । कुण्डं च मण्डपं कुर्यात्तद्देशे स्थापयेद् घटम् ॥
तत्कुम्भे निःक्षिपेद् द्रव्यं दधिक्षीरघृतादिकम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थाः सचूता निम्बकास्तथा ॥
एतेषां वृक्षमूलानां त्वगादीन्पल्लवांस्तथा । पञ्चरत्नानि निःक्षिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥
आपोहिष्ठात्र्यृचेनाथ कयानश्चित्र इत्यृचा । यत्किञ्चेदमृचा चैव समुद्रज्येष्ठा इत्यृचा ॥
अभिमन्त्र्योदकं पश्चादग्नेः पूर्वप्रदेशके' ।

उदकमभिमन्त्र्य पश्चाद्दर्शदेवताः स्थापयेदित्यर्थः । मण्डलं कुर्यादिति यदुक्तं तत्—
'हारिद्रं रक्तकं चैव कृष्णं श्वेतं च नीलकम् । एतेषां तण्डुलैश्चैव सर्वतोभद्रमुद्धरेत् ॥
दर्शस्य देवतायाश्च सोमसूर्यस्वरूपकाः । प्रतिमाः स्वर्णजा नित्यं राजतीस्ताम्रजास्तथा ॥'

दर्शदेवतारूपां सोमसूर्यस्वरूपप्रतिमां स्थापयेदित्यभेदेनान्वयः । कुहूमपि, तत्रापीदम्—
'सर्वतोभद्रमध्ये च स्थापयेद्दर्शदैवतम् । ग्रहवर्णं वस्त्रयुग्मं तद्वर्णं गन्धपुष्पकम् ॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण सविता पश्चात्तमेव च । उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत् ॥
कृत्वा वह्निं प्रतिष्ठाप्य क्रतुसङ्कल्पमीदृशम् । आयुरारोग्यसिद्धयर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये ॥
पुत्रस्य दर्शजननदोषनिर्हरणाय च । मातापित्रोः कुमारस्य सर्वारिष्टप्रशान्तये ॥
तेषामायुःश्रियं लब्धुं शान्तिहोमं करोम्यहम् । समिधश्च तदद्रव्यं क्रमेण जुहुयाद् गृही ॥

हुनेत्सवितृमन्त्रेण सोमो धेनुं च मन्त्रतः । एतैर्मन्त्रैश्च प्रत्येकं हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥
दर्शस्य देवताहोममष्टाविंशतिसङ्ख्यया । होममेवं तु कृत्वाथ विद्याचाराभिषेचनम् ॥
श्रीसूक्तमायुष्यसूक्तं समुद्रज्येष्ठषड्ृचा । एतैर्मन्त्रैरभिषेकं मातापित्रोः शिशोस्तथा ॥
ततः स्विष्टकृदादि स्याद्धोमशेषं समापयेत् । हिरण्यं रजतं चैव कृष्णा धेनुश्च दक्षिणा ॥

अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति दातव्या दक्षिणा तथा ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम् ॥'

इति श्रीनारदोक्तो दर्शजननशान्तिविधिः ।

अथ कृष्णचतुर्दशीशान्तिविधिः

'मन्दरस्थं सुखासीनं गर्गं मुनिवरं शुभम् । नमस्कृत्वाऽथ पप्रच्छ शौनको मुनिपुङ्गवः ॥
शान्तिकर्माणि सर्वाणि त्वत्तो जानाम्यहं पुरा । अधुना श्रोतुमिच्छामि कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रसूतेः किं फलं वद ।

गर्ग उवाच—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् । चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् ॥
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा । चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् ॥
षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥
आचार्यं वरयेद्धीमान्पुत्रदारसमन्वितम् । स्वकर्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् । ब्राह्मणानृत्विजश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥
रुद्रोऽधिदेवता तस्याः कर्षमात्रसुवर्णतः । तदर्द्धेन च वा कुर्याद्वित्तशाठ्येन वर्जितः ॥
प्रतिमां कारयेच्छम्भोः सर्वलक्षणसंयुताम् । वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिकम् ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं श्वेतमाल्याम्बरान्वितम् । त्रैयम्बकेण मन्त्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः ॥
स्थापयेच्चतुरः कुम्भांश्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् । पुण्यतीर्थजलोपेतान्धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥
शतौषधानि निःक्षिप्य श्वेतवस्त्रैश्च वेष्टयेत् । शुभानि चैव पुष्पाणि श्वेतानि परिवेदयेत् ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥
आवाह्य वारुणैर्मन्त्रैरनेन च विधानतः । इमं मे वरुणेत्यनया तत्त्वायामीत्यृचा तथा ॥
'त्वन्नो अग्ने' इत्यनया सत्वन्न इति मन्त्रतः । आग्नेयकुम्भमारभ्य पूजां कुर्याद्यथाक्रमम् ॥
आनोभद्राख्यसूक्तेन भद्रा अग्नेश्च सूक्तकम् । जप्त्वा पुरुषसूक्तञ्च कद्रुद्रं तु क्रमाज्जपेत् ॥
ईश्वरस्याभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत् । पूजाकर्म सुनिर्वर्त्य होमं कुर्याद्विधानतः ॥
गेहस्येशानदिग्भागे कुण्डं कुर्याद्विधानतः । कुण्डकण्ठं परित्यज्य समन्तादङ्गुलिक्रमात् ॥
मेखलोच्छ्रायविस्तारे चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलक्रमात् । पश्चिमे मध्यभागे तु योनिं कुर्याद्विधानतः॥

योनिं षडङ्गुलां तिर्यग्द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यकाम् ।
अश्वत्थदलसङ्काशां किञ्चिन्निम्नायतां शुभाम् ॥

कुर्यादाधारपर्यन्तं स्वगृह्योक्तविधानतः । समिदाज्यचरूंश्चैव तिलमाषांश्च सर्षपैः ॥
अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खदिरैः शुभैः । अष्टोत्तरसहस्रं वा ह्यष्टोत्तरशतं तु वा ॥
अष्टाविंशतिमेतैश्च होमं कुर्यात्पृथक्पृथक् । त्रैयम्बकेण मन्त्रेण तिला व्याहृतिभिः क्रमात् ॥

ग्रहा एवं च होतव्या अस्मदुक्तविधानतः । एवं क्रमेण होतव्यं होमशेषं समापयेत् ॥
सर्वालङ्कारयुक्तानां त्रयाणामभिषेचनम् । चतुर्भिः कलशैरद्भिर्वृहत्कुम्भसमन्वितम् ॥
धौताम्बराणि धृत्वाथ कुर्यादाज्यावलोकनम् । पूर्णाहुतिं च जुहुयाद्यजमानः समाहितः ॥
तत्सर्वं परया भक्त्या ईश्वराय निवेदयेत् । सर्वालङ्कारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥
प्रतिमां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् । अन्येषां चैव सर्वेषां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥
तस्मादनेन विधिना वित्तशाठ्यविवर्जितः । एवं यः कुरुते शान्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति चिरञ्जीवी सुखी भवेत् ।'

इत्युत्तरगार्ग्योक्ता कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः ।

अथैकनक्षत्रजातानां शान्तिविधिरुच्यते—

'एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयः ॥
तद्दोषनाशाय तदा प्रशस्तां शान्तिं च कुर्यादभिषेचनं च ।
सम्पूज्य ऋक्षप्रतिमां तदग्रे दानं च कुर्याद्विभवानुरूपम् ॥
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु । शुभर्क्षे शुभवारे च चन्द्रताराबलान्विते ॥
रिक्ताविष्टिविवर्ज्ये तु प्रारभेद्दिवसे सुधीः । आचार्यं वरयेत्पूर्वं चतुरोऽथ द्विजोत्तमान् ॥
पुण्याहं वाचयित्वा तु शान्तिकर्म समाचरेत् । आग्नेयीशानदिग्भागे नक्षत्रप्रतिमां ततः ॥
तन्नक्षत्रोक्तमन्त्रेण चार्चयेत्कलशोपरि । रक्तवस्त्रेण सञ्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥
स्वशाखोक्तेन मार्गेण कुर्यादग्निमुखं ततः । अनेनैव तु मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥
प्रत्येकं समिदन्नाज्यैः प्रायश्चित्तान्तमेव च । अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः ॥
वस्त्रालङ्कारगोदानैराचार्यं पूजयेत्पुनः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ॥
देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह । यानशय्यासनादींश्च दद्यात्तद्दोषशान्तये ॥
भोजयेद् ब्राह्मणान्सर्वान्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।'

इति गार्ग्योक्तैकनक्षत्रजननशान्तिविधिः । 'अथैकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोरि'ति गर्गवाक्ये भ्रात्रोरिति पदे किं भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ 'भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्' इत्येकशेषः, उत भ्राता च भ्राता च भ्रातरौ 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' इत्येकशेषः । तत्र प्रथमपक्षे सोदरयोर्भ्रातृभगिन्योरेवैकनक्षत्रजननिषेधः स्यान्न तु पुम्भ्रात्रोः । द्वितीयपक्षे तु सोदरयोः पुम्भ्रात्रोरेव निषेधः स्यान्न तु भ्रातृभगिन्योः । इष्यते च द्वयोरपि भ्रात्रोर्निषेधः । न च भ्रातरौ च भ्रातरौ चेति द्वन्द्वे सत्येकशेषेण सिद्धमिति वाच्यम्, तथा सति तेषां चतुष्ट्वाद् भ्रातॄणामिति पाठ्यं स्यात् । एवं पितृपुत्रयोरित्यत्रापि पिता च पुत्रश्चेति द्वन्द्वे पितापुत्रयोरेकनक्षत्रजनननिषेधः स्यात् । तथा पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ 'भ्रातृपुत्रौ' इत्यादिनैकशेषः पितरौ च पुत्रौ चेति द्वन्द्वे मातापित्रोः पुत्रस्य कन्यायाश्चैकनक्षत्रजनननिषेधः स्यादिति वाच्यम् । यतः प्रथमपक्षे पितृपुत्राणामिति बहुवचनान्तं पदं पाठ्यं स्यात् । द्वितीयपक्षे तु स दोषोऽस्त्येव । परन्तु यथासङ्ख्यमपि लगति । यथा मातापुत्रयोरेव पितादुहित्रोरेव चैकनक्षत्रजनननिषेधः स्यान्न तु मातादुहित्रोः पितापुत्रयोश्चेति । इष्यते चानयोरपि निषेध इत्यतो नैतद्वचनं निर्णयपदवीमवगाहते । सत्यम्, गर्गवाक्यस्य

त्वेतावानेवार्थः । परन्तु वचनान्तरानुरोधादिष्टविषयोऽपि सङ्गृहीतो भवति । यदाह वसिष्ठः—'पित्रोस्तु जन्मकर्मर्क्षे जातस्तु पितृमातृहा । जन्मर्क्षांशे च तल्लग्ने जातः सद्यो मृतिप्रदः ॥' इति । देवकीर्तिः—'यद्येकस्मिन्धिष्ण्ये जायन्ते दुहितरोऽथवा पुत्राः ॥ पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात् ॥' इति । अपरे अन्यनक्षत्रे । 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इत्यस्मिन् भावपक्षे रूपम् । गर्गसंहितायामपि—'यस्यैव जन्मनक्षत्रे जायेद् भ्राता सुतोऽपि वा । सजातीयः स्वजात्या वा सोऽस्य प्राणान्प्रसाधयेत् ॥' इति । यस्येति पुंस्त्वमविवक्षितम् । तेन मातुरपि निषेधो वसिष्ठवाक्यस्वरसात् ।

अथोपरागे जन्मनि शान्तिः

अथ मूलश्लोके दुष्टनिमित्तस्योपलक्षणत्वेन व्याख्यानात् सूर्यचन्द्रग्रहणसमयजननशान्तिविधिरुच्यते । शौनक उवाच—

'ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥
इत्थं सञ्जायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः । व्याधिपीडा च दारिद्र्यं शोकश्च कलहो भवेत् ।
शान्तिं तेषां प्रवक्ष्यामि नराणां हितकाम्यया । यस्मिन्नृक्षे विशेषेण ग्रहणं सम्प्रजायते ॥
तदृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् । यथाशक्त्यनुसारेण वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥
सूर्यग्रहे सूर्यरूपं सुवर्णेन स्वशक्तितः । चन्द्रं चन्द्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः ॥
राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः । शुचौ देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् ॥
तस्योपरि न्यसेद्धीमान्नववस्त्रं सुशोभनम् । त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् ॥
रक्ताक्षता रक्तगन्धा रक्तपुष्पाम्बराणि च । सूर्यग्रहे प्रदातव्यं सूर्यप्रीतिकरञ्च यत् ॥
श्वेतवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतगन्धाक्षतादिभिः । चन्द्रग्रहे प्रदातव्यं चन्द्रप्रीतिकरञ्च यत् ॥
राहवे चैव दातव्यं कृष्णपुष्पाम्बराणि च । दद्यान्नक्षत्रनाथाय श्वेतगन्धानुलेपनम् ॥
सूर्यं सम्पूजयेद्धीमानाकृष्णेति च मन्त्रतः । चन्द्रग्रहे च पालाशैः समिद्भिर्जुहुयान्नरः ॥
दूर्वाभिर्जुहुयाद्धीमान् राहोः सम्प्रीणनाय च । समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षोत्थैर्भेशाय जुहुयाद् बुधः ॥
आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः । पञ्चगव्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवैः ॥
जलैरौषधकल्कैश्च सहितैः कलशोदकैः । अभिषेकं प्रकुर्वीत यजमाने प्रयत्नतः ॥
मन्त्रैर्वारुणदैवत्यैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । इमं मे गङ्गे पितरस्तत्त्वायामीति मन्त्रकैः ॥
अभिषेके निवृत्ते तु यजमानः समाहितः । आचार्यं पूजयेत्पश्चात्सुशान्तो विजितेन्द्रियः ॥
तस्मै दद्यात्प्रयत्नेन भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् । दक्षिणाभिश्च संयुक्तं यथाशक्त्यनुसारतः ॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रणिपत्य क्षमापयेत् । तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद्यजमानः समाहितः॥
अनेन विधिना शान्तिं कृत्वा सम्यग्विशेषतः । अकालमृत्युं शोकञ्च व्याधिपीडां न चाप्नुयात्॥
सौख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः । इत्थं ग्रहणजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् ॥
कथितं भार्गवेणेदं शौनकाय महात्मने ।'

इति श्रीशौनकविरचितः सूर्यचन्द्रग्रहणसमयजननशान्तिविधिः समाप्तः ।

अथ त्र्युत्तरं विजातीयस्य जन्मनि शान्तिः

अथ त्रीतरशान्तिरप्युच्यते । सा च शान्तिसर्वस्वेऽभिहिता—

'सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि । मातापित्रोः कुलस्यापि तदारिष्टं महद्भवेत् ॥

ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् । तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥
जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥
सह वा ग्रहयज्ञः स्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः ॥
पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि शक्तितः । पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया ॥
रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः । द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः ॥
आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा विंशतिं तु वा ॥
देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् । ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्रभयामहे ॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः । अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् ॥
हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा ततः । प्रतिमा गुरवे देया उपस्कारसमन्विता ॥

कांस्याज्यवीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् ॥
एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥'
इति शान्तिसर्वस्वोक्तस्त्रीतरशान्तिविधिः समाप्तः ।

आलोक्यार्षान्पौरुषांश्च ग्रन्थान्मूलादिशान्तयः ।
नीलकण्ठतनूजेन गोविन्देनोदिताः क्रमात् ॥ ५७ ॥

हिन्दी—गण्डान्त (तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगण्डान्त और लग्नगण्डान्त) ज्येष्ठा नक्षत्र, शूल-योग, पात (महापात), परिघयोग, व्याघातयोग, गण्डयोग, अवम (तिथिक्षय अर्थात् सूर्योदय को न स्पर्श करने वाली तिथि) संक्रान्ति[1] का दिन, व्यतीपात, वैधृति (दोनों योग) सिनीवाली[2] कुहू दोनों अमावास्या, वज्रयोग, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी यमघण्टयोग (१।९ श्लोकोक्त), दग्धयोग (१।८ में उक्त), मृत्युयोग (१।३० तथा १।५ में उक्त), भद्रा, करण, भाई-वहिन के जन्मनक्षत्र और माता-पिता के जन्मनक्षत्र इन सबमें से किसी में भी बालक का जन्म होने से अनिष्ट फल (अप्रिय घटना) होता है, अतः इनकी शान्ति करनी चाहिए। शान्ति[3] करने से सब अनिष्ट दूर हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

विशेष—'तिथिगण्डान्त सूर्य-चन्द्र का अन्तरांश १२ अंश होने पर प्रथम तिथि की पूर्ति, २४° अन्तर में द्वितीया, ३६° अन्तर में तृतीया, ४८° अन्तर होने पर चतुर्थी, ६०° अन्तर में पञ्चमी का अन्त होता है और ६०° अन्तर में २ राशि की पूर्ति भी हो जाती है। अतः ५ तिथियों की पूर्ति के साथ ६०° या २ राशियों की पूर्ति प्रथमावृत्ति में हुई, एवं द्वितीय वार षष्ठी से लेकर दशमी-पर्यन्त ५ तिथियों और सूर्य, चन्द्र का १२०° अन्तर पूर्ण राशि हो जाने से द्वितीयावृत्ति में तिथि और अन्तरांश दोनों की समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार आगे भी ४।५ तिथियों और २।२ राशियों की पूर्ति तृतीय, चतुर्थ, पंचम और षष्ठ वार (आवृत्ति) में होती है (अर्थात् ५।५ तिथियाँ १।१ खण्ड यानि वर्ग) बन जाता है। अतः प्रथम वर्ग का अन्त अग्रिम वर्ग की आदि की गण्डान्त संज्ञा दी गई है, जो ५।१०।१५, ३० तिथियों की समाप्ति एवं १।६।११ तिथियों के आदि के भागों से बनती है। अतः पूर्णा तिथियों के अन्त की १ घटी और नन्दातिथि के आदि की १ घटी

---

१. संक्रान्ति नामक तृतीय प्रकरण में कहे जायेंगे।
२. 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली, सा नष्टेन्दुः कला कुहू' इत्यमरः।
३. पीयूषधारा में प्रत्येक शान्ति की शौनकोक्त विधि कही गयी है।

(दोनों मिलकर) दो घटी तिथिगण्डान्त होती हैं। यह २ घटी तिथि का मान ६० घटी मानकर कहा गया है। तिथि का मान ६० घटी न्यून अधिक हो तो अनुपात से स्पष्ट कर लेना चाहिए।

नक्षत्रगण्डान्त और लग्नगण्डान्त—अश्विन्यादि और मेषादि के आरम्भ से इसी प्रकार ९।९ चरणों की ३।३ राशि गिनने से आश्लेषा के अन्त में नक्षत्रों की, कर्क के अन्त में नक्षत्र एवं राशि दोनों की समाप्ति हो जाती है। फिर उसी प्रकार गिनने से ज्येष्ठा के अन्त और वृश्चिक के अन्त में द्वितीयावृत्ति में युगपत दोनों की समाप्ति होती है एवं तृतीयावृत्ति में रेवत्यन्त और मीनान्त दोनों की समाप्ति होती है। अतः आश्लेषा-मघा, ज्येष्ठा-मूल, रेवती-अश्विनी की सन्धि में नक्षत्रगण्डान्त और कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनु, मीन-मेष की सन्धि में राशिसन्धि होती है। इसको लग्न में परिणत करके लग्नगण्डान्त कहा गया है।

अथ नक्षत्रप्रसङ्गादेवाश्विन्यादिभानां तारकामानमुपजातिकमाह—

त्रित्र्यङ्गपञ्चाग्निकुवेदवह्नयः शरेषुनेत्राश्विशरेन्दुभूकृताः।
वेदाग्निरुद्राश्वियमाग्निवह्नयोऽब्धयः शतं द्विद्विरदा भतारकाः॥ ५८॥

त्रीति। अश्विन्यादीनां भानां तारकाः क्रमतो ज्ञेयाः। यथा—अश्विन्यास्तारकास्तिस्रः ३। भरण्यास्तिस्रः ३। कृत्तिकायाः षट् ६। रोहिण्याः पञ्च ५। मृगस्य तिस्रः ३। आर्द्राया एका १। पुनर्वसोश्चतस्रः ४। पुष्यस्य तिस्रः ३। आश्लेषायाः पञ्च ५। मघायाः पञ्च ५। पूर्वाफल्गुन्या द्वे २। उत्तराफल्गुन्या द्वे २। हस्तस्य पञ्च ५। चित्राया एका १। स्वात्या एका १। विशाखायाश्चतस्रः ४। अनुराधायाश्चतस्रः ४। ज्येष्ठायास्तिस्रः ३। मूलस्यैकादश ११। पूर्वाषाढाया द्वे २। उत्तराषाढाया द्वे २। अभिजितस्तिस्रः ३। श्रवणस्य तिस्रः ३। धनिष्ठायाश्चतस्रः ४। शततारकायाः शतम् १००। पूर्वाभाद्रपदाया द्वे २। उत्तराभाद्रपदाया द्वे २। रेवत्या द्वात्रिंशत्तारकाः ३२। एतावतीभिस्तारकाभिरश्विन्यादीनां स्वरूपं ज्ञेयम्। उक्तं च रत्नमालायाम्—'वह्नित्रिऋत्विषुगुणेन्दुकृताग्निभूतबाणोऽश्विनेत्रशरभूकुयुगाब्धिरामाः। रुद्राब्धिरामगुणवेदशतद्वियुग्मं दन्ता बुधैर्निगदिताः क्रमशो भताराः॥' इति। नन्वस्मिन् श्रीपतिवाक्ये सप्तविंशतिभानि प्रतीयन्ते। ग्रन्थकृद्वाक्येऽष्टाविंशतिरिति विरोधः। अत्र समाधिः। उत्तरार्द्धे रुद्राब्धीत्यत्र चतस्रस्ताराः पूर्वाषाढोत्तराषाढयोः। तत्र द्वे पूर्वाषाढायाः। द्वे उत्तराषाढाया इत्यर्थः। एवमष्टाविंशतिनक्षत्राणि। नारदेनापि द्वयोराषाढयोर्द्वितारकत्वमुक्तम्।

'रामाग्निऋतुबाणाग्निभूवेदाग्निशरेषवः।
नेत्रबाहुशरद्वीन्दुयुगवेदाग्निशङ्कराः॥
बाहुनेत्राग्न्यब्धिशतं बाहुनेत्ररदाः क्रमात्।
भानां सङ्ख्या च विज्ञेया दस्रादीनां पृथक्पृथक्॥' इति।

अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्। 'तुरगमुखसदृशम्' इत्यादिनाष्टाविंशतिनक्षत्राणामाकृतिकथनात्सप्तविंशतिनक्षत्राणां च तारागणत्वोक्तेरिति पूर्वापरविरोधो न शङ्क्यः।

अश्विन्यादितारकासंख्याज्ञानफलम्

तारकामानोक्तेः प्रयोजनं विवाहे नक्षत्रतारकातुल्यैर्वर्षैस्तु सदसत्फलमित्यादि।

तदुक्तं वराहेण—'नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् । दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधिश्चान्यस्य वै वाच्यम्' इति । तद्यथा शौनकेन विवाहे प्रत्येकं नक्षत्रफलान्यभिहितानि । तत्र 'प्राजापत्ये सुभगा भोगयुतातिप्रिया भर्त्तुः । पुत्रधनानि च लभते सा कन्या पञ्चमे वर्षे ॥' इति । रोहिण्यामुद्वाहफलमुक्तं तद्रोहिण्यास्ताराः पञ्च तावद्वर्षैर्भवति ॥ 'अब्दात्प्राणवियोगं त्वाष्ट्रे प्राप्नोति भूतसंसर्गात् । त्यक्त्वा स्वज्ञातिकुलं कामपरा याति वेश्यात्वम् ॥' इति । चित्राया असत्फलं तच्चित्राताररैका तर्हि एकेन वर्षेण भवति । एवं ज्वराद्युत्पत्तावपि तारकामानदिवसैर्ज्वरस्य व्याधे रोगस्य वा नाशो वाच्य इत्याद्यूह्यम् । ननु नक्षत्रभेदेन पूर्वमपि ज्वरनाशका दिवसाः । अत्र तु तारकामितसङ्ख्या दिवसा उक्ता इति ग्रन्थविरोध इति चेन्न, चरणभेदान्न विरोध इति वयं ब्रूमः ॥ ५८ ॥

हिन्दी—अश्विनी नक्षत्र की ३, भरणी की ३, कृत्तिका की ६, रोहिणी की ५, मृगशिरा की ३, आर्द्रा की १, पुनर्वसु की ४, पुष्य की ३, आश्लेषा की ५, मघा की ५, पूर्वाफल्गुनी की २, उत्तराफल्गुनी की २, हस्त की ५, चित्रा की १, स्वाती की १, विशाखा की ४, अनुराधा की ४, ज्येष्ठा की ३, मूल की ११, पूर्वाषाढा की २, उत्तराषाढा की २, अभिजित् की ३, श्रवण की ३, धनिष्ठा की ४, शतभिषा की १०० (इसी से इसकी शततारका संज्ञा कही गई है), पूर्वाभाद्रपदा की २, उत्तराभाद्रपदा की २ और रेवती की ३२ ताराएँ कही गयीं हैं ॥ ५८ ॥

विशेष—आकाश में सूर्य जिस मार्ग पर घूमता हुआ पृथिवी की निरन्तर परिक्रमा करता है, उसको क्रान्ति कहते हैं । क्रान्तिवृत्त को २७ समान भागों में विभाजित कर देने पर एक-एक भाग के अन्तर्गत जितनी-२ ताराएँ आचार्यों को वेध से उपलब्ध हुईं, उन्हीं की संख्या यहाँ आचार्य ने कही है । इन्हीं ताराओं को ध्यानपूर्वक देखने पर जैसी आकृति दिखायी पड़ती है, उसी के आधार पर अश्व के मुख के समान अश्विनी, भग के आकार बनने से भरणी इत्यादि नाम दिये गये हैं ।

अथाश्विन्यादीनामाकृतिमुपजात्या रथोद्धतया चाह—

अश्व्यादिरूपं तुरगास्ययोनिक्षुरोऽन एणास्यमणिर्गृहं च ।
पृषत्कचक्रे भवनं च मञ्चः शय्या करो मौक्तिकविद्रुमं च ॥ ५९ ॥
तोरणं बलिनिभं च कुण्डलं सिंहपुच्छगजदन्तमञ्चकाः ।
त्र्यस्त्रि च त्रिचरणाभमर्दलो वृत्तमञ्चयमलाभमर्दलाः ॥ ६० ॥

अश्व्यादिरूपमिति । तोरणमिति । अश्विन्यादीनां नक्षत्राणां रूपमाकृतिरुच्यते—(१) तत्राश्विन्यास्तुरगास्याश्वमुखसदृशं रूपम् । (२) भरण्या योनिर्भगस्तद्वद्रूपम् । (३) कृत्तिकाया नापितक्षुराकृतिः । (४) रोहिण्या अनः शकटरूपम् । (५) मृगस्य एणास्यं हरिणमुखसदृशम् । (६) आर्द्राया मणिसदृशम् । (७) पुनर्वसोर्गृहतुल्यम् । (८) पुष्यस्य पृषत्को बाणस्तत्सदृशम् । (९) आश्लेषायाश्चक्राकारम् । (१०) मघाया भवनं गृहसदृशम् । (११) पूर्वाफल्गुन्या मञ्चः खट्वा, तदाकारम् । (१२) उत्तराफल्गुन्याः शय्याकारम् । (१३) हस्तस्य हस्ताकारम् । (१४) चित्राया मौक्तिकाकारम् । (१५) स्वात्याः प्रवालौपम्यम् । (१६) विशाखायास्तो-

रणाकारम् । (१७) अनुराधाया वलिर्भक्तपुञ्जस्तद्वदाकारम् । (१८) ज्येष्ठायाः कुण्डलाकृतिः । (१९) मूलस्य सिंहपुच्छाकारम् । (२०) पूर्वाषाढाया गजदन्तसदृशम् । (२१) उत्तराषाढाया मञ्चकसदृशम् । (२२) अभिजितस्त्रिकोणाकारम् । (२३) श्रवणस्य त्रिविक्रमस्त्रिचरणो वामनस्तत्स्वरूपम् । (२४) धनिष्ठाया मर्दलसदृशम् । (२५) शततारकाया वृत्तं वर्तुलम् । (२६) पूर्वाभाद्रपदाया मञ्चसदृशम् । (२७) उत्तराभाद्रपदाया यमलाभम् । (२८) रेवत्या मर्दलाकारम् । एषामेवं स्वरूपमित्यर्थः । उक्तं च रत्नमालायाम्—

'तुरगमुखसदृशं योनिरूपं क्षुराभं शकटसममथैणस्योत्तमाङ्गेन तुल्यम् ।
मणिगृहशरचक्राभानि शालोपमाभं शयनसदृशमन्यच्चात्र पर्यङ्कतुल्यम् ।।
हस्ताकारमतश्च मौक्तिकसमं चान्यत्प्रवालोपमं
धिष्ण्यं तोरणवत्स्थितं बलिनिभं सत्कुण्डलाभं परम् ।
क्रुध्यत्केसरिणः क्रमेण सदृशं शय्यासमानं परं
चान्यद्दन्तिविषाणवत्स्थितमतः शृङ्गाटकव्यक्ति च ।।
त्रिविक्रमाभं च मृदङ्गरूपं वृत्तं ततोऽन्यद्यमलद्वयाभम् ।
पर्यङ्करूपं मुरजानुकारि चेत्येवमश्व्यादिभचक्ररूपम् ।।' इति ।। ५९-६० ।।

हिन्दी—अश्विनी का स्वरूप घोड़े के मुख के समान, भरणी का स्वरूप भग (स्त्री की योनि) के समान, कृतिका का स्वरूप छूरे के समान, रोहिणी का स्वरूप सकट (सग्गड या गाड़ी) के समान, मृगशिरा का स्वरूप हरिण के मुख के समान, आर्द्रा का स्वरूप मणि के समान चमकीला; पुनर्वसु का स्वरूप भवन के समान, पुष्य का स्वरूप बाण के समान, आश्लेषा का स्वरूप चक्र के समान, मघा का स्वरूप मकान के समान, पूर्वाफल्गुनी का स्वरूप मचान के तुल्य, उत्तराफल्गुनी का आकार शय्या (पलंग) की तरह, हस्त का स्वरूप हाथ की तरह, चित्रा का आकार मोती के समान, स्वाती का स्वरूप मूँगा के समान, विशाखा का आकार तोरण के समान, अनुराधा का स्वरूप बलि (भात के पिण्ड) के समान, ज्येष्ठा का स्वरूप कुण्डल की भाँति, मूल का आकार सिंह की पूँछ के समान, पूर्वाषाढा का स्वरूप हाथी के दाँत के समान, उत्तराषाढा का स्वरूप मचान के समान, अभिजित् का स्वरूप त्रिकोण के समान, श्रवण का आकार त्रिचरण (वामन) के समान, धनिष्ठा का आकार मृदंग के समान, शतभिषा का स्वरूप वृत्त के जैसा, पूर्वाभाद्रपदा का स्वरूप मचान के समान, उत्तराभाद्रपदा की आकृति यमल (दो जुड़े हुए पुरुष) के समान और रेवती का स्वरूप मृदङ्ग के समान बनता है ।। ५९-६० ।।

अथ जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्तं सपादोपजातिकया तत्र च सामान्यतो लग्नशुद्धि देवताविशेषाणां लग्नविशेषं च पादोनोपजातिकाभ्यामाह—

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशाङ्कशुक्रे ।
दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात् पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ।। ६१ ।।
रिक्तारवर्जे दिवसेऽतिशस्ता शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः ।
व्यष्टान्त्यगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः ।। ६२ ।।

नक्षत्र-स्वामी संज्ञा-तारा-स्वरूपादि बोधक सारणी

संख्या	नाम	स्वामी	संज्ञा	मुख	नष्टादी विचारः		रोगोत्पत्तौ		ता. सं.	स्वरूप	जाति
					संज्ञा	फल	दिन	दान			
१	अश्वि.	अश्वि	क्षि. ल.	अधः	मन्द	यत्नलाभ	९	भोजन	३	अश्वमुख	वैश्य
२	भरणी	यम	उ. क्रू.	अधः	मध्य	दूरश्र.	११	गोत्रादि	३	योनि	चांडा.
३	कृत्ति.	अग्नि	मि. सा.	ऊर्ध्व	सुलोचन	अलाभ	९	स्वर्ण	६	क्षुर	ब्राह्मण
४	रोहिणी	ब्रह्मा	ध्रु. स्थि.	ऊर्ध्व	अन्ध	शी. ला.	७	घृत	५	शकट	शूद्र
५	मृगशिरा	चन्द्र	मृ. मै.	तिर्यक्	मध्य	यत्नलाभ	१ मा	तिल	३	मृगस्य	कृषक
६	आर्द्रा	रुद्र	ती. दा.	ऊर्ध्व	मन्द	दूरश्र.	मृतिः	गोदान	१	मणि	क्रूर
७	पुनर्व	अदिति	च. चल	तिर्यक्	सुलोचन	अलाभ	७ दि.	पित्तल	४	गृह	वैश्य
८	पुष्य	गुरु	क्षि. ल.	ऊर्ध्व	अन्ध	शी. ला.	७ दि.	तेल	३	शर	क्षत्रिय
९	आश्ले	सर्प	ती. दा.	अधः	मन्द	यत्नलाभ	मृतिः	गोजादि	५	चक्र	चांडा
१०	मघा	पितृ	उ. क्रू.	अधः	मध्य	दूरश्र.	२०	वस्त्रोपव	५	भवन	शूद्र
११	पू. फा.	भग	उ. क्रू.	अधः	सुलोचन	अलाभ	मृतिः	भोजन	२	मंच	ब्राह्मण
१२	उ. फा.	अर्यमा	ध्रु. स्थि.	ऊर्ध्व	अन्ध	शी. ला.	७	अन्न	२	शय्या	क्षत्रिय
१३	हस्त	सूर्य	क्षि. ल.	तिर्यक्	मन्द	यत्नलाभ	१५	तिल	५	हाथ	वैश्य
१४	चित्रा	त्वष्टा	मृ. मै.	तिर्यक्	मध्य	दूरश्र.	११	दुग्ध	१	मुक्ता	कृषक
१५	स्वाती	वायु	च. चल	अधः	सुलोचन	अलाभ	मृतिः	गोघृत	१	मूंगा	क्रूर
१६	विशाखा	इन्द्रा.	मि. सा	अधः	अन्ध	शी. ला.	१५	गोस्वर्ण	४	तोरण	चांडा
१७	अनु.	मित्र	मृ. मै.	तिर्यक्	मन्द	यत्नलाभ	स्थिर	गोघृत	४	बलि	शूद्र
१८	ज्येष्ठा	इन्द्र	ती. दा.	तिर्यक्	मध्य	दूरश्र.	मृतिः	तिल	३	कुंडल	कृषक
१९	मूल	निॠति	ती. दा.	अधः	सुलोचन	अलाभ	९	रौप्योपा	११	सिंहपु.	क्रूर
२०	पू. षा.	जल	उ. क्रू.	अधः	अन्ध	शी. ला.	मृतिः	गोमुक्ता	२	गजदंत	ब्राह्मण
२१	उ. षा.	विश्वे	ध्रु. स्थि.	ऊर्ध्व	मन्द	यत्नलाभ	१ मा.	भोजन	२	मंच	क्षत्रिय
२२	अभि.	ब्रह्मा	क्षि. ल.	,,	मध्य	दूरश्र.	×	×	×	×	×
२३	श्रवण	विष्णु	चर, चल.	,,	सुलोचन	अलाभ	१ मा.	श्रीफल	३	वामन	चांडा.
२४	धनिष्ठा	वसु	च. च.	,,	अन्ध	शी. ला.	१५	अश्वान्न	४	मृदंग	कृषक
२५	शतभि.	वरुण	च. च.	,,	मन्द	यत्नलाभ	११	भोजनाद	१००	वृत्त	क्रूर
२६	पू. भा.	अजच.	उ. क्रू.	,,	मध्य	दूरश्र.	मृतिः	भोजन	२	मंच	ब्राह्मण
२७	उ. भा.	अहिर्बु	ध्रु. स्थि.	,,	सुलोचन	अलाभ	७	अन्न	२	यमल	क्षत्रिय
२८	रेवती	पूषा.	मृ. मै.	तिर्यक्	अन्ध	शी. ला.	स्थिर	वृष	३२	मृदंग	शूद्र

शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरर्क्षे ।
पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च[1] ॥ ६३ ॥

इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामज्योतिर्विद्विरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ
नक्षत्रप्रकरणं द्वितीयं समाप्तम् ॥ २ ॥

जलाशयेति । जलाशयोत्सर्गः आरामोत्सर्गश्च देवानां विष्णवादीनां प्रतिष्ठा वक्ष्यमाणप्रकारेणोच्यते । तत्र त्रयाणामपि सामान्यतो दिनशुद्धिरियं विचार्या । यथा— सौम्यायने उत्तरायणे मकरादिषड्राशिस्थिते सूर्ये सति तथा जीवशशाङ्कशुक्रेषु दृश्यमानेषु सत्सु तथा मृदुगणक्षिप्रगणचरगणध्रुवगणनक्षत्रेषु तथा सिते शुक्ले पक्षे स्वर्क्षतिथिक्षणे यस्य देवस्य प्रतिष्ठा कर्त्तुमिष्टा तस्य तत्स्वामिके नक्षत्रे तिथौ वा क्षणे मुहूर्ते वा तथा रिक्तारवर्जे रिक्ताः पूर्वमुक्तास्तिथयः, आरो भौमः, एतान्वर्जयित्वाऽन्यतिथिषु अन्यवारेषु च एवंविधेषु दिनेषु, जलाशयस्तडागादिः, आराम उपवनम्, सुरा देवास्तेषां प्रतिष्ठा क्रमेण कर्मार्हत्वोपभोगयोग्यत्वपूजायोग्यत्वरूपातिप्रशस्ता विहितास्ति । तत्र दक्षिणायनगुर्वस्तशुक्रास्तचन्द्रास्तानां सामान्यतः शुभकार्येषु निषेधात् परिशेषतो गुरुशुक्रचन्द्रोदयोत्तरायणानि । दक्षिणायननिषेधश्चौले वक्ष्यते । तत्र जलप्रतिष्ठायां दीपिका—

'मार्तण्डेन्दूडुशुद्धौ मुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्रे
मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशक्राजचान्द्रे ।
मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णामदनरवितिथौ सद्वितीयातृतीये
कार्या तोयप्रतिष्ठा ज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥' इति ।

मुरजिद्विष्णुस्तस्याशयनं शयनाभावः, विष्णुशयनव्यतिरिक्ते काले इत्यर्थः । 'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे । माघादिपञ्चमासेषु कृष्णेऽप्यापञ्चमीदिनम् ॥ दक्षिणे त्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥' इति । अत्र चोत्तरायणे जलं जलाशये स्थास्यतीत्येवं निश्चिते निषेधः । मत्स्यपुराणेऽपि—'चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवेऽपि वा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।' देवानामित्युपलक्षणम् । तेन देवारामवाप्यादिप्रतिष्ठा शुभदेत्यर्थः । मकरसङ्क्रमण उत्तरायणपदेनोपलक्ष्यते । अतो मकरसङ्क्रमोत्तरः कालः शुभ उच्यते । अन्यथा माघादिपञ्चकं ,साक्षाद्विहितम्, उत्तरायणातिक्रमे हि दक्षिणायनसङ्ग्रह इति तन्निषेधे उत्तरायणपदवैयर्थ्यान्यथानुपपत्या सर्वकालसङ्ग्रहे वर्ज्याभावात्कालोपदेशानर्थक्यमापद्यते । उपलक्षणं च 'भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे' इत्यर्थं दृश्यते । यदा

---

१. श्रीगोविन्द दैवज्ञ ने जिन का अर्थ बुद्ध कहा है ।

रत्नमाला में श्रवण में सुगत=बुद्ध की स्थापना का उल्लेख है । इसी को देख कर सम्भव है कि गोविन्ददैवज्ञ ने 'जिन' का अर्थ बुद्ध कर दिया हो । किन्तु जिन और बुद्ध दोनों मतप्रवर्तकों का पृथक्-पृथक् रूप में सम्पूर्ण भारत में बड़ा महत्त्व है ।

तु दक्षिणायन एव जलस्थितिसम्भवस्तदा न कालनियमः । 'तत्र प्रमाणं सलिलं यत्' इति भविष्यत्पुराणोक्तेः । तत्रापि कार्त्तिकमासे शुभफलदसङ्क्रान्तौ वा शुभतिथौ मेष-धनुः सिंहवर्जिते लग्ने वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठेति ध्येयम् । उक्तं च भविष्यत्पुराणे—'तस्मिन् सलिलसम्पूर्णे कार्त्तिके च विशेषतः । तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरनक्षत्रयोगतः' ।। इति ।

अथ वापीकूपतडागारामप्रतिष्ठायां सङ्क्रान्तिभेदेन फलानि

अग्निपुराणे सङ्क्रान्तिभेदेन फलभेदोऽभ्यधायि—

'वापीकूपतडागानां तस्मिन्काले विधिः स्मृतः । सुदिने शुभनक्षत्रे प्रतिष्ठा शुभदा स्मृता ।।
कर्कटे पुत्रलाभश्च सौख्यं तु मकरे भवेत् । मीने यशोऽर्थलाभश्च कुम्भे च सुबहूदकम् ।।
वृषे च मिथुने वृद्धिर्वृश्चिके च जलं भवेत् । पितृतृप्तिश्च कन्यायां तुलायां शाश्वती गतिः ।।
सिंहे मेषे धनुर्लग्ने लक्ष्मीश्च द्विज ! गच्छति ।' इति ।

देवप्रतिष्ठायां तु विशेषः

तत्र वसिष्ठः—'अथ प्रतिष्ठां कथयामि सम्यक्शिवस्य विष्णोस्त्वथ वा परेषाम् । सौम्यायने देवगुरौ च शुक्रे सन्दृश्यमाने परिचारकाणाम् ।।' इति । शिवविष्णुग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ।

उग्रदेवानां दक्षिणायनेऽपि भवति

अत्र सौम्यप्रकृतीनां देवानामुत्तरायणे स्थापनमुक्तम् । उग्रप्रकृतीनां तु दक्षिणायनेऽपि स्थापनं कार्यम् । तदुक्तं वैखानससंहितायाम्—'मातृभैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः । महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ।।' इति । शैवसिद्धान्तशेखरे तु—'श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम् । दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः ।।' इत्युक्तम् । अत्र दक्षिणे तु मुमुक्षूणामित्यपि मातृभैरवेत्यादिपरतया योज्यम् । अन्यथा प्रतिपदं मासगणना वसिष्ठादिषु न युज्येत । यदाह वसिष्ठः—'मासे तपस्ये तपसि प्रतिष्ठा धनायुरारोग्यकरी च कर्तुः । चैत्रे महारुग्भयदा च शुक्रे समाधवे पुत्रधनाप्तये स्यात् ।।' इति । नारदोऽपि—'विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु' इति । वसिष्ठ—

'आषाढमासादिचतुष्टयेऽपि कलत्रसन्तानविनाशदा स्यात् ।
ऊर्जे च कर्तुर्निधनप्रदा च सौम्ये सपौषेऽखिलदुःखदा स्यात् ।।
वलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय ।
अन्त्यत्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षोऽपि शस्तः खलु पक्षयोश्च ।।
रिक्तावमत्यक्तदिनेष्वनिन्द्ययोगेषु वैनाशकवर्जितेषु ।
दिने महादोषविवर्जिते च शशाङ्कताराबलसंयुते च ।।' इति ।

वैनाशिकनक्षत्राणि सर्वत्र वर्ज्यानि

वैनाशिकनक्षत्राणि नारदेनोक्तानि—'जन्मभाद्दशमं कर्म सङ्घातर्क्षं च षोडशम् । अष्टादशः सामुदायं त्रयोविंशं विनाशभम् । मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु' ।। इति ।

प्रतिष्ठायां तिथयोऽपि

तिथीनाह नारदः—'यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः। द्वितीयादिद्वयोः पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात् ॥ दशम्यादिचतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥' इति। मुख्यतिथ्यसम्भवे उक्ततिथौ स्थापनं कार्यमित्यर्थः।

प्रतिष्ठायां दिनानि

वारानाह नारदः—'कुजवर्जितवारेषु कर्त्तुः सूर्ये बलप्रदे। चन्द्रतारावलोपेते पूर्वाह्ने शोभने दिने ॥' इति। प्रत्येकं वारफलमाह वसिष्ठः—कीर्त्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानुभयप्रदं वृद्धिकरं दृढं च। लक्ष्मीकरं सुस्थिरदं त्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति ॥' इति। तत्र विवेकः। तत्र जलप्रतिष्ठार्थं दीपिकायामुक्तानि नक्षत्राणि अधुना आरामप्रतिष्ठार्थं नक्षत्राणि। देवप्रतिष्ठानक्षत्राणि—'हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु। स्यादुत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं तत् ॥' इति। अथ षोडशभानि ध्रुवमृदुक्षिप्रलघुरूपाण्येवोक्तानि, तत्र ग्रन्थकर्त्रा जलाशयारामसुरप्रतिष्ठानक्षत्राण्येव वहुधा तुल्यत्वादुक्तानि, द्वित्रीणि तु भिन्नानि तान्युक्तविशेषवचनेभ्योऽवसेयानीति। तत्र जलाशयारामयोर्निमित्यर्थे तन्मुहूर्त्तः प्रागुक्तः। देवताघटनमुहूर्त्तस्तु उच्यते मया। तत्र दीपिका—'ध्रुवलघुमृदुवर्गे वारुणे विष्णुदैवे मरुददितिधनिष्ठे शोभने वासरे च। त्रिदशमदनजन्मैकादशे (३।१०।७।१।११) शीतरश्मौ विबुधसुकृतिरिष्टा नाडिनक्षत्रहीने ॥' इति। नाडीनक्षत्राणि वैनाशिकनक्षत्राणि।

अथ शशाङ्कपापैरिति

जलाशयप्रतिष्ठायामारामप्रतिष्ठायां च सुलग्नमात्रं विचार्यम्। देवप्रतिष्ठायां शशाङ्कश्चन्द्रः पापाः सूर्यभौमशनिराहुकेतवस्तैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैस्तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थितैरुपलक्षिते लग्ने तथा सत्खचरैः सोमवुधगुरुशुक्रैर्व्ययष्टान्त्यगैरष्टमद्वादशव्यतिरिक्ताखिलस्थानस्थैः सद्भिर्देवप्रतिष्ठातिप्रशस्ता। तदुक्तं रत्नमालायाम्—'केन्द्रत्रिकोणभवमूर्तिषु सद्ग्रहेषु चन्द्रार्कभौमशनिषु त्रिषडायगेषु। सान्निध्यमेति नियतं प्रतिमासु देवः कर्त्तुः सुखार्थसुतसम्पदरोगता च ॥ सौम्या लग्नाद्याश्रिता मूर्तिपूर्वा तावद्वीर्यैरुत्कटा वर्द्धयन्ति। षष्ठं हित्वा भावमेते हि तत्र शत्रुध्वंस्ति कर्त्तुरुत्पादयन्ति ॥' इति। शनिग्रहणं राहुकेत्वोरप्युपलक्षणम्। यदाह वसिष्ठः—'सूर्येन्दुभौमार्क्यहिकेतवश्च लग्नस्थिता नैधनदाश्च भर्त्तुः। सौम्यग्रहा लग्नगतास्तदैव ह्यायुर्बलारोग्यकराश्च नूनम् ॥' इति। अन्यच्च तत्रैव—'सर्वे ग्रहा नैधनदास्त्वजस्रं सौम्या असौम्याः खलु मृत्युसंस्थाः' इति।

प्रसङ्गतो नवांशविचारः

प्रसङ्गान्नवांशविचारः। तत्र स्थिरद्विस्वभावनवांशा ग्राह्या न चरांशाः। तत्रापि तुलांशः साधीयान्। यदाह वसिष्ठः—'पञ्चेष्टके जीवशशाङ्कसूर्यमुख्यग्रहैः सौम्यनवांशयुक्तैः। लग्ने स्थिरे चोभयराशियुक्ते नवांशके चोभयगे स्थिरे वा' (उभयगे द्विस्वभावगे) 'चरोदये लग्नगते न कार्यं संस्थापनं नैव चरांशकेऽपि। चरोऽपि मुख्यः सकलांशकश्च सदा मृदुत्वात्सुरसन्निवेशे ॥' इति। मृदुत्वाच्छुभस्वामित्वात्। नारदो-

ऽपि—'शुभलग्ने शुभांशे च कर्त्तुस्ते निधनोदये। राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः॥' इति।

वसिष्ठोक्तो लग्नदोषापवादः

लग्नदौष्टयेऽपवादो वसिष्ठेनोक्तः—'एकोऽपि जीवो बलवांस्तनुस्थः सितोऽपि सोम्योऽप्यथवा बली चेत्। दोषानशेषान्विनिहन्ति सद्यः स्कन्दो यथा तारकदैत्यवर्गम्'॥ इति। नारदः—'गुणाधिकतरे लग्ने दोषेऽत्यल्पतरे यदि। सुराणां स्थापनं तत्र कर्त्तुरिष्टार्थसिद्धिदम्'॥ इति। मृगेन्द्र इति। सूर्यो मृगेन्द्रे सिंहलग्ने स्थाप्यः, तथा को ब्रह्मा घटे कुम्भलग्ने, विष्णुर्युवतौ कन्यालग्ने, शिवो महादेवो नृयुग्मे मिथुनलग्ने च, पुनर्द्वितनौ मिथुनकन्याधनुर्मीनलग्नेषु देव्यो दुर्गादक्षिणामूर्त्यादयः, चरे मेषकर्कतुलामकरलग्नेषु क्षुद्रा देव्यश्चतुःषष्टियोगिनीप्रभृतयः, सर्व इमे उक्ता अनुक्ताश्च देवा इत्यर्थः। उक्ता महादेवादयः, अनुक्ता इन्द्रादयः, ते स्थिरर्क्षे वृषसिंहवृश्चिककुम्भलग्नेषु स्थाप्याः। यदाह श्रीपतिः—'सिंहोदये दिनकरो मिथुने महेशो नारायणश्च युवतौ घटभे विधाता। देव्यो द्विमूर्तिभवने च निवेशनीयाः क्षुद्राश्चरे स्थिरगृहे निखिलाश्च देवाः॥' इति। पुष्ये ग्रहा इति। ग्रहाश्चन्द्रादयोऽष्टौ पुष्यनक्षत्रे स्थाप्या इत्यर्थः। उपलक्षणं चैतत्। तत्र सूर्यस्य हस्तनक्षत्रे स्थापनं, महादेवब्रह्मणोः पुष्यश्रवणाभिजित्सु स्थापनं, कुबेरस्कन्दयोरनुराधायाम्, दुर्गाप्रभृतीनां मूले स्थापनं, सप्तर्षीणां स्वाधिष्ठितनक्षत्रे, लक्ष्मीव्यासवाल्मीक्यगस्त्यानामपि सप्तर्ष्यधिष्ठितनक्षत्रे स्थापनम्। उक्तं च रत्नमालायाम्—'पुष्यश्रुत्यभिजित्सु रेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम्॥' को ब्रह्मा, तथा—

'सप्तर्षयो यत्र चरन्ति धिष्ण्ये कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम्।
श्रीव्यासवाल्मीकिघटोद्भवानां तथा स्मृता वाक्पतिभे ग्रहाणाम्॥' इति।

सप्तर्षयस्तु—

'कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥'

इति स्मृतेस्ते यस्मिन् नक्षत्रे सञ्चरन्तो दृश्यन्ते तस्मिन्नक्षत्रे तेषां स्थापनम्। श्रीव्यासवाल्मीकिघटोद्भवानां तथा सप्तर्ष्यधिष्ठितनक्षत्रे, ग्रहाणां वाक्पतिभे पुष्ये घटोद्भवोऽगस्त्यः। विघ्नपेति। विघ्नपो गणेशः, यक्षो देवयोनिः, सर्पा वासुक्यादयः, भूतो देवयोनिः।

'विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥'

इत्यभिधानात्। आदिशब्देन राक्षसासुरमथनसरस्वतीप्रभृतयो गृह्यन्ते। ते रेवत्यां स्थाप्याः। तथा च श्रवणे श्रवणनक्षत्रे जिनो बुद्धः स्थाप्यः। उपलक्षणं चैतत्। इन्द्रकुबेरवर्जितानां लोकपालानां धनिष्ठायां स्थापनम्। इतोऽवशिष्टानां देवानां त्र्युत्तरारोहिणीषु स्थापनं स्यादित्यर्थः। एतदप्युक्तं रत्नमालायाम्—

'गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे।
श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं हि स्थिरेषु॥' इति।

परिवृढः स्वामी । 'प्रभौ परिवृढः' इति साधुः । गणपरिवृढो गणेशः । प्रमथा महादेवस्य परिषदाः । श्रवसि श्रवणनक्षत्रे । सुगतो बुद्धः । 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धः' इत्यमरः । स्थिरेषु रोहिण्युत्तरास्वित्यर्थः ॥ ६१-६२-६३ ॥

नक्षत्रप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञानन्तेति । इदं पूर्ववद् व्याख्येयम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने तिथिवारभप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ॥

इति श्रीविद्वद्दैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां तिथिवारनक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

हिन्दी—चैत्र को छोड़कर उत्तरायण के सूर्य में (मकरसंक्रान्ति से मिथुनान्त-पर्यन्त जब तक ६ राशि पर सूर्य रहता है अर्थात् १४ जनवरी से १६ जुलाई तक), बृहस्पति, चन्द्रमा और शुक्र के उदय होने पर, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) इन १६ नक्षत्रों में, शुक्लपक्ष में जिस देवता की स्थापना करनी हो, उस देवता के नक्षत्र (२।१) तिथि (१।३) और मुहूर्त (६।५५) में; रिक्ता (४।९।१४) तिथि और भौम को छोड़ कर अन्य (१।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५) तिथियों और वारों (सूर्य, सोम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि) में, चन्द्रमा और पापग्रहों के ३।६।११ स्थानों में रहने पर, शुभग्रहों के ८।१२ स्थानों को छोड़ अन्य स्थानों (१।२।३।४।५।६।७।९।१०।११) में रहने पर, जलाशय (कूप, बावड़ी, तालाब), बगीचा और देवताओं की प्रतिष्ठा करना मंगलकारी होता है। सिंह लग्न में सूर्य की, कुम्भ लग्न में ब्रह्मा की, कन्या लग्न में विष्णु भगवान् की, मिथुन लग्न में शिव की, द्विस्वभाव (३।६।९।१२) लग्नों में देवियों की, चरसंज्ञक (१।४।७।१०) लग्नों में क्षुद्र (योगिनी, भैरव, डीह, सती, सन्तोषी माता आदि) देवी, देवताओं की स्थापना करनी चाहिए। विशेष रूप से सभी (कहे गये तथा नहीं कहे गये) देवताओं की स्थापना स्थिर (२।५।८।११) लग्नों में करनी चाहिए।

पुष्यनक्षत्र में चन्द्र आदि आठ ग्रहों की, रेवती में गणेश की, यक्ष (कुबेर के अनुचर आदि), सर्प (वासुकी आदि), भूत[1] (बालग्रह आदि रुद्र के अनुचर) आदि देवयोनियों की तथा श्रवणनक्षत्र में जिन (जैन-सम्प्रदाय के २४ आराध्य देवों) की स्थापना करनी चाहिए।

अन्य विशेषताएँ पीयूषधारा से प्राप्त कीजिये। संस्कार-प्रकरण (५।२५) भी देखिये।

श्रीधर्मदत्त द्विवेदी-तनूज विन्ध्येश्वरीप्रसाद-कृत नक्षत्र-प्रकरण पर 'मणिप्रदीप' नामक हिन्दी टीका समाप्त ॥ २ ॥

---

१. यहाँ भूत शब्द से उक्त-अनुक्त सभी देवयोनियों की स्थापना का संकेत है।

(३) अथ सङ्क्रान्तिप्रकरणम्[१]

गौरीनन्दनमिष्टसिद्धिसदनं विघ्नावलीभेदनं,
नत्वा ज्योतिषिकाख्यरामरचिते मौहूर्त्तचिन्तामणौ ।
गोविन्दो बुधनीलकण्ठविधिवित्सूनुः सतामग्रणी-
र्वेह्लर्थं खलु सङ्क्रमप्रकरणं व्याख्याति विद्वन्मुदे ।।

सङ्क्रान्तिप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र ग्रहाणां प्राग्राशितोऽपरराशौ सङ्क्रमणं सङ्क्रान्तिरिति सङ्क्रान्तिलक्षणम् । सा च द्विविधा—मध्यमा स्पष्टा च । षट्कर्मसंस्कृतो मध्यमग्रहो राश्यन्तरं यदा सङ्क्रामति सा मध्या सङ्क्रातिरुच्यते । यदा तु स्पष्टीकृत-संस्कारविशिष्टो ग्रहो राश्यन्तरं गच्छेत्सा स्पष्टसङ्क्रान्तिरुच्यते । तत्र मध्यममानस्य स्पष्टीकरणार्थकत्वादेव तज्जनितसंस्कारानुपयोगादत्र तत् त्यागे स्पष्टसङ्क्रान्तिरेव गृह्यते, सापि द्विविधा—सायनांशा निरयनांशा चेति । तत्र यदा सिद्धान्तगणनागताय-नांशसंस्कृता ग्रहा राश्यन्तरगमनमुररीकुर्वते सा सायनांशा सङ्क्रान्तिरुच्यते, यदा त्वयनांशसंस्काररहिता ग्रहा राश्यन्तरगास्तदा निरयनांशा सङ्क्रान्तिरुच्यते ।

तत्रान्यासां चन्द्रादिसङ्क्रान्तीनां तु 'देवद्वयङ्कर्तवोऽष्टाष्टौ नाड्योऽङ्काः खनृपाः क्रमात् । वर्ज्याः सङ्क्रमणेऽर्कादेः प्रायोऽर्कस्यातिनिन्दिताः ।।' इति । वर्ज्यघटीत्वमेव विवाहप्रकरणे वक्ष्यति । न तु फलकथने आसां सङ्क्रान्तीनां कश्चिदुपयोगः । सूर्य-सङ्क्रान्तीनां तु नक्षत्रवारसमयभेदेन ववादिकरणभेदेन च शुभाशुभफलकथनयोग्यता पुण्यकालता सङ्क्रान्तिविशेषे वर्ज्यघटीन्यूनाधिकभावश्चास्तीत्यतो बहुवक्तव्यत्वात्स्वतन्त्र-मेव सूर्यसङ्क्रान्तिप्रकरणमारिप्सुर्नक्षत्रवारभेदेन फलं तावत्सार्धवसन्ततिलकयाऽऽह—

घोरार्कसङ्क्रमणमुग्ररवौ हि शूद्रान् ध्वाङ्क्षी विशो लघुविधौ च चरर्क्षभौमे ।
चौरान् महोदरयुता नृपतीन् ज्ञमैत्रे मन्दाकिनी स्थिरगुरौ सुखयेच्च मन्दा ।।१।।
विप्रांश्च मिश्रभभृगौ तु पशूंश्च मिश्रा तीक्ष्णार्कजेऽन्त्यजसुखा खलु राक्षसी च ।

पीयूषधारा—घोरेति । अर्कस्य सूर्यस्य सङ्क्रमणनिरयनांशा सङ्क्रान्तिरुग्ररवा-वुग्रसंज्ञकनक्षत्रे रविवारे स्यात्तदा घोरेति नाम्नी, सा शूद्रान्सुखयेत् सुखमुत्पादयेत्तेषाम् । अत्रार्कसङ्क्रमणमिति पदोपादानसामर्थ्यात्सूर्यसङ्क्रान्तिष्वेवायं विचारो नाखिलग्रहसङ्-क्रान्तिष्विति फलितोऽर्थः । ननूग्ररवावित्यत्र सप्तम्यन्ते द्वन्द्वसमासोऽस्ति, स किमित-रेतरयोगद्वन्द्वः समाहारद्वन्द्वो वा । नाद्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वस्योद्भूतावयवत्वाद् द्विवचना-

---

१. समस्त ग्रहों में सूर्य ही प्रधान ग्रह दृष्टिगोचर होता है । उसका संक्रान्ति सम्बन्धी अनेक विचार इस प्रकरण में होने के कारण इसका नाम संक्रान्ति-प्रकरण पड़ा है । ग्रह एक राशि को भोग कर जिस समय दूसरी राशि पर जाता है, उसी को संक्रान्तिकाल कहते हैं । जिस राशि में प्रवेश करता है, उस राशि की संक्रान्ति कही जाती है । संक्रान्ति के समय वर्तमान वार और नक्षत्र के सम्बन्ध से संक्रान्ति के भिन्न-भिन्न नाम एवं फल होते हैं । आचार्य पहले उसी का वर्णन करते हैं ।

न्तता स्यात्तथासत्युग्ररव्योरिति भवितव्यम् । उग्रनक्षत्राणां वहुत्वादुग्ररविष्विति वहुवचनान्तता च स्यादिति केचिदाहुः । उभयथापि पाठे छन्दोभङ्गदोषः प्राप्नोति । न द्वितीयः । समाहारद्वन्द्वस्य 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवति' इत्येकवद्भावविधानात् । 'स नपुंसकम्' इति नपुंसकलिङ्गतायां सत्यां समाहारस्यैकत्वादेकवचनं ङिस्तस्मिन्परतः 'इकोऽचि विभक्तौ' इति नुमागमे उग्ररविणीति स्यात् । तादृशपाठेऽपि छन्दोभङ्गदूषणम् । अत्र समाधिः—इतरेतरयोगद्वन्द्वोऽत्र न कार्यः, किन्तु समाहारद्वन्द्वः कार्यः । तथाहि 'स्तोः श्चुना श्चुः' इत्यत्र सूत्रे स्तोरिति ज्ञापकादागमशासनस्यानित्यत्वावगतेर्नुमभावे 'अच्च घेः' इत्यौत्वे अत्त्वे च सिद्धमुग्ररवाविति । अथवोग्रैः सहितो रविरुग्ररविरिति । शाकपार्थिवादेराकृतिगणत्वान्मध्यमपदलोपी तत्पुरुषः समासः । ततः सप्तम्येकवचने पूर्ववत्सिद्धमिष्टम् । अतश्छन्दोभङ्गाभावोऽपि सिद्धः । एवं लघुविधावित्यादावपि समाधेयम् । अनेनैवाशयेन 'मर्यादाभिविधौ च यः' इति काशिकाप्रयोगोपपत्तिरित्यलंमतिप्रसङ्गेन । लघुनक्षत्रे विधौ चन्द्रवारे वा सूर्यसङ्क्रान्तिर्ध्वाङ्क्षीनाम्नी विशो वैश्यान्सुखयेत्, चरर्क्षे चरनक्षत्रे भौमे मङ्गलवारे वा सङ्क्रान्तिर्महोदरयुता महोदरानाम्नी चौरान् सुखयेत्, ज्ञे मैत्रे बुधे मैत्रसंज्ञकनक्षत्रे वा सङ्क्रान्तिर्मन्दाकिनीनाम्नी नृपतीन् राज्ञः सुखयेत्, स्थिरनक्षत्रे गुरुवारे वा सङ्क्रान्तिर्मन्दानाम्नी विप्रान् सुखयेत्, मिश्रनक्षत्रे भृगुवारे वा सङ्क्रान्तिर्मिश्रानाम्नी पशून् सुखयेत्, तीक्ष्णनक्षत्रे अर्कजे शनिवारे वा सङ्क्रान्तिः खलु निश्चयेन राक्षसीनाम्नी अन्त्यजांश्चाण्डालान् सुखयतीत्यन्त्यजसुखा स्यादित्यर्थः । यदाह कश्यपः—

'घोरा ध्वाङ्क्षी महोदर्यो मन्दा मन्दाकिनी तथा ।
मिश्रा राक्षसिका सूर्यसङ्क्रान्तिश्चार्कवासरात् ॥'

वसिष्ठः—'घोरोग्रर्क्षे ध्वाङ्क्षी लघुभे चरभे महोदरी मृदुभे ।
मन्दाकिनी चरर्क्षे मन्दा मिश्रे च राक्षसी तीक्ष्णे ॥'

अत्र छन्दोभङ्गस्त्वार्षः । देवीपुराणे—'मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा । क्षिप्रे ध्वाङ्क्षी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्त्तिता ॥ चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैरुग्रैस्तु राक्षसी । मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रैर्ऋक्षैस्तु सङ्क्रमे ॥' इति । रत्नमालायाम्—'उग्रक्षिप्रचरैर्मित्रध्रुवमिश्राख्यदारुणैः । ऋक्षैः सङ्क्रान्तिरर्कस्य घोराद्या क्रमशो भवेत् ॥' नारदकश्यपौ—'शूद्रतस्करवैश्यक्ष्मादेवभूपगवां क्रमात् । अनुक्तानां च सर्वेषां घोराद्याः सुखदाः स्मृताः ॥' क्ष्मादेवाः ब्राह्मणाः, अनुक्तानां चाण्डालादीनाम् । ननूक्तं वक्ष्यमाणं वा शुभाशुभफलं सायनांशसङ्क्रान्तितः कुतो न विचार्यत इति चेत्, उच्यते । सायनांशसङ्क्रान्तेः स्नानदानजपादावेव कार्यं न सर्वत्र । यदाह पुलस्त्यः—'स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मसु । सुकृतं चलसङ्क्रान्तावक्षयं पुरुषोऽश्नुते ॥' इति । चलसङ्क्रमः सायनांशसङ्क्रान्तिः । अतश्चलसङ्क्रान्तेः परिगणितस्नानादिकविषयत्वादेव कृत्यान्तरेषु विवाहादिशुभकर्मसु सङ्क्रान्तिमासाङ्गीकारे शुभाशुभफलकथने च नास्या उपयोग इति युक्तमुत्पश्यामः । इदं चाग्रे सम्यक्तया निर्णेष्यते ॥ १ ॥

हिन्दी—उग्रसंज्ञक नक्षत्र (पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा) और रविवार के योग में संक्रान्ति लगे तो उस संक्रान्ति का नाम घोरा होता है और वह शूद्रों को सुख

देती है (उस सौर मास में शूद्र सुखी रहते हैं) । **लघुसंज्ञक** (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) नक्षत्र और सोमवार के योग में संक्रान्ति पड़ जाय तो उसका नाम **ध्वांक्षी** होता है। वह वैश्य जाति (अग्रवाल, मारवाड़ी, वर्नवाल, कान्यकुब्ज 'हलवाई' आदि) को सुख देती है। **चरसंज्ञक**

संक्रान्ति फल ज्ञानसारणी

वार	नक्षत्र	संज्ञा	फल
रवि	उग्र (तीनों पूर्वा, भरणी, मघा)	घोरा	शूद्रों को सुख
सोम	लघु (हस्त, पुष्य, अभिजित्, अश्विनी)	ध्वांक्षी	वैश्यों को सुख
मंगल	चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा)	महोदरी	चोरों को सुख
बुध	मैत्र (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा)	मन्दाकिनी	क्षत्रियों को सुख
गुरु	स्थिर (तीनों उत्तरा, रोहिणी)	मन्दा	विप्रों को सुख
शुक्र	मिश्र (विशाखा, कृत्तिका)	मिश्रा	पशुओं को सुख
शनि	तीक्ष्ण (मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा, आश्लेषा)	राक्षसी	अन्त्यजों को सुख

(स्वा० पुन० श्रव० धनि० शत०) नक्षत्र मंगलवार के योग में संक्रान्ति हो तो **महोदर** नाम की संक्रान्ति चोरों (अर्थचोर, कामचोर व्यवहारचोर, डाकू आदि) को सुखी बनाती है। **मैत्रसंज्ञक** (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) नक्षत्र बुधवार के योग में संक्रान्ति हो तो **मन्दाकिनी** नाम होता है। वह क्षत्रिय जाति को सुख देती है। **स्थिरसंज्ञक** (उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी) नक्षत्र, गुरुवार के योग में संक्रान्ति का नाम **मन्दा** होता है। वह ब्राह्मण जाति को सुख देने वाली होती है। **मिश्रसंज्ञक** (विशाखा, कृत्तिका) नक्षत्र शुक्रवार के योग में लगी हुई संक्रान्ति का नाम **मिश्रा** होता है। वह पशुओं (हाथी, घोड़ा, गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि) को सुख देती है। **तीक्ष्णसंज्ञक** (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा) नक्षत्र और शनिवार के योग में लगी हुई संक्रान्ति का नाम **राक्षसी** होता है। वह अन्त्यज जाति (चमार, मुसहर, डोम, मेस्तर आदि) को सुखी बनाती है ॥ १–१½ ॥

अथ दिनरात्रिविभागेन सङ्क्रात्यशुभफलमुत्तरायणदक्षिणायनसंज्ञां च सार्द्धवसन्ततिलकयाऽऽह—

त्र्यंशे दिनस्य नृपतीन् प्रथमे निहन्ति मध्ये द्विजानपि विशोऽपरके च शूद्रान् ॥२॥
अस्ते निशाप्रहरकेषु पिशाचकादीन् नक्तञ्चरानपि नटान् पशुपालकांश्च ।
सूर्योदये सकललिङ्गिजनं च सौम्ययाम्यायनं मकरकर्कटयोर्निरुक्तम् ॥ ३ ॥

त्र्यंश इति । अत्रार्कसङ्क्रमणमित्यनुवर्त्तते । दिनप्रमाणं त्रिभिर्भक्तं घटचात्मकस्तृतीयांशो भवति । तत्र दिनस्य प्रथमत्र्यंशेऽर्कसङ्क्रमणं नृपतीन् हन्ति, मध्ये द्वितीयत्र्यंशे द्विजान् ब्राह्मणान् हन्ति, अपरके तृतीयत्र्यंशे वैश्यान् हन्त्येवं सर्वत्र व्याख्येयम् । अस्ते सूर्यास्तसमयेऽर्कसङ्क्रमणं शूद्रान् । अथ रात्रिसङ्क्रान्तिफलम् । तत्र रात्रिप्रथम-

प्रहरे पिशाचकादीन्, आदिशब्देन भूतादीन्, द्वितीयप्रहरे नक्तञ्चरान् राक्षसान् । तृतीयप्रहरे नटान् नर्त्तकान्, चतुर्थप्रहरे पशुपालकान् आभीरान्, सूर्योदयसमयेऽर्कसङ्क्रमणं सकललिङ्गिजनं पाखण्डादिकं हन्तीत्यर्थः ।

'पाखण्डाः सर्वलिङ्गिनः' इत्यभिधानात् । यदाहतुर्नारदकश्यपौ—

'पूर्वाह्णे नृपतीन्हन्ति विप्रान्मध्यदिने विशः । अपराह्णेऽस्तगे शूद्रान्प्रदोषे च पिशाचकान् ॥ निशि रात्रिञ्चरान्नाटचकारानपररात्रके । गोचारिणश्च सन्ध्यायां लिङ्गिनं रविसङ्क्रमे ॥' इति ।

सङ्क्रान्तिफलं क्रूरसौम्यवारभेदेन

सङ्क्रान्तेः क्रूरसौम्यवारपरत्वेन फलविशेषमाह वसिष्ठः—

'रविरविजभौमवारे सङ्क्रान्तौ दिनकरस्य तन्मासे ।
पित्तकफानिलजामयनरपतिकलहं त्ववृष्टिश्च ॥
बुधगुरुसितचन्द्राहे सति सङ्क्रान्तावनामयं नॄणाम् ।
क्षितिपतिनिकरक्षेमं सस्यविवृद्धिर्विधर्मिणां पीडा ॥' इति ।

नक्षत्रभेदेन मेषसङ्क्रान्तिफलम्

अत्र मेषसङ्क्रान्तौ विशेषमाह कश्यपः—

'यदा मेषगतः सूर्यो भरण्यादिचतुष्टये । सस्यवृद्धिर्भवेत्तस्य वृद्धिरार्द्राचतुष्टये ॥
मघादिदशके हानिः क्षेमं चानुक्तभेषु च ॥'

अस्यार्थः—यस्मिन्दिने मेषसङ्क्रमस्तद्दिने चन्द्रो यदि भरण्यादिनक्षत्रचतुष्टये स्यात्तदा सस्यवृद्धिः । एवमग्रेऽपि व्याख्येयम् ।

अथ जन्मनक्षत्रे सङ्क्रान्तिफलम्

जन्मनक्षत्रे सङ्क्रान्तिफलं दीपिकायाम्—

'यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसङ्क्रमणं भवेत् ।
तन्मासाद्यन्तरे तस्य रोगः क्लेशो धनक्षयः ॥' इति ।

तत्र शान्तिकमपि दीपिकायामुक्तम्

'तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः ।
स्नानञ्जन्मन्यृक्षे रविसङ्क्रान्तौ नृणां शुभदम् ॥'

सङ्क्रान्तिषु वृष्टौ फलम्

सङ्क्रान्तिषु वृष्टौ जातायां फलमुक्तं वसिष्ठेन—'अजकन्याझषकर्किणि सङ्क्रान्तौ यदि भवेद्वर्षम् । अतुलं क्षेमसुभिक्षं नृपसज्जनगोकुलक्षेमम् । घटचापसिंहमिथुनसङ्क्रान्तौ यदि भवेद्वर्षम् । आमयडामरभूभृद्युद्धमनर्थं त्ववृष्टिश्च ॥ वृषवृश्चिकतुलमकरे वृष्टिः स्यात्सङ्क्रमे समये । विस्फोटामयतस्करपीडा वृष्टिः कृशानुभयम् ॥' इति । सौम्येति मकरकर्कटयोः सङ्क्रान्तिश्चेत्तदा क्रमेण सौम्ययाम्यायनं निरुक्तं कथितम् । मकरे उत्तरायणं, कर्कटे याम्यायनं स्यादित्यर्थः । यदाह नारदः—'सौम्ययाम्यायने नूनं भवतो मृगकर्किणी ॥' इति ॥ २-३ ॥

हिन्दी—यदि दिन के प्रथम तृतीयांश में सूर्य की संक्रान्ति हो तो वह क्षत्रिय जाति को नष्ट करती है। दूसरे तृतीयांश में सूर्य-संक्रान्ति लगे तो वह ब्राह्मण जाति का विनाश करती है। तीसरे तृतीयांश में सूर्य-संक्रान्ति हो तो वह वैश्य जाति का नाश करती है ॥ २-३ ॥

दिनमान में ३ का भाग देने पर जो घटी-पल लब्ध हों, उसको तृतीयांश कहते हैं। रात्रिमान में ४ का भाग देने से जो घटी-पल आता है, उसको प्रहर या याम कहते हैं।

अस्त समय में संक्रान्ति लगे तो वह शूद्रों का विनाश करती है। एवं रात्रि के प्रथम प्रहर में संक्रान्ति हो तो वह पिशाचादि[1] (पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत) का नाश करती है। द्वितीय प्रहर में लगी हुई संक्रान्ति राक्षसों का, तृतीय प्रहर में प्रारम्भ होने वाली संक्रान्ति नटों[2] (नचनियों) का और चौथे प्रहर की संक्रान्ति पशुपालकों का तथा में सूर्य संक्रान्ति हो तो पाखण्डियों[3] का नाश कर देती है।

अब द्वादश संक्रान्तियों की विशेष संज्ञाएँ बतलाते हैं। मकर की संक्रान्ति को **सौम्यायन** तथा कर्क की संक्रान्ति को **याम्यायन** संक्रान्ति कहते हैं।

दिनविभाग	फल	अस्तकाल	रात्रि प्रहर	फल	उदयकाल
प्र० तृतीयांश	क्षत्रिय नाश	शूद्रों का नाश	प्रथम प्रहर	पिशाचादि नाश	पाखण्डियों का नाश
द्वि० तृतीयांश	विप्र नाश		द्वितीय प्रहर	राक्षसों का नाश	
तृ० तृतीयांश	वैश्य नाश		तृतीय प्रहर	नटों का नाश	
			चतुर्थ प्रहर	पशुपालकों का नाश	

अथावशिष्टतादृशसङ्क्रान्तीनां षडशीतिमुखाः संज्ञा अनुष्टुभाह—

षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याझषे भवेत् ।
तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे ॥ ४ ॥

षडशीत्येति । धनुर्मिथुनकन्यामीनेषु सङ्क्रान्तिश्चेत्तदा षडशीतिमुखानाम्नी सङ्क्रान्तिः। तुलामेषयोः सङ्क्रान्तिर्विषुवनाम्नी, सिंहवृश्चिकवृषकुम्भेषु सङ्क्रान्तिर्विष्णुपदाख्या। उक्तं च नारदेन—'स्थिरभेष्वर्कसङ्क्रान्तिर्ज्ञेया विष्णुपदाह्वया। षडशीतिमुख ज्ञेयं द्विस्वभावेषु राशिषु। तुलाधराजयोर्ज्ञेयं विषुवं सूर्यसङ्क्रमे ॥'

---

१. 'पिशाचो गुह्यकः सिद्धः भूतोऽमी देवयोनयः'। इत्यमरः।

२. 'शैलालिनस्तु शैलूषा जायाजीवा कृशाश्विनः। भरता इत्यपि नटा।' इत्यमरः।

३. 'पाखण्डाः सर्वलिङ्गिनः'—इत्यमरः। लाल-पीला-हरा-नीला-काला वस्त्र धारण करके कोई जटा बढ़ाकर, कोई मूँड मुड़ा तरह-तरह का रूप बनाकर जनता को अज्ञानान्ध कूप में गिराने वालों को पाखण्डी कहा गया है—

'पालनाच्च त्रयी धर्मः पाशब्देनेह कल्प्यते। तं खण्डयन्ति ये मूढाः पाखण्डास्तेन ते स्मृताः ॥'

वेदों के विपरीत आचरण करने वाले पाखण्डियों के स्पर्शमात्र से भी महापाप होता है—

'विशुद्ध्यति सदा स्नानात् स्पर्शे रजकवाजिनः।
पाखण्डस्य कृते स्पर्शे शुद्धिर्नैवास्ति कर्हिचित् ॥' इत्यादि।

तासां संज्ञानां फलानि, तत्र स्नानदानादि च

संज्ञाप्रयोजनं च—'याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यास्तुलाजयोः । षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥' इति ग्रन्थकृदग्रे वक्ष्यति । अत्र मनुः—'सङ्क्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः । तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥' इति । 'रविसङ्क्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यदि मानवः । सप्तजन्मसु रोगी स्याद् दुःखभागी हि जायते ॥' इति शातातपोक्तेः । स्नानदानश्राद्धादिकृत्यस्य सङ्क्रान्तिकालेऽवश्यकर्त्तव्यता प्रतीयते । तत्र श्राद्धादेरनेकक्षणसाध्यत्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यमापद्यते । सङ्क्रान्तिकालस्यातिसूक्ष्मत्वात् । तदुक्तं देवीपुराणे—'सुस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्दति लोचनम् । तस्य त्रिंशत्तमो भागस्तत्परः परिकीर्त्तितः ॥ तस्माच्छततमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते । त्रुटेः सहस्रभागो यः स कालो रविसङ्क्रमे ॥' इति । देवलोऽपि—'सङ्क्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः ॥' इति । पिशितेक्षणैर्मनुष्यैः । अतो मुख्यकालानुपलब्धौ गौणकालेऽपि कार्यम् । वचनप्रामाण्यात् ॥ ४ ॥

हिन्दी—धनु, मिथुन, कन्या और मीन (द्विस्वभावसंज्ञक) राशियों का नाम षडशीत्यानन है । तुला और मेष दोनों की **विषुवसंज्ञा** है तथा सिंह, वृश्चिक, वृष, कुम्भ (स्थिरसंज्ञक) राशियों की संक्रान्ति को **विष्णुपद** कहते हैं ॥ ४ ॥

विशेष—इन संक्रान्तियों का मनुष्य के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिसका विवेचन पीयूषधारा में विशेष रूप से किया गया है । इसमें दान, जप, हवनादि करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ।

राशियाँ	मकर	कर्क	द्विस्वभाव राशियाँ मिथुन, कन्या, धन, मीन	तुला मेष	स्थिर राशियाँ वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ
संक्रान्ति संज्ञा	सौम्यायन	याम्यायन	षडशीत्यानन	विषुव	विष्णुपद

स च गौणकालः प्रतिनिधिरित्यतो गौणकालमुपजातिकाछन्दःपूर्वार्द्धेनाह—

सङ्क्रान्तिकालादुभयत्र नाडिकाः पुण्या मताः षोडश षोडशोष्णगोः ।
निशीथतोऽर्वागपरत्र सङ्क्रमे पूर्वापराहान्तिमपूर्वभागयोः ॥ ५ ॥

सङ्क्रान्तीति । गणितमार्गेण यः उष्णगोः सूर्यस्य सङ्क्रान्तिकाल आगतस्तत उभयत्र पूर्वतः परतश्च षोडश नाड्यः पुण्यसम्पादकत्वात्पुण्या मताः सम्मताः । सूर्यसङ्क्रान्तेः समयात्पूर्वं षोडश पश्चाच्च षोडश घटिकाः पुण्यकाल इति द्वात्रिंशद् घटिका भवन्तीत्यर्थः । तदाह वसिष्ठः—

'दिनपतिसङ्क्रमणात्प्राक्षोडश नाड्यश्च पुण्यकालः सः ।
परतः षोडश नाड्यः सर्वत्र स्नानदानकार्येषु ॥'

ब्रह्मसिद्धान्ते

'सङ्क्रान्तेः प्राक्परस्ताच्च सार्द्धाः षोडश नाडिकाः ।
त्रयस्त्रिंशत्सङ्क्रमस्य पुण्याः सर्वस्य नाडिकाः ॥'

अनेन 'सङ्क्रान्तेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः' इति वाक्ये यैः पूर्वतः परतश्चाष्टावष्टौ घटिकाः पुण्यकाल इत्येवं षोडशेति व्याख्यातं तदपाकृतं भवति । किञ्चायमर्थो वासनासिद्धः सूर्यसिद्धान्तेऽभिहितः—'अर्कमानकलाः षष्टया गुणिता भुक्तिभाजिताः । तदर्द्धनाड्यः सङ्क्रान्तेरर्वाक्पुण्यं तथापरे ॥' इति । सिद्धान्तशिरोमणावपि—'षष्टिघ्नबिम्बं ग्रहभुक्तिभक्तं सङ्क्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ये । रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्वसङ्क्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते ॥' इति । वासना चेयं—'यदि ग्रहस्पष्टगतितुल्यकलाभिरहोरात्रमानरूपाः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा ग्रहबिम्बकलाभिः किम्' ? इति त्रैराशिकेन ग्रहे बिम्बकलानां षष्टिर्गुणको ग्रहभुक्तिर्भाजको निष्पन्न इत्यर्थः । एवं सर्वग्रहाणामपि सङ्क्रान्तिः स्यात् । तदुक्तं सिद्धान्त एव । अत्र तु विस्तरभयादनुपयुक्तत्वाच्च नास्माभिरलेखि । अत एव त्रिंशदेकत्रिंशत्सार्द्धद्वात्रिंशत् त्रयस्त्रिंशदादिभेदेन स्मृतिषु पुण्यघटिकाभिधानं स्पष्टीकृत्याभेदसम्भवाद्भिन्नम् । तदेवं सामान्यतः सङ्क्रान्तिषु द्वात्रिंशद्घटिकारूपः पुण्यकालो निर्णीतः । देवीपुराणे तु मन्दादिसञ्ज्ञाभेदात्पुण्यकालविशेष एवोक्तः—'द्विचतुष्पञ्चसप्ताष्ट नव द्वादश चैव हि । क्रमेण घटिका ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥' इति । अस्यार्थः—मन्दायामन्तरालवर्तिघटिकाद्वयं मन्दाकिन्यां चतस्रो घटिकाः, ध्वाङ्क्ष्यां पञ्च, घोरायां सप्त, महोदर्यामष्टौ, राक्षस्यां नव, मिश्रायां दश । प्रागभिहितदेवीपुराणोक्तमन्दादिसञ्ज्ञावाक्यान्न नक्षत्रजनितसञ्ज्ञासु मन्दादिष्वयं विचारो न वारप्रयुक्तासु, अवचनात् । एवं सङ्क्रान्तौ विशेषमुपजात्युत्तरार्द्धेनाह—निशीथत इति । निशीथमर्धरात्रन्तस्मादर्वाक्पूर्वत्र, अपरत्र पश्चाच्च सङ्क्रमे सङ्क्रान्तिकाले सति पूर्वापरयोरह्नोः क्रमेणान्तिमपूर्वभागौ पुण्यौ स्याताम् । भागकाविति स्वार्थे कः । यद्यर्द्धरात्रात्प्राक् सङ्क्रान्तिस्तदा पूर्वदिनस्योत्तरार्द्धं पुण्यम् । यद्यर्द्धरात्रादुपरि सङ्क्रान्तिस्तदोत्तरदिनस्य पूर्वार्द्धमेव पुण्यमित्यर्थः । उक्तं च ब्रह्मसिद्धान्ते—'भवनान्तं बिम्बमध्यं रात्र्यर्द्धात्प्रागुदेति चेत् । स्नानदानादिमध्याह्नात्कुर्यादूर्ध्वं गते दिने ॥ रात्र्यर्द्धादुपरि क्षेत्रं याति चेदन्यथार्यमा । अन्यगामिनि मध्याह्नात्पूर्वं स्नानादि पुण्यदम् ॥' भवनराशिः बिम्बमध्यं रवेः क्षेत्रं राशिः । वृद्धवसिष्ठोऽपि—'अह्नि सङ्क्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम् । रात्रौ सङ्क्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः ॥ अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया । ऊर्ध्वं सङ्क्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् ॥' इति । ननु रात्रौ दिनसङ्क्रान्तौ रात्रावपि पुण्यकालसत्त्वात्तदा स्नानादि कुतो न क्रियते, यदर्थमयमुद्यम आरब्धः । उच्यते—'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः' इति सुमन्तुवाक्याद्रात्रौ स्नानाद्यधिकारासत्त्वात् । यत्तु नैमित्तिकं ग्रहणादिप्रयुक्तं तद्भवत्येव । 'नैमित्तिकं च कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ।' इति सुमन्तुवाक्यशेषात् ॥ ५ ॥

हिन्दी—सूर्य-संक्रान्ति काल से पहले और बाद में १६।१६ घटी (अर्थात् ३२ घटी) पुण्यकाल होता है। यदि आधी रात के पहले संक्रान्ति लगे तो पूर्व दिन के उत्तरार्ध (१२ बजे से

सूर्यास्त-पर्यन्त) तथा आधी रात के बाद संक्रान्ति लगे तो पर दिन के पूर्वभाग (सूर्योदय से १२ बजे दिन तक) पुण्यकाल होता है। रात में स्नान, दान का निषेध होने के कारण ऐसी व्यवस्था ऋषियों ने बतलायी है ॥ ५ ॥

विशेष—प्रथम राशि का अन्त एवं दूसरी राशि का आरम्भ जिस विन्दु पर होता है, उसे राशि-सन्धि बिन्दु कहते हैं। जब सूर्य-विम्ब का केन्द्रबिन्दु राशिसन्धि विन्दु पर ठीक-ठीक मिलता है, उसी को वास्तविक संक्रान्ति-काल कहते हैं। किन्तु उस काल का ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दुर्ज्ञेय है। अतः स्थूल काल को ही ऋषियों ने संक्रान्ति काल माना है। उस स्थूल काल के ज्ञानार्थ—जब राशि-सन्धि-बिन्दु में ग्रहबिम्ब की परिधि प्रविष्ट होने लगती है, उस समय से ग्रहबिम्ब जितने समय में दूसरी राशि को राशिसन्धि विन्दु से पृथक् करता है, उतने काल को संक्रान्तिकाल कहते हैं। उसका ज्ञान त्रैशिक गणित द्वारा आचार्यों ने किया है। यथा—ग्रहगति काल में ६० घटी तो बिम्बकला में का= $\frac{\text{६०} \times \text{विम्बकला}}{\text{ग्रहगति-कला}}$ = ग्रह-बिम्ब का संक्रान्ति काल, इसी को पुण्यकाल कहते हैं। यहाँ मध्यममान से विम्बकला ३२′ ग्रह-गतिकला ६० मानकर उत्थापन करने से ग्रहबिम्ब का संक्रान्ति काल= $\frac{\text{६०} \times \text{३२}}{\text{६०}}$ =३२ घटी (पुण्यकाल) आचार्य ने कहा है। इतने समय में (पुण्यकाल) में दान, जप, हवन, पुण्यकार्य, श्राद्ध आदि महाफलदायक माना गया है।

यदि सूर्य की मध्यम गति कला स्वल्पान्तर से ५९′ मान कर उत्थापन किया जाय तो ग्रहबिम्ब का संक्रान्ति काल= $\frac{\text{६०}+\text{३२}}{\text{५९}} = \frac{\text{१९२०}}{\text{५९}}$ = ३३ (स्वल्पान्तर से) घटी आता है, जिससे ब्रह्मसिद्धान्त में कही गई ५६ $\frac{\text{१}}{\text{२}}$।१६ $\frac{\text{१}}{\text{२}}$ घटी पुण्यकाल भी सिद्ध हो जाती है। यहाँ आचार्योक्त पुण्यकाल की अपेक्षा ब्रह्मसिद्धान्तोक्त पुण्यकाल (गणितागत) क्षणिक शुद्ध आता है।

अर्द्धरात्रसमये सङ्क्रमणे मकरकर्कटयोश्च विशेषमुपजातिकयाऽऽह—

पूर्णे निशीथे यदि सङ्क्रमः स्याद्दिनद्वयं पुण्यमथोदयास्तात् ।
पूर्वं परस्ताद्यदि याम्यसौम्यायने दिने पूर्वपरे तु पुण्ये ॥ ६ ॥

पूर्णे इति। 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ द्वौ यामप्रहरौ समौ' इत्यभिधानादर्द्धरात्रं निशीथ-शव्दवाच्यम्। तस्मिन्निशीथे पूर्णे रात्रिद्वितीयप्रहरान्तिमपलावच्छिन्ने यदि सङ्क्रमः स्यात्तदा प्रागपरं दिनद्वयं पुण्यमुक्तम्। उक्तं च वृद्धवसिष्ठेन—'पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु यदा सङ्क्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥' इति। ब्रह्मसिद्धान्तेऽपि—'यद्यर्द्धरात्र एव स्यात्सम्पूर्णे सङ्क्रमो रवेः। तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानादिकर्मसु ॥'

निशीथे अन्यदा वा मकरकर्कटयोर्विशेषः

'अथ मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इत्युक्तं, तत्र मकरकर्कटयोस्तु कथमित्यत आह—अथेति। अथानन्तरमुदयास्तात्सूर्योदयास्ताच्च पूर्वं परस्ताच्च यदि याम्ये सौम्यायने कर्कमकर-सङ्क्राती भवतस्तदा पूर्वपरदिने पुण्ये स्याताम्। यदि सूर्योदयात्पूर्वं कर्कसङ्क्रमणं स्यात्तदा पूर्वदिने एव पुण्यकालो न परदिने। तदाह वृद्धगार्ग्यः—'यदास्तमयवेलायां मकरे याति भास्करः। प्रदोषे चार्द्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥ इति। अर्द्धरात्रे तदूर्ध्वं

वा सङ्क्रान्तौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥' अस्तमयवेलाया इति पञ्चम्यन्तं पदम् । वाशब्द इवार्थे । भविष्योत्तरपुराणेऽपि—'कार्मुकन्तु परित्यज्य मृगं सङ्क्रमते रविः । प्रदोषे चार्द्धरात्रे वा कुर्यादहनि पूर्वतः ॥' इति । प्रदोषलक्षणं स्कन्दपुराणे—'त्रिमुहूर्त्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तङ्गते सति' इति ॥ ६ ॥

हिन्दी—यदि ठीक आधी रात के समय संक्रान्ति हो (अर्थात् राशिसन्धिबिन्दु, ग्रहबिम्ब का केन्द्रबिन्दु याम्योत्तरा रेखा में तीनों एक ही हो जाय) तो पूर्व-पर दोनों दिन पुण्यकाल होता है। यदि सूर्योदय से पहले याम्यायन (कर्क) संक्रान्ति हो तो पूर्व दिन के उत्तरार्ध में पुण्यकाल होता है एवं सूर्यास्त के बाद सौम्यायन संक्रान्ति लगे तो दूसरे दिन के पूर्वार्ध में संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है ॥ ६ ॥

विशेष—आधीरात के समय संक्रान्ति हो तो पूर्व-पर दोनों दिन अर्थात् पूर्व-दिन के उत्तरार्ध में और पर-दिन के पूर्वार्ध में संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है। यह सामान्य रूप से कहा गया है। आगे ८वें श्लोक में कहे गये विशेष वाक्य के अनुसार याम्यायन (कर्क) संक्रान्ति में पूर्व ही पुण्य-काल का समय लिखा है, इसलिये आधीरात के बाद से दूसरे सूर्योदय के पहले यदि याम्यायन (कर्क) संक्रान्ति होती है तो पूर्व-दिन में ही पुण्यकाल बतलाया गया है। एवं विशेष वचनानुसार सौम्यायन (मकर) संक्रान्ति में संक्रान्ति के अनन्तर पुण्यकाल होता है, अतः सूर्यास्त के बाद आधीरात के पहले यदि मकरसंक्रान्ति लगे तो पर-दिन में ही पुण्यकाल होता है। इस विशेष वचन के अनुसार ५वें श्लोक के उत्तरार्ध में कहे गये सामान्य वचन का परिहार हो जाता है। इसलिये समयमयूख में वैद्यायन का वचन है—

'अस्तं गते सवितरि मकरं याति भास्करः ।
प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥
अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा सङ्क्रान्तौ दक्षिणायने ।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥ इति ॥

अथार्द्धोदयास्तादिति वचनस्यापवादमिन्द्रवज्राछन्दसाऽऽह—

सन्ध्या त्रिनाडीप्रमितार्कबिम्बादर्द्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र ।
चेद्याम्यसौम्ये अयने क्रमात् स्तः पुण्यौ तदानीं परपूर्वघस्रौ ॥ ७ ॥

सन्ध्येति । अर्द्धोदितादर्द्धास्ताच्चाध ऊर्ध्वं च क्रमात् त्रिघटिकास्ताभिः प्रमिता सन्ध्या सन्ध्याकालः स्यात् । अर्द्धोदितादर्कबिम्बात्पूर्वं त्रिघटीप्रमिता प्रातःसन्ध्या, तदार्द्धास्तादर्कबिम्बादुपरि त्रिनाडीप्रमिता सायंसन्ध्येत्यर्थः । तदाह वराहः—'अर्द्धास्त-मितानुदितात्सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत् । तावत्सन्ध्याकालश्चिह्नैरेतैः फलं ब्रूयात् ॥' इति ।

द्वयोः सन्ध्ययोर्लक्षणान्तरे

तत्प्रमाणमाह नारदः—'अर्द्धास्तमनसन्ध्या हि घटिकात्रयसम्मिता । तथैवार्धो-दयात्प्रातर्घटिकात्रयसम्मिता ॥' इति । स्कन्दपुराणेऽपि—'उदयात्प्राक्तनी सन्ध्या घटि-कात्रयमुच्यते । सायंसन्ध्या त्रिघटिका ह्यस्तादुपरि भास्वतः ॥' इति । अत्र सन्ध्या-लक्षणे, अर्द्धास्तमितानुदितवाक्यस्य स्कन्दपुराणीयवाक्यस्य च व्रीहियववद्विकल्पः ।

सन्ध्ययोरयने पुण्यकालाः

सन्ध्यालक्षणप्रयोजनमाह—अत्रेति। अत्र सन्ध्यायां प्रातःसन्ध्यायां सायंसन्ध्यायां च क्रमाच्चेद्याम्यसौम्ये अयने दक्षिणोत्तरायणे तदानीं परपूर्वौ घस्रौ दिवसौ पुण्यौ। याम्यसौम्ये अयने इत्यत्र 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' इति प्रगृह्यत्वात् 'प्लुतप्रगृह्या अचि' इति प्रकृतिभावः। यदि प्रातःसन्ध्यायां दक्षिणायनप्रवृत्तिस्तदा सूर्योदयानन्तरं सम्पूर्णमहः पुण्यम्। तथा यदि सायंसन्ध्यायामुत्तरायणप्रवृत्तिस्तदा सूर्यास्तात्पूर्वं सम्पूर्णमहः पुण्यं स्यादित्यर्थः। यदाह नारदः—'सूर्यस्योदयसन्ध्यायां यदि याम्यायनं भवेत्। तदोदयादहः पुण्यं पूर्वाहः पूर्वतो यदि॥ सूर्यास्तमनसन्ध्यायां यदि सौम्यायनं भवेत्। तदहः पुण्यकालः स्यात्परतश्चोत्तरेऽहनि॥' इति।

कर्कसङ्क्रमे उदयसन्ध्यातः प्राक् मकरसङ्क्रमे सायंसन्ध्योत्तरं जाते पुण्यकालाः

अत्र यद्युदयसन्ध्यातः प्राक्कर्कसङ्क्रमस्तदा प्राग्दिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने। तथा यद्यस्तसन्ध्यामतिक्रम्य मकरसङ्क्रान्तिस्तदोत्तरदिन एव पुण्यकालो न तु प्राग्दिने इति निष्कृष्टोऽर्थः। अतो वृद्धगार्ग्यादिवाक्यनारदवाक्ययोः प्रदोषसन्ध्यापदोपादाने सामान्यविशेषभावोऽवगन्तव्यः। यत्तु हेमाद्रौ स्कन्दपुराणीयं वाक्यम्—'धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं ततः। पूर्वापरविभागेन रात्रौ सङ्क्रमते यदा॥ दिनान्ते पञ्च नाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः। उदये च तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥' इति। तदपि सन्ध्याविषयकमेवेत्याहुरभियुक्ताः, विषुवे तु यथाश्रुतमेवेति। अन्यदपि सन्ध्यालक्षणप्रयोजनं 'प्राक्सन्ध्यागर्जित' इत्यादिषु वक्ष्यति। ननु नायमयनपुण्यकालोक्त्युद्यमः सफलः, शास्त्रान्तरविरुद्धत्वात्। तथाहि—'अह्नि सङ्क्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम्। रात्रौ सङ्क्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः॥ अर्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्ध्वं सङ्क्रमणं चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम्। पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा सङ्क्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ॥' इति। वृद्धवसिष्ठेनायनव्यतिरिक्तेषु दशसु सङ्क्रमेषु रात्रिगतेषु 'या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः' इति कश्यपोक्तसामान्यवाक्याद्रात्रावेवानुष्ठानं प्रसक्तम् 'अहः सङ्क्रम' इत्यादिनाप्येतदेवानुष्ठानं विहितं तस्यापि पर्युदासः क्रियते 'मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इति। तस्मान्मकरकर्कटयोः सङ्क्रमणे रात्रावेवानुष्ठानं कर्त्तव्यमित्युक्तं भवति। अत एवाह याज्ञवल्क्यः—'राहुदर्शनसङ्क्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु। स्नानदानादिकं कार्यं निशि काम्यव्रतेषु च॥' इति। वसिष्ठोऽपि—'सुतजनने सङ्क्रान्तावुपरागे चन्द्रसूर्ययोर्नियतम्। रात्रावपि कर्त्तव्यं स्नानं दानं विशेषतो नृणाम्॥' इति। सुमन्तुश्च—'ग्रहणोद्वाहसङ्क्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च। श्रवणे चेतिहासस्य रात्रौ दानं प्रशस्यते॥' इति। एषु वाक्येषु सामान्यवाचिनोऽपि सङ्क्रान्तिपदस्य मकरकर्कटसङ्क्रान्तिपरत्वमवसीयते। यस्तु—'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः।' इति निषेधः स सङ्क्रान्त्यन्तरे व्यवतिष्ठते। अत एवोक्तं कश्यपेन—'स्नानं दानं ग्रहणवत्सौम्ययाम्यायनद्वये' इति। तस्मादयनसङ्क्रमे रात्रौ सत्यां तत्रैव स्नानदानाद्यनुष्ठातव्यमिति। अत्राहुः। शास्त्रद्वयेन तुल्यबलत्वाद्विकल्पसिद्धौ तत्तद्देशप्रसिद्धस्पष्टाचारेण व्यवस्था द्रष्टव्या। तत्र गुर्जरास्तु कश्यपादिवाक्यमभ्युपेत्य

रात्रावयनसम्भवे सति रात्रावेव स्नानदानादिकं कुर्वन्तीत्यर्थः। दाक्षिणात्यास्तु वृद्ध-गार्ग्यादिवाक्यमङ्गीकृत्य दिवस एव स्नानदानादि कुर्वन्तीत्यलमतिप्रसङ्गेन। यदा तु दिने कर्कमकरसङ्क्रमस्तदा क्रमेण पूर्वोत्तरघटिकानियममाह वृद्धवसिष्ठः—'अतीता-नागते पुण्ये द्वे तूदग्दक्षिणायने। त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः ॥' इति। उत्तरायणमतीतं सत्पुण्यं कर्कटायनमागामि पुण्यम्। तत्र कर्कटसङ्क्रान्तेः प्राक् त्रिंशद्-घटिकाः पुण्याः, मकरे तूत्तरा विंशतिघटिकाः पुण्या इत्यर्थः। अत्र वाक्ये यद्यपि दिन-पदानुपादानम्, तथापि यदास्तमयवेलायामिति रात्रिपरविशेषवाक्यालोचनादिदं दिनपरं प्रतिभाति। तथा सति केनापि हेतुना समीपघटीषु श्राद्धाद्यनुष्ठानासम्भवे परमावधित्वेन त्रिंशदाद्या घटिका अत्रानुज्ञायन्ते। यदा तु प्रतिवन्धस्तदा 'या याः सन्नि-हिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः' इति कश्यपोक्तेः समीपघटिकास्वेव श्राद्धादि विधेयम्। 'सन्निहितपरित्यागे कारणाभावात्' इति न्यायाच्च ॥ ७ ॥

हिन्दी—सूर्यविम्त्र के आधा उदय होने के पहले ३ घटी प्रातःसन्ध्या एवं सूर्यविम्व के आधा अस्त होने के वाद ३ घटी सायंसन्ध्या काल होता है। इसमें प्रातःसन्ध्या (सूर्यविम्वार्धोदय से ३ घटी पहले) में याम्यायन संक्रान्ति हो तो पर-दिन में पुण्यकाल होता है एवं सायंसन्ध्या (सूर्य-विम्वार्धास्त से ३ घटी वाद) में सौम्यायन संक्रान्ति हो तो पहले दिन पुण्यकाल होता है ॥ ७ ॥

विशेष—यहाँ उक्त विशेष वचन के अनुसार छठे श्लोक में कहे गये सामान्य वचनों का खण्डन कर दिया गया है।

अथ पूर्वापराः षोडश घटिकाः पुण्या इति पूर्वं सामान्येनोक्तम्। इदानीं विष्णुपदा-दिषु सङ्क्रमेषु विशेषमनुष्टुभाह—

याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यास्तुलाजयोः।
षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥ ८ ॥

याम्येति। याम्यायने कर्कसङ्क्रान्तौ तथा विष्णुपदे वृषसिंहवृश्चिककुम्भसङ्क्रान्तिषु सङ्क्रान्तिकालादाद्या नाड्यः प्रथमाः षोडश घटिकाः अतिपुण्यदाः स्नानदानादावनन्त-फलदा ज्ञेयाः, अग्रिमास्तु न तथेति निष्कृष्टोऽर्थः। तुलाजयोस्तुलामेषयोः मध्या उभयतः षोडश षोडश घटिकाः पुण्याः। अथवा षोडशैव घटिकाः पुण्याः। षडशीत्यानने मिथुन-कन्याधनुर्मीनसङ्क्रान्तिषु तथा सौम्ये मकरसङ्क्रान्तौ सङ्क्रान्तिकालात्परा अग्रिमाः षोडश घटिकाः अतिपुण्यदाः, प्रथमास्तु न तथेति निष्कृष्टोऽर्थः। यदाह श्रीपतिः—'याम्यायने विष्णुपदे तथादौ दानाद्यनन्तं विषुवे च मध्ये। वदन्त्यतीते षडशीतिवक्त्रे महर्षयः खल्वयने च सौम्ये ॥' तत्र कर्के प्रागेव मकरसङ्क्रान्तौ पश्चादेव पुण्यकाल इति तु प्राङ्निरणायि। विष्णुपदे तु अग्रिमादिमघटीनां पुण्यकाले तरतमभावः। 'पुण्यायां विष्णुपद्यायां प्राक्पश्चादपि षोडश' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः। विषुवे तु सामान्यनिर्णय एवेति केचित्। दीपिकाटीकाकारस्त्वेवमाह—'मेषे तुलायां च सङ्क्रान्तिकालात्पूर्व-मष्टौ घटिकाः पुण्याः परतश्चाष्टौ घटिकाः पुण्यकालः' इति। युक्तं चैतत्। विषुवे च मध्यपदोपादानान्मध्ये षोडश घटिकाः पुण्या इत्युच्यते। कस्मात्कालान्मध्यं इत्यपेक्षायां सङ्क्रान्तिकालादेवेत्यतः पूर्वमष्टौ पश्चाच्चाष्टौ घटिकाः पुण्या इत्यर्थः। यदुक्तं वृह-

स्पतिना—'वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश' इति । तुलामेषसङ्क्रान्तिकालात्प्राक् पश्चाच्च पञ्च पञ्च घट्यः पुण्या इति । यदप्युक्तमाद्यन्तसापेक्षत्वान्मध्यशब्दस्य गणितागतपुण्यकालघटिकानां मध्ये त्रिभागः स्थूलदृशा दशघटिकात्मको भवतीति । 'या याः सन्निहिता नाड्यः' इति कश्यपोक्तेः । षडशीतिमुखेऽप्याद्याग्रिमघटीनां पुण्यकाले तरतमभावः । यदपि 'षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिस्तुल्यास्तु नाडिकाः' इति वृद्धवसिष्ठवाक्यम्, तदपि प्राग्घटीषु प्रतिबन्धवशात् श्राद्धादेरसम्भवे सत्यन्तिमघटीषु श्राद्धादिक्रियाभ्यनुज्ञायाः परमावधिकालेयत्तार्थम् । इदं सर्वं दिनं सङ्क्रान्तिविषयं वेदितव्यम् । 'अह्नि सङ्क्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम्' इति सामान्यवाक्यस्य 'सौम्यायने विष्णुपदे' इत्यस्य च विशेषवाक्यस्यैकवाक्यता । अत एव 'रात्रौ सङ्क्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः' इति रात्रिपरविशेषस्य सत्त्वाच्च । एवं निर्णीते पुण्यकाले स्नानदानाद्यवश्यं विधेयमिति फलितोऽर्थः ।

पुण्यकाले स्नानदानाद्यकरणे दोषः

तत्र स्नानदानाद्यकुर्वतश्च प्रत्यवायमाह वसिष्ठः—

'इति सञ्चित्य विनिर्णयमादेष्टव्यं सदैव दैवज्ञैः ।
विषुवत्ययने ग्रहणे सङ्क्रान्तौ पुण्यदिवसेऽपि ॥
पितृतृप्तिं न करोति हि दत्वा शापं व्रजति तस्य पिता ।
आगतगतसमयेऽपि च करोति यद्दानजपहोमाद्यम् ॥
ऊषरवापितवीजं यद्वत्तद्वच्च निष्फलं भवति ।'

अयने अयनप्रवृत्त्याख्ये चलसङ्क्रमणस्य आगमसमये निर्णीते पुण्यकालातिक्रमसमये स्नानादिनिष्फलमित्यर्थः ।

सङ्क्रान्तिषु स्नानादिफलम्

सङ्क्रातिषु स्नानदानादेः फलमाह भारद्वाजः—'षडशीत्यां तु यद्दानं विषुवद्वितये तथा । दृश्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव दृश्यते ॥' वृद्धवसिष्ठोऽपि—'अयने कोटिपुण्यं च सहस्रं विषुवे फलम् । षडशीत्यां सहस्रं तु फलं विष्णुपदेषु च ॥' इत्यलमतिप्रसङ्गेन । इति सूर्यसङ्क्रान्तिपुण्यकालादिनिर्णयः ।

चन्द्रादिसङ्क्रमे पुण्यकालनिर्णयः

अथ नायं केवलं सूर्यसङ्क्रमण एव पुण्यकालः, किन्तु चन्द्रादीनां ग्रहाणां नक्षत्रसङ्क्रमे राशिसङ्क्रमे च पुण्यकालो भवति । सोऽपि सोपपत्तिकः प्रसङ्गतः प्रोच्यतेऽस्माभिः । यदाह जैमिनिः—

'नक्षत्रराश्यो रविसङ्क्रमे स्युरर्वाक्परत्रापि रसेन्दुनाड्यः ।
पुण्यस्तथेन्दोस्त्रिधरापलैर्युग्युगैकनाडी मुनिभिः शुभोक्ता ॥ १ ॥
नाड्यश्चतस्रः सपलाः कुजस्य बुधस्य तिस्रो मनवः पलानि ।
अब्ध्यब्धिनाड्यः पलसप्तयुक्ता गुरौ च शुक्रे सपलाश्चतस्रः ॥ २ ॥
द्विनागनाड्यः पलसप्तयुक्ताः शनैश्चरस्याभिहिताः सुपुण्याः ।
आद्यन्तमध्ये जपदानहोमं कुर्वन्नवाप्नोति सुरेन्द्रधाम ॥ ३ ॥

अस्यार्थः—सूर्यस्य नक्षत्रसङ्क्रमे राशिसङ्क्रमे च प्राक् परतश्च षोडश घटिकाः पुण्याः । एवं चन्द्रस्यैकघटी त्रयोदश पलानि, भौमस्य चतस्रो घटिका एकं पलम्, बुधस्य तिस्रो घटिकाश्चतुर्दश पलानि, गुरोश्चतुश्चत्वारिंशद् घटिकाः सप्त पलानि । शुक्रस्य चतस्रो घटिकाः पलमेकम् । शनेर्द्व्यशीतिघटिकाः सप्त पलानि चोभयतः पुण्यकाल इति । अत्रोपपत्तिः—'भानोर्गतिः स्वदशभागयुतार्द्धिता वा विम्वं विधोस्त्रिगुणिता युगशैल–७४भक्ता । तिथ्यद्रि–७१५हीनशशिभुक्तिरिषुद्वि–२५भक्ता नन्दाक्षि–२९युग्भवति वा विधुविम्बमेवम् ॥' इति सिद्धान्तशिरोमण्युक्तप्रकारेण रविचन्द्रयोर्मानकला आनेयाः । 'व्यङ्घ्रीषवः सचरणा ऋतवस्त्रिभागयुक्ताद्रयो नव च सत्रिलवेषवश्च । स्युर्मध्यमास्तनुकलाः क्षितिजादिकानां त्रिज्याशुकर्णविवरेण पृथग् विनिघ्न्यः ॥' इति तत्रैवोक्ता भौमादीनां मानकलाः । तत्र क्रमेण मानकलाः 'षष्टिघ्नबिम्वं ग्रहभुक्तिभक्तं सङ्क्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ये । रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्वसङ्क्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते ॥' इति भास्करोक्तदिशा संस्कृताः सङ्क्रान्तिनाड्यः स्युः ।

तत्र ग्रहभुक्तयस्तेनैवोक्ताः

'नन्दाक्षा भुजगा रवेः शशिगतिः खाङ्काद्रयोऽक्षाग्नय-
स्तुङ्गस्याङ्गकलाः कुवेदविकलाः पातस्य रामाभवाः ।
माहेयस्य महीगुणा रसकरा ज्ञस्येषु सिद्धा रदाः
पञ्चेज्यस्य सितस्य षण्णवमिता अष्टौ शनेर्द्वे कले ॥' इति ।

बुधशुक्रयोस्तु सङ्क्रान्तिघटिकानयने सूर्यगतिरेव हारः कल्प्यः । तद्गतितुल्यत्वात्तयोः । वासनाभाष्ये हि–'बुधशुक्रौ तु रवेरासन्नावेव कदाचिदग्रतः कदाचित्पृष्ठतस्तस्यानुचराविव सदा व्रजन्तौ दृश्येते । ततस्तयोरपि रविभगणतुल्या एव भगणा इत्युपपन्नम्' इति भास्करेणाभिहितत्वात् । पठ्यमानानुगतिस्तच्छीघ्रयोः शीघ्रफलानयनार्थं वासना सिद्धजीर्णैः कल्पिता । तदेवं ग्रहगतय इमास्त्रिप्रकारेण साधिताः पुण्यकालघटिकाः । सूर्यस्य यथा त्रिंशद् घटिकाः, एवं चन्द्रस्य द्वे घटिके षड्विंशतिः पलानि, भौमस्य नव घटिकाश्चत्वारिंशत् पलानि, बुधस्य षट् घटिका, विंशतिः पलानि, गुरोरष्टाशीतिर्घट्यः, एवं शुक्रस्य नव घटिका, अष्टौ पलानि, शनेः षष्ट्यधिकं शतं घटिकाः, पूर्वापरकालौ मिलित्वा पुण्यकाल इत्यर्थः । यथात्र वासना प्रागुक्ता । एता अर्द्धा नाड्यः प्राक्परतश्च पुण्याः । अत्र गणितागतघटीपलेषु लिखितजैमिनिवाक्ये च क्वचित्किञ्चित्पलभेदो घटिकाभेदश्च सगतिस्पष्टकृतिवशतः । युक्तं चैतत् । आकाशे हि वेधादिना स्पष्टा एव खगा दृश्यन्ते, न मध्यमाः । 'दिनद्वयस्पष्टखगान्तरालकालः स्फुटस्तु स्फुटभुक्तिविम्वैः' इति स्पष्टगत्यैव विम्बसङ्क्रान्तिघट्यानयनमुचितम् । उक्तं च केशवार्केण—'कुजादिकानामपि विम्वलिप्ताः षष्ट्या गुणाः स्वस्वजवेन भक्ताः । नाड्यादिकः सङ्क्रमणान्तरालकालः स्फुटस्तु स्फुटभुक्तिबिम्बैः ॥' इति । अपिशब्दात्सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणम् । तथा सति मध्यमापेक्षया स्पष्टगतिबिम्बयोरुपचयापचयाभ्यां साम्यैस्तत्तद्घटिकानामप्युपचयाः साम्यातिक्रमेणापतन्ति । तेषां चानियतत्वात्पद्ये उपनिबन्धायोगात् जीर्णैर्नियतमध्यगत्या सूर्यादीनां ग्रहाणां पुण्यकालघटीरानीयोपनिबन्धः कृतः ।

सर्वग्रहसङ्क्रान्तिषु पुण्यकालनिर्णयसंग्रहः, मतान्तरखण्डनं च

अत्र मत्कृतं पद्यम्—'नाड्यो रामगुणा ३३ रवेरथ विधोः षड्दोःपलैर्युग्द्वयं २६ भौमस्याब्धिपलैर्युता नव ४९ विदो युक्ताः पलैः खाश्विभिः २० । षण्नाड्योऽ-६-ष्टगजा ८८ गुरोरथ भृगोर्नन्दाः ९ पलैरष्टभिः पुण्याः स्युः खनृपाः शने–१६०रुभयतो राश्य-क्षयोः सङ्क्रमे ॥' अतो जैमिनिवाक्ये 'सार्धाश्चतस्रः पलसप्तयुक्ता गुरोः' इति पाठो माधवादिभिरपाठि, तथा हेमाद्रिणापि 'द्विनागनाड्यः' इति पदे नागा अष्टौ द्विरावृत्ता नागा द्विनागाः षोडश नाडिकाः शनैश्चरसङ्क्रान्तौ पुण्यकाल इति यद् व्याख्यातं तदु-भयमपाकृतं भवति । तथा च रामचन्द्राचार्या अपि कालनिर्णयदीपिकायां हेमाद्र्यादि-मूलकममुमर्थं स्वपद्येनोपनिबध्नन्ति । अतश्चिन्त्योक्तयो ज्ञेयाः । तस्मात्सर्वग्रहाणां राशि-नक्षत्रयोः सङ्क्रान्तिषु पुण्यकालोऽप्यस्ति । भास्करोऽपि—'रवेस्तु ताः पुण्यतमा' इति वदंश्चन्द्रादिसङ्क्रान्तिषु नाड्यः पुण्या इत्यसूचयत् । 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इति पाणिनिवचनात् । 'ग्रहः स्वसङ्क्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते' इति सूर्यादिसङ्क्रान्ति-साधारणम् । तत्र सकलसङ्क्रान्तिषु दिनरात्रिविष्णुपदादिभेदेन सूर्यसङ्क्रमणवन्निर्णयो ध्येयः । एतत्सङ्क्रान्तिमान्यता हि गुर्जरदेशेऽस्तीत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तेन । इति सकल-ग्रहसङ्क्रान्तिपुण्यकालनिर्णयः ॥ ८ ॥

हिन्दी—याम्यायन (कर्क) संक्रान्ति और विष्णुपद (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ राशियों की) संक्रान्तियों का पुण्यकाल संक्रान्ति लगने के पहले होता है। तुला, मेष संक्रान्ति का पुण्यकाल मध्य में (संक्रान्तिकाल से पहले और बाद–दोनों समय में) तथा षडशीत्यानन (३।६।९।१२ राशियों) और सौम्यायन (मकर) राशि की संक्रान्तियों का पुण्यकाल बाद (संक्रान्ति लगने के बाद) में होता है ॥ ८ ॥

अथ रविरयनांशसङ्क्रान्तिकालमभिधायेदानीं सायनांशसङ्क्रान्तिषु पुण्यकाल-मुपजातिकयाऽऽह—

तथायनांशाः खरसाहताश्च स्पष्टार्कगत्या विहृता दिनाद्यैः ।
मेषादितः प्राक्चलसङ्क्रमाः स्युर्दाने जपादौ बहुपुण्यदास्ते ॥ ९ ॥

तथायनांशा इति । यथा राशिसङ्क्रमाः बहुपुण्यदास्तथा चलसङ्क्रमा अपीति व्यवहितस्तथाशब्दः । अयनांशाः षष्ट्या गुण्याः स्पष्टसूर्यगत्या विहृता लब्धैः दिनाद्यैः दिनघटीपलैः कृत्वा मेषादिद्वादशराशिसङ्क्रान्तिकालात्प्राक् चलसङ्क्रमाः स्युः । ते चलसङ्क्रमा दाने ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणादाने जपादौ जपश्राद्धहोमादौ बहुपुण्यदा भवन्ति । तदुक्तं वसिष्ठसिद्धान्ते—'चलसंस्कृततिग्मांशोः सङ्क्रमो यः सुसङ्क्रमः । अजागलस्तन इव राशिसङ्क्रान्तिरुच्यते ॥' इति । पुलस्त्यः—'अयनांशयुतो भानुर्गोले चरति सर्वदा । अमुख्या राशिसङ्क्रान्तिस्तुल्यकालविधिस्तयोः ॥ स्नानदानजपश्राद्धव्रत-होमादिकर्मभिः । सुकृतं चलसङ्क्रान्तावक्षयं पुरुषोऽश्नुते ॥' इति । जाबालिरपि—'सङ्क्रान्तिषु यथाकालस्तदीयेऽप्ययने तथा । अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः पराः ॥' इति । अयने चलसङ्क्रमे अत्र चलसङ्क्रमाख्ये मकरायणे पूर्वा विंशतिघटिकाः । मकरसङ्क्रान्तौ तु परा विंशतिघटिकाः पुण्यकालः । मकरव्यतिरिक्तैकादशचल-

सङ्क्रामेषु तत्तत्सङ्क्रमवत्पुण्यकालो ज्ञेय इत्यर्थ इति माधवो व्याख्यत् । अथायनांशानयनं तु सूर्यसिद्धान्ते—

'त्रिंशत्कृत्वो युगे भानां चक्रं प्राक्परिलम्बते । तद् गणाद् भूदिनैर्भक्ताद्द्युगणाद्यदवाप्यते ॥
तद् दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः ।
तत्संस्कृताद् गतात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥
स्फुटं तत्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्द्वये । प्राक्चक्रं चलितं हीनं छायार्कात्करणागते ॥
अन्तरांशैरथावृत्त्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिके ।' इति च ।

साम्प्रतं सार्धषोडशायनांशा धनं गताः सन्ति । छायार्कात्करणागतस्य सूर्यस्याल्पत्वात् । अत एव प्रागित्युक्तं ग्रन्थकर्त्रा । अत्र प्रागित्युपलक्षणम् । कदाचित्सङ्क्रान्तिकालात्परतोऽप्ययनांशवशेन च सङ्क्रमसंभवात् । तथा च 'पश्चाच्छेषैस्तथाधिक' इत्युक्तम् । वेदाङ्गज्योतिषेऽपि—'प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक् । सार्पार्द्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा ॥' इति । तत्र मेषादिसङ्क्रान्तिकालस्य सौरसावनघटिकात्मकस्य अयनांशानां च सौम्यायनतुल्यजातीयत्वाद्योगवियोगौ न स्तः, इत्ययनांशादीनां करणायानुपातः । यदि सूर्यस्पष्टगतिकलाभिः षष्टिघटिकात्मकं दिनं लभ्यते तदायनांशैः किमिति । तत्रायनांशानां षष्टिर्गुणकः सूर्यस्पष्टगतिर्भाजक इति उपपन्नम् । लब्धानि सौरसावनदिनानि घटीपलानि । अतस्तुल्यजात्योर्योगो वियोगो वा कार्यः ।

ननु चैकस्यैव सूर्यस्यैकस्मिन्नेव राशौ राशिसङ्क्रमणं चलसङ्क्रमणं च कथं भवति? कुतः, स्वकक्षास्थितांशभागस्य द्वादशधा विभक्तस्य राशिरिति संज्ञा, तत्र रविमण्डलस्य तत्तद्राश्यादिप्रदेशस्य स्पर्शो राशिसङ्क्रमणमित्युच्यते । तस्मिन्नेव राशौ चलसङ्क्रमस्तु कीदृश इति चेत्, शृणु । ईश्वरेच्छालोकादृष्टवशतस्तद्राश्यादिभागस्य सूर्यतेजःसम्पर्कश्चलसङ्क्रमो मण्डलमध्यसम्पर्कश्च राशिसङ्क्रम इति विवेकः । तद्यथा रथ्यां प्राक्पश्चाच्चानीयमानस्य दीपस्याग्रे दीपप्रभा यस्मिन् प्रदेशे गच्छति तस्मिन्नेव प्रदेशे क्षणान्तरे दीपोऽपि गच्छति । एवं सर्वेषामपि ग्रहाणां चलसङ्क्रमा द्रष्टव्याः । एवं चलसङ्क्रमस्य मुख्यत्वमुक्तं शिरोमणिसिद्धान्ते—'दिनरात्रिप्रमाणानां निर्णयो नभसङ्क्रमात् । यतः सकलकर्माणि पुण्यतश्चलसङ्क्रमः ॥'

अथ सायनसङ्क्रमस्य सर्वत्र नोपयोगः

नन्वेवमयनसङ्क्रमस्य मुख्यत्वे तेन मानेन पञ्चाङ्गगणना स्यात् । चन्द्रादीनामप्ययनचलनदर्शनात् । न च सायनांशाभ्यां निरयणांशाभ्यां वा सूर्यचन्द्रमोभ्यां तिथेस्तुल्यत्वादस्तु पञ्चाङ्गगणनेति वाच्यम् । अश्विन्यादिभानां विष्कम्भादियोगानां च विसंवादात् । किञ्च सायनसङ्क्रमरहितस्य चान्द्रमासस्याधिमासत्वव्यवहारप्रसङ्गः । तथा तादृक्सङ्क्रान्तिद्वययुतस्य क्षयमासत्वव्यवहारप्रसङ्गः, विवाहादौ च सौरमासगणनाप्यनेनापि मानेन स्यादिति चेत्, उच्यते । सायनसङ्क्रमस्तु पुण्यकालार्थमेवोपयुज्यते न सर्वत्र स्नानदानजपश्राद्ध इति परिगणितविषयकपुलस्त्यवाक्यालोचनात् । तेन पञ्चाङ्गगणना न्यूनाधिमाससौरमासादिकमप्यनेन मानेन भवति । तथा सति यात्रादिमुहूर्तेषु भरणीव्यतीपातादिदुष्टयोगानां गुरुपुष्यादिदुष्टयोगानां च व्यवहारो निरयणे-

नैवोपपद्यते, न सायनेन । सायनगणनया सर्वथा ग्रहणविसंवादः । तद्यथा षोडशोत्तर-पञ्चदश—१५१६ शत मिते शालिवाहनशककाले वैशाखशुक्लपूर्णिमायां पञ्चत्रिंशन्नाडी-मितायामिन्दूपराग उपलब्धः । तत्र चन्द्रः ६।२६।२८ राहुः ११।५८ । अत्र निरयणगण-नया शराङ्गुलानि १२, मानैक्यखण्डम् २०, ग्रासाङ्गुलानि ८ । यद्यत्रायनांशाश्चन्द्रे योजयित्वा शर आनीयेत तदा शराङ्गुलादि ३० अस्य मानैक्यखण्डाधिक्याद् ग्रहणं नायातीति सर्वजनप्रत्यक्षविसंवादः । सायनगणनया त्वयोग्येऽपि काले ग्रहणोपलम्भः स्यात् । अन्यच्च स्पष्टीकरणेन साधितो भौमादिर्ग्रहो यन्नक्षत्रे गणितेनागतस्तन्नक्षत्र-समीप एवोपलभ्यते प्रत्यक्षतः । सायनत्वे हि ग्रहः कदाचिदेकनक्षत्रे द्व्यान्तरे वा प्रली-यते । सूर्यचन्द्रयोस्तु तेजोबाहुल्यान्नक्षत्रतेजःपरिभवात्तन्नक्षत्रसन्निधौ उपलम्भाभावो यद्यपि तथापि कदाचित्क्षीणचन्द्रस्याप्युपालम्भो दृश्यते । एवं संहितासु मीनशनैश्च-रादिविषयकदुष्टफलानि चैकराश्यवस्थितग्रहयोगफलानि च निरयणेनैव । तथा वृद्ध-वसिष्ठसंहितायाम्—'षट्पौष्णभाद् द्वादश रौद्रधिष्ण्यात्सुराधिसद्मानि नव क्रमेण । पूर्वार्धमध्यापरमात्तदूर्ध्वं भुङ्क्तेऽखिलव्योमचरास्तथैव ॥' इति ग्रहाणां पूर्वार्द्धमध्या-परभागयोग्यत्वमपि निरयणेनैवोपलभ्यते । तस्मान्निरयणगणनयैव सर्वोऽपि व्यवहारो युक्तः । ननु सायनगणना दत्ततिलाञ्जलिरिति चेत्, उच्यते । सायनगणना हि नियतविषया । उक्तम्—'अयनांशाः प्रदातव्या लग्ने क्रान्तौ चरागमे । सत्रिभे वित्रिभे पाते तथा दृक्कर्मपातयोः ॥' इति । सूर्यसिद्धान्तेऽपि—'तत्संस्कृताद् ग्रहात्क्रान्तिच्छाया-चरदलादिकम् । स्फुटं तत्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्द्वये ॥' इति । आदिशब्देन लग्नम् । अतोऽयनांशानां वासनासिद्धनियतविषयत्वाद् द्वयोरपि मानयोरसङ्कीर्णो व्यवहार इति सर्वमनाकुलम् । पुण्यकालस्तूभयविधसङ्क्रमेऽपि ज्ञेयः । पूर्वलिखितवसिष्ठादिवाक्य-स्वरसात् । यत्तु वसिष्ठसिद्धान्ते—'पुण्यदां राशिसङ्क्रान्तिं केचिदाहुर्मनीषिणः । नैत-न्मम मतं यस्मान्न स्पृशेत्क्रान्तिकक्षया ॥' इति । तदयनसङ्क्रमपुण्यकालातिस्तुतिपरं न तु राशिसङ्क्रान्तिपुण्यकालनिराकरणार्थम् । अन्यथा—'दिनपतिसङ्क्रमात्प्राक् षोडश नाड्यश्च पुण्यकालः सः । परतः षोडश नाड्यः सर्वत्र स्नानदानकार्येषु ॥' इति स्वसंहितोक्तराशिसङ्क्रमणपुण्यकालप्रतिपादकवचनस्यानेन सह विरोधो दुष्परि-हारः स्यादित्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ९ ॥

हिन्दी—अयन के अंशों को ६० से गुणा कर के सूर्य की स्पष्टगति कला से भाग देने पर लब्धि दिनादि (दिन-घटी-पल) आती है । मेषादि राशियों की संक्रान्ति के समय से उतने दिन पहले मेषादि की चलसंक्रान्ति होती है । इस चलसंक्रान्ति (अयनसंक्राति) में भी दान देना, जप करना, हवन करना, श्राद्ध करना आदि सत्कर्म बहुत पुण्यदायक होते हैं ॥ ९ ॥

विशेष—अयनांश के विषय में आचार्यों के अनेक मतभेद हैं ।

ग्रहलाघवकार के मत में ४४४ शक में अयनांशारम्भ और ६०" उसकी वार्षिक गति मानी गई है ।

मकरन्दकार ने ४२१ शक में अयनांशाभाव और ५४" वार्षिक गति कही है ।

केतकी मे १८०० शक में २२°।८'।३३" अयनांश और ५०" वार्षिक गति वर्णित है ।

मैंने मकरन्दीय अयनांश स्पष्ट करने की जो विधि अपने जन्मपत्रदीपक में लिखी है, उसी को यहाँ उद्धृत करता हूँ—

'भूनेत्रवेदोनशकस्त्रिघ्नः खाभ्राश्विभिर्हृतः ।
वर्षारम्भेऽयनांशाः स्युः स्फुटा गणितकोविदः ॥
भागीकृतो भगो भक्तः खाभ्रवेदैः फलं भवेत् ।
कलाद्यं तेन संयुक्ताः स्फुटास्तात्कालिकाः स्मृताः ॥'

अयनांश साधन का उदाहरण—

श्रीविक्रम सं० २०२७ शक १८९२ आषाढ शुक्ल १३ शुक्रवार सूर्य ३।०।४४" को अयनांश साधन करना है तो इष्टशक में ४२१ घटा कर शेष को ३ से गुणा करके २०० से भाग देने पर लब्ध वर्षारम्भकालीन अयनांश $= \frac{(१८९२-४२१)३}{२००} = \frac{१४७१+३}{२००} = \frac{४४१३}{२००} =$ २२°।३'।५४" हुआ, तात्कालिक अयनांश साधनार्थ सूर्य की राश्यादि का ३।०।४४ का अंश बनाकर ४०० का भाग देने पर लब्धि कलादि $= \frac{३।०।४४}{४००} = \frac{९०'।४४''}{४००} =$ ०'।१४" सूर्यराशि सम्बन्धी अयन कला भाग हुआ, उसको पूर्वानीत अयनांश में यथास्थान जोड़ देने पर २२°।३'।५४"+०'।१४"=२२°।४'।८" अभीष्ट अयनांश हो गया।

सायनसंक्रान्ति साधन का उदाहरण—

अयनांश २२°।४'।८" को ६० से गुणा कर के (२२।४'।८") ६०=१३२४।८'।०" गुणनफल में स्पष्टार्क ५७'।० गति से भाग देने पर लब्धि दिनादि २३।१७।५४ हुई। अतः सूर्य की संक्रान्तिकाल गुरुवार ४५।१२।से २३।१७।५४ दिनादि पहले कर्क की अयनसंक्रान्ति होगी।

स्पष्टगति के प्रतिदिन विलक्षण होने से अनुपात में भी विभिन्नता आ जाने के कारण लब्धिदिनादि में भी स्थूलता आ जाती है, अतः चलसंक्रान्ति का समय सूक्ष्म नहीं, स्थूल ही है।

सूक्ष्मायनसंक्रान्ति जानने का प्रकार यह है कि स्पष्टायनांश जितना हो उसको ३०° में घटाने से जो अंशादि शेष रहे, उसका और पञ्चाङ्गस्थ स्फुटार्क के अंशादि का अन्तर निकाल ले, इस अन्तरकला को ६० से गुणा कर उस दिन की सूर्य की स्पष्टगतिकला से भाग देने पर जो लब्धिकलादि आवे, उसको स्पष्ट सूर्य में जोड़ने वा घटाने से अयनसंक्रान्ति का काल ज्ञात हो जाता है। यथा पं० हृषीकेशजी के पंचांगानुसार—उक्त मास में स्पष्टायनांश—२३।२५।४६ को ३०° में घटाने पर शेष ३०°—(२३°।२५'।४६")=६°।३४'।१४" बचा, इसमें उस दिन के औदयिकार्क के अंश को घटाया (६।३४।१४)—(६।३१।५१)=२'।२३" तो कलादि शेष आया। इसको ६० से गुणा कर उस दिन की स्फुटार्क दैनिक गति ५६'।५६" से भाग दिया तो लब्धि घटयादि $= \frac{(२'।२३'')६०'}{५६'।५६''} = \frac{१४३''\times६०}{३४१६''} =$ २।३१ स्वल्पान्तर से हुई। अतः उसी सूर्योदय के बाद कर्क की अयनसंक्रान्ति हुई (पंचाङ्ग देखिए)।

अथ सङ्क्रान्त्युपयोगित्वाज्जघन्यबृहत्समनक्षत्राण्युपजातिकयाऽऽह—

समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमघात्रिपूर्वास्त्रपभं बृहत्स्यात् ।
ध्रुवद्विदैवादितिभं जघन्यं सार्पाम्बुपार्द्रानिलशाक्रयाम्यम् ॥ १० ॥
जघन्यभे सङ्क्रमणे मुहूर्ताः शरेन्दवो १५ बाणकृता ४५ बृहत्सु ।
खराम ३० सङ्ख्याः समभे महर्घसमर्घसाम्यं विधुदर्शनेऽपि ॥ ११ ॥

सममिति । मृदूनि मृगरेवत्यनुराधाचित्राः, क्षिप्राणि अश्विन्यभिजित्पुष्यहस्ताः, वसुर्धनिष्ठा, श्रवः श्रवणम्, अग्निः कृत्तिका, मघा प्रसिद्धा, त्रिपूर्वाः पूर्वाफाल्गुनी-पूर्वाषाढा-पूर्वाभाद्रपदाः, अस्रपो राक्षसः 'राक्षसः कौणपः क्रव्यात् क्रव्यादोऽस्रप आशरः ।' इत्यमरः । तस्य भं मूलम्, अत्र समाहारद्वन्द्वः । एतानि पञ्चदश भानि समसंज्ञानि, ध्रुवाणि रोहिणी, त्र्युत्तराः, द्विदैवं विशाखा, अदितिभं पुनर्वसुः, एतानि षड्भानि, बृहत्संज्ञानि । सार्पमाश्लेषा, अम्बुपः शततारका, आर्द्रा प्रसिद्धाः अनिलः स्वाती, शाक्रं ज्येष्ठा, याम्यं भरणी एतानि षड्भानि जघन्यसंज्ञानि । उक्तञ्च नारदेन—'तारा जघन्याः सार्पेन्द्रा वातार्द्रान्तिकतोयपाः । ध्रुवादितिद्विदैवत्यं बृहत्ताराः पराः समाः ।।' इति । वसिष्ठेनापि—जघन्यधिष्ण्यानि जलेशसर्प्परौद्रेन्द्रयाम्यानिलदैवतानि । अध्यर्द्ध-धिष्ण्यान्यदितिद्विदेवस्थिराणि शेषर्क्षसमाह्वयानि ।।' इति ।। १० ।।

जघन्यभ इति । जघन्यनक्षत्रे यदि सङ्क्रमणं तदा शरेन्दवः पञ्चदश मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । बृहन्नक्षत्रे सङ्क्रमणे सति बाणकृताः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । समनक्षत्रे सङ्क्रमणे सति खरामसङ्ख्यास्त्रिंशन्मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । उक्तञ्च नारदेन—'तासां प्रमाणं घटिकास्त्रिंशन्नवतिषष्टयः' इति । अत एव त्रिंशद् घटिकाः पञ्चदश मुहूर्त्ता नवति घटिकाः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः षष्टिघटिकास्त्रिंशन्मुहूर्ताः स्युरित्यर्थः । अस्य फलमुच्यते । महर्घसमर्घसाम्यमिति । यदा पञ्चदश मुहूर्त्ताः सङ्क्रान्तिस्तदा सर्वमन्नं महर्घं दुर्लभं भवति । यदा पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः सङ्क्रान्तिस्तदा समर्घं सुलभमन्नम् । यदा तु त्रिंशन्मुहूर्त्ताः सङ्क्रान्तिस्तदा साम्यं न महर्घं समर्घमपि न किन्तु यथास्थितमित्यर्थः । इदं तु मुहूर्त्तानां न्यूनाधिकसमभावाज्जायते । उक्तं च संवित्प्रकाशे—'मुहूर्त्ताः पञ्च-भूतुल्या जघन्यानां पराभिधाः । बृहतां पञ्चवेदास्ते समानां ते खवह्नयः ।। पञ्चेन्दुषु मुहूर्तेषु दुर्भिक्षं रविसङ्क्रमे । पञ्चाब्धिषु समर्घं स्यात् त्रिंशत्सु समता मता ।।' इति । विधुदर्शनेऽपीति । चन्द्रदर्शनेऽप्येवमेव फलं वाच्यम् । अयमर्थः । यदि जघन्यनक्षत्रे चन्द्रोदयस्तदा महर्घम् । बृहन्नक्षत्रे यदि चन्द्रोदयस्तदा समर्घम् । समनक्षत्रे चन्द्रोदयस्तदा साम्यमन्नस्य । उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'बृहत्सु धान्यं कुरुते समर्घं जघन्य-धिष्ण्याभ्युदितो महर्घम् । समेषु धिष्ण्येषु समं हिमांशुर्वदन्त्यसन्दिग्धमिदं महान्तः ।' वसिष्ठोऽपि—'ज्ञात्वैवमेवं मणिजीवधातुमूलोर्णकर्पूररसादिकानाम् । अर्घं वदेज्ज्योतिषिकः प्रजानां समर्घवस्तूत्तमसङ्ग्रहार्थम् ।।' इति ।। ११ ।।

हिन्दी—मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), धनिष्ठा, श्रवण, कृत्तिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा तथा मूल ये १५ नक्षत्र समसंज्ञक हैं ।

ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), विशाखा एवं पुनर्वसु—ये ६ नक्षत्र बृहत्संज्ञक हैं ।

आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और भरणी—ये ६ नक्षत्र जघन्यसंज्ञक हैं ।

जघन्यसंज्ञक नक्षत्रों में सूर्य की संक्रान्ति लगे तो १५ मुहूर्त, बृहत्संज्ञक नक्षत्रों में संक्रान्ति हो तो ४५ मुहूर्त एवं समसंज्ञक नक्षत्रों में संक्रान्ति हो तो ३० मुहूर्त होते हैं । १५ मुहूर्त वाले नक्षत्रों में जो संक्रान्ति हो, उसमें सौरमास-पर्यन्त अन्न, घी, वस्त्र आदि उपभोग की वस्तुओं

का मूल्य मँहगा रहता है। ४५ मुहूर्त वाले नक्षत्रों में यदि संक्रान्ति लगती है तो उस मास में वस्तुओं का भाव सस्ता रहता है एवं ३० मुहूर्त वाली संक्रान्ति में वस्तुओं का भाव समान होता है (न घटता है, न बढ़ता है)। इसी प्रकार चन्द्रदर्शन में भी विचार करना चाहिए।

विशेष—इन श्लोकों में जघन्यादि संज्ञा कहने का तात्पर्य यह है कि भचक्र ३६०° में बराबर २७ भाग करने से १३°।२०'=८००' का १।१ भाग समान रूप से होता है। यह स्वल्पान्तर से चन्द्रगति ८००' के समान ही भोग आता है और नक्षत्र-ताराओं से जो नक्षत्रों का स्वरूप है, उसकी सार्थकता होती है। इसलिये मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, धनिष्ठा, श्रवण, कृत्तिका, मघा, तीनों पूर्वा और मूल इन १५ नक्षत्रों की समसंज्ञा कही गई है। तीनों उत्तरा, रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु इन ६ नक्षत्रों का स्वरूप जिन ताराओं से बनता है, उनकी स्थिति १२००' कला के आसन्न और आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, भरणी की आकृति ४००' में ही बन जाती है, अतः क्रम से बृहत्संज्ञा एवं जघन्यसंज्ञा दी गई हैं और सौकर्य के लिये सब नक्षत्रों का मान भी समान मान लिया गया है। यहाँ कुछ स्थूलता स्वीकार कर ली गई है, अतः श्रीभास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है—

'स्थूलं कृतं भानयनं यदेतज्ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः ॥ ७१ ॥
सूक्ष्मं प्रवक्ष्येऽथ मुनिप्रणीतं विवाहयात्रादिफलप्रसिद्ध्यै।
अध्यर्धभोगानि (११८५।५२) षडत्र संज्ञा प्रोचुर्विशाखादितिभध्रुवाणि ॥ ७२ ॥
षडर्धभोगानि (३९५।१७) च भोगिरुद्रवातान्तकेन्द्राधिपवारुणानि।
शेषाण्यतः पञ्चदशैकभोगान्युक्तो भभोगः शशिमध्यभुक्तिः ॥ ७३ ॥

समसंज्ञक नक्षत्रों का भोग चन्द्रगति के समान होता है, चन्द्रमा की मध्यगति ७९०'।३५" उक्त १५ नक्षत्रों का भोग चन्द्रगति के समान होता है, अतः उन सबका मान (७९०।३५) १५ =११८५८।४५। ६ नक्षत्रों का मान $\frac{\text{चन्द्रग}}{२}$ × ६ = $\frac{(\text{७९०।३५})\ ३}{२}$ × ६ = (११८५।५२) ६ = ७११५।१२। एवं अर्धभोग ६ नक्षत्र है, अतः उनका भोगमान = (३९५।१७।३०) ६ = २३७१।४५ हुआ। सबके योग (११८५८'।४५" + ७११५'।१२" = २३७१'।४५" = २१३४५'।४२" को इसकी भचक्रकला २१६०० में घटाने पर शेष = २१६०० − २१३४५।४२ = २५४।१८ इतना बचा, इसी को अभिजित् का भोग कहते हैं।

आकाशमण्डल को देखने से पूर्व आचार्यों को जो ज्ञान हुआ, उसी के आधार पर ये संज्ञाएँ (और नक्षत्र भोग) कही गयीं हैं। परन्तु बाद में नक्षत्रानयन में सौकर्य के लिये समान रूप से सब नक्षत्रों का मान समान मान लिया गया है।

अथ प्रसङ्गात्कर्कसङ्क्रान्तावब्दविशोपकाननुष्टुभाह—

अर्कादिवारे सङ्क्रान्तौ कर्कस्याब्दविशोपकाः।
दिशो नखा गजाः सूर्या धृत्योऽष्टादश सायकाः ॥ १२ ॥

अर्कादिवारे इति। कर्कसङ्क्रान्तौ सूर्यादिवारे सत्यामेते वक्ष्यमाणा अब्दविशोपका ज्ञेयाः। तद्यथा रविवारे दश, सोमवारे विंशतिः, भौमेऽष्टौ, बुधे द्वादश, गुरौ धृत्योऽष्टादश, शुक्रेऽप्यष्टादश, शनिवारे कर्कसङ्क्रान्तौ सत्यामब्दविशोपकाः सायकाः पञ्चेत्यर्थः ॥ १२ ॥

हिन्दी—कर्क की संक्रान्ति यदि रविवार को हो तो १०, सोमवार को हो तो २०, मंगलवार को हो तो ७, बुधवार को हो तो १२, बृहस्पतिवार को हो तो १८, शुक्रवार को हो तो १८ और शनिवार को हो तो ५ विंशोपक बल (उस वर्ष में) होता है ॥ १२ ॥

विशेष—समस्त विंशोपक बल २० माना गया है। यह आधे १० से अधिक हो तो शुभ, कम हो तो अशुभ माना जाता है। अतः सोम, बुध, गुरु, शुक्रवारों में कर्कसंक्रान्ति हो तो वर्ष में सुभिक्ष (अन्न उपज अच्छी, वर्षा अच्छी, जनता सुखी), अन्य वारों (मंगल, शनि) में दुर्भिक्ष और सूर्यवार को कर्कसंक्रान्ति हो तो समता रहती है।

अथ कीदृशस्य रवेः सङ्क्रमो जातस्तत्फलमिन्द्रवज्रयाऽऽह—

स्यात्तैतिले नागचतुष्पदे रविः सुप्तो निविष्टस्तु गरादिपञ्चके।
किंस्तुघ्न ऊर्ध्वः शकुनौ सकौलवे नेष्ट समः श्रेष्ठ इहार्घवर्षणे ॥ १३ ॥

स्यादिति। करणानि व्याख्याने मयोक्तानि। तत्र रविः तैतिल-नाग-चतुष्पदाख्य-करणेषु सुप्तः सन् सङ्क्रमितः स्यात्। गरादिपञ्चके गर-वणिज-भद्रा-बववालवाख्य-करणेषु निविष्टः उपविष्टः सन् सङ्क्रमितः स्यात्। किंस्तुघ्नशकुनिकौलवाख्यकरणेषु ऊर्ध्वमूर्ध्वस्थितः सन् सङ्क्रमितः स्यात्। इह करणाधिकरणसङ्क्रान्तौ रविः अर्घवर्षणे अर्घे मूल्ये वर्षणे वृष्टौ अनयोरुपलक्षणत्वाद्धान्येऽपि क्रमान्नेष्टः समः श्रेष्ठश्च स्यात्। अयमर्थः—सुप्तरविसङ्क्रमोऽर्घवर्षणधान्येष्वनिष्टः महर्घवृष्टचभावाद्धान्याभावकारको भवति। एवं निविष्टरविसङ्क्रमोऽर्घवर्षणधान्येष्वनिष्टः समो न शुभो नाप्यशुभः। तथोर्ध्वरविसङ्क्रमोऽर्घवर्षणधान्येषु श्रेष्ठः। 'समर्घवृष्टिबाहुल्यकारक' इति। उक्तञ्च नारदेन—

'निविष्टो वणिजे विष्टयां बालवे च बवे गरे।
कौलवे शकुनौ भानुः किंस्तुघ्ने चोर्ध्वसंस्थितः ॥
चतुष्पात्तैतिले नागे सुप्तः कान्ति करोति सः।
धान्यर्घवृष्टिषु समं श्रेष्ठं हीनं भवेत् क्रमात् ॥
चतुष्पदे तैतिलनागयोश्च सुप्तो रविः सङ्क्रमणं करोति।
विष्टयां बवाख्ये च गराह्वये च सबालवाख्ये वणिजे निविष्टः ॥
किंस्तुघ्ननाम्नि शकुनावपि कौलवाख्ये चोर्ध्वस्थितस्य खलु सङ्क्रमणं रवेः स्यात्।
धान्यार्घवृष्टिपु भवेत् क्रमशस्त्वनिष्टमध्येष्टतेति मुनयः प्रवदन्ति पूर्वे ॥' इति।

अस्यान्यदपि फलमग्रे वक्ष्यति ॥ १३ ॥

हिन्दी—तैतिल, नाग, चतुष्पद करणों में यदि सूर्य की संक्रान्ति हो तो सूर्य सोते हुए संक्रमण करते हैं, गर से ५ करणों में संक्रान्ति हो तो सूर्य बैठे हुए संक्रमण करते हैं और किंस्तुघ्न, कौलव एवं शकुनि करणों में संक्रान्ति लगे तो सूर्य खड़े होकर संक्रमण करते हैं। वस्तुओं के भाव में और वर्षा में क्रमशः नेष्ट, सम, श्रेष्ठ फल देते हैं। अर्थात् सूर्य सोये हुए संक्रमण करे तो उस मास में वस्तुओं के भाव और वर्षा पर बुरा प्रभाव पड़ता है, बैठे हुए संक्रमण करें तो उस मास में सामान्य वस्तुभाव और सामान्य वर्षा समझना चाहिए एवं खड़े होकर सूर्य संक्रमण करें तो उत्तम है। वस्तुओं का भाव अच्छा रहे और वर्षा भी अच्छी हो ॥ १३ ॥

अथ रविसङ्क्रान्तेः करणपरत्वेन वाहनवस्त्रायुधभक्ष्यलेपनजातिपुष्पाणि सफलानि शार्दूलविक्रीडितत्रयेणोपजातिकया चाह—

सिंहव्याघ्रवराहरासभगजा वाहद्विषद्घोटकाः
श्वाऽजो गौश्चरणायुधश्च बवतो वाहा रवेः सङ्क्रमे।
वस्त्रं श्वेतसुपीतहारितकपाण्डूवारक्तकालासितं
चित्रं कम्बलदिग्घनाभमथ शस्त्रं स्याद् भुशुण्डी गदा ॥ १४ ॥
खड्गो दण्डशरासतोमरमथो कुन्ताश्च पाशोऽङ्कुशो-
ऽस्त्रं बाणस्त्वथ भक्ष्यमन्नपरमान्नं भक्षपक्वान्नकम्।
दुग्धं दध्यपि चित्रितान्नगुडमध्वाज्यं तथा शर्करा-
ऽथो लेपो मृगनाभिकुङ्कुममथो पाटीरमृद्रोचनम् ॥ १५ ॥
यावश्चौतुमदो निशाञ्जनमथो कालागुरुश्चन्द्रको
जातिर्दैवतभूतसर्पविहगाः पश्वेणविप्रास्ततः।
क्षत्री वैश्यकशूद्रसङ्करभवाः पुष्पं च पुन्नागकं
जातीबाकुलकेतकानि च तथा बिल्वार्कदूर्वाम्बुजम् ॥ १६ ॥
स्यान्मल्लिका पाटलिका जपा च सङ्क्रान्तिवस्त्राशनवाहनादेः।
नाशश्च तद्वृत्त्युपजीविनां च स्थितोपविष्टस्वपतां च नाशः ॥ १७ ॥

सिंहेति। बवतो ल्यब्लोपे पञ्चमी। बवमारभ्य सप्त चरकरणानि। स्थिराणि चत्वारि शकुन्यादीनि। एतेष्वेकादशसु करणेषु क्रमेण वाहनानि वस्त्राणि तथाऽऽयुधानि भक्ष्याणि लेपनानि जातयः पुष्पाणि च ज्ञेयानीत्यर्थः।

वाहनानि तावत्

तत्र वाहनानि—सिंहव्याघ्रौ प्रसिद्धौ, वराहः सूकरः, रासभो गर्दभः, गजो हस्ती, वाहद्विषत् महिषः, 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः। घोटकोऽश्वः, श्वा कुक्कुरः, अजो मेषः, गौर्वृषः, चरणायुधः कुक्कुटः, एतान्येकादशकरणेषु वाहनानि। एवं वस्त्रादीन्यपि व्याख्येयानि। तदाह कश्यपः—'सिंहशार्दूलवाराहकुञ्जरा महिषस्तथा। तुरगश्वाजवृषभकुक्कुटाश्च बवादिषु॥ तिथ्यर्धजेषु सङ्क्रान्तिवाहनानि यथाक्रमात्।' तिथ्यर्धकरणे नारदेन तु विशेषोऽभिहितः—'खशबाह्लीकवङ्गेषु सङ्क्रान्तेर्धिष्ण्यवाहनम्। अन्यदेशेषु तिथ्यर्द्धं वाहनाः स्युर्बवादयः॥' इति। यदि सङ्क्रान्तिरश्विन्यां। तदाऽश्विन्या योनिरश्वस्तद्वाहनं स्यात्। खशवाह्लीकवङ्गदेशेषु एवं सर्वनक्षत्रेषु ध्येयम्। अमुमर्थं स्पष्टमाह कश्यपः—'भयोनिवाहनं वङ्गबाह्लीकविषये खशे' इति। अतोऽन्यदेशेषु करणैरेव वाहननिर्णय इत्यर्थः।

वस्त्रमुच्यते

श्वेतं शुभ्रं सुपीतं प्रसिद्धं, हारितकं नीलवर्णं, पाण्डुरम् अरुणवर्णम्, आरक्तमलक्तकवर्णं, कालं श्यामवर्णम्, असितं कज्जलवर्णं, चित्रमनेकवर्णं, कम्बलः प्रसिद्धः दिग्वस्त्रा-

भावो नग्नत्वमित्यर्थः । घनाभं घनवर्णम् । उक्तञ्च—'श्वेतपीतहरितपाण्डुकरक्तश्यामवर्णमसितं बहुवर्णम् । कम्बलो विवसनाम्बुदवर्णान्यंशुकानि च रवेः करणेषु ॥'

शस्त्रमुच्यते

तत्र भुशुण्ड्यादीन्येकादशायुधानि प्रसिद्धानि । शरासो धनुः । यदाहतुर्नारदकश्यपौ-भुशुण्डीभिन्दिपालासिदण्डकोदण्डतोमरान् । कुन्तपाशाङ्कुशास्त्रेषून्बिभर्त्ति करणेष्विनः' भिन्दिपालं गदा, इषुर्बाणः ।

भक्ष्यमुच्यते

तत्रान्नं मोदकादि, परमान्नं पायसं, भैक्षं भिक्षाणां समूहो भैक्षम्, 'भिक्षादिभ्योऽण्' इत्यण् संन्यासिवद् गृहे गृहे गत्वा यत्किञ्चिदन्नं प्राप्यते तद् भैक्षमुच्यते, पक्वान्नकम् अपूपादि, दुग्धं दधि च प्रसिद्धमेव, चित्रितान्नम्, बहुभिस्तण्डुलमुद्गमसूरिकाहरिद्रादिभिः पक्वमन्नम्, गुडमध्वाज्यशर्कराः प्रसिद्धाः । उक्तञ्च नारदेन—'अन्नं च पायसं भैक्षमपूपञ्च पयो दधि । चित्रान्नगुडमध्वाज्य शर्करा च बवाद्रविः' ।

लेपः

लेपो विलेपनमुच्यते । तत्र मृगनाभिः कस्तूरी, कुङ्कुमं प्रसिद्धम्, पाटीरं रक्तचन्दनम्, मृत्प्रसिद्धा रोचनं गोरोचनम्, यावोऽलक्तकः, ओतुमदो मार्जारघर्मः, दक्षिणदेशभाषया जव्वादीत्युच्यते । निशा हरिद्रा, अञ्जनं स्रोतोऽञ्जनं, सुरमेति भाषायाम् । कालागुरुः अगरुविशेषः, चन्द्रकः कर्पूरः, उक्तञ्च—कस्तूरिकाकुङ्कुमचन्दनं मृद्गोरोचनं यावक ओतुघर्मः । निशाञ्जनं चागुरुरिन्दुरेभिर्विलेपनं सङ्क्रमणो बवात्स्यात् ।

अथ जातिरुच्यते

दैवतादयो दश प्रसिद्धाः, सङ्करभवाः अनुलोमजाः प्रतिलोमजाश्च । उक्तञ्च—'देवभूताहिविहगाः पशवो मृग एव च । ब्राह्मणक्षत्रियौ वैश्याः शूद्रा मिश्रा बवादिषु ॥ तज्जातीया विनश्यन्ति षण्मासाभ्यन्तरे ध्रुवम् ।' इति ।

पुष्पाणि वयश्च

पुष्पाण्युच्यन्ते । पुन्नागकं नागकेसरवृक्षस्य पुष्पं जात्यादीन्यम्बुजातानि प्रसिद्धानि, मल्लिका वेलिः, पाटलिका पाडलिः, जपा ओण्ड्रपुष्पम् । उक्तञ्च—'पुन्नागजातिर्बकुलाः सुकेतकीविल्वार्कदूर्वाशतपत्रमल्लिकाः । ततो भवेत् पाटलिका जपा ततः पुष्पाणि सूर्यस्य बवादिषु क्रमात् ॥' शतपत्रं कमलम् । क्वचिद्वयोऽयुक्तम्—

'शिशुः कुमारश्च गतालका युवा प्रौढा प्रगल्भा च ततश्च वृद्धा ।
वन्ध्यातिवन्ध्या च सुतार्थिनी च प्रव्राजिका चेति बवादिकानाम् ॥
यद्यद्वयोऽनुरूपं स्यात्तस्य तस्य महद्भयम् ॥' इति ।

अवस्थाः—क्वचिदवस्था अप्युक्ताः 'पन्थाश्च भोगो रतिहास्यदुर्मुखी ज्वरान्विता भुक्तसुकम्पिता मता । ध्यानस्थिता कर्कशवृद्धरूपा बवाद्यवस्थाः कथिता मुनीन्द्रैः ।

सङ्क्रान्तेरुक्तद्रव्यनाशः

एवञ्च सङ्क्रमकाले यानि वस्त्राशनवाहनादीन्यभिहितानि । आदिशब्देनायुध-लेपनजातिपुष्पाणि तेषां नाशो भवेत् । च पुनस्तद्वृत्त्युपजीविनां नाशो भवेत् । स्थितो-पविष्टस्वपतां च 'स्यात्तैतिले' इत्यादिना सुप्तत्वादीन्युक्तानि यानि तद्गुणविशिष्टानां नाशः स्यादित्यर्थः । उक्तञ्च नारदेन—'आयुधं वाहनाहारो यज्जातीयं धनं न यत् । सुप्तोपविष्टतिष्ठन्तस्ते लोकाः क्षयमाप्नुयुः ॥' इति ॥ १४–१७ ॥

हिन्दी—बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि (इन ७ चर) और शकुनि, चतु-

बवादिकरणवशात्सङ्क्रान्तिनां वाहनादिबोधकसारणी

शुक्ल	पूर्वार्ध	५ १२	२ ९	६ १३	३ १०	७ १४	४ ११	८ १५	×	×	×	१
	परार्ध	८ १५	५ १२	२ ९	६ १३	३ १०	७ १४	४ ११	×	×	×	×
कृष्ण	पूर्वार्ध	४ ११	१ ८	५ १०	२ ९	६ १३	३ १०	७ १४	×	३०	×	×
	परार्ध	७ ०	४ ११	१ ८	५ १२	२ ९	६ १३	३ १०	१४	×	३०	×
करण		बव	बालव	कौलव	तैतिल	गर	वणिज	विष्टि	शकु.	चतु.	नाग	किंस्तुघ्न
स्थिति		उप.	उप.	ऊर्ध्व	सुप्त	उपविष्ट	उपविष्ट	उप.	ऊर्ध्व	सुप्त	सुप्त	ऊर्ध्व
वाहन		सिंह	बाघ	वराह	गर्दभ	गज	महिष	अश्व	श्वा	मेष	वृष	मुर्गा
उपवाहन		गज	अश्व	वृषभ	मेष	गर्दभ	ऊँट	सिंह	शार्दूल	महिष	व्याघ्र	वानर
वस्त्र		श्वेत	पीत	हरित	पाण्डु	आरक्त	श्याम	कृष्ण	चित्र	कंबल	नग्न	मेघ
उपवस्त्र		श्वेत	रक्त	चित्र	पीत	नील	कम्बल	पट्ट	अजिन	कुसुम	वल्कल	वैणव
आयुध		भुशुंडी	गदा	तलवार	दण्ड	धनुष	तोमर (गड़ासा)	भाला	पाश	अंकुश	शस्त्र	बाण
भक्ष्य		भात	खीर	भिक्षा	पक्वा	दूध	दही	खिच.	गुड़	मधु	घी	शक्कर
लेपन		कस्तू	कुंकुम	चन्दन	मृत्ति	गोरोचन	महावर	ओतु.	हरिद्रा	कज्ज	अगर	कपूर
जाति		देव	भूत	सर्प	पक्षी	पशु	मृग	द्विज	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	वर्ण-शंकर
पुष्प		पुन्नाग	जाती	वकुल	केतकी	बिल्व	अर्क	दूर्वा	कमल	बेला	पाटल	जपा
भोजनपात्र		सुवर्ण	रौप्य	ताम्र	कांस्य	लोह	खप्पर	पत्र	वस्त्र	कर	भूमि	काष्ठ
भूषण		नूपुर	कंकण	मोती	प्रवाल	मुकुट	मणि	गुंजा	कौड़ी	नील	हीरा	सुवर्ण
कंचुकी		छीट	पीत	हरित	भूर्ज.	सित	पांडु	नील	कृष्ण	चर्म	वल्कल	धूम्र
स्नान		गंगा	यमुना	सरस्वती	नन्दा.	नर्मदा	कृष्णा	गोदा.	भागी	तुंगा	कावेरी	कृष्णा
वय		बाला	कुमारी	बालिका	युवा	प्रौढ़ा	प्रगल्भा	वृद्धा	वन्ध्या	वन्ध्या	पुत्रा-र्थिनी	प्रव्राजिका

ष्पद, नाग, किंस्तुघ्न (इन ४ स्थिर) करणों में सूर्य की संक्रान्ति लगे तो क्रम से १ सिंह, २ बाघ, ३ सूकर, ४ गधा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ मेंढ़ा, १० बैल और ११ मुर्गा ये सूर्य-संक्रान्ति के वाहन होते हैं।

१ श्वेत, २ पीला, ३ हरा, ४ पाण्डुर (कुछ श्वेत और कुछ पीला), ५ लाल, ६ काला, ७ कज्जल, ८ अनेक वर्ण (छींट), ९ कम्बल, १० दिगम्बर (वस्त्रविहीन) एवं ११ घनाभ (आसमानी) श्याम—ये संक्रान्ति के वस्त्र होते हैं।

१ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ दण्ड, ५ धनुष, ६ तोमर (गड़ाँसा), ७ भाला, ८ पाश (रस्सी), ९ अंकुश, १० अस्त्र एवं ११ बाण—ये हथियार होते हैं।

१ अन्न (भात), २ परमान्न (खीर), ३ भिक्षा का अन्न, ४ पक्वान्न (पूड़ी, पूआ, मालपुआ), ५ दूध, ६ दही, ७ चित्रान्न (खिचड़ी), ८ गुड़, ९ मधु (शहद), १० घी तथा ११ शक्कर (चीनी)—ये भक्ष्य (खाने के पदार्थ) होते हैं।

१ कस्तूरी, २ कुङ्कुम (रक्तचन्दन), ३ चन्दन (श्वेत), ४ मिट्टी, ५ गोरोचन, ६ महावर, ७ ओतुमद (बिलावमद), ८ हल्दी, ९ काजल (सुरमा), १० अगर, ११ कपूर—ये लेप होते हैं।

१ देवता, २ भूत, ३ सर्प, ४ पक्षी, ५ पशु (हाथी, घोड़ा, गो, महिष आदि), ६ मृग, ७ ब्राह्मण, ८ क्षत्रिय, ९ वैश्य, १० शूद्र (कहार, नाऊ, बारी आदि) और ११ वर्णसंकर—ये संक्रान्ति जाति होती है।

१ नागकेशर, २ जाती (चमेली), ३ बकुल (मौलसरी), ४ केतकी, ५ बेल, ६ मदार, ७ दूब, ८ कमल, ९ मल्लिका (बेला), १० पाटलिका (गुलाब) एवं ११ जपा (अड़हुल पुष्प)—ये संक्रान्ति के पुष्प होते हैं।

करण के सम्बन्ध से जिस राशि की संक्रान्ति के जो वाहन-वस्त्र आदि कहे गये हैं, उस मास में उन(वाहन, वस्त्र, शस्त्र आदि)का नाश (हानि) होती है और (उन) वस्तुओं से जीविका चलाने वाले व्यक्तियों की भी हानि होती है।

१३वें श्लोक में कहे गये सूर्य के बैठे रहने पर संक्रान्ति लगे तो उस समय बैठे हुए मनुष्यों को कष्ट होता है। सूर्य के खड़े रहने पर संक्रान्ति लगे तो तत्काल में खड़े हुए मनुष्यों को कष्ट और सूर्य के सोते हुए संक्रान्ति लगे तो संक्रान्तिकाल में सोये हुए मनुष्यों को कष्ट होता है॥ १४–१७॥

अथ सङ्क्रान्तिवशेन प्रतिमनुष्यं शुभाशुभफलमुपजात्याऽऽह—

सङ्क्रान्तिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमनं ततोऽङ्गभे।
सुखं त्रिभे पीडनमङ्गभेंऽशुकं त्रिभेऽर्थहानी रसभे धनागमः॥ १८॥

सङ्क्रान्तीति। सङ्क्रान्तिर्यस्मिन्धिष्ण्ये नक्षत्रे स्यात्ततोऽधरधिष्ण्यं पूर्वनक्षत्रं तस्मात् स्वजन्मनक्षत्रं गण्यं तच्चेत्प्रथमे त्रिभे भवति तदा गमनं यात्रा स्यात्। ततः प्रथमत्रिकादनन्तरमङ्गभेषु षण्नक्षत्रेषु यदि स्वभं तदा सुखं स्यात्, ततस्त्रिभे स्वभे पीडनं शरीरपीडा, पुनरङ्गभे स्वभे अंशुकं वस्त्रादिप्राप्तिः स्यात्। ततस्त्रिभे स्वभेऽर्थहानिः द्रव्यनाशः, ततो रसभे षण्नक्षत्रे स्वभे धनागमो द्रव्यप्राप्तिः स्यादित्यर्थः। उक्तञ्च नारदेन—'सङ्क्रान्तौ ग्रहणर्क्षे वा जन्मन्युभयपार्श्वयोः। नेष्टं त्रयं षट् शुभदं पर्यायाच्च पुनः पुनः॥ हानिर्वृद्धिः स्थानहानिस्तथा प्राप्तिरिति क्रमात्।' सङ्क्रान्तेर्यन्नक्षत्रं ग्रहणनक्षत्रं वा यदि जन्मभं भवेदथवा ताभ्यामुभयपार्श्वगतं जन्मभं भवेत्तदा अनिष्टमेव

नक्षत्रत्रयं निषिद्धम् । ततो नक्षत्रषट्कं शुभं, ततस्त्रिकेऽर्थहानिस्ततः षट्के वृद्धिः, ततस्त्रिके स्थानहानिः, ततः षट्सु वृद्धिः, षट्सु स्थानप्राप्तिरिति । अत एव पठन्ति दाक्षिणात्याः—'सङ्क्रान्त्यधरनक्षत्राद् गणयेज्जन्मभावधि । त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कमिति क्रमात् ॥ पन्था भोगो व्यथा वस्त्रं हानिश्च विपुलं धनम् ॥' इति । त्रिकं शुभं षट्कमशुभमिति फलितोऽर्थः ।

अशुभदसङ्क्रान्तौ दानम्

अत्राशुभफलदायां सङ्क्रान्तौ सत्यां दानमाह नारदः—'तिलोपरि लिखेच्चक्रं त्रिशूलं च त्रिकोणकम् । तत्र हेमं विनिःक्षिप्य दद्याद्दोषापनुत्तये' ॥ इति । अत्र चक्राकृतिरियम् । एवं सङ्क्रान्तिसम्बन्धिफलमभिहितम् ॥ १८ ॥

हिन्दी—संक्रान्ति जिस नक्षत्र में हो, उससे पूर्व नक्षत्र से अपने नक्षत्र तक गिने, यदि ३ नक्षत्रों में अपना नक्षत्र पड़े तो उस मास में यात्रा करनी होती है । उसके बाद ६ नक्षत्र में अपना जन्मनक्षत्र हो तो वह मास सुखदायी होता है । उसके बाद ३ नक्षत्रों में अपना नक्षत्र आ जाय तो उस मास में वह मनुष्य पीड़ित रहता है । उसके अनन्तर ६ नक्षत्रों में अपना नक्षत्र पड़े तो वस्त्र का लाभ, उसके बाद ३ नक्षत्रों में धन का नाश (अपव्यय, चोरी, गिर जाना आदि) होता है । उसके बाद ६ नक्षत्रों में अपना नक्षत्र पड़ जाय तो उस मास में मनुष्य को धनागम होता है ।

स्पष्टार्थ चक्र

नक्षत्र	३	६	३	६	३	६
फल	यात्रा	सुख	पीडा	वस्त्रलाभ	धनहानि	धनाप्ति

अथ कार्यविशेषे बलं सामान्यतः सङ्क्रममाणग्रहबलं चोपजात्याऽऽह—

नृपेक्षणं सर्वकृतिश्च सङ्गरः शास्त्रं विवाहो गमदीक्षणे रवेः ।
वीर्येऽथ ताराबलतः शुभो विधुर्विधोर्बलेऽर्कोऽर्क बले कुजादयः ॥ १९ ॥

नृपेक्षणमिति । रवेरिति ल्यब्लोपे पञ्चमी, रविमारभ्येत्यर्थः । रवेः सूर्यस्य वीर्ये बले सति सूर्यवारे वा नृपेक्षणं राजदर्शनं विधेयम् । एवं चन्द्रादावपि व्याख्येयम् । ततश्चन्द्रे सर्वकृतिः सर्वकृत्यानि, भौमे सङ्गरो युद्धं, बुधे शास्त्रमध्येतव्यमध्याप्यं वा, गुरौ विवाहः, शुक्रे गमो गमनं, शनौ दीक्षणं यागादिदीक्षा विधेयेत्यर्थः । उक्तञ्च श्रीपतिना—

'रविर्नृपविलोकने सुरगुरुर्विवाहोत्सवे रणे धरणिनन्दनो भृगुसुतः प्रयाणे बली ।
शनिश्च मखदीक्षणे सकलशास्त्रबोधे बुधः शशी सकलकर्मसु ध्रुवमुदाहृतः सूरिभिः ॥'

वसिष्ठेनापि

राजालोकनसमये रविरार्यः करतलग्रहे सुबली ।
रणसमये धरणिसुतः प्रयाणसमये सितोऽतिबली ॥
दीक्षणसमयेऽर्कसुतः शशितनयो ज्ञानशिल्पविधौ ।
निखिलेष्वपि कार्येषु च चन्द्रबलं मुख्यमखिलनॄणाम् ॥' इति ।

एतान्यपि कार्याणि सबलग्रहवारे क्रियमाणानि सिध्यन्तीत्याह वसिष्ठः—'बलप्रदस्य ग्रहवासरे यद्यच्चोपदिष्टं समुपैति सिद्धिम्। सुदुर्बलस्य ग्रहवासरे तत्प्रयत्नपूर्वं त्वपि नैव साध्यम्' ॥ इति। ग्रहेति लुप्तषष्ठीकं पृथक्पदं ग्रहस्येत्यर्थः। बलप्रदत्वदुर्बलत्वे गोचर-प्रकरणोक्तविहितायुक्तस्थानवशेन ज्ञेये। तदाह श्रीपतिः—'वारे ग्रहस्योपचयावहस्य कार्यं यथोद्दिष्टमुपैति सिद्धिम्। भवेत्तदेवापचयावहस्य प्रयत्नतो निर्मितमप्यसाध्यम् ॥' इति। अथेति। ताराबलतो विधुः शुभो ज्ञेयः। यदा चन्द्रसङ्क्रमणं स्यात्तत्र ताराबलं चेत् स्यात्तदा सपाददिनद्वयं चन्द्रोऽशुभोऽपि शुभः। तारादौष्ट्ये तु शुभोऽपि अशुभ इत्यर्थः। एवं च विधोर्बलाद्रविः सङ्क्रमणेऽशुभोऽपि मासपर्यन्तं शुभः, शुभस्तु सुतरां समीचीन एव। चन्द्रदौष्ट्ये तु शुभोऽप्यशुभ इत्यर्थः। परे भौमादयः सङ्क्रान्तिचिकीर्ष-वस्तत्तद्बलतः सूर्यबलादशुभा अपि शुभा ज्ञेयाः। स्वराशिभोगकालावधिरविदौष्ट्ये तु शुभा अप्यशुभा इत्यर्थः। यदाह कश्यपः—

'ताराबलेन शीतांशुर्बलवांस्तद्वशाद्रविः। बली सङ्क्रममाणस्य वशात्खेटा बलाधिकाः ॥
यादृशेनेन्दुना भानोः सङ्क्रान्तिस्तादृशं फलम्।
नरः प्राप्नोति तद्राशेः शीतांशोः साध्वसाधुतः ॥' इति।

सङ्क्रममाणस्य रवेरित्यध्याहारः। यत्तु दीपिकायाम्—'यादृशेन शशाङ्केन ग्रहः सञ्चरते नृणाम्। तादृशं फलमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥' इति। चन्द्रवशेनैवा-खिलग्रहसम्बन्धि शुभाशुभत्वमुक्तम्। तत्र ग्रह इत्येकवचननिर्देशाल्लिखितकश्यपवाक्य-स्वरसाच्च सूर्य एव ग्राह्यो नान्य इति तद्दीपिकाकारो व्याख्यत्। अन्यथा 'सञ्चरेयुर्ग्रहा नृणाम्' इत्यवक्ष्यत् ॥ १९ ॥

हिन्दी—राजदर्शन में सूर्य का बल, समस्त कामों में चन्द्रमा का बल, संग्राम (युद्ध, मुकदमा आदि) में मंगल का बल, शास्त्र (विद्याध्ययन) में बुध का बल, विवाह में बृहस्पति का बल, यात्रा में शुक्र का बल और दीक्षा-ग्रहण में शनि का बल देखना चाहिए।

तारा बली (उत्तम) हो तो चन्द्रमा, चन्द्रमा बली हो तो सूर्य, सूर्य बली हो तो भौम, भौम बली हो तो बुध, बुध बली हो तो बृहस्पति बृहस्पति बली हो तो शुक्र और शुक्र बली हो तो शनि बलवान् हो जाता है।

यथा—किसी की जन्मराशि से अशुभ राशि में चन्द्रमा प्रवेश कर रहा है, उस समय उसकी तारा उत्तम है तो वह प्रविष्ट चन्द्रमा सवा दो दिन तक अशुभ रहते हुए भी उत्तम ही रहेगा, क्योंकि उस समय तारा उत्तम है। इस प्रकार अशुभ राशि पर सूर्य का संक्रमण होते समय चन्द्रमा शुभ राशि पर रहे तो सूर्य का अशुभत्व न होकर शुभ फल होगा। भौम के संक्रमण के समय सूर्य उत्तम राशि पर रहे तो भौम का अशुभत्व नष्ट हो जाता है, ऐसे ही आगे भी समझना चाहिए ॥ १९ ॥

अथाधिमासक्षयमासयोः सङ्क्रान्त्यधीनत्वात्तयोर्निर्णयः प्रस्तूयते, तत्र तल्लक्षणमुप-जात्याऽऽह—

स्पष्टार्कसङ्क्रान्तिविहीनचान्द्रो मासोऽधिमासः क्षयमासकस्तु।
द्विसङ्क्रमस्तत्र विभागयोः स्तस्तिथेर्हि मासौ प्रथमान्त्यसञ्ज्ञौ ॥ २० ॥

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ
सङ्क्रान्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

स्पष्टार्केति । शुक्लपक्षप्रतिपदादिदर्शान्तिश्चान्द्रो मासः । स चेत्स्पष्टसूर्यसङ्क्रान्त्या विहीनो भवेत्तदाऽधिकमास उक्तः । उक्तश्च ब्राह्मसिद्धान्ते—'चान्द्रो मासो ह्यसङ्क्रान्तो मलमासः प्रकीर्तितः' इति । तुर्विशेषे कदाचिच्छब्दापरपर्यायः । कदाचित्स चान्द्रो मासो द्विसङ्क्रमः द्वौ सङ्क्रमौ सूर्यसङ्क्रमौ यस्मिन्नसौ द्विसङ्क्रमः स्पष्टसूर्यसङ्क्रान्तिद्वययुतः क्षयमास उक्तः । यदाह वसिष्ठः—यस्मिन्दर्शस्यान्तादर्वागेवापरं दर्शम् । उल्लङ्घ्य भवति भानोः सङ्क्रान्तिः सोऽधिमासः स्यात् ॥ आद्यन्तदर्शयोर्मध्ये भानोरेव तयोर्यदि । सङ्क्रान्तिद्वितयं स्याच्चेन्न्यूनमासः स उच्यते ॥' एतौ चाधिमासक्षयमासौ स्पष्टमानेनैव ज्ञेयौ । तदाह कश्यपः—

'यस्मिन्मासेऽर्कसङ्क्रान्तिर्दर्शनात्प्राक्पुरःसरम् ।
दर्शमुल्लङ्घ्य भवति स संसर्पोऽधिमासकः ॥
आरभ्य शुक्लप्रतिपत्प्रवेशात्सङ्क्रमद्वयम् ।
आगामीन्दुक्षयस्यान्तात्प्राङ् न्यूनाख्यस्त्वहर्पतिः ॥
स्फुटार्कसङ्क्रमाद्विद्यान्न्यूनमासाधिमासकौ ।
मासौ न्यूनाधिकौ तौ तु सर्वकर्मबहिष्कृतौ ॥' इति ।

सिद्धान्तशिरोमणावपि—'असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद् द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्' इति । स्फुटः स्फुटेन्दुमासः, स्फुटत्वमपि तत्रैव—'स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धो यदा यदा वा पतितोऽपि लब्धः । सैकैर्निरेकैः क्रमशोऽधिमासैस्तदा दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ॥' इति । इदमग्रे स्पष्टं व्याख्यास्यते । अत्राधिमासक्षयमासलक्षणप्रयोजनं नोक्तम् । आद्यप्रकरणे—

'वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्यसितयोर्न्यूनाधिमासे तथा' इत्यादिनोक्तत्वात् ।

पक्षद्वयभेदेन सञ्ज्ञाद्वयफलानि क्षयमासे

क्षयमासपरः कश्चिद्विशेषो वक्तव्योऽस्ति, सोऽत्रैवाभिधातुमुचित इत्याह—तत्रेति । तत्र क्षये मासे मासद्वयसञ्ज्ञा शुक्लकृष्णपक्षभेदेन । तस्याः सप्रयोजनविषयकल्पनोच्यते—विभागयोरिति । तत्र क्षयमासे जातानां वर्द्धापने मृतानां श्राद्धे च तिथेर्विभागयोः पूर्वोत्तरदलयोः सम्बन्धेन प्रथमान्त्यसञ्ज्ञौ मासौ स्तः स्याताम् । तिथिपूर्वार्धजातानां मृतानां च पूर्वमासे वर्द्धापनं श्राद्धं च विधेयम् । तिथेरुत्तरार्द्धे जातानां मृतानां चोत्तरमासे वर्द्धापनं श्राद्धं च विधेयम् । तदुक्तम्—'तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वोऽपरस्मिन्नपरस्तथा । मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥' इति । एवं यथाश्रुतोऽर्थो व्याख्यातः । अस्य विशेषविवेकस्तु इह गन्थगौरवभयात् प्रस्तुतविचारानर्हत्वाच्च नास्माभिरुक्त इति शिवम् ॥ २० ॥

सङ्क्रान्तिप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञानन्तेति । स्पष्टार्थम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाह्निगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः ।

गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने खलु सङ्क्रमप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ॥

इति श्रीविद्वद्वरदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां सङ्क्रान्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

हिन्दी—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के आदि से कृष्णपक्ष की अमावास्या के अन्त तक चान्द्रमास माना जाता है. जिस चान्द्रमास में स्पष्ट सूर्यसंक्रान्ति न हो, वह अधिमास (मलमास) कहा जाता है (वह पूर्वमास के नाम से पुकारा जाता है) एवं जिस चान्द्रमास में स्पष्ट सूर्य की दो संक्रान्तियाँ पड़ जायें, वह क्षयमास कहा जाता है। उस क्षयमास में किसी का जन्म या मरण हो जाय तो तिथि के पूर्वार्ध तथा परार्ध के विभाग के अनुसार पहला अथवा दूसरा मास मानना चाहिए अर्थात् यदि तिथि के पूर्वार्ध में जन्म हुआ हो तो पूर्वमास में उसी तिथि को बालक की वर्षगाँठ मनानी चाहिए, उत्तरार्ध में जन्म हो तो बाद में आने वाले मास में वर्षगाँठ मनानी चाहिए। इसी प्रकार तिथि के पूर्वार्ध में किसी की मृत्यु हो गई हो तो पहले मास में और उत्तरार्ध में मृत्यु हो तो आगे के मास में उसका वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।

विशेष—व्यवहार में सौर और चान्द्रमासों की गणना प्रचलित है। जिसके साथ सावन दिनों का सम्बन्ध जुटा रहता है सूर्य के एक राशिभोग को सौरमास और ३० तिथ्यात्मक दो अमान्त कालाभ्यन्तर वर्तमान काल को चान्द्रमास कहते हैं। एक सौरमास को सावन दिन से मापा जाय तो जितने सावन दिन होंगे, उससे कम सावन दिन १ चान्द्रमास में होते हैं अर्थात् चान्द्रमास की अपेक्षा सौरमास बड़ा होता है। चान्द्रमास से सौरमास जितना अधिक होता है उसी को अधिशेष कहते हैं। मध्यम मान से एक सौरमास ३० सावनदिन, २६ घटी एवं १५ पल का होता है और चान्द्रमास २९ दिन, ३४ घटी एवं २० पल का होता है। दोनों का अन्तर (३०।२६।१५)—(२९।३४।२०)=०।५१।५५ सावनदिनादि १ सौरमास में होता है, यही अधिशेष प्रतिमास बढ़ते हुए अनुपात से—

$$\frac{\text{१ सौरमास} \times \text{२९ दि० ३४।२०}}{\text{आन्तर शेष}} = \frac{\text{३०} \times \text{२९ दिन ३४ घ. २०}}{\text{०।५१।५५}} = \text{३२}\tfrac{1}{3}$$ आसन्न मास में १ चान्द्रमास पड़ जाता है। वही अधिमास कहा जाता है। जब अधिशेष १ चान्द्रमास बराबर होता है तो उस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है। अर्थात् वह चान्द्रमास सूर्यसंक्रान्ति से विहीन होता है, उसी को अधिमास या मलमास अथवा पुरुषोत्तममास कहते हैं। जब सूर्य की गति ६० अधिक हो जाती है अर्थात् सौरमास की दिन-संख्या चान्द्रमास की दिन-संख्या से कम हो जाती है तो प्रथम अमान्त के अनन्तर सूर्य की संक्रान्ति होकर दूसरे अमान्त के पहले सूर्य की संक्रान्ति होती है अर्थात् एक चान्द्रमास में दो संक्रान्ति हो जाती हैं। २ संक्रान्ति हो जाने के कारण उसको दो मास नामों से पुकारना चाहिए, किन्तु चान्द्रमास एक ही है। इसलिये जिस मास में जो संक्रान्ति पड़ने से जो मास होना चाहिए उसकी व्याप्ति नहीं है, अतएव उसको क्षयमास कहते हैं। इस क्षयमास के होने की सम्भावना १४१, १२२, १९ वर्षों के बाद होती है।

श्री पं० धर्मदत्तद्विवेदी-तनूज विन्ध्येश्वरीप्रसाद-कृत संक्रान्ति-प्रकरण पर मणिप्रदीप नामक हिन्दी टीका समाप्त ॥ ३ ॥

---

(४) अथ गोचरप्रकरणम्

विघ्नराजमभिवन्द्य सिद्धिदं नीलकण्ठतनयेन धीमता ।
शिष्यमोहविनिवृत्तिकारणं गोचरप्रकरणं विविच्यते ॥

अथ गोचरप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र जन्मराशितः प्रोक्तनिषिद्धस्थानस्थितेदानीन्तनग्रहवशेन शुभाशुभनिरूपणं गोचर इत्युच्यते । तत्र ग्रहाणां गोचरफलं शुभाशुभरूपमुपजातिकाद्वयेनेन्द्रवज्रयोपजातिकापूर्वार्द्धेन चाह—

सूर्यो रसान्त्ये खयुगेऽग्निनन्दे शिवाक्षयोर्भौमशनी तमश्च ।
रसाङ्कयोर्लाभशरे गुणान्त्ये चन्द्रोऽम्बराब्धौ गुणनन्दयोश्च ॥ १ ॥
लाभाष्टमे चाद्यशरे रसान्त्ये नगद्वये ज्ञो द्विशरेऽब्धिरामे ।
रसाङ्कयोर्नागविधौ खनागे लाभव्यये देवगुरुः शराब्धौ ॥ २ ॥
द्वयन्त्ये नवांशेऽद्रिगुणे शिवाहौ[१] शुक्रः कुनागे द्विनगेऽग्निरूपे ।
वेदाम्बरे पञ्चनिधौ गजेषौ नन्देशयोर्भानुरसे शिवाग्नौ ॥ ३ ॥
क्रमाच्छुभो विद्ध इति ग्रहः स्यात् पितुः सुतस्यात्र न वेधमाहुः ।
दुष्टोऽपि खेटो विपरीतवेधाच्छुभो द्विकोणे शुभदः सितेऽब्जः ॥ ४ ॥

सूर्य इति । सूर्यो रसान्त्ये इत्यादौ 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवति' इति समाहारद्वन्द्व एकवचनान्तः । शिवाक्षयोरित्यादावितरेतरयोगद्वन्द्वः । अम्बराब्धावित्यादिषु त्वनित्यमागमशासनमिति नुमभावो ज्ञेयः । एवं सर्वत्र व्याख्येयम् । अस्य चतुर्थश्लोकेनान्वयः । स्वजन्मराशेरिति पञ्चमश्लोकस्य पदमत्राध्याहार्यम् । तत्र सूर्योग्रहः स्वजन्मराशेः रसान्त्ये क्रमाच्छुभो विद्धश्च स्यात् । सूर्यः स्वजन्मराशेः सकाशाद्यदि षष्ठस्थाने तदा शुभः । अतो जन्मराशेर्द्वादशस्थानस्थिताश्चेदन्ये ग्रहाः स्युस्तदा विद्धः । शुभोऽप्यशुभफलदाता ।

रविशन्योर्न परस्परं वेधः

अत्र शनैश्चरस्य सूर्यपुत्रत्वात्तद्वेधो नाङ्गीकार्यः । यतः पितुर्जनकस्य सुतसम्बन्धिनं वेधं नाहुः । सुतस्यापि पितृसम्बन्धिनं वेधं नाहुः । तथा खयुगे जन्मराशेर्दशमे सूर्यः शुभश्चतुर्थस्थानस्थितश्चेदन्ये ग्रहाः शनिवर्जिताश्च स्युस्तदा विद्ध इत्येवं श्लोकत्रयं सम्यग्व्याख्येयम् । तथा अग्निनन्दे तृतीयनवमयोः, शिवाक्षयोरेकादशपञ्चमयोः सूर्यः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । उक्तञ्च नारदेन—'शुभोऽर्को जन्मतस्त्र्यायदशषष्ठस्तु विध्यते । जन्मतो नवपञ्चाम्बुव्ययगैर्व्यार्किभिस्तदा ॥' भौमेति । भौमशनी तमोराहुश्चैते ग्रहाः स्वजन्मराशितः रसाङ्कयोः षणवस्थानयोः क्रमाच्छुभा विद्धाश्चेत्यर्थः ।

---

१. बहुषु पुस्तकेषु "नवांशे द्विगुणे शिवाहौ" इत्यपि पाठो दृश्यते ।

परन्तु शनेः सूर्यवेधो नास्तीत्युक्तमेवेति । यदाह वसिष्ठः—'त्रिषडेकादशसहितो धरासुतो रिःफधर्मसुतसंस्थैः । दिनकरतनयोऽपि शुभो न विध्यते खेचरैर्विनोष्णकरम् ॥' इति । शनिवद्राहुर्ज्ञेय इति वचनाद्राहोरप्येवमेवैष विचारः । राहोरुपलक्षणत्वात्केतोरपि । उक्तञ्च शाङ्र्गधरेण—'राहुकेतुफलं सर्वं मन्दवत्कथितं बुधैः । वेधोऽपि तद्वदेवोह्यो वामवेधस्तथैव च ॥' अथ चन्द्र इति । जन्मराशितः अम्बराब्धौ दशमचतुर्थयोः स्थानयोः, गुणनन्दयोस्तृतीयनवमयोः, लाभाष्टमे एकादशाष्टमयोः, आद्यशरे प्रथमपञ्चमयोः, रसान्त्ये षष्ठद्वादशस्थानयोः, नगद्वये सप्तमद्वितीययोः स्थानयोश्चन्द्रः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः ।

ज्ञशशिनोः परस्परं वेधो न

चन्द्रस्य बुधवेधो नास्ति । उक्तञ्च नारदेन—'विध्यते जन्मतो नेन्दुर्द्यूनाद्यायारिखत्रिषु । स्वेष्वष्टान्त्याम्बुधर्मस्थैर्विबुधैर्जन्मतः शुभः ॥' इति । ज्ञ इति । जन्मराशेर्द्विशरे द्विपञ्चमयोः, अब्धिरामे चतुर्थतृतीययोः, रसाङ्कयोः षष्ठनवमयोः, नागविधौ अष्टमप्रथमयोः, खनागे दशमाष्टमयोः, लाभव्यये एकादशद्वादशयोः स्थानयोर्ज्ञो बुधः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । परं त्वत्र चन्द्रवेधो नास्ति । यदाह नारदः—'ज्ञः स्वाब्ध्यर्यष्टखायेषु जन्मतश्चेन्न विध्यते । सुतत्र्यङ्काद्यष्टमान्त्यसंस्थितैरिन्दुजः शुभः ॥' इति । देवगुरुरिति । जन्मराशितः शराब्धौ पञ्चमचतुर्थयोः, द्वचन्त्ये द्वितीयद्वादशस्थानयोः, नवांऽशे नवमदशमयोः स्थानयोः, द्विगुणे द्वितीयतृतीययोः, शिवाग्नौ एकादशतृतीययोः, देवगुरुर्बृहस्पतिः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । उक्तञ्च नारदेन—'जन्मतः स्वायगोक्षाद्रिष्वन्त्याष्टखजलत्रिगैः । जन्मराशेर्गुरुः श्रेष्ठो ग्रहैर्यदि न विध्यते ॥' इति । शुक्र इति । जन्मराशेः कुनागे प्रथमाष्टमयोः, द्विनगे द्विसप्तमयोः, अग्निरूपे तृतीयप्रथमयोः, वेदाम्बरे चतुर्थदशमयोः, पञ्चनिधौ पञ्चमनवमयोः, गजेषौ अष्टमपञ्चमयोः नन्देशयोर्नवमदशमयोः, भानुरसे द्वादशषष्ठयोः, शिवाग्नौ एकादशतृतीययोः स्थानयोः शुक्रः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । यदाह नारदः—'जन्मभादासुताष्टाङ्कान्त्यायेष्विष्टो न विध्यते । भार्गवो मृत्युसप्ताद्यस्याङ्केष्वीशारिरामगैः ॥' इति । आसुतेत्यभिविधावाङ् । स तेनान्त्याभिविधिरिति । तेन प्रथमद्वितीयतृतीयपञ्चमानां ग्रहाणामित्यर्थः । इदमत्राकूतम् । 'सूर्यो रसान्त्य' इत्यादौ प्राक्पठितेषु स्थानेषु विद्यमानः स स ग्रहः शुभदः । शुभस्थानव्यतिरिक्ताखिलस्थानेषु विद्यमानः स ग्रहोऽशुभफलदाता । अत एवाह श्रीपतिः—'सर्वे लाभगृहस्थिताश्च खरिपुष्वर्कः कुजार्की त्रिषट्प्राप्तौ साद्यखमन्मथारिषुशशीखास्त्तारिवर्ज्यं भृगुः । धीधर्मास्तधनेषु वाक्पतिरिति स्वाष्टाम्बुखस्थो बुधः श्रेष्ठो जन्मग्रहाद्विगोचरविधौ विद्धो न चेत्स्याद् ग्रहैः ॥' इति । अर्थादेवानुक्तस्थानेष्वशुभः स स ग्रहः ।

अत्र ग्रहाणां विहितनिषिद्धस्थानफलानि विधिरत्ने—

तत्र रविः

'स्थानं जन्मनि नाशयेद्दिनकरः कुर्याद् द्वितीये भयं,
दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिबुके मानक्षयं यच्छति ।

दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा षष्ठोऽर्थहा सप्तमे,
पीडामष्टमगः करोति पुरुषे कान्तिक्षयं धर्मगः ॥
कर्मसिद्धिजनकस्तु कर्मगो वित्तलाभकृदथायसंस्थितः ।
द्रव्यनाशजनितां महापदं यच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥'

चन्द्रः

'जन्मन्यन्नं दिशति हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये दद्याद् द्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थे ।
कार्ये नाशं तनयगृहगो वित्तलाभं च षष्ठे द्यूने द्रव्यं युवतिसहितं मृत्युसंस्थोऽपमृत्युम् ॥
नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् ।
विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतस्तु रुजं धनसङ्क्षयम् ॥'

भौमः

प्रथमगृहगतः क्षोणीसूनुः करोत्यरिजं भयं क्षपयति धनं वित्तस्थाने तृतीयगतोऽर्थगः ।
अरिभयमतः पातालेऽर्थान्क्षिणोति हि पञ्चमो रिपुगृहगतः कुर्याद्वित्तं रुजं मदनस्थितः ॥
जनयति निधनस्थः शत्रुबाधां धराजो दिशति नवमसंस्थः कायपीडामतीव ।
शुभमपि दशमस्थो लाभगो भूरिलाभं व्ययभवनगतोऽसौ व्याध्यनर्थार्थनाशान् ॥'

बुधः

'बुधः प्रथमगो भयं दिशति बन्धमर्थं धने धनं रिपुभयान्वितं सहजगश्चतुर्थोऽर्थगः ।
अनिर्वृतिकरो भवेत्तनयगोऽरिगः स्थानदः करोति मदनस्थितो बहुविधां शरीरव्यथाम् ॥
अष्टमे शशिसुते धनवृद्धिं धर्मगस्तु महतीं तनुपीडाम् ।
कर्मगः सुखमथायगतोऽर्थं द्वादशे भवति वित्तविनाशः ॥'

गुरुः

'भयं जन्मन्यार्यो जनयति धनस्थोऽर्थमतुलं तृतीयेऽङ्गक्लेशं दिशति च चतुर्थेऽर्थविलयम् ।
सुखं पुत्रस्थाने रुजमपि च कुर्यादरिगृहे गुरुर्द्यूने पूजां धननिचयनाशं न निधने ॥
धर्मगतो धनवृद्धिकरः स्याद्वित्तहरो दशमेऽमरपूज्यः ।
स्थानधनानि ददाति स चाये द्वादशगस्तनुमानसपीडाम् ॥'

शुक्रः

'जन्मन्यरिक्षयकरो भृगुजोऽर्थदोऽर्थे दुश्चिक्यगः सुखकरो धनदश्चतुर्थः ।
स्यात्पुत्रगस्तनयगोऽरिगतोऽरिवृद्धिं शोकप्रदो मदनगो निधनेऽर्थदाता ॥
जनयति विविधाम्बराणि धर्मे न सुखकरो दशमस्थितस्तु शुक्रः ।
धननिचयकरः स लाभसंस्थो व्ययभवनेऽपि धनागमं करोति ॥'

शनिः

'वित्तभ्रंशं रुगार्तिं दिनकरतनये जन्मराशिं प्रपन्ने
वित्तक्लेशं द्वितीये धनहरणकृतिं वित्तलाभं तृतीये ।
पाताले शत्रुवृद्धिं सुतभवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं
षष्ठे स्थानेऽर्थलाभं जनयति मदने दोषसङ्घातमार्किः ॥

शरीरपीडां निधने च धर्मे धनक्षयं कर्मणि दौर्मनस्यम् ।
उपान्त्यगो वित्तमनर्थमन्त्ये शनिर्ददातीत्यवदद्वसिष्ठः ।।'

राहु-केतू

'राहुर्जन्मगतो भयं च कलहं सौभाग्यमानक्षयं
वित्तभ्रंशमहासुखं नृपभयं चार्थक्षयं यच्छति ।
सन्तापं कलहं च वित्तमधिकं शीघ्रं विनाशं नृणां
केतोस्तत्फलमेव राशिषु वदेच्छंसन्ति गर्गादयः ।।'

ऋक्षराशिधिष्ण्यस्था वक्रिमश्च क्रमेणैष्यप्राग्राशिफलदा

एतच्च शुभाशुभफलं ग्रहा ऋक्षसन्धिगतास्तथा राशिसन्धिगता एष्यराशेः फलं ददाति, वक्रिणस्तु प्राग्राशेरित्याह कमलासनः—'ऋक्षसन्धिगताः खेटा राशिसन्धिगता ग्रहाः । एष्यराशेः फलं दद्युर्वक्री तद्विपरीतकम् ।।' इति । राशिग्रहणं नक्षत्रस्याप्युपलक्षणम् । वसिष्ठोऽपि—भवनान्त्यगताः स्वधिष्ण्यं यदन्तगताश्च गगनचराः । दद्युः परभवनफलं प्राग्भवनफलं च वक्रिताश्चैते' ।। इति । अस्यार्थः—ऋक्षं नक्षत्रं तस्य सन्धिः । एकस्मान्निर्गत्यापरत्र सङ्क्रमणं सन्धिः । एवं राशिसन्धिश्च । तत्र सन्धिज्ञानम्—'देवद्वयङ्कर्तवोऽष्टाष्टौ नाड्योऽङ्काः खनृपाः क्रमात् । वर्ज्याः सङ्क्रमणेऽर्कादेः प्रायोऽर्कस्यातिनिन्दिताः ।।' इति विवाहप्रकरणे वक्ष्यति ग्रन्थकृत् । सङ्क्रमणकाल एव सन्धिकालः सर्वेषां ग्रहाणाम् । 'षष्टिघ्नबिम्बं ग्रहभुक्तिभक्तम्' इत्यादिना भास्करेणोक्तत्वात् । तदेतदस्माभिः सङ्क्रान्तिप्रकरणे सप्रपञ्चं निरूपितं तत एवावधार्यताम् । तत्र सूर्यादिग्रहाः 'देवद्वयङ्के'ति पद्योक्तार्धघटिकोपलक्षिते नक्षत्रादौ राश्यादौ वा स्थिता जिगमिषितस्य नक्षत्रस्य राशेर्वा फलं प्रयच्छन्ति । वक्रिणस्तु पूर्वोक्तलक्षणोपलक्षिते नक्षत्रादौ राश्यादौ वा स्थिता भुक्तस्य नक्षत्रस्य राशेर्वा फलं ददति ।

अथ वक्रातिचारयोः फलदानदिनसङ्ख्या

तत्र भौमाद्या ग्रहा वक्रातिचारयोः प्राग्राशिफलं कियन्ति दिनानि प्रयच्छन्तीत्याह वसिष्ठः—'दशदिवसं पञ्चदिनं त्रिपक्षमतिचारवक्रयोर्दद्युः । भौमाद्याः पञ्चदिनं प्राग्राशिफलं च पञ्चमासांश्च ।।' इति । भौमाद्याः स्वगत्या यावता कालेन राशिं जहति न ततोऽल्पे न्यूनाधिकभावेन स चारः । यदा चारसमये राशिं जहति सोऽतिचारः । वक्रं प्रसिद्धमेव ।

वेधविचारः

अथ वामवेधं शुक्लपक्षे चन्द्रबलं चोपजात्युत्तरार्द्धेनाह—दुष्टोऽपीति । दुष्टोऽपि स्वजन्मराशेः सकाशादनिष्टस्थानस्थितोऽपि खेटो विपरीतवेधाद् वामवेधाच्छुभः शुभफलदाता । अयमर्थः—तेषु षष्ठदशमतृतीयैकादशेषु स्थितः सूर्यः शुभफलदाता । तद्भिन्नान्यष्टौ स्थानान्यशुभान्येव । तत्र द्वादशचतुर्थनवमपञ्चमाख्येष्वनिष्टस्थानेषु स्थितः सूर्यस्तथैवानिष्टफलदः स्यात् । यदा प्राक्पठितैः क्रमेण षष्ठादिस्थानस्थितैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्न विद्धः, यदा तु विद्धस्तदा शुभफलदोऽपि षष्ठादिस्थाने शुभदो नैव स्यात् ।

अन्येषु स्थानेषु प्रथमद्वितीयसप्तमाष्टमेषु स्थितः सूर्यो निष्फलदो नैव। एवं चन्द्र-बुधयोः षडेव विरुद्धस्थानानीति क्रमवेधवामवेधौ स्याताम्। भौमस्य तु त्रीण्येव तृतीयदशमैकादशस्थानानि शुभतराणि। अन्यान्यशुभान्येव। तत्र नवमपञ्चमद्वादश-स्थानस्थितभौमस्याशुभस्य क्रमेण षष्ठैकादशतृतीयस्थानस्थैर्ग्रहैर्वामवेधेन शुभत्वमेव। अन्येष्वशुभस्थानस्थितेष्वशुभ एव भौमः। एवं शनिराहुकेतवो ध्येयाः। गुरोरप्येव-मेव। तत्र तु प्रथमषष्ठस्थानस्थो गुरुः शुभ एव। शुक्रस्य तु नवस्थानानां शुभत्वात् तद्व्यतिरिक्तानि त्रीणि षष्ठसप्तमदशमस्थानान्यशुभानि। तेषामेव क्रमेण द्वादशद्वितीय-चतुर्थस्थानस्थग्रहजनितवामवेधेन शुभत्वमेव। अन्येषां तूत्तरपठितस्थानानां शुभत्वादेव न वामवेधविचारार्हत्वमिति परिच्छिन्नोऽर्थः। यदाह कश्यपः—अपविद्धो ग्रहः कश्चिन्न ददाति शुभं फलम्। वामवेधविधानेन त्वशुभोऽपि शुभप्रदः॥ अतस्तद् द्विविधं मूलं विचार्यैव फलं वदेत्॥'- वसिष्ठोऽपि—'वेधसमन्वितखचराणां प्रदिशन्त्यसत्फलं किञ्चित्। व्यत्ययवेधविधानादपि शुभदास्तेऽशुभप्रदाः सततम्॥'' इति। व्यत्ययवेधो वामवेधः। द्विकोण इति। सिते शुक्लपक्षेऽब्जश्चन्द्रो द्विकोणे द्वितीयनवमपञ्चमस्थानेषु स्थितः शुभदः। अत्रापि क्रमेण षष्ठाष्टमचतुर्थस्थानस्थितैर्बुधवर्जितैर्ग्रहैर्यदि न विद्ध इत्यपि ध्येयम्। उक्तञ्च नारदेन—'शुक्लपक्षे शुभश्चन्द्रो द्वितीयनवपञ्चमैः। रिपु-मृत्यम्बुसंस्थैर्न विद्धो हि गगनेचरैः॥' इति। यदि विध्यते तदाऽशुभफलद एव॥१-४॥

हिन्दी—सूर्य छठे-बारहवें, दशवें-चौथे, तीसरे-नवें, ग्यारहवें-पाँचवें स्थान में क्रम से शुभ और विद्ध होता है, अर्थात् मनुष्य की जन्मराशि से छठवीं राशि में सूर्य हो तो शुभ फल देनेवाला होता है। यदि १२वीं राशि में शनि को छोड़कर कोई अन्य ग्रह स्थित हो तो सूर्य विद्ध हो जाता है, अर्थात् छठवें स्थान का सूर्य उस मनुष्य को शुभफल न देकर अशुभ फल देने वाला हो जाता है। ऐसे ही १०वीं राशि पर सूर्य शुभ, यदि चौथी राशि पर शनि के अतिरिक्त कोई ग्रह हो तो विद्ध हो जाता है। एवं तीसरे शुभ-नवमस्थ ग्रह से विद्ध, ११वें शुभ-पंचमस्थ ग्रह से विद्ध हो जाता है।

मंगल, शनि और राहु ये ३ ग्रह, छठी राशि पर शुभ होते हैं, यदि नवीं राशि पर कोई ग्रह हो तो विद्ध हो जाते हैं। यहाँ शनि-सूर्य का वेध नहीं होता है। एवं ११वें शुभपंचमस्थ ग्रह से विद्ध, तीसरे शुभ बारहवीं राशि पर स्थित ग्रह से विद्ध हो जाते हैं।

चन्द्रमा जन्मराशि से १०वें शुभ-चतुर्थस्थ ग्रह से विद्ध; तीसरे शुभ-नवमस्थ ग्रह से विद्ध; ११वें शुभ-आठवें स्थित ग्रह से विद्ध; जन्मराशि का शुभ-पाँचवे स्थित से विद्ध; ६वें शुभ-द्वादशस्थ ग्रह से विद्ध; ७वें शुभ-द्वितीयस्थ ग्रह से विद्ध हो जाता है (यहाँ चन्द्र-बुध का वेध नहीं होता है)।

बुध दूसरे शुभ—५वें से विद्ध, चौथे शुभ—३ रे से विद्ध, ६ठे शुभ—९मस्थग्रह से विद्ध; ८वें शुभ—जन्मराशि पर कोई ग्रह हो तो विद्ध, १०वें शुभ-आठवें से विद्ध, ११वें शुभ—बारहवें स्थित ग्रह से विद्ध हो जाता है (यहाँ भी चन्द्र-बुध का वेध नहीं होता है)।

बृहस्पति ५—४, २—१२, ९—१०, ५—३, ११—३ स्थानों में क्रमशः शुभ और विद्ध होता है।

शुक्र १—८, २—७, ३—१, ४—१०, ५—९, ८—५, ९—११, १२—६, ११—३ स्थानों में क्रम से शुभ और विद्ध होता है।

यहाँ वेध-विचार में पिता-पुत्र का वेध नहीं होता है। जैसा कि पहले (सूर्य-शनि का चन्द्र-बुध का) कहा जा चुका है। दुष्ट ग्रह भी विपरीत वेध से शुभ हो जाता है। सूर्य ६वीं राशि पर शुभ १२वीं राशि से विद्ध होता है, किन्तु जिस स्थिति में इससे उलटा हो अर्थात् १२वें स्थान में अशुभ होता है तो छठे स्थान में कोई ग्रह हो तो १२वें का अशुभ फल न देकर शुभदायक हो जाता है। इसी भाँति ग्रहों के जो शुभ और विद्ध स्थान बतलाये गये हैं, उनमें विद्धस्थान पर ग्रह रहता है तो अशुभ फलदायक होता है, परन्तु उस विद्धस्थान का जो शुभस्थान है, यदि उसमें कोई ग्रह रहता है तो शुभस्थानस्थ ग्रह के अशुभत्व के विपरीत अर्थात् शुभफल हो जाता है।

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की दूसरी, पाँचवीं एवं नवम राशि पर शुभ होता है, यदि छठे, आठवें एवं चौथे स्थान में स्थित किसी ग्रह से विद्ध न हो ॥ १–४ ॥

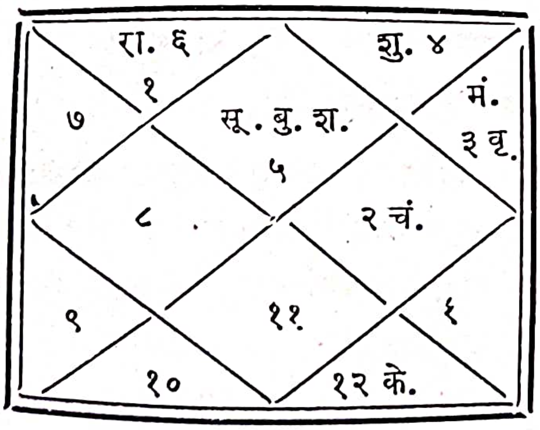
विशेष—अन्य विवरण पीयूषधारा में देखिए।

	सूर्य				चन्द्र						शुक्ले चन्द्रस्य विशेषः			भौ. श. रा. के.		
शुभ	६	१०	३	११	१०	३	११	१	६	७	२	९	५	६	११	३
वेध	१२	४	९	५	४	९	८	५	१२	२	६	८	४	९	५	१२

	बुध						गुरु					शुक्र								
शुभ	२	४	६	८	१०	११	५	२	९	२	११	१	२	३	४	५	८	९	१२	११
वेध	५	३	९	१	८	१२	४	१२	१०	३	३	८	७	१	१०	९	५	११	६	३

उदाहरण—

२०३४ जन्माष्टमी चक्र



भीमा की राशि धनु है—

सूर्य—धनुराशि से नवम में (विद्धस्थान में) अशुभफलदायक है, उसका ३रा स्थान शुभद है, उसमें कोई ग्रह नहीं है। अतः सूर्य अशुभफलप्रद हुआ।

चन्द्र—धनु से छठे शुभराशि पर है, विद्धस्थान १२वें में कोई ग्रह नहीं है, अतः शुभदायक है।

मंगल—७वीं राशि (शुभ–विद्ध से भिन्न स्थान) में होने से अशुभफलदायक है।

बुध—नवीं राशि (विद्धस्थान) में है, शुभस्थान में स्थित चन्द्रमा से भिन्न होने से शुभद होना चाहिए था, किन्तु पिता-पुत्र का वेध नहीं होता, अतः अशुभफलदायक ही रहा है।

गुरु—७वें स्थान पर (न शुभ में और न विद्धस्थान में) है, अतः अशुभफलदायक है।

शुक्र—८वीं राशि पर है और ५वीं विद्ध राशि पर कोई ग्रह नहीं है, अतः शुभफलदायक है।

शनि—९वीं राशि (न शुभ और न अशुभ) पर है, अतः अशुभ फल देने वाला है।

राहु—१०वीं राशि (शुभ-विद्ध-विहीन-राशि) पर है, अतः अशुभफलदायक है।

केतु—भी अशुभफलदायक है।

अतः भीमा के नाम से इस समय सूर्य, मंगल, बुध, गुरु, शनि, राहु, केतु अशुभ और चन्द्रमा, शुक्र शुभफलदायक है।

अथ द्विविधवेधे मतद्वयमुपजात्याऽऽह—

स्वजन्मराशेरिह वेधमाहुरन्ये ग्रहाधिष्ठितराशितः सः।
हिमाद्रिविन्ध्यान्तर एव वेधो न सर्वदेशेष्विति काश्यपोक्तिः ॥ ५ ॥

स्वजन्मेति। इह द्विविधवेधविधावन्ये नारदादयः स्वजन्मराशेः सकाशाद् द्विविधं वेधं क्रमिकं वेधं वामवेधं चाहुः। तथा चोभयत्रापि नारदेन 'जन्मत' इत्युक्तम्। अथ कश्यपादिमतमुच्यते—स पुनर्द्विविधोऽपि वेधो ग्रहाधिष्ठितराशितो ज्ञेयः। यथा सूर्यो जन्मराशेः सकाशात्षष्ठस्थितः शुभः। स सूर्यः स्वाक्रान्तराशितो द्वादशस्थानस्थितैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्न विद्धः। तथा सूर्यो जन्मराशिद्वादशस्थोऽपि नेष्टः सः सूर्यसङ्क्रान्तराशितः षष्ठस्थितैश्शनिवर्जितैर्ग्रहैर्विद्धश्चेत्तदा शुभफलद इत्यर्थः।

कश्यपमते हिमाद्रिविन्ध्यान्तर एव द्वावपि वेधौ

अथैतस्यैव द्विविधवेधस्य देशविशेषविषयत्वमुच्यते। हिमाद्रिविन्ध्यनामानौ पर्वतौ प्रदेशविशेषावस्थित्या प्रसिद्धौ। तयोरन्तरालवर्तिन्येव देशे स द्विविधोऽपि वेधो ज्ञेयः, न सर्वदेशेषु। हिमाद्रिविन्ध्यान्तरालबहिर्भूतसर्वदेशेषु द्विविधोऽपि वेधदोषो नास्तीति कश्यपस्य मुनेरुक्तिर्वचनमस्ति। यदाह कश्यपः—'ज्ञातव्यं जन्मराशेस्तु निखिलं यद्बलाबलम्। हिमाद्रिविन्ध्ययोर्मध्ये वेधजं तद्ग्रहालयात् ॥' इति। वयं तु 'सूर्यो रसान्त्य' इति क्रमिको वेधो जन्मराशित एव ज्ञेयः। वामवेधस्तु अधिष्ठितराशित इति ब्रूमः। तदाह गुरुः—'जन्मतः क्रमवेधः स्याद्वामवेधो ग्रहालयात्' इदमपि हिमाद्रिविन्ध्यान्तरविषयमेव। एतज्ज्ञानं दुर्घटमित्याहतुर्नारदकश्यपौ—'अज्ञात्वा द्विविधं वेधं यो ग्रहज्ञो बलं वदेत्। स मृषावचनाभाषी हास्यं याति जनैः सदा ॥' इति।

ग्रहदौष्ट्ये यात्रादिकं न कार्यम्

एवम्प्रकारेण गोचरबलं ज्ञात्वा ग्रहदौष्ट्ये यात्रादिकं न कार्यम्। तदुक्तं श्रीपतिना—
'अकालचर्यां मृगयां च साहसं सुदूरयानं गजवाजिवाहनम्।
गृहे परेषां गमनं विवर्जयेद् ग्रहेषु राजा विषमस्थितेषु हि ॥'

ग्रहदौष्ट्ये शान्तिः करणीयैव

अत एव तत्र ग्रहशान्तिर्विधेया। यदाह नारदः—'ग्रहेषु विषमस्थेषु शान्तिं यत्नात् समाचरेत्। हानिवृद्धी ग्रहाधीने तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥' इति। विपर्यये चानिष्टमित्याह वसिष्ठः—'ग्रहेषु विषमस्थेषु यः शान्तिं न करोति सः। अर्थहानिञ्च मरणं चाश्नुते सर्वसङ्कटम् ॥' इति।

शान्तिप्रकारस्तत्समयश्च

स च शान्तिर्वसिष्ठसंहितोक्तप्रकारेण मत्स्यपुराणोक्तप्रकारेण वाऽनुष्ठेया। तत्र शान्तिकालमाह वसिष्ठः—'मासि मास्ययने चैव चन्द्रसूर्यग्रहेऽपि वा। विषुवत्रिकसङ्क्रान्तौ

व्यतीपाते दिनक्षये ॥' इति । 'सौम्येक्षितेऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः । निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रुणा चावलोकितः । नीचराशिगतः स्वस्य शत्रुक्षेत्रगतोऽपि वा । शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तङ्गतोऽपि वा ॥' इत्येतादृशस्थले दुष्टत्वाभावादेव शान्त्यभाव इति फलितं भवति ॥ ५ ॥

हिन्दी—यह वेध जन्मराशि से होता है, ऐसा नारद आदि आचार्यों ने कहा है। अन्य कश्यप आदि आचार्य ग्रहाधिष्ठित राशि से ग्रहवेध मानते हैं। वह वेध हिमाचल और विन्ध्याचल के बीच वाले प्रदेश (उत्तर भारत) में ही होता है, ऐसा कश्यपजी का कथन है ॥ ५ ॥

विशेष—जिस मास में ग्रह शुभफलदायक न हो, उस मास में यात्रा नहीं करनी चाहिए और ग्रहदोष की निवृत्ति के लिये ग्रहशान्ति और आगे लिखे हुए रत्नों का धारण, औषधयुक्त जल से स्नान, ग्रह, जप, पाठ, दान, हवन आदि कर्म करना चाहिए, ऐसा पूर्वजों का आदेश है। यथा—ज्योतिःप्रकाशे—

'यथोक्तमौषधिस्नानं ग्रहविप्रार्चनं तथा ।
ग्रहानुद्दिश्य होमो वा त्रिधा शान्तिर्बुधैः स्मृता ॥'

रत्नमालायामपि—

'देव-ब्राह्मण-पूजनाद् गुरुवचः सम्पादनात् प्रत्यहं,
साधूनामभिभाषणाच्छ्रुतिरवाच्छ्रीमत्कथाऽऽकर्णनात् ।
सद्धोमाऽध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाज्जपाद्दानतो,
नः कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहाः पीडनम् ॥'

अथ गोचरप्रस्तावाद् ग्रहणनक्षत्रफलं ग्रहणीयराहुगोचरफलं ग्रहाणामशुभप्रतीकारं च दुष्टग्रहणदर्शननिषेधं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा
चिन्ता सौख्यकलत्रदौस्थ्यभृतयः स्युर्माननाशः सुखम् ।
लाभोपाय इति क्रमात्तदशुभध्वस्त्यै जपः स्वर्णगो-
दानं शान्तिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्यमाहुः परे ॥ ६ ॥

जन्मर्क्ष इति ॥ जन्मनक्षत्रे ग्रहे ग्रहणे सति निधनं मृतिः स्यात् । यदाह वसिष्ठः—'यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ । तज्जातानां भवेत् पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥' भार्गवीये विशेषोऽपि—'यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभङ्गं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत् ॥' इति । राज्यस्य नक्षत्रे अभिषेकनक्षत्रे यदा कदाचिद्राहुभुज्यमाननक्षत्रोपरागनक्षत्रमेकमेव तदाऽसन्दिग्धफलनिर्देशः । यदा तु नक्षत्रभेदस्तदीयरज्यमाननक्षत्रेष्वेव फलनिर्देशः । एवं राशिभेदेषूपरज्यमानराशितः । अस्य मते राहोर्दिग्देशकालावरणादिभेदाद् ग्रहणत्वमेव नास्ति । तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ—'दिग्देशकालावरणादिभेदे न वेधको राहुरिति ब्रुवन्ति' एतदुपपत्तिर्भास्करेण स्वपद्यैरेव निरूपिता । पितृचरणैश्च तोडरानन्दे राहुचारविलासे प्रपञ्चेनाभ्यधायि । परन्तु राहुसाहित्यं विना ग्रहणानयनस्य शरसंस्कृतिमानैक्यखण्डाद्यानयनविशिष्टस्यासुकरत्वादिति साहित्यविवक्षयैव राहोरुपरक्तत्वमुच्यते । अत एवोक्तं वाराहेण—'तस्मिन्काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुः । याम्योत्तरा शशिगतिर्गणिते ह्युपचर्यते तेन ॥' इति ।

जन्मराश्यादेः सूर्यचन्द्रोपरागयोः फलानि

अथ राशिफलमुच्यते—जनिभत इति । पञ्चम्यास्तसिल् । जन्मराशेरारभ्य द्वादशसु राशिषु ग्रहणे सति क्रमादनुक्रमेण घातादिफलं भवति । यथा जन्मराशौ ग्रहणे सति घातः शरीरपीडा, द्वितीयराशौ क्षतिः द्रव्यनाशः, तृतीयराशौ श्रीः लक्ष्मीः, चतुर्थराशौ शरीरपीडा, पञ्चमराशौ चिन्ता पुत्रादीनां, षष्ठराशौ सौख्यम्, सप्तमराशौ कलत्रदौस्थ्यं स्त्रीमरणम्, अष्टमराशौ मृत्युर्मरणम्, नवमराशौ माननाशः, दशमराशौ सुखम्, एकादशराशौ लाभः, द्वादशराशौ मृत्युः । आत्मन इति केचित् । द्रव्यस्येत्यपरे । इदं च फलं षण्मासपर्यन्तमनुक्तमपि ध्येयम् । तदुत्तरं हि ग्रहणान्तरसम्भवात् । उक्तं दैवज्ञमनोहरे—'घातं हानिमथ श्रियं जननभाद् ध्वस्ति च चिन्तां क्रमात्सौख्यं दारवियोजनं च कुरुते व्याधिं च मानक्षयम् । सिद्धिं लाभमपायमर्कशशिनोः षण्मासमध्ये ग्रहः ॥' इति । क्वचित्तु स्थानान्त्य एव शुभमध्यमाधमा इत्युक्तमपि दैवज्ञमनोहरे । एतदुक्तं—'ग्रासात्तृतीयाष्टमगश्चतुर्थस्तथायसंस्थः शुभदः स्वराशिः । नवांशधीसप्तमगश्च मध्ये पूज्यो द्विषट्को दशमाद्यसंस्थः ॥' इति । अत्र वाक्ये ग्रासराशेर्गणनोक्ता । क्वचित् स्वराशेरपि, तद्वाक्यम्—'त्रिषड्दशायोपगते नराणां शुभप्रदं स्याद् ग्रहणं रवीन्द्वोः । द्विसप्तनन्देषु च मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं मुनयो वदन्ति' ॥ इति । अत्रावध्यपेक्षायां स्वजन्मराशेरित्यध्याहार्यमेव । अत्र ग्रहणीयराशेर्देशविशेषेण शुभफलानि वराहसंहितायामभिहितानि । तथा च फलं कूर्मोपदेशाद्वदेदिति वराहोक्तग्रहणीयनक्षत्रशुभफलानि स्वरोदयाभिहितकूर्मचक्रे पराशरसंहितायां चाभिहितानि । तथा मण्डलभेदेनाप्यशुभफलानि गर्गसंहितायामभिहितानि तानि सर्वाण्यपि पितृचरणकृततोडरानन्दे राहुचारविलासतोऽवधार्याणि नात्राप्रस्तुतं लिख्यतेऽस्माभिः ।

सूर्यचन्द्रोपरागयोररिष्टनिवृत्तये दानम्

अशुभसूचकग्रहणप्रतीकारमाह—तदशुभेति । तत्र सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणस्य सम्बन्धि यदशुभं दुष्टफलं तस्य ध्वस्त्यै नाशाय जपः स्वर्णगोदानं जपो गायत्र्यादीनां मन्त्राणाम् । स्वर्णं प्रसिद्धम्, गौः प्रसिद्धा भूमिर्वा । उपलक्षणत्वादन्येषां रूप्यादीनां यथाशक्ति दानं कार्यमिति शेषः । उक्तञ्च दैवज्ञमनोहरे—'इन्दौ सूर्ये यदि विधिवशात्सैंहिकेयावमर्दस्तद्राश्यानां भवति नियतं ग्रामपुंसां विनाशः । तस्माच्छान्ति मुनिभिरुदितां तत्तदालोकपूर्वां कुर्याद्दानादिभिरिह नृणां नाशमायात्यरिष्टम् ॥' इति । दानमपि तत्रैव—'सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत् ॥ सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः । उपरागोद्भवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् ।' दानमन्त्रश्च—'तमोमय ! महाभीम सोमसूर्यविमर्दन । हेमनागप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ॥' स्कन्दपुराणे—'गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः । ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेत् ॥' इति । किं चात्र देशविशेषः पात्रविशेषो द्रव्यविशेषश्च नापेक्षित इत्याह व्यासः—'सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वभूमिः कुरुक्षेत्रं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥' इति । तत्र स्नानदानादिकं कस्मिन्काले कर्त्तव्यमित्याह—'ग्रस्यमाने भवेत् स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ॥' इति ।

तस्मिन्काले जपादिकमपि विधेयम् । 'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्' इति शिवरहस्योक्तेः । आदिशब्दात्सुरार्चनमपि ।

अत्र जन्मनक्षत्रजन्मराश्योर्ग्रहणे शान्तिमाह वसिष्ठः

'यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ । तस्य व्याधिभयं घोरं जन्मराशौ धनक्षयः ॥
द्रव्यमन्त्रविधानेन तस्य दोषापनुत्तये । उपरागस्नानविधिं सम्यग्वक्ष्ये समासतः ॥
मण्डलं चतुरस्रं तु गोमयेन विलेपयेत् । गृहस्येशानदिग्भागे वर्णकैः समलङ्कृते ॥
स्थापयेच्चतुरः कुम्भांस्तत्र तान्सागरात्मकान् ।
सर्ववेदात्मकान् स्मृत्वा सर्वतीर्थात्मकाञ्छुभान् ॥
पल्लवोशीरसायुज्यशतौषधिसमन्वितान् । मृत्तिकाहेमरत्नेन दन्तगुग्गुलचन्दनैः ॥
पञ्चगव्यामृतभ्राजत्स्फटिकैः सर्षपाम्बरैः । शङ्खकुङ्कुमतीर्थाम्बुरोचनैः पद्मकैर्युतान् ॥
चत्वारः प्राङ्मुखा विप्राः प्रार्थयेयुः पृथक् पृथक् ।
अब्लिङ्गैर्वारुणैः सूक्तैः स्वस्तिवाचनपूर्वकैः ॥
तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसंयुतम् । एवं कृत्वा प्रयत्नेन स्नानकर्म समाचरेत् ॥
आमन्त्र्य नवभिर्मन्त्रैः कुम्भान्सङ्कल्पपूर्वकान् । एतानेव ततो मन्त्रान्स्वर्णपट्टे च संलिखेत् ॥
कर्त्तुः शिरसि तं बध्वा चाब्लिङ्गैर्वेदमन्त्रकैः । सुमन्त्रितैः कुम्भजलैः स्नाप्य नीराजयेत्ततः॥
दध्याज्यं प्रददेदेभ्यः शुक्लमाल्याम्बरः शुचिः ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः ॥
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनश्चन्द्रग्रहपीडां व्यपोहतु ॥
मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु ॥
यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः । यमश्चन्द्रोपरागस्य ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥
रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयानलसन्निभः । खड्गव्यग्रोऽतिकायश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु ॥
नागपाशधरो देवः सदा च नरवाहनः । वरुणोऽम्बुपतिश्चन्द्रग्रहपीडां व्यपोहतु ॥
प्राणरूपो हि लोकानां वायुः कृष्णमृगप्रियः । वायुश्चन्द्रोपरागस्य पीडामत्र व्यपोहतु ॥
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः । चन्द्रोपरागकलुषान्पीडां चापि व्यपोहतु ॥
योऽसाविन्दुधरो रुद्रः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि नाशयत्वथ शङ्करः ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि चराणि स्थावराणि च । ब्रह्मविष्ण्वर्कयुक्तानि तानि पापं दहन्तु मे ॥
आमन्त्रणे लेखने चाप्येते पूजनमन्त्रकाः । अर्चयित्वा पितॄन्देवान् गोभूस्वर्णवरादिभिः ॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् । न तस्य ग्रहपीडा स्याद्यानबन्धुधनक्षयः ॥
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् । सूर्यग्रहेऽप्येवमेव सूर्यनाम्ना विधीयते ॥'

इति वृद्धवसिष्ठप्रोक्ता ग्रहणशान्तिः समाप्ता । अत्र यद्यपि जन्मराशौ धनक्षय इत्युक्तम् । तत्र च दोषाल्पताप्रतिपादनेन शान्त्यकर्तव्यता प्रतीयते । तथापि प्राग्विलिखितबहुवचस्सु विरुद्धफलाभिधानादेवास्य जन्मशशिन्यपि ग्रहणे शान्तिर्विधेया । उभयानुवादेन शान्त्यभिधानात् । उक्तं च मत्स्यपुराणे—'यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्भवः । तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिविधानतः ॥' इति । अतो जन्मनक्षत्रजन्मराशिव्यतिरिक्ते विरुद्धे ग्रहणे शान्तिर्न विधेया, वचनाभावात् । किन्तु स्वविभवानुरूपं दानादि विधेयमिति तात्पर्यार्थः । सूर्यग्रहेऽप्येवमेवेति—'योऽसौ वज्रधरो देव

आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रकिरणः सूर्यो ग्रहपीडां व्यपोहतु' ॥ इत्युक्तदिशा चन्द्रपद-स्थाने सूर्यपदं पूर्वमन्त्रश्लोकेषु प्रयोज्यमित्यर्थः ।

दृष्ट एव सूर्यस्य शशिनश्चोपरागोऽरिष्टजनक इति

अथेदं ग्रहणं स्थानविशेषेणानिष्टजनकमित्युक्तं, तत्र किं ग्रहणं दृष्टमदृष्ट-मित्याह—अथो इति । उक्तञ्च—'जन्मसप्ताष्टरिःफाङ्कदशमस्थे निशाकरे । दुष्टोऽनिष्ट-प्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च ॥' इति । जन्मर्क्षे जन्मनक्षत्रे, निधनं वधतारा सप्तमी, अत्र दुष्ट इति पदश्रवणाद् दुष्टस्थानावस्थितो राहुः दुष्टः पुंसां दोषजनकः । यदा तु मेघाद्यावरणेन गृहमध्यावस्थितस्याचक्षुष्मतोऽपि पुंसो राहुदर्शनाभावे सत्यप्यरिष्टेऽरिष्टं नास्ति । एवं चान्धस्य यत्र कुत्राप्यवस्थितस्य गृहाद् बहिर्गन्तुमशक्नुवतो वृद्धातुरादेश्च सर्वारिष्टं स्नानादि वा नास्ति इति तेषामाशयः ।

स्नानप्रयोजकत्वम्

अत्रेदं कथ्यते । किमिदं ग्रहणं दृष्टमेव स्नानाद्यधिकारसम्पादकमुत मेघाद्यावरणेना-दृष्टमपि, कुतः ? उभयथा वचनोपलब्धेः । तथा हि वृद्धवसिष्ठः—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । सचैलं तु भवेत् स्नानं सूतकान्नं विवर्जयेत् ॥' इति । षट्त्रिंशन्मते—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रृतमन्नं विवर्जयेत् ॥' इति । श्रृतं पक्वम्, 'श्रृतं पाके' इति निपातनात् । यद्यपि तस्मिन् सूत्रे क्षीरहविषो-रेवेति महाभाष्यकृतोक्तम्, तथापि महामुनिप्रयोगादन्यस्मिन्नपि द्रव्य ओदनादौ पाक-सामान्यवद्वृत्तिः । विष्णुः—'राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम्' इति । शातातपः—'स्नानदानतपःश्राद्धमनन्तं राहुदर्शने' इति । एवमादीनि वचांसि दर्शनपदसहितान्यु-पलभ्यन्ते । अन्यथापि वसिष्ठः—'ग्रहणे सङ्क्रमे वापि न स्नायाद्यदि मानवः । सप्त-जन्मसु कुष्ठी स्याद् दुःखभागी च जायते ॥' इति । लिङ्गपुराणेऽपि—'चन्द्रसूर्यग्रहे स्नायात्सूतके मृतकेऽपि च । अस्नायी मृत्युमाप्नोति स्नायी पापं न विन्दति ॥' इति । एवमादीनि दर्शनपदानाक्रान्तानि वचांस्युपलभ्यन्ते । तत्र दर्शनवादिन आहुः । दर्शन-पदानाक्रान्तेषु वचस्सु ग्रहणस्य निमित्तत्वं च प्रतिपद्यते । 'ग्रहणे सङ्क्रमे वापि' इति निमित्तसप्तम्युपलम्भात् । ज्ञातमेव च ग्रहणं स्नानदानादिकं प्रति निमित्तं भवति । तज्ज्ञानापेक्षायां च राहुदर्शनपदोपेतवचनालोचनेन चाक्षुषज्ञानस्यैव निमित्तत्वम् । इतश्चाक्षुष एव ज्ञाने दर्शनस्य मुख्यत्वं ज्योतिःशास्त्रीयज्ञाने तु लक्षणाप्रसक्तिः । एवं सति मेघाच्छन्नग्रहणदिवसजातचन्द्रग्रहणरात्रिभवसूर्यग्रहणेषु न स्नानदानावधिकारः । तस्माद् ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानदानादिकं विधेयमित्यर्थः सम्पन्नो भवति । नैतत्सहृदयहृदय-ङ्गमम् । यतो वचनेषु राहुदर्शनग्रहपदयोः समानार्थकता नास्ति, कथम् ? 'अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिताः । शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥' इति । सूर्यसिद्धान्ते चन्द्रादिग्रहपातानामदृश्यतोक्ता । पातो राहुश्च पर्यायः । उक्तञ्च तत्रैव—'दक्षिणोत्तरयोरेव पातो राहुश्च रंहसा । विक्षेपत्येष विक्षेपश्चन्द्रादीनामपक्रमात् ॥' इति । केशवार्केणाप्युक्तम्—'पर्यायेण तु राहुपातयोर्नामिनी विदधुरेव तान्त्रिकाः' इति । अतो राहुदर्शनमेव गगनकुसुमायमानम् । ननु ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोश्छादको राहुर्दृश्यत

एव । अत एव 'राहुग्रस्ते निशाकरे' इत्यादिपुराणोक्तिः साधीयसीति चेन्न । 'भानोर्भार्घे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा । शशाङ्कपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके ॥' इत्युपक्रम्य 'छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् । भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥' इति । असौ भूच्छायास्य चन्द्रस्य च्छादको भवेदित्यर्थः । इति सूर्यसिद्धान्तोक्तः स्पष्ट एव छाद्यच्छादकभावोऽभिहितः ।

पौराणिकोक्तिविरोधपरिहारः

पुराणेन सह विरोधपरिहारस्तु—'दिग्देशकालावरणादिभेदान्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति । यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत्संहितावेदपुराणबाह्यम् ॥' इति पूर्वपक्षं विधाय ततो 'राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कम्' इत्यादिना 'तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्सर्वागमानामविरुद्धमेतत्'—इत्यन्तेन भास्कराचार्यैरेवोक्तः । तस्मिन्काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुरिति वराहेण चोक्तम् । तस्माद्राहुदर्शनं तु नास्त्येव । भवन्मते दर्शनं चाक्षुषमेवोच्यते नान्यत् । एवं सति राहोर्दर्शनं राहुदर्शनमिति तत्पुरुषोऽनुपपन्नः । अथ तु समीपलक्षकदर्शनशब्दमङ्गीकृत्य तदर्थः क्रियते । तदापि यस्य स्वरूपमेवानुपपन्नं तस्य सामीप्यं तु सुतरामिति बालैरप्येतद् बुध्यते । तस्माद्दर्शनशब्देन नोपरागो लक्ष्यते राहुदर्शनं राहूपरागस्तस्मिन् राहुदर्शने इति । अयमर्थः । राहुर्नाम पातः, तस्य सम्बन्धेन दर्शनमुपराग इति । न च राहुरेव लक्षणयोपरागपरः, तस्य दर्शनमिति पूर्वपक्षाभिमतार्थसिद्धिरिति वाच्यम् । लक्षणा त्वर्थान्तरासम्भवे सति वक्तव्या । 'अत्यन्तादर्शनं राहोस्तथा चात्यन्तदर्शने । प्रजापीडा विनिर्देश्या व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः ॥' इति विष्णुधर्मोत्तरादिवाक्येषु पदान्तरासन्निधानाद्राहुदर्शनेनोपरागो लक्ष्यते । इदं च राहोः पातनामकं ग्रहगतिरूपमर्थान्तरमस्तीत्यतो राहुदर्शनग्रहपातयोः समानार्थकतास्तीत्येवं च सिद्धमिति प्रागुक्तानां सर्ववचसां ग्रहणे स्नायादित्येव वाक्यार्थः फलितो भवति । किं च ग्रहणे चाक्षुषमेव दर्शनं विवक्षितं चेत्तदा 'नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कथञ्चन । नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्ये नभसो गतम् ॥' इत्युक्तोपरक्तसूर्यदर्शननिषेधो नोपपद्येत । नन्वयं निषेधः सूर्योपरागदर्शन एव न चन्द्रोपराग इति चेन्न । 'नाशुची राहुतारकम्' इत्यत्र राहुमात्रग्रहणाद्रविचन्द्रोपरागद्वयविषयकोपसंहारस्य युक्तत्वात् । अशुचे रजस्वलापतितादेर्ग्रहणं तु दोषाधिक्यसूचनार्थम् । यथा श्राद्धे कुलीनानां ब्राह्मणानामामन्त्रणे उक्ते अन्येषां निषिद्धत्वादेव कुण्डगोलकब्राह्मणानामामन्त्रणेऽसिद्धे पुनर्निषेधो दोषाधिक्यार्थमेव । 'भास्करालोकनाश्लीलपरिवादं विवर्जयेत्' इति स्मृतिवाक्यस्य तूद्यदस्तगाम्यादित्यदर्शनपरतया व्याख्यानस्य युक्तत्वात् । केचित्तु दर्शनादर्शनविषयकयोर्विध्योस्तुल्यबलत्वात्सकृद् दृष्ट्वा स्नायादिति व्याचख्युः । तच्चिन्त्यम् । 'जन्मसप्ताष्टरिःफाङ्कैः' इत्यादिना सामान्यतो निषिद्धस्योपरक्तदर्शनस्य पुनर्निषेधात्प्रागुक्तदिशा राहुदर्शनपदस्य राहूपरागलक्षकत्वेन तुल्यबलत्वाभावाच्च । तस्मादुपरक्तयोः सूर्याचन्द्रमसोर्यस्य कस्यापि दर्शननिषेधसत्त्वाद्, ग्रहणे च स्नानदानाद्युक्तेस्तज्ज्ञानं च ज्योतिःशास्त्रैकदेशगणितग्रन्थेभ्यो बुध्वा तस्मिन्काले स्नानदानादि विधेयमिति सिद्धान्तः । अत एव मेघाद्यावृतेऽप्युपरागे स्नानादिकं विधेयमेव ।

दिवा चन्द्रस्य रात्रौ रवेश्च ग्रहणे न स्नानादि

ननु गणितग्रन्थाधीनमुपरागज्ञानमेव चेत्स्नानादिप्रयोजकं तदा रात्रौ सूर्यग्रहणस्य दिवा चन्द्रग्रहणस्य जायमानत्वात्तदापि स्नानादिकं स्यात् । सत्यमेवैतत् । वचनात्तथा न क्रियते । तदुक्तं निगमे—'सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहो यदि । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित्' ।। इति । अत एव तादृशे ग्रहणे दृष्टेऽपि दौष्टयं नास्तीत्यपि सूच्यते । न चैतदभावे प्रतिषेधादित्यधिकरणे न पृथिव्यामग्निश्चेतव्यो नान्तरिक्षे न दिवीत्युदाहृतवाक्यवन्नित्यानुवाद इति वाच्यम् । विधिशेषत्वाभावात् । यथा पृथिव्यामग्निर्न चेतव्य इति निषेधविधिरस्ति तत्र नान्तरिक्षे न दिवीति दृष्टान्तो निषेधविधेः शेषस्तथात्र सूर्यग्रहो यदा रात्रावित्येतद्वाक्यस्य विधेः शेष इति । किञ्चैवं ब्रुवतस्तव मतेऽनर्थकमेव वाक्यं स्यात् । न चैतद्युक्तम् । अत एवाह जाबालिः—'सङ्क्रान्तेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः । चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरः ।।' इति । ग्रस्तस्यास्तमनपर्यन्तं दर्शनगोचरत्वात्तावान् कालः पुण्यकालो भवतीति माधवो व्याचख्यौ । तदुक्तं विश्वरूपनिर्णये—'दिवा चन्द्रग्रहो रात्रौ सूर्यपर्व न पुण्यदम् । सन्धिस्थं पुण्यवज्ज्ञेयं यावद्दर्शनगोचरम्' ।। इति । अन्ये तु मेघावृते तदनावृते चोपरागे गणितागतस्थितिघटिकाः पुण्यकाल इत्याहुः । दर्शने त्वेवंविधे निर्णये भुजवृत्तादुपरिस्थितत्वमेव विवक्षितम् । तदाह वसिष्ठः स्वसिद्धान्ते—'सूर्यस्यादर्शनं रात्रिर्दिनं तद्दर्शनात्मकम् । भुजवृत्तादुपरि च स्थितोऽर्को दर्शनं स्मृतम् ।।' इति । अर्क इत्युपलक्षणं चन्द्रादिग्रहनक्षत्राणाम् । आकाशप्रदेशः समन्ताद् भूसंलग्न इव यत्र भाति स प्रदेशो भुजशब्दवाच्यः । अत एव विष्णुधर्मोत्तरे—'अहोरात्रं न भोक्तव्यं सूर्यचन्द्रग्रहो यदा । मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्' इति । ग्रस्तास्ते भृगुः—'ग्रस्तगौ वास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि । तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाऽभ्यवहरेन्नरः ।।' इत्यनयोर्वाक्ययोर्दर्शनोदयशब्दौ भुजवृत्तोपरि स्थितत्वोपलक्षकौ । अन्यथा मेघाद्यावरणेन परदिवसेऽपि दर्शनाभावे उपवासः प्रसज्येत । तथा च यत्र स्पर्शकाले ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानं विहितं तत्रान्तरा मेघावरणात्सूर्यचन्द्रयोर्दर्शनाभावो दिवसद्वयं त्रयं वा स्यात्तत्राप्युपवासप्रसङ्गः । न च सर्वे शिष्टास्तथाऽऽचरन्ति, तस्माद्दर्शनार्थमभ्युपेत्य शास्त्रीयज्ञानपरतयैव व्यवस्था कर्तव्या । तस्यां च सत्यां पूर्वोक्तरीत्या च मेघानावृतेऽप्युपरागे तमदृष्ट्वैव प्रशस्तचक्षुषा अन्धेन च गन्तुमशक्नुवद्भिर्वृद्धातुरैश्च स्नानदानादिकं विधेयमिति फलितोऽर्थः । अत एव भागवते रविग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानाद्यर्थं मिलितानां पाण्डवीयलोकानां मध्ये धृतराष्ट्रोऽपि परिगणित इति शिष्टाचारोऽप्यस्ति । एवञ्च सत्यरिष्टजनकत्वाभावेऽपि ग्रहणदर्शननिषेधः किं पुनरनिष्टजनकत्वे । तस्माज्जन्मशशाङ्केत्यादिपद्यं निर्मूलत्वाद्युक्त्यसहत्वाच्चोपेक्ष्यम् । किं च प्रत्यक्षोपलभ्यमानवसिष्ठमत्स्यपुराणादिवाक्येषु दर्शनपदाभावाच्च । अत एव मूले परे इति पदं प्रयुक्तम् । शान्तिस्तु दर्शनाभावेऽपि विधातुमुचिता । यतोऽरिष्टयोगानां स्वरूपवतामेवारिष्टजनकत्वमस्ति । अन्यथा ग्रहवेषस्योत्पातादिसूचितारिष्टनिवृत्तिहेतुः शान्तिर्दर्शनाभावे न विधीयते इत्यलमतिप्रसक्तानुप्रसक्तेन ।। ६ ।।

हिन्दी—जिसके जन्मनक्षत्र पर सूर्य या चन्द्र का ग्रहण होता है, उसका मरण होता है। (मरण का भेद श्लोक २-२५ की टिप्पणी में देखिए)। जन्मराशि से बारह राशियों में ग्रहण हो तो क्रम से घात आदि फल होते हैं। अर्थात् जन्मराशि पर सूर्य या चन्द्र ग्रहण लगे तो घात (शरीरबाधा) होती है। दूसरी राशि पर ग्रहण हो तो क्षति (धनहानि), तीसरी राशि पर ग्रहण हो तो लक्ष्मीप्राप्ति, चौथी पर पीड़ा, पाँचवीं पर चिन्ता, छठी पर सौख्य, सातवीं राशि पर ग्रहण लगे तो स्त्री के स्वास्थ्य की हानि, आठवीं पर मृत्यु, नवीं पर मानहानि (जनता में अपमान), दशवीं पर सुख, ग्यारहवीं पर लाभ और बारहवीं राशि पर ग्रहण लगे तो हानि (व्यय की अधिकता, फजूलखर्ची आदि) होती है। ग्रहणदर्शनजनित अशुभ फल की शान्ति के लिये जप, स्वर्णदान, गोदान और शान्ति करनी चाहिए। अन्य आचार्य कहते हैं कि अशुभ फल देने वाले ग्रहण को देखना ही नहीं चाहिए ॥ ६ ॥

स्पष्टबोधार्थकोष्ठकः

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
फल	घात	क्षति	श्री	व्यथा	चिन्ता	सौख्य	कलत्र दौस्थ्य	मृत्यु	माननाश	सुख	लाभ	हानि

अथ चन्द्रबले विशेषमनुष्टुभाह—

पापान्तः पापयुग्द्यूने पापाच्चन्द्रः शुभोऽप्यसन्।
शुभांशे वाऽधिमित्रांशे गुरुदृष्टोऽशुभोऽपि सन् ॥ ७ ॥

पापान्त इति। चन्द्रः शुभोऽपि शुभफलदोऽपि पापान्तः पापयुग्द्यूने पापद्वयमध्यवर्ती पापग्रहयुक्तः पापः द्यूने सप्तमस्थाने वर्तमानश्चेत् स्यात्तदा असदशुभ एव। यदा त्वशुभोऽप्यशुभफलदातापि चन्द्रः शुभांशे सौम्यग्रहनवांशे स्यादथवाऽधिमित्रस्य नवांशे स्यात्तथा गुरुणा बृहस्पतिना दृष्टः सन् शुभफलदाता भवेत्। यदाह राजमार्तण्डः— 'पापग्रहेण संयुक्तः पापजामित्रसंस्थितः। पापद्वयमध्यगतः शुभोऽप्यशुभदः शशी ॥ अनिष्टस्थानसंस्थोऽपि भवेच्छुभकरः शशी। सौम्यभागेऽधिमित्रांशे गुरुणा वापि वीक्षिते' ॥ इति ॥ ७ ॥

हिन्दी—यदि चन्द्रमा पापग्रहों के बीच में हो, पापग्रह से युक्त हो, या पापग्रह से सातवें स्थान में हो तो जन्मराशि से शुभस्थान में होने पर भी अशुभफलदायक ही होता है। इस भाँति शुभग्रह के नवमांश, अथवा अधिमित्रों के नवमांश में या बृहस्पति से देखा जाता हो तो जन्मराशि से अशुभस्थान में रहने पर (अशुभफलदायक होता हुआ) भी शुभ फल देने वाला हो जाता है ॥ ७ ॥

विशेष—यहाँ चन्द्रमा की तरह अन्य अशुभफलद ग्रह भी शुभ सम्बन्ध होने से शुभ फल देने वाले हो जाते हैं एवं शुभ फल देने वाले ग्रह भी अशुभ ग्रह के सम्बन्ध से अशुभ फलदाता हो जाते हैं।

अथ चन्द्रबलस्य विधानान्तरमनुष्टुभाह—

सितासितादौ सद्दुष्टे चन्द्रे पक्षौ शुभावुभौ।
व्यत्यासे चाशुभौ प्रोक्तौ सङ्कटेऽब्जबलं त्विदम् ॥ ८ ॥

सितेति। सितादौ शुक्लपक्षप्रतिपदि समीचीने चन्द्रे सति सम्पूर्णः शुक्लपक्षः शुभः। असितादौ कृष्णपक्षप्रतिपदि चन्द्रेऽसमीचीने सति सम्पूर्णः कृष्णपक्षः शुभः। व्यत्यासे च पूर्वोक्तादर्थाद्वैपरीत्ये द्वावपि पक्षावनिष्टौ। यदा शुक्लपक्षप्रतिपदि चन्द्रो दुष्टश्चेत्तदा सकलः शुक्लपक्षोऽनिष्टः। यदा कृष्णपक्षप्रतिपदि चन्द्रः शुभश्चेत्तदा सम्पूर्णः कृष्णपक्षोऽनिष्ट इति। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'वलक्षपक्षादिगते हिमांशौ शुभे शुभं पक्षमुदाहरन्ति। सितेतरादावशुभे शुभे च पक्षावनिष्टौ भवतोऽन्यथा तौ॥' कश्यपोऽपि—'मासादीन्दुः शुभो यस्य तत्पक्षस्तस्य शोभनः। कृष्णादीन्दौ त्वशुभदे शुभं तद्व्यत्यये-ऽन्यथा॥' इति। इदमेतादृशमब्जवलं चन्द्रबलं तु सङ्कटे विवाहयात्रादाववश्यकर्त्तव्ये तात्कालिकचन्द्रबलाभावे ग्राह्यं नान्यथेत्यर्थः॥ ८॥

हिन्दी—शुक्लपक्ष के आदि (प्रतिपदा) से चन्द्रमा शुभ हों तो सारा शुक्लपक्ष शुभफलदायक होता है, एवं कृष्णपक्ष में प्रतिपदा के दिन यदि चन्द्रमा अशुभ राशि पर हो तो सारा कृष्णपक्ष उत्तम होता है। इसके विपरीत यदि शुक्ल प्रतिपदा को अशुभ और कृष्ण प्रतिपदा को शुभफलद चन्द्रमा हो तो दोनों पक्ष अशुभ होते हैं। इस चन्द्रबल का केवल संकट के समय ही विचार करना चाहिए, अन्यत्र नहीं॥ ८॥

अथ ग्रहाणां दौष्टयपरिहारपूर्वकं तुष्टिसम्पादनार्थं नवरत्नसमुदायधारणं शालिन्याह—

वज्रं शुक्रेऽब्जे सुमुक्ता प्रवालं भौमेऽगौ गोमेदमार्कौ सुनीलम्।
केतौ वैदूर्यं गुरौ पुष्पकं ज्ञे पाचिः प्राङ्माणिक्यमर्के तु मध्ये॥ ९॥

वज्रं शुक्र इति। अत्रैकां सुवर्णमुद्रिकां कृत्वा तत्र दशभागे वर्तुलाकारे नवधा विभक्ते प्रागादिक्रमेण नवरत्नानि दृढं निधेयानि। तत्र प्रागिति पञ्चम्यन्तमव्ययम्। पञ्चमी चेयं ल्यब्लोपे। अतः प्रागादिदिशो लक्ष्यीकृत्येत्ययमर्थो जातः। तत्र शुक्रप्रीतये पूर्वस्यां दिशि वज्रकं हीरकं निधेयम्, एवं चन्द्रप्रीत्यर्थं शोभनं मुक्ताफलमाग्नेय्याम्, भौमप्रीत्यर्थं प्रवालं दक्षिणस्याम्, अगौ राहौ तत्प्रीत्यर्थं गोमेदं नैर्ऋत्याम्, आर्कौ शनिप्रीतये शोभनं नीलं पश्चिमायाम्, केतुप्रीतये वैदूर्यं वायव्याम्, गुरुप्रीतये पुष्पकं पुष्परागम् उत्तरस्याम्। बुधप्रीतये पाचिः ऐशान्याम्, सूर्यप्रीतये माणिक्यं मध्यमकोष्ठे इति॥ ९॥

हिन्दी—सोने की अँगूठी में रत्न जड़ने के स्थान पर रत्नों के जड़ने के लिये ९ कोष्टों का सुन्दर कोणोंवाला चतुरस्र या अष्टदल कमल आदि के आकार का किसी बुद्धिमान् शिल्पकलाप्रवीण स्वर्णकार से शुक्र की प्रसन्नता के लिये पूर्वभाग में हीरा, चन्द्रमा की तुष्टि के लिये अग्निकोण में सुन्दर मोती, मगल की प्रसन्नता के हेतु दक्षिण में मूँगा, राहु के प्रीत्यर्थ नैर्ऋत्य में गोमेद, शनि के प्रीत्यर्थ पश्चिम में सुन्दर नीलम, केतु के प्रसन्नतार्थं वायव्य में वैदूर्य, गुरु के प्रीत्यर्थ उत्तर में पुष्पक (पुखराज) बुध की प्रसन्नतार्थ ईशानकोण में पन्ना और सूर्य के प्रीत्यर्थं बीच में माणिक्य जड़वा कर (रत्नों की प्राणप्रतिष्ठा करके) धारण करना चाहिए। इसको लोक में नवग्रह की **अँगूठी या नवग्रह यन्त्र की अँगूठी कहते हैं॥ ९॥**

नवरत्नों का संक्षिप्त परिचय (बृ० सं०)

सूर्य का रत्न माणिक्य—सूर्य का रत्न माणिक्य है, इसको पद्मराग भी कहते हैं। इसकी उत्पत्ति सौगन्धिक (गन्धक), कुरुविन्द और स्फटिक से होती है। यह भ्रमर, आँजन, नीलकमल एवं जामुन के रस के समान लाल वर्ण की कान्ति वाला सौगन्धिक होता है। शबल (श्वेत-कृष्ण मिश्रित वर्ण), कम चमकीला, धातुमिश्रित कुरुविन्द होता है एवं स्फटिक से उत्पन्न माणिक्य अति चमकीला अनेक प्रकार की किरणों वाला और विशुद्ध होता है। यह सर्वश्रेष्ठ, लाभकारी होता है।

उत्तम माणिक्य अत्यन्त चिकना, प्रभायुक्त, अतिस्वच्छ किरणयुक्त, भारीपनयुक्त, सुडौल (देखने में मनमोहक), भीतर से प्रभा तथा लालिमा से युक्त होता है। इसके धारण से सुख-वृद्धि और अनिष्टों का विनाश होता है। यह कठोरता में हीरे से ही हार मानता है।

रत्ननिर्माण-मुहूर्त में सोने की अँगूठी में इसको जड़वा कर प्राणप्रतिष्ठा करके शुभमुहूर्त में भगवान् सूर्य का स्मरण करके इसको धारण चाहिए। दम्पती के मिथः व्यभिचार की सूचना इससे प्राप्त होती है, उस समय इसका रंग बदला हुआ प्रतीत होता है।

आठवें स्थल में सूर्य या अष्टमेश सूर्य हो तो माणिक्य नहीं पहनना चाहिए।

इसके धारण से रक्तरोग शान्त हो जाते हैं। मेषादि राशि वालों के लिये क्रम से ३, ३½, ४¼, ५, २¼, ५, ३, ६¼, ४¾, ४, ४, ५¼ रत्ती का माणिक्य धारण करना चाहिए।

चन्द्र का रत्न मोती—हाथी, साँप, सीपी, शंख, मेघ (बादल), बाँस, मछली और सूअर इतने स्थानों से मोती उत्पन्न होता है; उनमें सीपी का मोती सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। सिंहल, पारसीक, सौराष्ट्र; ताम्रपर्णी नदी, पारशव, कौबेर पाण्ड्यवाटक एवं हैम इन देशों में मोतियों की खानें हैं। अच्छी जाति के मोती को चाँदी की अँगूठी में गुरु, रविवार, पुष्य नक्षत्र के योग में प्रथम प्रहर में मढवा कर बायें हाथ की कनिष्ठिका अँगुली में धारण करना चाहिए। धारण करने से पूर्व प्राणप्रतिष्ठा, पूजन एवं हवन कर लेना चाहिए। इसके धारण करने से मनुष्य की मनः-कामनाएँ सिद्ध होती हैं। चन्द्रमा के दोष की शान्ति के लिये इसे अवश्य धारण करना चाहिए।

मंगल का रत्न मूँगा—प्राचीनकाल में इसे प्रवाललता कहते थे और यह समुद्र में उत्पन्न होता है, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक इसे जन्तुओं से उत्पन्न मानते हैं। ये जन्तु समुद्र की तह में अधिक ढाल वाले प्रदेश में रहते हैं। मूँगा मंगलग्रह का प्रिय रत्न है। इसके धारण से मंगलग्रह-कृत सब दोष नष्ट हो जाते हैं। जब मंगलवार को मेष या वृश्चिक राशि पर चन्द्रमा या मंगल हों एवं दो चरण वाले (मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा) नक्षत्र हों, उस दिन सूर्योदय से १० बजे दिन के पहले उत्तम प्रकार के मूँगे को सोने की अँगूठी में जड़वा कर पहनने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है। मूँगे की माला भी पहनी जाती है। आयुर्वेद में मूँगे का एक विशिष्ट स्थान है। इसकी भस्म का सेवन करने से अनेक रोग तथा शरीर की दुर्बलता नष्ट हो जाती है। मेषादि राशि वालों को क्रमशः ६–८,१२, ८-१०, ८, ६-८, ७, ८, ११, १२, १२, ९, १२ रत्ती का मूँगा धारण करना चाहिए।

बुध का रत्न पन्ना—यह हरे रंग का रत्न है। यह कोमल, चमकीला एवं पारदर्शी होता है। इसको सोने की अँगूठी में मढ़वा कर धारण किया जाता है। बुधवार, हस्त, ज्येष्ठा, रेवती नक्षत्र एवं पूर्वाह्न का समय जड़वाने के लिये उत्तम कहा गया है। बुध की प्रसन्नता हेतु उनके समस्त दोषों की शान्ति के लिये यह धारण किया जाता है। मेषादि राशि वालों के लिये क्रम से ४½, ३, ५, ६, ५, ३, ४, ४½, ५, ५, ४½, ४ रत्ती का पन्ना धारण करना उत्तम माना जाता है। यदि

अत्यन्त निर्मल निर्दोष पन्ना धारण करके न्यायालय में जाय तो अनुकूल न्याय की उपलब्धि होती है।

गुरु का रत्न पुष्पक (पुखराज)—पुष्पक का वर्णन भारत के प्राचीन रत्नपरिचायक ग्रन्थों में पाया जाता है। आजकल के लोग विदेशीय पुखराजों के कई रंग मानते हैं। यह तौल में भारी और पारदर्शी होता है। यह जहरीले जानवर के विष का प्रभाव उस स्थान पर रगड़ने से कम कर देता है। गुरुदोषशमनार्थ गुरु पुष्य में दिन के पूर्वार्ध में सोने की अँगूठी में मढ़ा हुआ पुखराज धारण करना चाहिए। रत्न धारण का मुहूर्त भी देख लेना चाहिए। मेषादि राशि वालों को क्रम से ६, ५½, ४, १२, १२, ५, ८, ६, ११, ९, ९, १२ रत्ती का पुखराज धारण करने से आकस्मिक मृत्युभय दूर हो जाता है। जिस कन्या के विवाह में निरर्थक विलम्ब होता हो, उसे पुखराज धारण करने से शीघ्र सफलता मिलती है।

शुक्र का रत्न हीरा—हीरा अत्यधिक कठोर रत्न है। हीरा की कठोरता के बारे में किसी कवि ने कहा है—'हीरा वही घन चोट न फूटे'। यह खानों से निकाला जाता है एवं परिष्कृत करने पर इसका मूल्य तथा गुण बढ़ जाता है। यह शुक्रदोष का शामक, पतिपत्नी के परस्पर प्रेम का वर्धक होता है और कामकला में सशक्त बनाता है। भूत-प्रेतादि बाधाओं को नष्ट करता है। इसकी भस्म का आयुर्वेद में बड़ा महत्त्व है, जो अनेक राजरोगों को दूर कर देता है। इसमें अनेक गुण-दोष है। दोष-मुक्त हीरा सोने की अँगूठी में जड़वाकर शुक्रवार, भरणी, पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा नक्षत्र में या रत्नधारण मुहूर्त में धारण करने का विधान है। इसकी भी प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। आकारभेद से इसके ९ देवता और चार वर्ण माने गये हैं।

शनि का रत्न नीलम—यह अन्य देशों में भी उत्पन्न होता है, परन्तु भारत में काश्मीर में बहुत ऊँचाई पर इसकी खान है। वहाँ का उत्पन्न नीलम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सभी रत्न गुण-दोषयुक्त होते हैं, अतः निर्दोष नीलम को मकर-कुम्भ के शनि में (यह स्थिति लगभग २५ वर्षों में आती है) अथवा शनिवार चित्रा, स्वाती, विशाखा, श्रवण एवं धनिष्ठा नक्षत्र में सोना या पंच-धातु की अँगूठी में मढ़वाकर धारण करना चाहिए। जन्म-समय में जिस राशि पर शनि हो, उसके अनुसार इसकी तौल होनी चाहिए। मेषादि राशि के लग्न में शनि के रहने पर क्रम से ४, ४, ३, ७, ७, ३, ५, ९, ५, ९, ९, ५ रत्ती का नीलम धारण करना चाहिए। धारण करने के बाद इसका अच्छा-बुरा प्रभाव पड़ने लगता है। इसलिये धारण करने से पहले इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। सोते समय स्वच्छ वस्त्र में बाँधकर अपने दाहिनी भुजा पर बाँधकर सो जाना चाहिए। यदि सुस्वप्न दिखलाई पड़े तो उत्तम, दुःस्वप्न दिखलाई पड़े तो अनिष्टकारक माना जाता है।

राहु का रत्न गोमेद—यह हिमालय पर्वत पर पैदा होता है। इसका गोमूत्र के समान स्वच्छ रंग होता है। यह भी गुणदोष से मुक्त नहीं है। स्वच्छ गोमेद धारण करने से राहुग्रह जनित जनिष्यमाण समस्त रोग-शोक शान्त हो जाते हैं। राजकीय कर्मचारी—वकील, न्यायाधीश आदि को इसके धारण से बड़ी मदद मिलती है। इसके धारण से मृगी, बवासीर, तिल्ली, वायु-विकार आदि रोगों में आशातीत लाभ होता है। इसको सोना या उत्तम लोहा या पंचधातु की अँगूठी में बुध या शनिवार, स्वाती, शतभिषा एवं आर्द्रा नक्षत्र के योग में मढ़वाकर पहनना चाहिए। जन्मकाल में जिस राशि पर राहु हो, उसके क्रम से निम्नलिखित तौल का ११, ६, १२, १५, १५, १२, ८, ९, ११, १५, १५, ११ रत्ती का गोमेद धारण करना उत्तम माना गया है।

केतु का रत्न वैदूर्य या लहसुनियाँ—केतु की प्रसन्नता के लिये लहसुनियाँ धारण किया जाता है। बिल्ली की आँख के समान इसका रंग होता है। जिस दिन मेष, मीन या धनु राशि

पर चन्द्रमा हो, उस दिन लोहे या सोने की अँगूठी में जड़वाकर इसे धारण करना चाहिए। जन्म-समय में जिस राशि पर केतु हो, उसके क्रम से ११, ६, १२, १५, १५, १२, ८, ९, ११, १५, १५, ११ रत्ती का वैदूर्य धारण करना उत्तम माना जाता है ॥ ९ ॥

अथ सति द्रव्यसामर्थ्ये नवरत्नसमुदायधारणस्य शक्यत्वात्तदुक्त्वेदानीमसति द्रव्यसामर्थ्ये यद्ग्रहकृतं दौष्ट्यं तद्ग्रहरत्नधारणमिन्द्रवज्रयाऽऽह—

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम् ।
गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम् ॥ १० ॥

माणिक्येति । सूर्यप्रीत्यर्थं माणिक्यं धार्यम्, एवं चन्द्रस्य मुक्ताफलं, भौमस्य विद्रुमं, बुधस्य गारुत्मकं गरुडपाचिः, गुरोः पुष्पकं पुष्परागः, शुक्रस्य वज्रं, शनेर्नीलम् । 'लहसुनिया' इति कान्यकुब्जभाषयाहुः । राहोर्गोमेदं, केतौ वैदूर्यमित्येवमर्कतोऽर्कादीनां ग्रहाणां रत्नानि धार्याणि स्युः । तत्र यद्ग्रहकृतं दौष्ट्यं तस्य ग्रहस्य तुष्ट्यै तद्रत्नं धार्यमित्यर्थः । यदाह कश्यपः—'सूर्यादीनां च सन्तुष्ट्यै माणिक्यं मौक्तिकं तथा । सुविद्रुमं मारकतं पुष्परागं च वज्रकम् ॥ नीलगोमेदवैदूर्यं धार्यं स्वस्वदृढक्रमात्' अथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णमित्यग्रिमश्लोकेन सम्बन्धः ॥ १० ॥

हिन्दी—नवरत्न की अँगूठी धारण करने की क्षमता न होने पर अनिष्ट ग्रह का ही रत्न धारण करना चाहिए। सूर्य की प्रसन्नता के लिए माणिक्य, चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिए मोती, मंगल की प्रसन्नता हेतु मूँगा, बुध के प्रीत्यर्थ पन्ना, गुरु के प्रीत्यर्थ पुखराज, शुक्र के लिए हीरा, शनि के लिए नीलम, राहु के लिए गोमेद और केतु के प्रीत्यर्थ वैदूर्य धारण करना चाहिए।

यदि इन रत्नों को धारण करने की शक्ति न हो तो बुध की प्रसन्नता के लिये सुवर्ण धारण करना चाहिए ॥ १० ॥

अथ महामूल्यरत्नधारणे यस्य सामर्थ्याभावस्तदर्थमल्पमूल्यानि रत्नानि ताराबलं च शालिन्याह—

धार्यं लाजावर्त्तकं राहुकेत्वो रौप्यं शुक्रेन्द्वोश्च मुक्ता गुरोस्तु ।
लौहं मन्दस्यारभान्वोः प्रवालं तारा जन्मर्क्षात्त्रिरावृत्तितः स्यात् ॥ ११ ॥

धार्यमिति । अथो ज्ञस्य बुधस्य मुदे सन्तोषार्थं सुवर्णं यथाशक्ति धार्यम् । राहुकेत्वोः प्रीत्यै लाजावर्त्तकं मणिविशेषो धार्यः, एवं शुक्रेन्द्वोस्तुष्ट्यै रौप्यम्, गुरोस्तुष्ट्यै मुक्ता, मन्दस्य शनेस्तुष्ट्यै लौहम्, आरभान्वोर्मङ्गलसूर्ययोः प्रीत्यै प्रवालं धार्यम्, उक्तञ्च श्रीपतिना—'धार्यं तुष्ट्यै विद्रुमं भौमभान्वो रूप्यं शुक्रेन्द्वोश्च हेमेन्दुजस्य । मुक्ता सूरेर्लौहमर्कात्मजस्य लाजावर्त्तः कीर्तितः शेषयोश्च ॥' इति । सूरेः सुरगुरोः, शेषयोः राहुकेत्वोः ।

ग्रहदोषे औषधीमूलानि धार्याणि

दीपिकाकारस्तु औषधीमूलानि धार्याणीत्याह—'मूले धार्यं त्रिशूल्याः सवितरि विगुणक्षीरिकामूलमिन्दौ जिह्वाहेर्भूमिपुत्रे रजनिकरसुते वृद्धदारोश्च मूलम् । भार्ङ्गी जीवेऽथ शुक्रे भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं विच्छोलं चार्कपुत्रे तमसि मलयजं केतुदोषेऽश्व-

गन्धम् ॥' इति। त्रिशूली बिल्वः, क्षीरिकाक्षीरिणी जिह्वाहिर्नागजिह्वा, वृद्धदारुर्विधारः, भार्ङ्गी प्रसिद्धा, सिंहपुच्छं वा घोटं चरिचारेति मध्यदेशभाषया प्रसिद्धम्, मलयजं चन्दनम्, अश्वगन्धं प्रसिद्धम्, एतदौषधीमूलधारणं सर्वथा रत्नधारणाशक्तौ वेदितव्यम्।

ताराबलम्

तारेति। यद्दिने ताराबलमस्ति वा न वेति विचारश्चिकीर्षितस्तद्दिने या तारा सा जन्मर्क्षात् जन्मनक्षत्रात् त्रिरावृत्तित आवृत्तित्रयेण गणनीया स्यात्। त्रिरिति 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' इति सुजन्तमव्ययम्। स्वजन्मनक्षत्राद्दिननक्षत्रे गणिते नवभिर्भक्ते तिस्र आवृत्तयो भवन्ति। अवशिष्टतारायाः शुभाशुभं वाच्यमिति फलितोऽर्थः ॥ ११ ॥

हिन्दी—राहु-केतु की प्रसन्नता हेतु लाजावर्त (यह नीले रंग का नरम पत्थर), शुक्र और चन्द्र की प्रसन्नता के लिये चाँदी, गुरु के लिये मोती, शनि की तुष्टि के निमित्त लोहा, सूर्य और भौम के लिये मूँगा धारण करना चाहिए।

जन्मनक्षत्र से दिन-नक्षत्र तक तीन आवृत्ति गिनने से ताराएँ होती हैं, अर्थात् जन्मनक्षत्र से दिन-नक्षत्र तक गिन कर ९ का भाग देने पर शेष तुल्य ताराएँ होती हैं। (जिनका नाम आगे के श्लोक में लिखा है) ॥ ११ ॥

अथ शेषक्रमेण सकलास्तारासंज्ञा अनुष्टुभाह—

जन्माख्यसम्पद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः।
वधमैत्रातिमैत्राः स्युस्ताराः नामसदृक्फलाः ॥ १२ ॥

जन्माख्येति। स्पष्टार्थमिदं पद्यम्। यदाह नारदः—'जन्मसम्पद्विपत्क्षेमप्रत्यरिः साधको वधः। मित्रं परममित्रं तु जन्मभाच्च पुनः पुनः ॥' इति। एवं तारा गणनीया इति शेषः। तत्र तृतीयापञ्चमीसप्तम्यस्तारा निषिद्धाः। अनिष्टफलश्रवणात्। अर्थादन्याः समीचीनाः, समीचीनफलश्रवणात्। उक्तञ्च—'जन्मतारा द्वितीया च षष्ठी चैव चतुर्थिका। अष्टमी नवमी चैव षट् तु तारा शुभावहाः ॥' इति। जन्मनक्षत्रं विशेषेण गृहीतं प्रतिषिद्धं च तच्चाग्रे निर्णेष्यते। तदिदं ताराबलं कृष्णपक्षविषयं न तूभयपक्षसाधारणम्। तदाह नारदः—'कृष्णे बलवती तारा शुक्लपक्षे बली शशी' इति। युक्तं चैतत्। यतोऽत्रार्थवादो रत्नमालायाम्—

'न खलु बहुलपक्षे शीतरश्मे प्रभावः कथितमिह हि तारावीर्यमार्यैः प्रधानम्।
अतिविकलशरीरे प्रेयसि प्रोषिते वा प्रभवति खलु कर्तुं सर्वकार्याणि योषा ॥
शुक्ले पक्षे शीतरश्मिर्बलीयो न प्राधान्यं तारकायास्तु तत्र।
शक्त्या युक्ते विद्यमानेऽपि कान्ते न स्वातन्त्र्यं योषितः क्वापि दृष्टम्' ॥१२॥

हिन्दी—१ जन्मतारा, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम (कल्याण), ५ प्रत्यरि (शत्रु), ६ साधक, ७ वध (मृत्यु), ८ मैत्र और ९ अतिमैत्र—ये ९ ताराएँ अपने नाम के अनुसार फल देने वाली होती हैं ॥ १२ ॥

विशेष—भीम नामक व्यक्ति के लिये निम्नांकित चक्र में उत्तराषाढा, कृत्तिका, उ० फा०; विपत्तारा, धनिष्ठा, मृगशिरा, चित्रा, प्रत्यरितारा; पू० भा०, पुनर्वसु, विशाखा, वधताराएँ होती हैं। इन नक्षत्रों में कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिए। जन्मताराएँ कुछ कार्यों में शुभ और कुछ

कार्यों में अशुभ कही गई हैं। उपनयन में जन्मतारा शुभ (५।४५) यात्रा में निषिद्ध मानी गयी है। (११।८) अन्यत्र जन्मनक्षत्र को छोड़कर प्रायः शुभ होती हैं ॥ १२ ॥

भौम के लिये निम्नांकित चक्र में ताराएँ

जन्म	सम्पत्	विपत्	क्षेम	प्रत्यरि	साधक	वध	मित्र	अतिमित्र
मूल	पू. पा.	उत्तरापा.	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू. भा.	उ. भा.	रेवती
अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृग०	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
मघा	पू. फा.	उ. फा.	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा

अथावश्यककृत्ये दुष्टताराणां प्रकारद्वयेन परिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मृत्यौ स्वर्णतिलान्विपद्यपि गुडं शाकं त्रिजन्मस्वथो
दद्यात् प्रत्यरितारकासु लवणं सर्वो विपत्प्रत्यरिः।
मृत्युश्चादिमपर्यये न शुभदोऽथैषां द्वितीयेंऽशका[1]
नादिप्रान्त्यतृतीयका अथ शुभाः सर्वे तृतीये स्मृताः॥ १३ ॥

मृत्यौ स्वर्णतिलानिति। मृत्यौ सप्तम्यां वधतारायां स्वर्णतिलान् यथाशक्ति सुवर्णयुक्तांस्तिलान् ब्राह्मणाय दद्यात्। विपद्यपि विपत्सञ्ज्ञायां तृतीयतारायां गुडमिक्षुविकारं दद्यात्। त्रिजन्मसु तिसृषु जन्मतारासु शाकं प्रसिद्धं वृन्ताकादि दद्यात्। अथो प्रत्यरितारकासु पञ्चम्यां तारायां लवणं दद्यात्। तदाह नारदः—'जन्मत्रिपञ्चसप्ताख्यास्तारा नेष्टफलप्रदाः। अनिष्टपरिहाराय दद्याद्दानं द्विजातये। शाकं गुडं च लवणं सतिलं काञ्चनं क्रमात्।' इति। अत्र सतिलमिति विशेषणं काञ्चनपदस्य, न लवणपदस्य। तेन वधतारायां सतिलं काञ्चनं देयम्। उक्तञ्च दीपिकायाम्—'प्रत्यरौ लवणं दद्याच्छाकं दद्यात् त्रिजन्मसु। विपत्तारे गुडं दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम्॥' इति। द्वितीयः परिहार उच्यते। तत्रादिमपर्यये प्रथमावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्युश्च तृतीयपञ्चमीसप्तम्यस्तारा अपि सामान्यतः षष्टिघटिकात्मिका अपि न शुभदाः स्युः। अथ द्वितीये पर्यये द्वितीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्यूनामादिप्रान्त्यतृतीयका अंशा न शुभदाः। विपत्तारायां प्रथमा विंशतिर्घटिकास्त्याज्याः। इतराश्चत्वारिंशच्छुभाः। प्रत्यरितारायां मध्यमा विंशतिर्घटिकास्त्याज्यास्तदुभयतो विंशतिर्विंशतिर्घटिकाः शुभाः। वधतारायामन्तिमा विंशतिर्घटिकास्त्याज्या, आद्याश्चत्वारिंशच्छुभा इति नवीना व्याकुर्वते। जीर्णास्त्वंशशब्देन नक्षत्रचतुर्थांशमाहुः। तथा सति आदिप्रान्त्यतृतीयकाश्चरणा निषिद्धा इतरे शुभाः। अथ तृतीये पर्यये तृतीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्यवश्चैते सर्वे षष्टिघटिकात्मका अपि शुभाः शोभनफलदाः स्मृताः। तथा च जगन्मोहने गुरुरित्युक्त्वा पठितम्—'पर्याये प्रथमे वर्ज्या विपत्प्रत्यरिनैधनाः। द्वितीये त्वंशका वर्ज्यास्तृतीये त्वखिलाः शुभाः॥'

---

१. किसी टीकाकार ने 'अंश' का अर्थ चरण (अशुद्ध) किया है, वह अमान्य है। यहाँ अंश शब्द से भभोग का $\frac{1}{3}$ ग्रहण करना चाहिए और इष्ट घटी त्रैराशिक से स्पष्ट कर लेनी चाहिए।

इति। द्वितीये पर्याये अंशकानाह स एव—'आद्यांशो विपदि त्याज्यः प्रत्यरे चरमोऽशुभः। वधे त्याज्यस्तृतीयोंऽशः शेषा अंशास्तु शोभनाः॥' इति। अत्रांशो नक्षत्रचतुर्थांश उच्यते। किमत्र प्रमाणमिति चेत्, उच्यते। 'जन्मर्क्षाद्दशमं कर्म सङ्घातर्क्षं तु षोडशम्। अष्टादशं सामुदायं त्रयोविंशं विनाशनम्॥ मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु॥' इति नारदोक्तेर्विनाशिकाख्यस्य त्रयोविंशस्य भस्य दुष्टत्वम्।

तस्यापवादः

तदपवादमाह च्यवनः—'वैनाशिकाख्ये नक्षत्रे अष्टाशीत्यंशकं विना। शेषांशाः शुभदा ज्ञेया जन्मनीन्दुगतांशकाः॥' इति। अत्र वैनाशिकं प्रत्यरिसंज्ञं तस्य चरमांशस्यानिष्टता प्राप्ता साष्टाशीत्यंशकं विनेत्यनेन बाध्यते इति। अत 'एकत्र दृष्टः शास्त्रार्थोऽपरत्रापि विनियुज्यते' इति न्यायादत्रापि सैव व्याख्येति न नवीनमतं ज्यायः, अप्रमाणत्वात्॥ १३॥

हिन्दी—(क) मृत्यु (वध) ७वीं तारा में हो और कार्य करना भी अत्यन्त आवश्यक हो तो सुवर्ण (८० रत्ती) और तिल, विपत्तारा में गुड़, तीनों आवृत्तियों की जन्मतारा में शाक और प्रत्यरि तारा में नमक दान करना चाहिए।

(ख) प्रथम आवृत्ति की विपत, प्रत्यरि और वध तीनों सम्पूर्ण ताराएँ शुभ नहीं होती। (शुभकर्म में त्याज्य है)। दूसरी आवृत्ति में विपत्तारा के आदि का $\frac{1}{4}$ भाग, प्रत्यरि का अन्तिम $\frac{1}{4}$ भाग और मृत्यु का मध्य $\frac{1}{3}$ भाग त्याज्य है, शेष भाग शुभ होते हैं। एवं तृतीयावृत्ति में तीनों ताराएँ पूर्ण शुभ होती हैं॥ १३॥

अथ चन्द्रावस्था वक्ष्यति, तद्गणनोपायमनुष्टुभाह—

षष्टिघ्नं गतभं भुक्तघटीयुक्तं युगाहतम्।
शराब्धिहृल्लब्धतोऽर्कशेषेऽवस्थाः क्रियाद्विधोः॥ १४॥

षष्टिघ्नमिति। अत्र चन्द्रस्य राशौ राशौ द्वादश द्वादश अवस्थाः सन्ति। यदाह नारदः—'चन्द्रस्य द्वादशावस्था राशौ राशौ यथाक्रमात्। यात्रोद्वाहादिके कार्ये संज्ञातुल्यफलप्रदाः॥' तत्राश्विनीमारभ्य गतभानि षष्ट्या ६० गुण्यानि वर्तमाननक्षत्रभुक्तानि कार्याणि तानि पुनर्युगैश्चतुर्भिराहतानि शराब्धिहृत्पञ्चचत्वारिंशता भाज्यानि। यल्लब्धमागतं गतावस्थास्ताः। शेषं वर्तमानावस्थाः। तत्र लब्धाङ्कस्यापि द्वादशाधिक्ये द्वादशभिर्भागे प्रवासाद्यवस्थाश्चन्द्रस्य गताः स्युः। ता अवस्था मेषराशेः पुंसः प्रवासादिसंज्ञाः स्युः। वृषराशिस्थे चन्द्रे नाशादिसंज्ञाः स्युः। एवं मिथुनादिदशराशिषु मृतादिसंज्ञा ह्यवस्थाः क्रमेण भवन्तीत्यर्थः। यदाह नारदः—'षष्टिघ्नं चन्द्रनक्षत्रं तत्कालघटिकान्वितम्। वेदघ्नमिषुवेदाप्तमवस्था भानुभाजिताः॥' इति। अत्रोपपत्तिः—एकैकस्मिन् राशौ द्वादश द्वादशावस्थाः सन्ति। सामान्यतो नक्षत्रभोगः षष्टिघटिकात्मक इत्येवं सति राशिभोगघटिकाः पञ्चत्रिंशदधिकशतं भवन्ति। तत्र त्रैराशिकं यद्येताभि-१३५घटीभिर्द्वादशावस्था लभ्यन्ते तत्रेष्टघटीभिः किमिति। तत्रैकघट्या गुणनायां विकारानापत्तेर्द्वादशानामयमङ्को १३५ भाजको जातः। यथा १२ अत्रानयोर्गुणकभाजकयोस्त्रिभिरपवर्तने गुणकाश्चत्वारः ४, भाजकाः पञ्चचत्वारिंशत् ४५, तत्कालघटीयोगस्तु

न्यायप्राप्त एव । तथा द्वादशभागोऽपि । तदाधिक्यस्य निष्प्रयोजनत्वात् । अत्रेदमवधेयम्, यद्यपि नक्षत्राणां घटीन्यूनाधिकभावः सम्भवति तथापि षष्टिघटिकात्मकेन व्यवहारः कार्यः । विद्यमाननक्षत्रं भुक्तं तु स्वभोगं ज्ञात्वा षष्टिघटिकात्मकं कृत्वा तत्र योज्यम् । यथा यदि स्वभोगेन षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदेष्टघटीभिः किमिति त्रैराशिकेनेष्टघटीनां षष्टिर्गुणको नक्षत्रभोगो भाजक इति ॥ १४ ॥

हिन्दी—गत नक्षत्र की संख्या (अश्विनी से गिनने पर जो संख्या हो) को ६० से गुणा कर उसमें वर्तमान नक्षत्र की गत घटी (घटी-पल) जोड़ कर ४ से गुणा करे और ४५ से भाग दे, जो लब्धि आवे (यहाँ शेष को निष्प्रयोजन मानें), उसमें १२ का भाग देने से शेषतुल्य मेषादि राशियों में चन्द्रमा के रहने पर, उस राशिसंख्या से गिनकर शेषांक तुल्य चन्द्रमा की गत अवस्था होती है (अर्थात् वर्तमान अवस्था जानने के लिये १ जोड़ देना चाहिए) ॥ १४ ॥

उदाहरण—स्वाती नक्षत्र के ३१।३० घटी पर चन्द्रमा की अवस्था का ज्ञान करना है तो गत नक्षत्र चित्रा की संख्या १४ को ६० से गुणा कर वर्तमान नक्षत्र स्वाती की गत[1] घटी ३१।३० को जोड़ दिया, १४×६०+३१।३०=८४०+३१।३०=८७१।३० इस योग को ४ से गुणा कर के ४५ से भाग दिया तो लब्धि $=\frac{(८७१।३०)४}{४५}=\frac{३४८६}{४५}$=७७ मिला २१ शेष बचे, अब लब्धि ७७ में १२ का भाग दिया तो (लब्धि ६) शेष ५ बचा । यह तुला राशि में चन्द्रमा के रहने से क्रीड़ादि अवस्था से गिनने पर ५वीं कम्पावस्था (चन्द्रमा की गत अवस्था) हुई । वर्तमान अवस्था जानने के लिये १ जोड़ दिया तो स्वाती नक्षत्र के ३१।३० गत घटी पर चन्द्रमा की सुस्थिरावस्था आई । अतः यह शुभ फल देने वाली है ॥ १४ ॥

अथ द्वादशावस्थानामानि सफलान्युपजात्याह—

प्रवासनाशौ मरणं जयश्च हास्यारतिक्रीडितसुप्तभुक्ताः ।
ज्वराख्यकम्पस्थिरता ह्यवस्था मेषात्क्रमान्नामसदृक्फलाः स्युः ॥ १५ ॥

प्रवासनाशाविति । स्पष्टार्थमिदं पद्यम् । उक्तञ्च कश्यपेन—'प्रवासनष्टे च मृता जया हास्या रतिर्मुदा । सुप्ता भुक्ता ज्वरा कम्पा सुस्थितिर्नामसन्निभाः ॥' इति । मुदा—'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' ततष्टाप् ॥ १५ ॥

हिन्दी—मेष आदि १२ राशियों में क्रम से अपने नाम के अनुसार फल देने वाली १ प्रवास, २ नाश, ३ मरण, ४ जय, ५ हास्य, ६ रति (कामोपभोग), ७ क्रीड़ा (खेल-कूद), ८ सुप्त, ९ भुक्त, १० ज्वर, ११ कम्प और १२ स्थिर, ये १२ चन्द्रमा की अवस्थाएँ होती हैं । अर्थात् मेष

---

१. यहाँ वर्तमान नक्षत्र की स्पष्ट गत घटी (भयात) को मध्यम घटी में परिणत करके जोड़ना चाहिए । यथा—यदि नक्षत्र भोगमान (भभोग) ६५।३०=३९३० पल भयात ३६।७=२१६७ पल तो त्रैराशिक से भभोगमान ३९३० में २१६७ भयात हो तो ६० घटी में होगा $\frac{२१६७×६०}{३९३०}$ $=\frac{४३३४}{१३१}$=३३।५।२ स्वल्पान्तर घट्यादि मध्यम भयात हुआ । इसी प्रकार मध्यम भयात घटी बना कर ६० से गुणित गतर्क्ष में जोड़ने से स्फुट अवस्था का ज्ञान होगा । अन्यथा अवस्था में कुछ स्थूलता (या विभिन्नता भी) आ सकती है ।

राशि में चन्द्रमा हो तो क्रम से प्रवासादि अवस्था, वृष राशि में चन्द्रमा हो तो नाशादि, मिथुन में चन्द्रमा हो तो मरणादि, कर्क का चन्द्रमा हो तो जयादि···अवस्थाएँ होती हैं ॥ १५ ॥

प्रत्येक राशि में (अर्थात् मध्यममान से १३५ घटी में) चन्द्रमा की अवस्थाएँ होती हैं। अतः १३५ में १२ का भाग देने पर ११ अवस्था मान $\frac{१३५}{१२}$ =११।१५ घटी आता है ॥ १५ ॥

सरलता से ज्ञान के लिये अवस्थावोधक सारणी

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	घटी पल
प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	११।१५
नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	२२।३०
मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	३३।४५
जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	४५।०
हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	जय	५६।१५
रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	६७।३०
क्रीडित	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	७८।४५
सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	९०।०
भुक्त	ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	१०१।१५
ज्वर	कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	११२।३०
कम्प	सुस्थि.	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	१२३।४५
सुस्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीडि.	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	१३५।०

अथ ग्रहाणां वैकृतपरिहारार्थं सौषधजलस्नानं दक्षिणाश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

लाजाकुष्ठबलाप्रियङ्गुघनसिद्धार्थैर्निशादारुभिः
पुङ्खालोध्रयुतैर्जलैर्निगदितं स्नानं ग्रहोत्थाघहृत् ।
धेनुः कम्बुररुणो वृषश्च कनकं पीताम्बरं घोटकः
श्वेतो गौरसिता महासिरज इत्येता रवेर्दक्षिणाः ॥ १६ ॥

लाजाकुष्ठमिति । लाजा भृष्टशालय इति केचित् । वस्तुतस्तु औषधिसाहचर्याल्लाजाशब्देन लज्जावती गृह्यते, कुष्ठं प्रसिद्धम्, बला 'वरिया' इति कान्यकुब्जभाषायामाहुः, प्रियङ्गुः फलिनी, घनो मुस्ता, सिद्धार्थाः सर्षपाः 'शिरसा' इति महाराष्ट्राः, 'सरिपः' इति कान्यकुब्जाः । निशे हरिद्राद्वयम्, दारुः देवदारुः, पुङ्खा शरपुङ्खा, लोध्रं प्रसिद्धम्, एतैरौषधैर्युतानि गङ्गादिजलानि तैः स्नानं दुष्टग्रहसूचितारिष्टनाशकं स्यात् । उक्तञ्च दीपिकायाम्—'सिद्धार्थलोध्ररजनीद्वयमुस्तधान्यं लामज्जकं सफलिनी सवचा च मांसी । स्नानं कुरु ग्रहगणप्रशमाय नित्यं सर्वे रविप्रभृतयः सुमुखीभवन्ति ॥' दैवज्ञमनोहरेऽपि—'सप्रियङ्गुरजनीद्वयमांसीकुष्ठलाजसितसर्षपखण्डैः । वारिभिः सह वचैः सह लोध्रैः स्नानमत्ति निखिलग्रहपीडाम् ॥' इति । वारिभिस्तीर्थोदकैः ।

तत्रौषधस्नानानि ग्रहभेदेन

रत्नमालायां तु प्रत्येकग्रहाणामौषधस्नानमुक्तम् । यथा रवेः—

'मनःशिलैलासुरदारुकुङ्कुमैरुशीरयष्टीमधुपद्मकान्वितैः ।
सताम्रपुष्पैर्विषमे स्थिते रवौ शुभावहं स्नानमुदाहृतं बुधैः ॥'

चन्द्रस्य—

'पञ्चगव्यगजदानविमिश्रैः शङ्खशुक्तिकुमुदस्फटिकैश्च ।
शीतरश्मिकृतवैकृतहन्तृ स्नानमेतदुदितं नृपतीनाम् ॥'

कुजस्य—

'बिल्वचम्पकबलारुणपुष्पैर्हिङ्गुकल्कफलिनीबकुलैश्च ।
स्नानमद्भिरिहे मांसियुताभिर्भौमदौस्थ्यविनिवारणमाहुः ॥'

बुधस्य—

'गोमयाक्षतफलैः ससरोजैः क्षौद्रशुक्तिनवमूलहेमभिः ।
स्नानमुक्तमिदमत्र भूभृतां बोधनाशुभविनाशनं बुधैः ॥'

गुरोः—

'मालतीकुसुमयुक्तसर्षपैः पल्लवैश्च मदयन्तिकोद्भवैः ।
क्षिप्रमम्बुमधुकेन च स्फुटं वैकृतं गुरुकृतं विनिहन्ति ॥'

शुक्रस्य—

'एलया च शिलया समन्वितैर्वारिभिः सकलमूलकुङ्कुमैः ।
स्नानतो भृगुसुतोपपादितं दुःखमेति विलयं न संशयः ॥'

शनेः—

'असिततिलाञ्जनलोध्रबलाभिः शतकुसुमान्वितलाजयुताभिः ।
रवितनये कथितं विषमस्थे दुरितहृदाप्लवनं मुनिमुख्यैः ॥'

राहुकेत्वोः—

'लोध्रगर्भतिलपत्रकमुक्ताहस्तिदानमृगनाभिपयोभिः ।
स्नानमार्त्तिमिह कृन्तति राहोः साजमूत्रमिदमेव च केतोः ॥'

राहुकथितद्रव्यमजमूत्रसहितं केत्वर्थं स्यात् । अत एवोक्तं दीपिकायाम्—'प्रयोज्यमौषधस्नानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् । ग्रहानुद्दिश्य होमो वा ग्रहाणां प्रीतिमिच्छता ॥' तत्र ग्रहपूजाहोमौ वसिष्ठसंहितायां महता प्रबन्धेनोक्तौ तत एवावगन्तव्यावित्यलमतिविस्तरेण ।

दक्षिणाः

अथ रवेरिति । रविमारभ्य दक्षिणा उच्यन्ते । तत्र सूर्यप्रीत्यर्थं धेनुः, चन्द्रप्रीत्यर्थं कम्बु शङ्खः, कम्बु इति नपुंसकलिङ्गं पृथक्पदम् 'शङ्खः स्यात्कम्बुरस्त्रियाम्' इत्यम-

रोक्तेः। मङ्गलप्रीत्यर्थमरुण आरक्तो वृषः, बुधप्रीत्यर्थं कनकं सुवर्णम्, गुरुप्रीत्यर्थं पीताम्बरम्, तच्च यथाविभवं कार्पासं कोशजं च, शुक्रप्रीत्यर्थं श्वेतो घोटकः, शनिप्रीत्यर्थमसिता श्यामवर्णा गौः, राहुप्रीत्यर्थम् महाऽसिर्बहुमूल्यखड्गः, केतुप्रीत्यर्थमजः छागः, एवमेषां दक्षिणेत्यर्थः। यदाह वसिष्ठः—'धेनुं शङ्खं रक्तवृषं हेम पीताम्बरद्वयम्। श्वेताश्वं कृष्णधेनुं च कृष्णलोहमजं क्रमात्॥ स्वर्णेन वाससीकृत्य दातव्या दक्षिणा ततः। आचार्यार्थं जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽथ शक्तितः॥' इति।

तत्र दानान्तराण्यपि

अत्र प्रत्येकं दानमन्त्रास्तत्रैवोक्ताः, ग्रन्थभूयस्त्वभयान्न लिख्यन्ते।

'एवं यः कुरुते सम्यग्ग्रहयज्ञं नृपोत्तमः। सर्वान् कामानवाप्नोति शुभस्थानफलं लभेत्॥'

नृपोत्तम इत्युपलक्षणम्, तेन यः कश्चिद् गृहस्थोऽपि कुर्यात्। तत्र स्वविभवानुरूपाणि ग्रहदानानि प्रोक्तानि कैश्चित्। यथा रवेः—

'कौसुम्भवस्त्रं गुडहेमताम्रं माणिक्यगोधूमसुवर्णवस्त्रम्।
सवत्सगोदानमिति प्रणीतं दुष्टार्यमार्त्तिघ्नमसूरिकाश्च॥'

चन्द्रस्य—

'घृतकलशं सितवस्त्रं दधिशङ्खौ चैव मौक्तिकसुवर्णे।
रजतं च सम्प्रदद्याच्चन्द्रारिष्टोपशमनाय॥'

भौमस्य—

'प्रवालगोधूममसूरिकाश्च वृषश्च ताम्रः करवीरपुष्पम्।
आरक्तवस्त्रं गुडहेमताम्रं दुष्टाय भौमाय सचन्दनं हि॥'

बुधस्य—

'नीलं वस्त्रं मुद्गदानं बुधाय रत्नं पाची दासिका हेम सर्पिः।
कांस्यं दन्तः कुञ्जरश्चाथ मेषो रौप्यं सर्वं पुष्पजात्यादिकं च॥'

गुरोः—

'अश्वः सुवर्णं शुकपीतवस्त्रं सपीतधान्यं लवणं सपुष्पम्।
सशर्करं तद्रजनीप्रयुक्तं दुष्टाय शान्त्यै गुरवे प्रदेयम्॥'

शुक्रस्य—

'चित्रवस्त्रमपि दानमर्चिते दुष्टगे मुनिवरैः परिगीतम्।
तण्डुलं घृतसुवर्णरूप्यकं वज्रकं परिमलो धवलोऽश्वः॥'

शनेः—

'नीलकं महिषं कृष्णं वस्त्रं लोहं सदक्षिणम्। दद्याच्च दक्षिणायुक्तं शनिदौष्टयप्रशान्तये॥'

राहोः—

'राहोर्दानमिदं मेषो गोमेदं लोहकम्बलौ। सुवर्णं नागरूप्यं च सतिलं ताम्रभाजनम्॥'

केतोः—

'केतौ वैदूर्यममलं तैलं मृगमदस्तथा। ऊर्णासितलाश्च संयुक्ता दद्यात् क्लेशापनुत्तये॥'

अन्यच्च संहिताप्रदीपे

'भानुस्ताम्बूलदानादपहरति नृणां वैकृतं वासरोत्थं
सोमः श्रीखण्डदानादवनिवरसुतो भोजनात्पुष्पदानात् ।
सौम्यः शक्रस्य मन्त्री हरिहरनमनाद्भार्गवः शुभ्रवस्त्रै-
स्तैलस्नानात्प्रभाते दिनकरतनयो ब्रह्मनुत्या परौ च ॥' इति ।

ब्रह्म ब्राह्मणः, परौ राहुकेतू ॥ १६ ॥

हिन्दी—दुष्ट ग्रहों से उत्पन्न दोष से छुटकारा पाने के लिये लाजा (धान का लावा), कूठ, वरिआरा, टाँगुन, मोथा, सरसों, हल्दी, दारु (देवदार या दारुहल्दी), सरपुंखा एवं लोध्र, इन औषधियों को पानी में मिलाकर स्नान करना चाहिए। ये औषधियाँ ग्रह के दोष को नष्ट करने वाली हैं।

सूर्य के दोष को शान्त करने के लिये धेनु (व्याई हुई गौ), चन्द्रमा के लिये शंख, मंगल की शान्ति के लिये लाल वस्त्र, बुध की शन्ति के लिये ८० रत्ती सोना, बृहस्पति की शान्ति के लिये पीताम्बर, शुक्र की शान्ति के लिये श्वेत घोड़ा, शनि की शान्ति के लिये काली गौ, राहु की शान्ति के लिये बढ़िया तलवार और केतु की शान्ति के लिये बकरा (दान करके) दक्षिणा के स्वरूप में देना चाहिए।

विशेष—सभी ग्रहों की शान्ति के लिये ग्रहों के वैदिक या पौराणिक मन्त्र का जप और दान करना भी कल्याणकारी होता है ॥ १६ ॥

अथ सूर्यादयो ग्रहा गन्तव्यराशेः प्राक् कियद्भिर्दिनैः फलं दद्युरित्येतदुपजात्याह—

सूर्यारसौम्यास्फुजितोऽक्षनागसप्ताद्रिघस्रान् विधुरग्निनाडीः ।
तमोयमेज्यास्त्रिरसाऽश्विमासान् गन्तव्यराशेः फलदाः पुरस्तात् ॥ १७ ॥

सूर्यारसौम्येति । सूर्यादयो ग्रहा गन्तव्यराशेर्जिगमिषितराशेः पुरस्तात् पूर्वमेवैतत् सङ्ख्याकदिवसघटीमासान् । अत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया । ततो नैरन्तर्येण तावन्तं कालं फलदाः स्युः । तद्यथा—सूर्यो गन्तव्यराशेः प्राक् अक्षघस्रान्, पञ्चदिवसान् फलदः, एवमारो भौमोऽष्टदिवसान् पूर्वं फलदः, बुधः सप्तदिवसान्, शुक्रोऽपि सप्तदिवसान्, विधुश्चन्द्रः अग्निनाडीर्घटिकात्रयमेव प्राक् फलदः, राहुर्गन्तव्यराशेः प्राक् त्रिमासं फलदः, एवं शनिः षण्मासान्, गुरुर्द्विमासान् पूर्वं फलद इत्यर्थः । उक्तञ्च—'सूर्यः पञ्चदिनं शशी त्रिघटिकं भौमोऽष्ट वै वासरान् सप्ताहानि भृगुः ससोमतनयो मासद्वयं वै गुरुः । षण्मासान्पुरतोऽपि सूर्यतनयो राहुश्च मासत्रयं केतुश्चैव ददाति भावि सकलं गन्तव्यराशेः फलम् ॥' इति । जगन्मोहने त्वेवमुक्तम्—'आदित्यादिग्रहा दद्युर्लग्ने वा गोचरेऽपि वा । सप्तविंशतिमासोर्ध्वं परराशिफलं खलु ॥' इति ॥ १७ ॥

हिन्दी—आगे की राशि में प्रवेश करने के समय से सूर्य ५ दिन, मंगल ८ दिन, बुध ७ दिन, शुक्र ७ दिन और चन्द्रमा ३ घटी पहले अगली राशि का शुभाशुभ फल देने लगते हैं। राहु (और केतु) ३ मास, शनि ६ मास और बृहस्पति २ मास पूर्व अगली राशि का फल देने लगते हैं ॥ १७ ॥

अथ प्रसङ्गादावश्यकमङ्गलयात्राकृत्येषु कर्त्तव्येषु सत्सु तिथ्यादिविषयकदुष्टयोगसद्भावे तद्दोषनिवारणार्थं दानं शालिन्याह—

दुष्टे योगे हेम चन्द्रे च शङ्खं धान्यं तिथ्यर्द्धे तिथौ तण्डुलांश्च ।
वारे रत्नं भे च गां हेम नाड्यां दद्यात्सिन्धूत्थं च तारासु राजा ॥ १८ ॥

दुष्ट इति । दुष्टे व्यतीपातादिरूपे योगे सति हेम सुवर्णं यथाशक्ति राजा दद्यात् । च पुनश्चन्द्रे दुष्टे विहितान्यस्थानस्थिते शङ्खं दद्यात् । तिथ्यर्द्धे करणे भद्राख्ये दुष्टे धान्यं दद्यात् । तिथौ दुष्टे चतुर्थ्यादिरूपे तण्डुलान् । वारे दुष्टेऽनुपचयरूपे रत्नं प्रवालमुक्तादि दद्यात् । भे राशौ दुष्टे क्रूरग्रहाधिष्ठितत्वादिदोषसहिते सति गां दद्यात् । नाड्यां घटिकायां दुर्मुहूर्तादिना दुष्टायां सत्यां हेम सुवर्णं दद्यात् । च पुनस्तारासु दुष्टासु विपत्प्रत्यरिवधरूपासु सिन्धूत्थं लवणं दद्यात् । पूर्वं दुष्टतारासु प्रत्येकं विशिष्य दानमुक्तम् । इदानीं तदशक्तौ लवणमेव देयमिति पुनरुक्तिपरिहारः । उक्तञ्च दीपिकायाम्—'योगस्य हेम करणस्य च धान्यमिन्दोः शङ्खं च तण्डुलमणी तिथिवारयोश्च । ताराबलाय लवणान्यथ गां च राशेर्दद्याद् द्विजाय कनकं शुचि नाडिकायाम् ॥' इति ॥ १८ ॥

हिन्दी—किसी आवश्यक कार्य करने के समय दुष्टयोग हो तो सुवर्ण, दुष्ट चन्द्रमा हो तो शंख, दुष्ट करण (भद्रा) हो तो धान्य (अन्न), दुष्ट तिथि (४।९।१४।३०) हो तो चावल, दुष्ट वार (मं० श० सू०) हो तो रत्न, दुष्ट नक्षत्र हो तो गौ, विवाह में दुष्ट नाडी (एक नाडी) हो तो सुवर्ण तथा दुष्ट तारा (विपत्, प्रत्यरि, वध) हो तो नमक का दान राजा को करना चाहिए ॥ १८ ॥

अथात्र गोचरप्रसङ्गात्सूर्यादयो ग्रहाः राश्यन्तरगताः सन्तः कदा शुभाशुभफलदातारो भवन्ति तथा चान्द्रमासाधिकरणकरविवासरादौ स्वजन्मनक्षत्रप्रवेशे सति फलविशेषं च वसन्ततिलकावृत्तेनाह—

राश्यादिगौ रविकुजौ फलदौ सितेज्यौ
मध्ये सदा शशिसुतश्चरमेऽब्जमन्दौ ।
अध्वान्नवह्निभयसन्मतिवस्त्रसौख्य-
दुःखानि मासि जनिभे रविवासरादौ ॥ १९ ॥

इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्त्तचिन्तामणौ
गोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

राश्यादिगाविति । रविकुजौ सूर्यमङ्गलौ राश्यादिगौ राशिप्रथमदशांशमध्यस्थितौ सन्तौ फलदौ निखिलफलदातारौ । अवशिष्टांशेष्वीषत्फलदौ । एवं सितेज्यौ शुक्रबृहस्पती मध्ये मध्यगतांशदशके निखिलफलदातारौ अन्यत्रेषत् । शशिसुतो बुधः सदा त्रिशदंशेषु निखिलफलदाता । अब्जमन्दौ चन्द्रशनैश्चरौ चरमदशके निखिलफलदातारावन्यत्रेषत् । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'भवनाधिगतौ फलदौ रविभौमौ मध्यगौ च गुरु-

शुक्रौ । अन्त्यगतौ शशिरविजौ सदैव फलदः शशाङ्कसुतः ॥' वराहेणापि—'दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ । रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम् ॥' इति । रुधिरो भौमः ।

वारभेदेन मासि मासि जन्मनक्षत्रफलम्

अध्वेति । यस्मिन्मासे स्वीयजन्मनक्षत्रप्रवेशे सूर्यादिवाराश्चेत्स्युस्तदा तस्मिन्मासेऽध्वादीनि फलानि वाच्यानि । तद्यथा—रविवारे जन्मनक्षत्रप्रवेशे सति तस्मिन् मासे अध्वा मार्गोऽटनमिति यावत्, फलं तस्य पुंसो भवेत् । एवं चन्द्रवारे जन्मनक्षत्रप्रवेशे अन्नं भक्ष्यं तत्प्राप्तिः स्यादित्यर्थः । एवं भौमवारे वह्निभयं भवेत्, बुधवारे सन्मतिः सती समीचीना धर्मयुक्ता बुद्धिर्भवेत्, गुरुवारे वस्त्रप्राप्तिर्भवेत्, भृगुवारे सौख्यं भवेत्, शनिवारे दुःखप्राप्तिः स्यादित्यर्थः । उक्तञ्च ज्योतिषरत्नसङ्ग्रहे वामनेन—'अध्वा भोजनमग्निभिः सुमतिता वस्त्रं सुखं चासुखं मासे मासि फलं भवेज्जननभे सूर्यादिवारे स्थिते ॥' इति । अत्र—'मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्' इति भास्कराचार्यवाक्याच्चान्द्रः शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तो मासो गृह्यत इति शिवम् ॥ १९ ॥

अथ गोचरप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—**इति श्रीदैवज्ञेति ।**

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने ग्रहगोचरप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ॥

इति श्रीमद्दैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्त्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां ग्रहगोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

हिन्दी—सूर्य और मंगल राशि के आदि में (१० अंश तक) शुक्र और बृहस्पति राशि के मध्य में (११° से २०° तक), बुध सदा (जबतक राशि पर रहता है तब तक), चन्द्रमा और शनि राशि के अन्त में (२१° से ३०° तक) अपना शुभाशुभ फल देते हैं।

प्रत्येक चन्द्रमास में अपना जन्मनक्षत्र सूर्यादि वारों में पड़े तो उस मास में क्रम से इस प्रकार फल भोगना पड़ता है । यथा—रविवार को जन्मनक्षत्र पड़े तो यात्रा करनी पड़े । सोमवार को जन्मनक्षत्र पड़े तो अन्न का लाभ हो, मंगलवार में अग्नि का भय, बुधवार में अच्छी बुद्धि (सात्त्विक बुद्धि), गुरुवार में वस्त्र का लाभ, शुक्रवार में सुख का लाभ और शनिवार में अपना नक्षत्र पड़े तो उस मास में दुःख भोगना पड़ता है ॥ १९ ॥

श्री पं० धर्मदत्तद्विवेदी-तनूज विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी-कृत गोचर-प्रकरण पर मणिप्रदीप नामक टीका समाप्त ॥ ४ ॥

---

(५) अथ संस्कारप्रकरणम्[1]

शर्वाणीतनयमथाब्धिदावमीशं नत्वा श्रीगुरुपदभक्तिलब्धविद्यः ।
गोविन्दो विबुधजनप्रहर्षिणीं तां संस्कारप्रकरणटिप्पणीं तनोति ॥

अथ संस्कारप्रकरणं व्याख्यायते, तत्र संस्क्रियतेऽनेन श्रौतेन कर्मणा स्मार्तेन वा पुरुष इति संस्कारः । स्त्रीयस्वीयजातौ सामान्यविशेषविहितवैदिकस्मार्तकर्मानुष्ठानद्वाराऽदृष्ट-विशेषाधायक इति यावत् । लक्षणया तदर्थोक्तदिनशुद्ध्यादिकं संस्कारशब्देनोच्यते । तस्य प्रकरणमुपक्रमः ।

अष्टचत्वारिंशत्संस्कारनामानि सफलानि

ते च संस्कारा अष्टचत्वारिंशत् । यदाह गौतमः—'गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जातकर्मनामकरणान्नप्राशनचौलोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानमष्टका पार्वणःश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणीचैत्री आश्वियुजीति सप्त पाकसंस्थाः, अग्न्याधानमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यान्याग्रयणेष्टिर्निरूढ-पशुबन्धः सौत्रामणीति सप्त हविर्गृहयज्ञसंस्थाः, अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्तः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोप्तोर्याम इति सप्त सोमयज्ञसंस्था इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः । अष्टा-वात्मगुणाः—'दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूयाशौचमनायासो माङ्गल्यमकार्पण्यमस्पृहेति । यस्यैते चत्वारिंशत्संस्कारा अष्टावात्मगुणाश्च स ब्राह्मणः सायुज्यमाप्नोति' इति । तत्रैते पुंसः संस्काराः समीचीनदिवसेष्वनुष्ठिताः सन्तोऽभिहितफलदातारो भवन्ति । तत्र प्रथमं गर्भाधानाख्यः संस्कारोऽभिहितः । स च रजस्वलास्त्र्यधीनः । उक्तञ्च भारद्वाजसंहिता-याम्—'रजस्वला यदा नारी योग्या स्याद् गर्भधारणे । ततः कुर्वीत तत्सङ्गं गर्भार्थं बुद्धिमान्नरः ॥'

पुत्रोत्पादनाकरणे प्रत्यवाय इत्यादिरित्या पुत्रप्रशंसा

तत्रापि पुत्रोत्पत्त्यर्थमवश्यं सङ्गः कार्यः, अन्यथा परलोकाभावः । उक्तञ्च श्रुतौ—'नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः' इति । पशवो देवाः । अत एव पुन्नाम्नो नरकात् त्रायत इति पुत्र इत्यन्वर्थता प्रतीयते । तदुक्तं महाभारते आदिपर्वणि शाकुन्तले—

'यदागमवतः पुंसो यदपत्यं प्रजायते । तत्तारयति सन्तत्या पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥' इति ।

---

१. इस प्रकरण में गर्भाधानादि व्रतबन्धान्त संस्कारों के मुहूर्तों का वर्णन है, अतः इसको संस्कार-प्रकरण कहते हैं ।

अनेनामुष्मिकं फलमुक्तं सन्ततेः। ऐहिकमपि फलमुक्तं भारते—

'इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः। सर्वमेतदपत्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥
व्रतोपवासैर्बहुभिः कृतं भवति भीष्म यत्। सर्वं तदनपत्यस्य मोघं भवति निश्चितम् ॥'

अतो गर्भाधानमवश्यं कर्त्तव्यम्।

रजोदर्शनात्प्राक् स्त्रीसङ्गो न करणीयः

तच्च रजोदर्शनतः प्राङ् न विधेयम्। तदुक्तं भविष्यत्पुराणे—'रजोदर्शनतः पूर्वं न स्त्रीसंसर्गमाचरेत्। संसर्गं यदि कुर्वीत नरके परिपच्यते ॥' युक्तं चैतत्, रजो हि पुष्परूपम्, तद्विना फलस्वरूपसन्तानानुपपत्तेः। ननु क्वचिद्रजोदर्शनं विनापि गर्भसम्भवो दृश्यते, क्वचित्तु सत्यपि रजसि गर्भानुपलम्भ इति, नैष दोषः। गर्भधारणं हि रजो विना न भवतीत्येषा व्याप्तिः। तच्च क्वचित्प्रकटं क्वचिदप्रकटमन्तरेव तिष्ठति। तत्राप्रकटेऽपि रजस्यन्तर्गतरजःसत्त्वाद् गर्भधारणसम्भवः। अतः प्रागुक्तदोषाभावः। उक्तं च कश्यपसंहितायाम्—'वर्षद्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्पं बहिर्नहि। अन्तःपुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत्। अतस्तु तत्र कुर्वीत तत्सङ्गं बुद्धिमान्नरः ।' इति। यत्र तु सत्यपि रजसि गर्भधारणं न दृश्यते तत्र पुष्पबीजक्षेत्रादिदोषा द्रष्टव्याः। तस्मात्स्थितमेतद्रजोदर्शनानन्तरं स्त्रीसङ्गः कार्य इति। तत्र—'प्रथमरजोदर्शनतः शुभाशुभं भवति सर्ववनितानाम्' इति वसिष्ठोक्तेः। तत्र शुभफलसूचकं प्रथमरजोदर्शनमनुष्टुभाह—

आद्यं रजः शुभं माघमार्गराधेषफाल्गुने।
ज्येष्ठश्रावणयोः शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा ॥ १ ॥

आद्यमिति। राधो वैशाखः इष आश्विनः, शेषं स्पष्टम्। आद्यं प्रथमोद्भवं रजः स्त्रीधर्मो माघमार्गशीर्षवैशाखाश्विनफाल्गुनमासेषु तथा ज्येष्ठश्रावणमासयोश्चेत्तदा शुभं भविष्यच्छुभसूचकम्।

तत्राशुभमासाः

अर्थाच्चैत्राषाढभाद्रपदकार्त्तिकपौषमासा अशुभाः। उक्तञ्च स्मृतिचन्द्रिकायाम्—
चैत्रे स्यात्प्रथमर्तौ तु नारी वैधव्यभागिनी। वैशाखे धनपुत्राढ्या ज्येष्ठे रोगान्विता तथा ॥
शुचौ मृतप्रजा प्रोक्ता श्रावणे धनधान्यदा। नभस्ये दुर्भगा क्लिष्टा आश्विने च तपस्विनी ॥
ऊर्जेऽप्यायुष्मती नारी मार्गशीर्षे बहुप्रजा। पौषे तु पुंश्चली नारी माघे पुत्रसुखान्विता ॥
फाल्गुने श्रीमती साध्वी क्रमान्मासफलं स्मृतम्।' इति।

तथा शुक्ले शुक्लपक्षे सत्, अर्थात्कृष्णपक्षे रजोदर्शनं दुष्टम्। तदुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायाम्—
'शुक्लपक्षे सुशीला स्यात्कृष्णे सा कुलटा भवेत्। कृष्णस्य दशमीं यावन्मध्यमं फलमादिशेत् ॥'
अतः कृष्णपक्षदशम्युत्तरं कुलटात्वं स्यादित्यर्थः।

तत्र वारफलानि—

सद्वारे सतां चन्द्रबुधगुरुशुक्राणां वारे आद्यं रजः शुभमर्थादन्यवारेषु दुष्टफलम्। यदाह कश्यपः—

'रोगिणी रविवारे तु सोमवारे पतिव्रता । दुःखिता भौमवारे तु बुधे सौभाग्यसंयुता ॥
श्रीसंयुता गुरोर्वारे पतिभक्ता भृगोर्दिने । मलिना मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव च ॥'

वसिष्ठोऽपि—'सदा गदार्त्ता सुपतिव्रता सा वन्ध्या प्रजावत्यतुलार्थयुक्ता ।
आनन्दकर्त्री त्वसती च पुष्पवती क्रमाद्भास्करवासरेषु ॥'

भास्करवासरेष्वित्यत्र—'अर्धर्चाः पुंसि च' इत्यादिना बहुवचनाद्यर्थोऽवगम्यते । तेन भास्करवासरादिष्वित्यर्थः फलितः ।

लग्नफलानि

सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभस्वामिकराशावित्यर्थ इति केचित् । तत्र शुभफलमाद्यं रजः । यदाह नारदः—'कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाधराः । राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्त्तवे ॥' केचित्तु सत्तनौ सद्भिर्दृष्टे तनौ युते वा इति व्याख्यां कुर्वते । तदुक्तं दैवज्ञमनोहरे—

'मेषे सव्यभिचारा स्याद् वृषभे परभोगिनी । मिथुने धनभोगाढ्या कर्कटे व्यभिचारिणी ॥
पुत्राढ्या सिंहराशौ तु कन्यायां श्रीमती भवेत् । विचक्षणा तुलायां च वृश्चिके तु पतिव्रता ॥
दुश्चारिणी धनुःपूर्वे अपरे च पतिव्रता । मकरे मानहीना च कुम्भे निर्धनबन्धुता ॥
मीने विलक्षणा लग्ने ग्रहसंस्था विवाहवत् ।'

अशुभपुष्पापवादः

अत्राशुभफलापवादमाह वसिष्ठः—'अशुभमपि समस्तं चार्त्तवं सम्प्रभूतं सुरगुरुसितयुक्ते वीक्षिते वाथ लग्ने । तिमिरमिव कठोरज्योतिरुत्पत्तिकाले क्षयमथ समुपैति प्राप्नुयादीप्सितानि ॥' कठोरज्योतिः सूर्यः ।

तत्र प्रातःसायङ्कालावेव श्रेष्ठौ

दिवा दिवसे आद्यं रजः शुभम्—'मलिनी मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव च' इति नारदोक्तेः । दिवा रजोदर्शनं शुभमित्यर्थः । स्मृत्यन्तरेऽपि विशेष उक्तः—'प्रातःकाले तु सधना सायाह्ने सर्वभोगिनी । मध्याह्ने च भवेद्वेश्या निशीथे विधवा भवेत् ॥' इति ॥ १ ॥

हिन्दी—माघ, मार्गशीर्ष, वैशाख, आश्विन, ज्येष्ठ और श्रवण इन ७ महीनों के शुक्लपक्ष में शुभ (सोम, बुध, गुरु, शुक्र) वारों में, शुभ लग्नों (२।३।४।६।७।९।१२) में और दिन के समय स्त्रियों का प्रथम रजोदर्शन (पहले-पहल मासिक धर्म) होना उत्तम है ॥ १ ॥

अथ प्रथमे रजोदर्शनं शुभनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौ सिताम्बरे ।
मध्यं च मूलादितिभे पितृमिश्रे परेष्वसत् ॥ २ ॥

श्रुतित्रयेति । श्रुतित्रयं श्रवणधनिष्ठाशतभिषाः, मृदुक्षिप्रध्रुवाणि चित्रानुराधामृगरेवत्यश्विनीपुष्यहस्तरोहिण्युत्तरात्रयस्वातीषु भेषु आद्यं रजः शुभमिति पूर्वेण सम्बन्धः । अत्र समाहारद्वन्द्व आगमशासनस्यानित्यत्वान्नुमभावः । मूलेति । मूलपुनर्वसुमघा-

विशाखाकृत्तिकासु मध्यं मध्यमफलम् । परेषु भरणीज्येष्ठार्द्राश्लेषापूर्वात्रयेषु असदनिष्ट-फलम् ।

नक्षत्रानुरोधेन फलानि रजोदर्शने

उक्तञ्च गर्गेण—

'सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता । धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसन्तानमोदिनी ॥
सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेश्मरता सदा । दीना प्रज्ञावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥
साध्वी पतिव्रता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी । स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता ॥
नित्यं धनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता ।
मूर्खार्थाढ्या गुणवती दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥' इति ।

व्यवहारनिबन्धे श्रीपतिनापि—

'करादिपञ्चोत्तरमूलपूषविष्णुत्रयाश्वीज्यविधीन्दुभेषु ।
आद्यं रजः सौख्यसुतायुरर्थसौभाग्यवृद्धिं कुरुतेऽङ्गनानाम् ॥
मघेशयोः शोकमथादितेर्भे सा बन्धकीन्द्रेऽप्यनले दरिद्रा ।
पूर्वात्रये याम्यभुजङ्गधिष्ण्ये वैधव्यमस्या भवतीति नूनम् ॥'

अत्र यद्यपि लिखितयोर्द्वयोरपि सम्मतिवाक्ययोरैकार्थ्यम्, तथापि ग्रन्थकृता विशाखामूलयोर्मध्यत्वाभिधानं वसिष्ठवाक्यस्यानुरोधात्कृतम् । उक्तञ्च वसिष्ठेन— 'द्विदैवभे पुष्पवती प्रमत्ता कृत्यैव मोघामयवैरिसन्धा । मूले प्रकामाधिकहीनसत्त्वा स्यात्सर्वभक्षोद्धतदोषचित्ता ॥' इति ।

तदाधृतवस्त्रवर्णेन शुभाशुभफलानि

सिताम्बरे श्वेतवस्त्रे आद्यं रजः शुभमिति पूर्वेण सम्बन्धः । उपलक्षणं चैतत्क्षौम-नूतनवस्त्रयोः । अर्थादन्येषु दुष्टेषु वस्त्रेषु रजोदर्शनं निन्द्यमित्यर्थः । तदाह वसिष्ठः—

'सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद् दृढवस्त्रा पतिव्रता ।
क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥
दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ॥
मलिनाम्बरतो नारी दरिद्रा स्याद्रजस्वला ।'

क्षौमवस्त्रं पट्टवस्त्रम् । क्वचिद्रक्तबिन्दुभिः फलमुक्तम्—'वस्त्रे स्युर्विषमा रक्त-बिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यकां चेति फलं स्यात्प्रथमार्त्तवे ॥' इति वसिष्ठोक्तेः । अन्यच्च—'सम्मार्जनीकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् । तल्पोपभोगे रहसि स्थिता चेद् दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात्' ॥ २ ॥

हिन्दी—श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा अनुराधा), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी एवं स्वाती इन १५ नक्षत्रों में सफेद वस्त्र पहने हुए प्रथम रजोदर्शन उत्तम होता है । मूल, पुनर्वसु, मघा एवं मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका) इन ५ नक्षत्रों में मध्यम और शेष (भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, पूर्वाफल्गुनी, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा ये ७) नक्षत्र प्रथम रजोदर्शन में निन्दित हैं ॥ २ ॥

अथ निन्द्यरजोदर्शनं शालिन्याह—

भद्रानिद्रासङ्क्रमे दर्शरिक्तासन्ध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु।
रोगेऽष्टम्यां चन्द्रसूर्योपरागे पाते चाद्यं नो रजोदर्शनं सत् ॥ ३ ॥

भद्रेति। भद्रा प्रसिद्धैव, निद्रा स्वापः, सङ्क्रमः सङ्क्रान्तिः, दर्शोऽमावास्या, रिक्ताः प्रसिद्धाः, सन्ध्याः प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या सायंसन्ध्या च, षष्ठीद्वादश्यौ प्रसिद्धे, वैधृताख्यः सप्तविंशतितमो योगः, रोगो ज्वरादिः प्रदरादिश्च, अष्टमी, चन्द्र-सूर्योपरागो ग्रहणम्, पातो व्यतिपातः, सप्तदशयोगो महापातश्च, एषु दुष्टयोगेष्वाद्यं रजोदर्शनं नो सत्, अनिष्टफलदमित्यर्थः। यदाह कश्यपः—'अष्टमीषष्ठ्यमा रिक्ता द्वादशी सङ्क्रमेऽपि वा। वैधृतौ व्यतिपाते च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ विष्टयां सन्ध्यासु निद्रायां दुर्भगा प्रथमार्त्तवे ॥' नारदेन तु प्रतिपत्तिथिः परिघपूर्वार्द्धे च निषिद्धम्—'अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि। परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ सन्ध्यासूपप्लवे षष्ठ्यामशुभं प्रथमार्त्तवम् ॥' रोगे सम्मतिर्नास्ति।

वसिष्ठेन तु स्थलभेदेन फलविशेषोऽभिहितः

'ग्रामाद् बहिः परग्रामे वा चेत्स्याद्व्यभिचारिणी। पतिव्रता पतिस्थाने सुशीला गृहमध्यमे ॥ ग्राममध्ये च वृद्धिश्च विधवा च दिगम्बरा। उपरागे च दुःशीला आयुष्यं जलसन्निधौ ॥
धनमध्ये तु कन्याया धनधान्यसमृद्धिदा ॥'

प्रथमार्त्तवे स्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः।

तत्र मातृप्रश्नलग्नात्फलानि

अत्र रजस्वलायाः कन्याया मात्रादिकृतप्रश्नलग्नाच्छुभाशुभविशेषो भूयान् वसिष्ठेनोक्तः। सोऽस्माभिर्ग्रन्थबाहुल्यभयान्नालेखि। स तत एवावधार्यः ॥ ३ ॥

हिन्दी—भद्रा (१।४३) में कथित), निद्रावस्था में (निद्रा के वशीभूत रहने पर), संक्रान्ति के समय, अमावास्या, रिक्ता (४।९।१४) तिथि, सन्ध्यासमय में, षष्ठी, द्वादशी तिथियों में, वैधृति योग में, रोग (रुग्णावस्था) में, अष्टमी तिथि, चन्द्र-सूर्य के ग्रहणकाल में एवं व्यतीपात योग में प्रथम रजोदर्शन शुभ नहीं है। इन अशुभ समयों में प्रथम रजोदर्शन होने से सन्तानसुख में बाधा पड़ती है। अतः इसकी शान्ति करने से शुभ (मंगल) होता है ॥ ३ ॥

अथ प्रथमरजस्वलायाः स्नानमुहूर्तं वसन्ततिलकयाऽऽह—

हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यैः शक्रान्वितैः शुभतिथौ शुभवासरे च।
स्नायादथार्तववती मृगपौष्णवायुर्हस्ताश्विधातृभिररं लभते च गर्भम् ॥ ४ ॥

हस्तेति। हस्तस्वात्यश्विनीमृगानुराधाधनिष्ठारोहिण्युत्तरात्रयज्येष्ठाभिः शुभतिथौ भद्रानिद्रासङ्क्रमे इत्याद्यनिष्टदिनव्यतिरिक्तदिवसे शुभवारे शुभानां चन्द्रबुधगुरुशुक्राणां वासरे च। आर्तववती ऋतुरेवार्तवम्। प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण्। तद्विद्यते यस्याः सा तथोक्ता सा रजोवती स्नायात्। उक्तञ्च दैवज्ञवल्लभे—'ब्रह्मानुराधाश्विनिसोमभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु। विश्वार्यमर्क्षोत्तरभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ॥' आखण्डलो ज्येष्ठा वासवं धनिष्ठेत्यपुनरुक्तिः।

वारफलानि प्रथमरजस्वलास्नाने

वारफलमपि तत्रैव—'सरुक्पतिव्रता दीना पुत्रिणी भोगभागिनी। पतिव्रता क्लेशयुक्ता ऋतुस्नानेऽर्कवारतः ॥' इति।

प्रसूतास्नानफलं प्रसङ्गात्

केचित् त्वन्यथा वारफलं वदन्ति—'काकीव वन्ध्या भवतीह शुक्रे नष्टप्रजा स्नानविधौ बुधे च। सौरे च मृत्युः पयसोऽल्पतेन्दौ भौमार्कजीवे बहुपुत्रलाभः ॥' इति। एतत्प्रसूतास्नानविषयम्। तदुक्तं दैवज्ञवल्लभे—'स्नाता प्रसूताऽप्यसुता बुधेन स्नाता च वन्ध्या भृगुनन्दनेन। सौरे मृतिः क्षीरहृतिस्तु सोमे पुत्रार्थलाभो रविजीवभौमे ॥' इति।

प्रथमरजस्वलास्नाने नक्षत्रविशेषः

विशेषमाह—मृगेति। मृगरेवतीस्वातीहस्ताश्विनीरोहिणीभिर्नक्षत्रैः स्नातार्त्तववती अरं शीघ्रं गर्भं लभते। तदुक्तं दैवज्ञमनोहरे—'वायुः पूषा च सौम्यश्च करो ब्रह्मा तथाश्विनी। एभिः स्नाने तु नारीणां गर्भः सम्पद्यते पुनः ॥' इति। अत्रैकादश नक्षत्राणि स्नानविधावुक्तानि। तत्रापि षट्सु भेषु शीघ्रं गर्भोत्पत्तिर्भवेत्। अन्येषु किञ्चिद्विलम्बेनेत्यर्थः। सर्वथा विहितभिन्नेषु स्नानं न कार्यमिति निष्कृष्टोऽर्थः। उक्तञ्च—'कृत्तिका भरणी मूलमार्द्रा पुष्यः पुनर्वसुः। मघा चित्रा विशाखा च श्रवणो दशमस्तथा। एताः प्राणहरास्तारास्तासु स्नानं न कारयेत्। यदि स्नानं प्रकुर्वीत पुनः सूतिर्न विद्यते ॥' इति। अर्थाच्छततारारश्लेषापूर्वात्रियेषु मध्यममिति। इयञ्च देशाचारतो व्यवस्थानुसन्धेया। शिष्टाचारस्यापि स्मृतिवत्प्रामाण्यात्। दाक्षिणात्यास्तु चतुर्थ एव दिवसे स्नानमाहुः। 'चतुर्थेऽहनि शुध्यति' इति। 'भर्त्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला' इति स्मृतिवचनात् ॥ ४ ॥

हिन्दी—हस्त, स्वाती, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) और ज्येष्ठा इन ११ नक्षत्रों में, शुभतिथियों (२।३।५।७।११।१२।१३) में, शुभवारों (चं० बु० गु० शु०) में रजस्वला स्त्री को स्नान कराना चाहिए। मृगशिरा, रेवती, स्वाती, हस्त, अश्विनी, रोहिणी इन नक्षत्रों में स्नान करने वाली रजस्वला स्त्री शीघ्र गर्भधारण करती है ॥ ४ ॥

गर्भाधानमुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं
दास्रं पौष्णमथोपरागदिवसं पातं तथा वैधृतिम्।
पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ॥ ५ ॥

गण्डान्तमिति। तत्र स्वपत्नीगमे स्वपत्नीगमने एतान्दोषान् त्यजेदिति सर्वत्र सम्बन्धः। एतान्कान्? त्रिविधं गण्डान्तम्। गण्डान्तलक्षणं रत्नमालायाम्—'नक्षत्रतिथिलग्नानां गण्डान्तं त्रिविधं स्मृतम्। नवपञ्चचतुर्थानां ह्येकार्द्धघटिकामितम् ॥' इति। निधनं जन्मर्क्षात् सप्तमं वधतारां जन्मनक्षत्रं मूलमन्तकं भरणीं दास्रमश्विनीं पौष्णं रेवतीं मघाम् उपरागदिवसं ग्रहणदिनं पातं व्यतीपातं महापातं च वैधृतियोगं पित्रोः

मातापित्रोः श्राद्धदिनं दिवा सूर्यावच्छिन्नकालं परिघयोगस्य पूर्वार्द्धं तथोत्पातैर्दिव्यान्तरिक्षभौमैस्त्रिविधैरुत्पातैर्हतं दूषितं जन्मर्क्षतः जन्मलग्नाज्जन्मराशेर्वा मृत्युभवनमष्टमं लग्नं पापभं पापग्रहयुक्तभं नक्षत्रं लग्नं वा इति ।

दुष्टतिथ्यादौ रजोदर्शने शान्तिः रजोऽन्तरप्रतीक्षा च

अत्र यदि दुष्टफलतिथ्यादिषु रजोदर्शनमभूत् तत्र चतुर्थदिनानन्तरं शान्तिकं विधेयम् । यदाह वसिष्ठः—

'प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं ततः शान्तिककर्म कार्यम् ।
विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यघस्रे ॥
ईशानतो गोमयमण्डलेन परिसृतेऽग्नौ जुहुयात्सदूर्वाम् ।
युग्मां घृताक्तां च समित्प्रमाणां गायत्रिकां साष्टसहस्रसङ्ख्याम् ॥
शतप्रमाणामथवाघहन्त्रीं शुभैर्यवैर्व्याहृतिभिस्तिलैश्च ।
ततः सुरान् भूमिसुरान् पितॄंश्च सन्तर्पयेदन्नसुवर्णवस्त्रैः ॥' इति ।

शान्तिकप्रकारस्तु शान्तिपद्धत्यादौ द्रष्टव्यः । एवं शान्तिकं विधाय गर्भाधानं विधेयम् ॥ ५ ॥

हिन्दी—रजोदर्शन से ४ दिन के बाद अपनी स्त्री के साथ मैथुन करने में तीनों गण्डान्त (तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगण्डान्त और लग्नगण्डान्त—इसके लिये २।५७ श्लोक देखिए), निधन-(वध)तारा और जन्मतारा (अर्थात् जन्मनक्षत्र से ७।१०।१६।१९।२५वाँ नक्षत्र), मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती और मघा ये नक्षत्र, सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण का समय, पात (व्यतीपात) और वैधृति योग, माता और पिता के श्राद्ध का दिन, दिन का समय, परिघयोग का पूर्वार्ध उत्पात से दूषित नक्षत्र (१।३२ श्लो०), जन्म राशि से आठवीं राशि का लग्न एवं पापग्रह का लग्न (१।५।८।१०।११) इन सबको त्याग देना चाहिए ॥ ५ ॥

अन्यदपि शालिन्याह—

भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्च सन्ध्याभौमार्कार्कीनाद्यरात्रीश्चतस्रः ।
गर्भाधानं त्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे सत् ॥ ६ ॥

भद्रेति । भद्रा प्रसिद्धा, षष्ठीतिथिश्च, पर्वाणि चतुर्दश्यष्टम्यमावास्यापूर्णिमासङ्क्रमणानि । उक्तञ्च विष्णुपुराणे—'चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावास्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसङ्क्रान्तिरेव च ॥' इति । रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, सन्ध्यां प्रातःसन्ध्यां सायंसन्ध्यां च, भौमं मङ्गलवारम्, अर्कमादित्यवारम्, आर्किं शनैश्चरवारं, चतस्रः आद्यरात्रीः रजोदर्शनदिनमारभ्य दिनचतुष्टयं च तत्र त्यजेदित्यर्थः ।

तदनन्तरमपि पुत्रार्थी रजोदर्शनतो विषमदिवसं त्यजेत् । उक्तञ्च गर्भाधानाध्याये वसिष्ठेन निषेधजातम्—

'पौष्णद्वये पित्र्यभयाम्यसार्पविष्णुद्वये नैधनजन्मभेषु ।
उत्पातपापग्रहदूषितेषु न कार्यमाधानमनिष्टलग्ने ॥
उपप्लवे वैधृतिपातयोश्च विष्टयां दिवा पारिघपूर्वभागे ।
सन्ध्यासु पर्वस्वपि मातृपित्रोर्मृतेऽह्नि पत्नीगमनं विवर्ज्यम् ॥

दिनेषु युग्मेषु च वक्ष्यमाणयोगैः सुतार्थी स्वसतीमुपेयात् ।
दिनेष्वयुग्मेषु च कन्यकार्थी हित्वा च गण्डांस्तिथिलग्नभानाम् ॥' इति ।

वक्ष्यमाणयोगैः पुंयोगैः स्त्रीयोगैश्च । अत्र ग्रन्थकृता श्रवणधनिष्ठयोर्न निषेधः कृतः । बार्हस्पत्यसंहितायां तयोर्विशेषतो विहितत्वात् । तद्वचनमधुनैव वक्ष्यते । ननु षोडशीग्रहणवद्विहितप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पः कस्मान्न भवति ? सत्यम् । बहूनामनुरोधो न्याय्य इति विधिरेवोचितः । अत एवोक्तं नारदेन—'शुचिर्भूत्वा युग्मतिथावनग्नां कामयेत्प्रियाम् । पुत्रार्थी पुरुषस्त्यक्त्वा पौष्णमूलाहिपित्र्यभम् ॥' इति । 'त्यक्त्वा पर्वतिथिं मूलमाश्लेषापितृभं त्विति ॥' इति काश्यपोक्तेः ।

तिथ्यादयो गर्भाधाने

अत एव बृहस्पतिसंहितायाम्—'शेषाण्यृक्षाणि दुष्टानि स्युर्निषेकाख्यकर्मणि' इत्युक्तम् । तिथ्यादयः कश्यपेन कालविधाने उक्ताः—'षष्ठचष्टमीं पञ्चदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा । शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्काऽऽर्यसितेन्दुजानाम् ॥' इति । अत्र वाक्ये चन्द्रबुधगुरुशुक्रवारा निषेककार्ये शुभा उक्ताः । अर्थादन्ये सूर्यभौमशनिवारा निषिद्धाः । उक्तञ्च कालनिर्णये—'रिक्ता पर्वाष्टमी षष्ठी दिवा जन्मत्रयं तथा । पापग्रहाणां वाराश्च त्याज्याश्चैवानृतौ गतिः ॥ सोमज्ञगुरुशुक्राणां वारवर्गोदयाः शुभाः । तेषां च दृष्टयश्चैव नेतरेषां कदाचन ॥' इति । अत्र केचिन्निषेके पुंवारा उत्तमाः, स्त्रीवारौ मध्यमौ, नपुंसकवारौ निषिद्धौ । उक्तञ्च व्यासेन—'पुरुषग्रहवाराः स्युः शुभाः सीमन्तकर्मणि । मध्यौ स्त्रीग्रहवारौ तु वर्ज्जयेत्तु नपुंसकौ ॥' इति । अत्र सीमन्तग्रहणमुपलक्षणं गर्भाधानस्येत्याहुः ।

तत्र वारविषये विशेषः

उक्तं चैतत्—'पुंस्त्रीवारेषु स्त्रीगमने पुरुषाः स्त्रियो वोत्पद्यन्ते' इति तावदिष्टम् । नपुंसकवारगमने तु नपुंसकस्योत्पत्तिः स्यात् । नहि सा कस्यचिदिष्टा भवेदिति नपुंसकबुधवारनिषेध एवोचितः । शनिनिषेधस्तूभयवादिसिद्ध एव, दाक्षिणात्यशिष्टसमाचाराच्च । अतो बुधशन्योरेव निषेधोऽन्येषां ग्रहणमिति प्रतीमः । प्राच्यास्तु नैतत्सहन्ते । तन्मते तु सूर्यभौमशनीनामेव निषेधः । नारदः—'रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम् । ततः शुद्धाः क्रियास्त्वेताः सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥'

रजस्वला-शुद्धिकालः

अत्रार्थवादमाह भारद्वाजः—'प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातकी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥' धर्मशास्त्रेऽपि—'भर्त्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला । पञ्चमेऽहनि योग्या स्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ तस्मादेतावतो दोषांस्त्यक्त्वा स्त्रीगमनं हितम् ॥' इति ।

गर्भाधानकालावधिः

ऋतुकालावधिमाह याज्ञवल्क्यः—'षोडशर्त्तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत् । युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥' अतः षोडशदिनमध्ये गर्भाधानं विधेयम्, तत्रैव गर्भसम्भवात् । तत्र वाराः समीचीनाः प्रागुक्ता एव ।

गर्भाधाने नक्षत्राणि

अधुना नक्षत्राण्याह—गर्भाधानमिति। उत्तरात्रयमृगहस्तानुराधारोहिणीस्वातिश्रवणधनिष्ठाशततारकासु गर्भाधानं सत् शुभदम्। उक्तञ्च बार्हस्पत्यसंहितायाम्—'हरिहस्तानुराधाश्च स्वातीवारुणवासवम्। उत्तरात्रितयं सौम्यं रोहिणी च शुभाः स्मृताः॥ आधाने मूलसार्पान्त्यमशुभं सममन्यभम्॥' इति। एवं विहितनक्षत्रे सति चन्द्रबले गर्भाधानार्थं सकृदेव पत्नीगमनं कार्यमित्याह याज्ञवल्क्यः—'एवं गच्छेत् स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्। सुस्थिरेन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत् पुमान्॥' चकाराद्रेवतीम्। भीमपराक्रमोऽपि—

'पित्र्यं पौष्णं नैर्ऋतं चापि धिष्ण्यं त्यक्त्वा नारीं सुप्रसन्नः प्रसन्नाम्।
पुष्टः क्षामां पुत्रकामोऽभिगच्छन् सल्लक्षण्यं पुत्रमाप्नोति पुण्यम्॥' इति।

मन्त्रपूर्वकमेव कार्यः स्त्रिया सङ्गमः

तच्च गमनं मन्त्रपूर्वकम्। तदुक्तं विष्णुपुराणे—'ऋतावुपगमः शस्तः स्वपत्न्यां मन्त्रतो द्विज।' इत्युक्तेरिदं त्रैवर्णिकविषयं प्रतीयते। मन्त्रास्तु विष्णुर्योनिं कल्पयत्वित्येवमादयः। एतैर्मन्त्रैर्दक्षिणेन पाणिनोपस्थमभिमृशेदिति गोभिलोक्तेः॥ ६॥

हिन्दी—भद्रा करण (१।४३ में उक्त), षष्ठी, पर्व दिन (पीयूषधारा द्र०), रिक्ता (४।९।१४) तिथि, सन्ध्या समय, भौम, रवि, शनिवार एवं ऋतुदर्शन से ४ रात्रि, इन सबों को गर्भाधान में त्याग देना चाहिए।

तीनों उत्तरा (उ० फा०, उ० षा०, उ० भा०), मृगशिरा, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा इन ११ नक्षत्रों में गर्भाधान करना उत्तम होता है॥ ६॥

अथ गर्भाधाने लग्नबलमिन्द्रवज्रयाऽऽह—

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभैश्च पापैस्त्र्यायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्ने।
ओजांशगेऽब्जेऽपि च युग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विषु मध्यमं स्यात्॥ ७॥

केन्द्रेति। अथ सामान्यतः शुभलग्नानि वसिष्ठोक्तानि—'वृषमिथुनकर्कसिंहकन्यातुलाधरचापझषाः शुभा भवन्ति। यदि शुभफलशालिनोऽनुकूला निधनविशुद्धियुता निषेककाले॥' इति। तत्र केन्द्रत्रिकोणेषु लग्नचतुर्थसप्तमदशमपञ्चमनवमस्थानस्थितैः शुभग्रहैस्तथा त्र्यायारिगैस्तृतीयैकादशषष्ठस्थानस्थितैः पापग्रहैरुपलक्षिते पुङ्ग्रहैः सूर्यभौमगुरुभिर्दृष्टे लग्ने तथौजांशगे इन्दौ, विषमराशिर्मेषमिथुनादिरंश ओजादिरेव। तत्र स्थिते चन्द्रे सति युग्मरात्रौ समरात्रौ गर्भाधानं कार्यम्। यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'केन्द्राग्निकोणेषु शुभस्थितेषु लग्ने शशाङ्के च शुभैः समेते। पापैस्त्रिलाभारिगतैश्च यायात्पुञ्जन्मयोगेषु च सम्प्रयोगम्॥' नारदः—'ओजराश्यंशगे चन्द्रे लग्ने पुङ्ग्रहवीक्षिते। शुचिर्भूत्वा युग्मतिथौ ह्यनग्नां कामयेत् प्रियाम्॥' इति। पुङ्ग्रहानाह नारदः—'पुङ्ग्रहाः सूर्यजीवाराः स्त्रीग्रहौ शशिभार्गवौ। नपुंसकौ सौम्यसौरी शिरोमात्रं विधुन्तुदः॥' इति।

पुन्नपुंसकयोगः

अत्र पुन्नपुंसकयोगा वसिष्ठेनोक्ताः—

'आधानलग्ने विषमांशराशौ जीवेन्दुजाभ्यां युतवीक्षिते वा ।
नान्यैः सपुत्रस्त्वथ पापखेटैः पापी च मिश्रैर्वलिभिश्च मिश्रः ।।
ओजर्क्षांशे लग्नगे वीर्ययुक्ते जीवेन्द्वर्कैरोजराश्यंशसंस्थैः ।
पुञ्जन्म स्याद्व्यत्यये कन्यका स्यान्मिश्रैः षण्ढो द्व्यङ्गगैर्द्वित्रिजन्म ।।
ओजांशकक्षाद्विषमर्क्षसंस्थः पुञ्जन्मकारी रविसूनुरेकः ।
विचार्य वीर्यं पुरुषग्रहाणां वाच्योऽथ पुत्रस्त्वथ पुत्रिका वा ।।
पापैश्च शेषं सुविचिन्त्य वाच्यम्' इति ।

एवमन्येऽपि पुञ्जन्मादियोगा जातके द्रष्टव्याः । एषु यस्मिन्कस्मिन्पुञ्जन्मयोगे पुत्रार्थी युग्मरात्रौ पत्नीं गच्छेत् इति फलितोऽर्थः ।

गर्भाधाने मध्यमनक्षत्राणि—

गर्भाधाने विहितनक्षत्राप्राप्तौ मध्यमनक्षत्राण्याह—चित्रेति । चित्रापुनर्वसुपुष्याश्विनीषु तद्गर्भाधानं मध्यमं मध्यमफलदमित्यर्थः । यदाह बृहस्पतिः—'चित्रादित्ये तथा तिष्यतुरगौ चेति मध्यमाः । शेषाण्यृक्षाणि दुष्टानि स्युर्निषेकाख्यकर्मणि ।।' इति ।

तत्र विहितषोडशदिनातिक्रमेषु न तत्कालप्रतीक्षा कार्या

तत्र केचित्—दैवान्मानुषाद्वा प्रतिबन्धाद्भर्त्तुरसन्निधाने अनेकेषु ऋतुषु व्यतीतेषु गर्भाधानाख्यः संस्कारो नाभूत्तदानीं दैवान्मध्ये भर्त्ता समागतश्चेत्तदा दक्षिणायनशुक्रगुर्वस्तन्यूनाधिमासादिमहादोषसद्भावे गर्भाधानं नैव भवतीत्याहुः । अतीतकालत्वात्, यथा कालातीतेषु जातकर्मनामकर्मान्नप्राशनचौलादिसंस्काराः पूर्वोक्तदोषसद्भावे नैव भवन्ति । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'अतीतकालान्यखिलानि यानि कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे । गुरौ भृगौ वाप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपश्चाङ्गदिनेऽप्यखण्डे ।।' इति । सत्यपि नृणामतिक्रमे—'निमित्तानन्तरमेवानैमित्तिकम्' इति न्यायेन—'षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत्' इति याज्ञवल्क्यवचसा षोडशदिनातिक्रमे ऋत्वन्तरमपेक्ष्य प्रागुक्तदिशा कालशुद्धिं विचार्य कार्यमेव, तदा बहुकालव्यापिनी कालशुद्धिरुपेक्ष्यैव । यतो विज्ञानेश्वरेण—'तस्मिन्युग्मासु संविशेत्' इति व्याख्यावसरे किमयं विधिर्नियमः परिसंख्या वेति त्रयः पक्षा उपन्यस्ताः । तत्र स्त्रीगमने रागत एव प्रवृत्तेर्नियम एवायमिति सिद्धान्तितम् । अतो 'गच्छेदेव' इति यमस्मरणात् 'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषेधवर्ज्यम्' इति गौतमस्मरणात् ।

ऋतुस्नातायां सङ्गमाकरणे

ऋत्वगमने प्रत्यवायोऽपि स्मर्यते—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ।।' इति शातातपोक्तेः । अत एवैतद्दूषणभयादेवाधिकारिणा पित्रादिना कन्या गुणवते वरायावश्यं देयेत्याह याज्ञवल्क्यः—'पिता पितामहो भ्राता कुल्यो वा जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः

परः । अप्रयच्छन्नवाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ ॥' इति । विशेषोक्तिः कैमुतिकन्याय-सूचनार्थम् । यत्र पित्रादेरदातुश्चेदयं दोषस्तदा भर्तुरयं दोषो भवत्येवेति किं वाच्य-मित्यर्थः । भ्रूणो गर्भः ।

गर्भाधानानन्तरकर्तव्यम्

गर्भाधानं विधाय पुंसा निद्रासमये किं कार्यमित्याह विष्णुः—

निद्रासमयमासाद्य ताम्बूलं वदनात् त्यजेत् ।
पर्यङ्कात्प्रमदां मालां पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ॥ इति ।

गर्भधारणज्ञानविचारे समाधानमन्यत्र

अथानया गर्भो धृतो न वेति प्रश्ने गर्भधारणयोगा जातके द्रष्टव्याः । प्रस्तुते-ऽप्रसङ्गान्न लिख्यतेऽस्माभिः ॥ ७ ॥

(इति गर्भाधानं समाप्तम्)

हिन्दी—केन्द्र (१।४।७।१०) और त्रिकोण ९।५ में शुभग्रह (पूर्ण चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र) हों, ३।६।११ स्थान में पाप (क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि, राहु एवं केतु) ग्रह आधान लग्न को पुरुष ग्रह सूर्य, मंगल, बृहस्पति देखते हों, ओज (विषम १।३।५।७।९।११) राशि के नवांश में चन्द्रमा हो और रजोदर्शन से सम (४।६।८।१०।१२।१४।१६) रात्रि में गर्भाधान करना उत्तम (पुत्रसन्तानप्रद) होता है । चित्रा, पुनर्वसु, पुष्य एवं अश्विनी इन ४ नक्षत्रों में गर्भाधान मध्यम होता है ॥ ७ ॥

विशेष—रजोदर्शन के बाद ५।८।९।१०।१२।१४।१५।१६ रात्रि उत्तम और ६।७ मध्यम—इन १० रात्रियों में (इनमें भी पुत्र की कामना रखने वाले दम्पती को ६।८।१०।१२।१४।१६ रात्रियों में, पुत्री की कामना रखने वाले दम्पती को ५।९।१५।७ रात्रियों में); १।२।३।५।७।१०। ११।१२।१३ तिथियों में; सोम, बुध, गुरु, शुक्रवारों में तथा ४।१२।१३।१५।१७।२१।२२।२४।२६ नक्षत्रों में ही गर्भाधान उत्तम होता है । इनमें यदि वर्जित समय भी प्राप्त हो तो उसे भी त्याग देना चाहिए । इनमें स्त्री-सम्भोग करने से उत्तम प्रकृति वाली, विवेकशील, उदार विचार, प्रभावशाली, सत्यप्रिया, परोपकारी तथा बलिष्ठ सन्तान की उत्पत्ति होती है । अन्य समय में चोर, डाकू, व्यभिचारी, अविवेकी, दुर्बल एवं पापकर्म करने वाली सन्तान होती है ।

प्रसङ्गाद्रमणविधिः—पूर्वं पत्नी—

'भर्तुः पादौ नमस्कृत्य पश्चाच्छय्यां समाविशेत् ।'

ततः पतिः—

'संस्मृत्य परमात्मानं पत्नीजङ्घे प्रसारयेत् ।
योनिं स्पृष्ट्वा जपेत्सूक्तं 'विष्णुयोनिः' प्रजापतेः ।
रेतः सिञ्चेत्ततो योन्यां तस्माद् गर्भं बिभर्ति सा ॥' ७ ॥

अथ प्रसिद्धे गर्भे सीमन्तोन्नयनाख्यसंस्कारमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रध्नभे
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे ।
सीमन्तोऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केन्द्रत्रिकोणे खलै-
र्लाभारित्रिषु वा ध्रुवान्त्यसदहे लग्ने च पुम्भांशके ॥ ८ ॥

जीवार्केति । जीवो बृहस्पतिः, अर्कः सूर्यः, आरो मङ्गलः, एषां वारे । तथा ब्रध्नः सूर्यः । 'भास्कराहस्करब्रध्नः' इत्यभिधानात् । तस्य भं हस्तः, अन्यत्स्पष्टं नामत एव । एवं मृगपुष्यमूलश्रवणपुनर्वसुहस्तनक्षत्रैः सीमन्तो लक्षणया सीमन्तोन्नयनाख्यः संस्कारः कार्यः । सीमन्त उन्नीयते यस्मिन्कर्मणि तत्सीमन्तोन्नयनमिति शब्दव्युत्पत्तिः । सीमन्तः केशभागः । उक्तञ्च सीमन्ताध्याये कश्यपेन—'शुक्लपक्षादिदिवसं रिक्तां पर्वस्य मध्यमम् । तिथिं त्यक्त्वार्कभूसूनुसुरेज्यानां च वासरे ॥' इति । रत्नमालायाम्—'श्रवणः सकरः पुनर्वसुर्निर्ऋतेर्भं च सपुष्यको मृगः । रविभूसुतजीववासराः कथिताः पुंसवनादिकर्मसु' । आदिशब्देन सीमन्तोन्नयनादिः । व्यासः—'पुरुषग्रहवाराः स्युः शुभाः सीमन्तकर्मणि । मध्यौ स्त्रीग्रहवारौ तु वर्जयेत्तु नपुंसकौ' ॥ इति । तत्र तिथयो निषिद्धा उच्यन्ते । रिक्तेति । रिक्ताः प्रसिद्धाः, अमा अमावास्या, अर्काः द्वादशी, रसाः षष्ठी, अष्टमी एताभिस्तिथिभिर्वर्ज्या न्यूना अवशिष्टा यास्तिथयस्ताभिरुपलक्षिते दिने । यदाह गुरुः—'पक्षच्छिद्रां च रिक्तां च विना पञ्चदशीं शुभाः । चतुर्दशी चतुर्थी च कदाचित्तु शुभप्रदे ॥ शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशीम् । पौर्णमासीं प्रशंसन्ति केचित्सीमन्तकर्मणि ॥' इति ।

किञ्च मासाधिपे मासेश इत्यग्रिमश्लोकेन ज्ञाते गर्भमासस्वामिनि पीवरे पुष्ट उदिते सतीत्यर्थः । यदाह नारदः—'चतुर्थे मासि षष्ठे वाऽप्यष्टमे वा तदीश्वरे । बलोपपन्ने दम्पत्योश्चन्द्रताराबलान्विते ॥' कश्यपोऽपि—'मासेश्वरे बलोपेते नास्तगे न पराजिते' इति । यदि मासाधिपो निर्बलस्तदा दोष इत्याह गर्गः—'यस्य मासाधिपो रिक्तो नीचो वास्तङ्गतोऽपि वा । तस्मिन्मासे क्षयं याति प्रसवो वा भविष्यति' ।

तत्र षष्ठाष्टमादिमासाः

स च सीमन्तो गर्भधारणसमयादष्टमषष्ठमासि अष्टममासि षष्ठमासि वा कार्यः । अयं चेच्छया विकल्पः 'षष्ठेऽष्टमे वा मासि' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । नारदीये चतुर्थोऽपि मासोऽभ्यधायि, तद्वाक्यं प्रदर्शितं शौनकेनापि–'चतुर्थे गर्भमासे स्यात्सीमन्तोन्नयनक्रिया । षष्ठेऽष्टमे वा कुर्वीत सूत्रान्तरविधानतः ॥' सूत्रान्तरं स्वस्वगृह्यसूत्रम् । एवं स्वेच्छ-योक्तमासे एव विधेयम् ।

शुक्लपक्षे पूर्वाह्णे सीमन्तः

तच्च शुद्धपक्षे पूर्वाह्णे एव नापराह्णे । यदाह नारदः—'शुक्ले पक्षे च पूर्वाह्णे सीमन्ताख्यो विधिः स्मृतः' इति । बृहस्पतिरपि—'पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्य-त्रिकं विना । पूर्वाह्णे एव तत्रापि नापराह्णे कथञ्चन ॥' इति ।

तत्र लग्नम्

लग्नमुच्यते—केन्द्रेति । केन्द्रत्रिकोणस्थानेषु १ । ४ । ७ । १० । ९ । ५ । शुभदैः सौम्यग्रहैस्तथा लाभारित्रिषु ११ । ६ । ३ । खलैः पापग्रहैरुपलक्षिते लग्ने तत्रापि च पुनः पुम्भांशके पुरुषराशिलग्ने पुरुषनवांशके च कार्यः । यदाह वसिष्ठः—'केन्द्रत्रिकोणो-पगतैश्च सौम्यैर्दुश्चिक्यलाभारिगतैश्च पापैः । षडष्टलग्नान्त्यविवर्जितेन्दौ सीमन्तकार्यं शुभदं तथैव ॥' इति । रत्नमालायाम्—'षष्ठे मास्यथवाऽष्टमे तदधिपे वीर्योपपन्ने विधौ

चेष्टैर्दृष्टतनौ नृनामभवने पुँल्लग्नभागेषु च । धीधर्माख्यचतुष्टयेऽपि च गुरौ पापैश्च तद्बाह्यगैर्मृत्युद्वादशवर्जितैश्च मुनिभिः सीमन्तकर्म स्मृतम्' ॥ अत्र विशेषमाह कश्यपः—

'चन्द्रोऽपि शुभदो ज्ञेयस्त्यक्त्वा षष्ठाष्टमव्ययान् । सीमन्तलग्नादेकोऽपि क्रूरः पञ्चाष्टरिःफगः ॥' हन्ति सीमन्तिनीं सोऽपि तद्गर्भं वा न संशयः ॥'

अत्रापि जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमलग्नभवनमिष्टलग्नादष्टमलग्नं च शुद्धं ग्राह्यम् । यदाह सीमान्ताध्याये कश्यपः—

'न नैधने तयोर्लग्ने नैधने शुद्धिसंयुते । पञ्चभिश्च चतुर्भिर्वा सूर्येन्दुगुरुपूर्वकैः ॥ ग्रहैरिष्टैः शुभे लग्ने राशावपि च नैधने ।' सीमन्तोन्नयनमित्यनुषङ्गः । तयोः स्त्रीपुंसयोः ।

तत्रापवादः क्वचित्

अस्यापवादः प्रयोगपारिजाते नृसिंहोक्तः—'लग्नादष्टमराशीशः केन्द्रगः शुभवीक्षितः । यद्यप्यष्टमभस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति ॥' 'अपिशब्दो भिन्नक्रमोऽष्टमभस्येत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । स च कैमुतिकन्यायेनान्यदोषनिवारणार्थोऽपि सम्पन्नः । क्वचित्सत्यपि ग्रहबले सिंहवृश्चिकलग्ने निन्दितम् अभिहिते इत्ययमप्यत्र विशेषो ध्येयः । यदाह गुरुः—'मूलर्क्षे केचिदिच्छन्ति सीमन्तं शुभदं बुधाः । सिंहालिं वर्जयेल्लग्नं ग्रहैरष्टमवर्जितम् ॥' ग्रहैः क्रूरग्रहैः । क्वचिद्राशित्रयं निषिद्धम् । यदाह गर्गः—'सीमन्तोन्नयनं कार्यं शुभांशे शुभलग्नगे । कुलीरमृगकन्याश्च वर्ज्याः शेषाश्च शोभनाः ॥' इति ।

नक्षत्राणि वाराश्च मतान्तरेण सीमन्ते

मतान्तरेण नक्षत्राणि वारांश्चाह—ध्रुवेति । ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयम्, अन्त्यं रेवती तथा सदहे सतां शुभग्रहाणां चन्द्रबुधगुरुशुक्राणामह्नि वासरे ध्रुवान्त्यनक्षत्रेषु प्रागुक्तनक्षत्रेषु वा कार्यम् । एवं शुभग्रहवारे वा कार्यमित्यर्थः । यदाह गुरुः—'रोहिण्यैन्दवमादित्यं पुष्यहस्तोत्तरात्रयम् । पौष्णं वैष्णवभं चैव सीमन्तादिषु सम्मतम् ॥' इति । श्रीधरः—'सौम्यानां वारवर्गाः स्युः सीमन्तादिषु शोभनाः' । इति । अत्र जन्मनक्षत्रं यदि विहितमपि सम्भवेत्तदा तदपि वर्ज्यमित्याह वसिष्ठः—'बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम् । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु ॥'

सीमन्ते शुक्रास्तमलमासादिदोषो नास्त्यस्ति च

एवं निर्णीते सीमन्तोन्नयनमुहूर्ते शुक्रास्तादिदोषविचारो नास्ति, नियतमासविहितत्वात् । तदाह गुरुः—'मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । न दोषकृन्मलो मासो गुर्वादित्यादिकं तथा ॥' इति । अयमत्र तात्पर्यार्थः । यत्र नियतकाल एव कालो विहितो यथा तृतीये मासि पुंसवनं तत्र शुक्रास्तादिदोषाभाव एव । यत्र तु सीमन्तादौ चतुर्थषष्ठाष्टममासरूपं कालत्रयविधानं तत्र शुक्रास्तादिदोषरहितेतरः कालो ग्राह्यः, सम्भवात् । स क्वचित्तु कुलाचारवशात्सीमन्तादौ नियत एव कालो विवक्षितो भवेत्तदा न दोषः । कुलाचारवशादेव तदतिरिक्तो नियत एव कालः स्यात्तदापि न दोषः । यत्र बहुकालविधानेऽपि बहुदिनव्यापकत्वसिंहस्थगुर्वादिदोषसद्भावस्तत्रानन्यगतिकत्वान्नैष

दोषः। एवं नामकर्मान्नप्राशनादिष्वपि द्रष्टव्यम्। उक्तञ्च—'सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि यानि वै। न दोषो मलमासस्य मौढ्यस्य गुरुशुक्रयोः'॥ इति। मौढ्यस्येत्यादि दोषोपलक्षणम्। एवञ्च कालप्रतीक्षायोग्येषु चूडाकरणादिषु मलमासादिदोषो विचारणीय एवेति।

सीमन्तस्य गर्भसंस्कारकत्वक्षेत्रसंस्कारकत्वयोर्व्यवस्था

अथैते गर्भाधानादयः संस्काराः किं गर्भसंस्कारकत्वात्प्रतिगर्भमावर्तंते, उत सकृदेव कार्या? इति। तत्रेदृशं भृगुवाक्यम्—'प्राप्ते तृतीयमासे स्फुरदिन्दुकलापपक्षे च। पुंसवनं पुत्रेप्सुर्गर्भे गर्भे प्रकुर्वीत'॥ इति पुंसवनमुपलक्षणं सर्वगर्भसंस्काराणाम्। गर्भे गर्भे इति वीप्साग्रहणात्प्रतिगर्भमावृत्तिरिति केचिदाहुः। अपरे च सकृदेव कार्या इत्याहुः। यदाह हारीतः—'सकृच्च कृतसंस्काराः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः। यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत्'॥ इति। एतेन क्षेत्रसंस्कारकत्वमुक्तं भवति। यथा भूरेकवारं दाहाद्यनेकसंस्कारवती सर्वकाले कर्षणयोग्या भवति तद्वदत्रापीत्यर्थः। केचित्तु कोङ्कणदेशादौ प्रतिवर्षं दाहादिसंस्कारं विधाय कर्षणं क्रियते इत्येवं पक्षद्वयसम्भवे देशाचारतो व्यवस्था ध्येया। ननु तृतीयमासविहितत्वादादौ पुंसवनमुहूर्तो विचारणीयः। ततश्चतुर्थषष्ठाष्टममासविहितः सीमन्तमुहूर्तो विचार्यः, वैपरीत्योक्तौ किं बीजमिति। उच्यते—सीमन्ते विहितस्य तिथिनक्षत्रवारलग्नादिसमुदायस्य पुंसवनेऽप्युपयोगात्सर्वदेशप्रसिद्धसीमन्तानुष्ठानाचारदर्शनाच्चादौ सीमन्तस्योक्तिः। पुंसवनं स्वतन्त्रकर्त्तव्यत्वेनोक्तमपि शिष्टाः सीमन्तेन सहैव कुर्वन्ति। यदाह जातुकर्ण्यः—'सीमन्तेन सहाथवा' इति। नृसिंहोऽपि—'सीमन्तोन्नयनस्योक्ततिथिवासरराशिषु। पुंसवं कारयेद्विद्वान्सहैवैकदिनेऽथवा'॥ इति। अत एवानवलोभनाख्यं कर्मास्मिन्नेव दिने क्रियत इति शिष्टाचारोऽप्यत्रार्थे प्रमाणम्॥ ८॥

(इति सीमन्तविचारः)

हिन्दी—बृहस्पति, सूर्य एवं भौम वारों में, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त इन ६ नक्षत्रों में, रिक्ता, अमावास्या, द्वादशी, षष्ठी एवं अष्टमी को छोड़कर शेष (१।२।३।५।७।१०।११।१३) तिथियों में, गर्भ के मासस्वामी के बलिष्ठ रहने पर (स्वोच्चस्थ, स्वमूलराशिस्थ, स्वराशिस्थ, स्वनवांशस्थ, स्वमित्रराशिस्थ, मित्र दृष्ट ग्रह बलिष्ठ कहे जाते हैं), गर्भाधान समय से छठे या आठवें मास में, शुभग्रह (पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र), केन्द्र और त्रिकोण (१।४।५।७।९।१०) में हो, पापग्रह (क्षीणचन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) ३।६।११वें स्थान में हों तो पुरुष-राशि (१।३।५।७।९।११) के लग्न और नवमांश में सीमन्त नाम का संस्कार करना उत्तम होता है अथवा ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), रेवती नक्षत्र, शुभ वारों में, पुरुष राशि के लग्न और नवांश में सीमन्त कर्म उत्तम होता है॥ ८॥

अथ प्रसङ्गेन मासेश्वरान् स्त्रीणां चन्द्रबलं च वसन्ततिलकयाऽऽह—

मासेश्वराः सितकुजेज्यरवीन्दुसौरिचन्द्रात्मजास्तनुपचन्द्रदिवाकराः स्युः।
स्त्रीणां विधोर्बलमुशन्ति विवाहगर्भसंस्कारयोरितरकर्मसु भर्त्तुरेव॥ ९॥

मासेश्वरा इति। गर्भप्रथममासादारभ्य दशमप्रसूतिमासपर्यन्तं सितादयो मासेश्वरा

ज्ञेयाः । यथा प्रथममासेश्वरः शुक्रः, द्वितीये मङ्गलः, तृतीये गुरुः, चतुर्थे रविः, पञ्चमे चन्द्रः, षष्ठे शनिः, सप्तमे बुधः, अष्टमे आधानलग्नाधिपतिः, नवमे चन्द्रः, दशमे सूर्यः ।

गर्भावस्था

अत्र प्रथममासादारभ्य दशममासं यावद् गर्भस्य कललादिरूपावस्था भवतीत्यपि विशेषो ध्येयः । यदाह वराहः—'कललघनाङ्कुरास्थिचर्माङ्गजचेतनाद्याः । क्रमशो गदिता भवन्ति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम्' ।। इति । शुक्रशोणितसन्निपातः कललम् । अङ्गजानि लोमानि । वसिष्ठोऽपि—'सितावनेयामरपूज्यसूर्यचन्द्रार्किसौम्योदयपेन्दुसूर्याः । मासाधिपाः स्युः क्रमशो दशैते निपीडितो नाशयति स्वमासि ।'

चन्द्रबलं कर्मभेदेन स्त्रिया एव पुंस एव वा

स्त्रीणामिति । गोचरप्रकरणे यद्यप्युभयोः स्त्रीपुंसयोः सामान्यतो ग्रहबलमुक्तम्, तथाऽप्यत्र स्त्रीणामपि चन्द्रबले विशेषोऽभिधीयते । विवाहे गर्भसंस्कारे गर्भाधानपुंसवनसीमन्तादिरूपं स्त्रीणामपि बलं ग्राह्यम् । इतरकर्मसु वस्त्रपरीधानालङ्कारधारणादिषु कृत्येषु भर्तुर्धवस्यैव चन्द्रबलं ग्राह्यं न तु स्त्रीणाम् । यदा तु भर्ता मृतस्तदा स्त्रीणामेव चन्द्रबलं ग्राह्यमित्यर्थसिद्धम् । उक्तञ्च—'पाणिपीडनविधेरनन्तरं भर्तुरेव बलमैन्दवादिकम् । चिन्तनीयमिह योषितां क्वचिन्नष्टमङ्गलमृते मनीषिभिः ।। इति । राजमार्त्तण्डः—'विवाहकार्यं कुसुमप्रतिष्ठा गर्भप्रतिष्ठा वनिताविशुद्धौ । अन्यानि कार्याणि धवस्य शुद्धौ पत्यौ विहीने प्रमदात्मशुद्धया ।।' कुसुमप्रतिष्ठा गर्भाधानम्, गर्भप्रतिष्ठा सीमन्तादिः ।। ९ ।।

हिन्दी—गर्भवती स्त्री के गर्भ के पहले मास का स्वामी शुक्र, दूसरे मास का स्वामी मंगल, तीसरे मास का स्वामी बृहस्पति, चौथे मास का स्वामी सूर्य, पाँचवें मास का स्वामी चन्द्रमा, छठें मास का स्वामी शनि, सातवें मास का स्वामी बुध, आठवें मास का स्वामी लग्नपति (गर्भाधान के समय जो लग्न रहा हो उसका स्वामी), नवें मास का स्वामी चन्द्रमा एवं दसवें मास का स्वामी सूर्य होता है।

विवाह और गर्भ (गर्भाधान, सीमन्त, पुंसवन) संस्कार में स्त्री का चन्द्रबल देखना चाहिए। अन्य सभी कार्यों में पति का चन्द्रबल देखना चाहिए[1] ॥ ९ ॥

अथ येषामाचारः पृथगेव पुंसवनं विधेयमिति तदर्थं पुंसवनमुहूर्त्तं विष्णुपूजामुहूर्तं चेन्द्रवज्रयाऽऽह—

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा ।
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे ।। १० ।।

पूर्वोदितैरिति । पूर्वं सीमन्तोन्नयने उदितैः प्रोक्तैस्तिथिवारनक्षत्रलग्नैरुपलक्षिते तृतीये मासि पुंसवनं विधेयमिति तदर्थं पुंसवनाख्यं कर्म विधेयम् । पुमान् सूयतेऽनेन

---

१. जब तक पति जीवित है तब तक स्त्री को कोई कार्य—यात्रा आदि करना हो तो पति की राशि से ही चन्द्रबल एवं ताराबल देखना चाहिए। विधवा होने पर स्त्री के नाम से देखना चाहिए।

कर्मणेति व्युत्पत्त्या पुंसवनकर्मणा पुंस्त्वहेतुना। यदाह शौनकः—'व्यक्ते गर्भे तृतीये तु मासे पुंसवनं भवेत्। गर्भे व्यक्ते तृतीये चेच्चतुर्थे मासि वा भवेत्॥' नृसिंहः—'सीमन्तोन्नयनस्योक्ततिथिवासरराशिषु। पुंसवं कारयेद्विद्वान्सहैवैकदिनेऽथवा॥' इति। विशेषमाह वसिष्ठः—'कुर्यात्पुंसवनं प्रसिद्धविषये गर्भे तृतीयेऽथवा मासि स्फीततनौ तुषारकिरणे पुष्येऽथवा वैष्णवे। हित्वा कर्कटकं नृयुग्ममबलामन्येष्वरिक्तातिथौ शुद्धे नैधनधाम्नि शुक्रशशभृद्विन्मन्त्रिणां वासरे॥' इति। नैधनधाम्नि अष्टमस्थाने सर्वग्रहरहिते। यदाह वसिष्ठः—'अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः स्युस्ते शुभावहाः। एवं सम्यक्परीक्ष्यैव कुर्यात्पुंसवनक्रियाम्॥' इति। वारास्त्वत्र सौम्यग्रहाणामुक्ताः। बृहस्पतिरप्यत्र विशेषमाह—'गुरुशुक्रबुधेन्दूनां द्रेष्काणदिवसांशकाः। तेषामुदयहोराश्च पुंसवेऽतिशुभावहाः॥' इति। अन्यैस्तु श्रीपत्यादिभिः पुंवारा एव प्रशस्ता अभिहिताः, तत्फलान्याह गर्गः—'सौम्ये मृतप्रजा मन्दे मृत्युर्वन्ध्या च भार्गवे। सोमे दुग्धविहीना स्याच्छेषाः सर्वार्थसिद्धिदाः॥' इति। अत्र वचनद्वयप्रामाण्याद्विकल्पः। केचित्तु यदा तृतीये मासि पुंसवनं चिकीर्षितं तदा सौम्यवारा एव ग्राह्याः। यदा चतुर्थे मासि गर्भस्य व्यक्तत्वाद् पुंसवनं चिकीर्षितं तदा पुंवारा एव ग्राह्या इत्याहुः।

तत्र नक्षत्राणि

नक्षत्राणि ह्यत्र पुन्नामानि ग्राह्याणि। तानि श्रवणः सकर इति श्रीपतिनोक्तानि। वसिष्ठेन तु पुन्नामान्यभिहितानि, यथा—'पुन्नाम श्रवणं तिष्यः स्वाती हस्तः पुनर्वसुः। मूलं प्रोष्ठपदं चानुराधा मृगशिरोऽश्विनी॥' विशेषमाह ऋक्षोच्चयः—

'हस्तार्द्रातिष्यमूलानि सौम्यो विष्णुः पुनर्वसुः। प्रोष्ठपदाद्वयं प्रोक्तमाषाढद्वयमेव च॥
श्रेष्ठानि कथितान्येव धिष्ण्यान्येकादशैव तु। स्वातौ तथा मघायां च रेवत्यां फल्गुनीद्वये॥
अश्विन्यां चैव नक्षत्रे यदा पुंसवनं भवेत्। नरः सम्पद्यते दैवाद्यदा स्याद् गुरुतल्पगः॥
लुब्धो ह्रस्वतनुः क्रूरो नारी चेत्कुलटा भवेत्।
शेषाणि दश धिष्ण्यानि निन्दितानि विशेषतः॥'

तदेतयोर्विरुद्धार्थयोर्वाक्ययोर्देशाचारतो व्यवस्था। तत्र वसिष्ठवाक्येन दाक्षिणात्या व्यवहरन्ति। प्राच्यास्तु ऋक्षोच्चयवाक्येन।

तत्र लग्नशुद्धिः

लग्नशुद्धिमाह ऋक्षोच्चयः—

'मीनवृश्चिककुम्भेषु चापगोसिंहकन्यकाः। उक्ताः पुंसवनाद्येषु सुखपुत्रादिवाञ्छया॥
केन्द्रत्रिकोणभवनेषु शुभस्थितेषु पापेषु षट्त्रिदशलाभगृहस्थितेषु।
जीवेन्दुभानुभृगुभूमिजमन्दिरेषु लग्नेषु लग्नपरिशुद्धशुभांशकेषु॥'

अत्रापि स्त्रीपुंसयोश्चन्द्रबलमावश्यकमित्याह नृसिंहः—

'अपि पुंसवनं कार्यं दम्पत्योरनुकूलभे। जन्मादि वर्जयेद्राशिं चांशकं विपदादिषु॥'

विष्णुबलिमुहूर्तस्तत्र

'अथ गर्भरक्षार्थं विष्णुपूजामुहूर्त्तमुच्यते—अथेति। सीमन्तानन्तरमष्टमे मासि विष्णुविधातृजीवैः श्रवणरोहिणीपुष्यैरुपलक्षिते दिवसे तथा लग्ने शुभे शुभस्वामिके

शुभयुक्ते वा सति तथा मृत्युगृहेऽष्टमस्थाने शुद्धे सर्वग्रहरहिते च सति विष्णुपूजा कार्या । यदाह प्रयोगपारिजाते वसिष्ठः—

'मास्यष्टमे च गर्भस्य कुर्याद्विष्णुवलिक्रियाम् । श्रवणे चैव रोहिण्यां पुष्ये चैव प्रशस्यते ॥
द्वितीया सप्तमी चैव द्वादशी च शुभा तिथिः । शुभग्रहोदयाः शस्तास्तेषां च दिवसा अपि ॥
पापास्त्र्यायारिगाः श्रेष्ठा नेष्टाः सर्वेऽष्टमे स्थिताः ।' इति ।

अष्टमग्रहदोषापवादः

अष्टमग्रहदोषापवादमाह गुरुः—'रन्ध्रेशः स्वांशगः स्वोच्चे स्वक्षेत्रोपचयर्क्षगः । अष्टमस्थस्य दोषोऽयं विनश्यति न संशयः' ॥ इति । नारदोऽपि—'लग्नाष्टमेशयोर्मैत्रे लग्नेशे बलसंयुते । अस्तगे निधनेशे च निधनेऽपि शुभग्रहे' ॥ इति । वसिष्ठसंहितायां तु संक्षिप्योक्तम्—'रोहिण्यां वा वैष्णवे पूर्वपक्षे द्वादश्यां वा सप्तमे वा तिथौ वा । मध्ये चाह्नः पूर्वभागेऽनुकूले विष्णोः पूजां कारयेद् गर्भपुष्टचै ॥'

विष्णुपूजाप्रकारस्तत्र

तत्र पूजाप्रकारस्तेनैवोक्तः—

'पीताम्बरं कृष्णवर्णं शङ्खचक्रगदाम्बुजम् । वैकुण्ठवासिनं विष्णुं मृत्कुम्भे स्थापयेत्ततः ॥
विष्णोः स्वरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैरथ गन्धधूपैः ।
वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलुधूपदीपैर्नैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक् ॥
कृत्वा च देवतापूजां गर्भाणां रक्षणाय च । ब्राह्मणाय प्रदातव्या प्रतिमा वस्त्रसंयुता॥'१०॥

(इति गर्भरक्षार्थं विष्णुबलिः)

हिन्दी—गर्भाधान के अनन्तर तीसरे मास में एवं पूर्वोदित (सीमन्तसंस्कार में विहित वार, तिथि, नक्षत्र, लग्नों) में पुंसवन संस्कार करना चाहिए ।

आठवें मास में श्रवण, रोहिणी एवं पुष्य नक्षत्रों में, शुभ (२।३।४।६।७।९।१२) लग्नों में अथवा शुभलग्नों में शुभग्रह के रहने पर तथा लग्न से आठवाँ स्थान शुभ एवं पापरहित हो, ऐसे समय में (गर्भरक्षा के लिये) विष्णु की पूजा करनी चाहिए ॥ १० ॥

अथ जातकर्मनामकरणयोर्मुहूर्तमुपजात्याह—

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि ।
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात् ॥ ११ ॥

तज्जातकर्मेति । नन्विदमयुक्तं यज्जातकर्म्म शुभदिने कार्यमिति कुतः ? जातस्योत्पन्नस्य कर्म वैदिकः संस्कारविशेषः, यः स जातकर्मशब्देनोच्यते । तच्च शब्दप्रवृत्त्योत्पन्नलक्षण एव विधेयम् । यदाह वसिष्ठः—'यस्मिन्मुहूर्ते जनितः कुमारस्तस्मिन्विधेयं खलु जातकर्म । सन्तर्प्य देवान्सपितॄन्द्विजांश्च सुवर्णगोभूतिलकांस्यवस्त्रैः' ॥ इति । विष्णुरपि—'जातकर्म ततः कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम्' इति । यथोदितं स्वस्वगृह्यानुसारेणेत्यर्थः । तच्च श्रवणानन्तरं सचैलं स्नानं विधाय कार्यम् । उक्तञ्च ज्योतिःसागरे वसिष्ठेन—'श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके' ॥ इति । तदपि नालच्छेदनात्प्रागेव कार्यम् । उक्तञ्च मनुना—'प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो

जातकर्म विधीयते' इति । वर्द्धनं छेदनम् । 'वृधु छेदने' इति धात्वर्थानुसारात् । अत्र हेतुमाह जैमिनिः—'यावन्नोच्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते' ॥ इति । तस्माज्जातकर्ममुहूर्तोऽनुपपन्न इति, उच्यते । सङ्क्रान्त्यादिदुष्टकालेषु शुभकर्माचरणं नास्ति । यदाह गर्गः—'व्यतीपाते च सङ्क्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं कर्म प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्' ॥ अन्यच्च—'अमा-सङ्क्रान्तिविष्टयादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत् ।' किञ्च मूलज्येष्ठागण्डान्तादिषु जन्मसम्भवे शान्तिविधानात् । अथवा पिता देशान्तरगतो राजगृहादौ निरुद्धो वा जातकर्मादि कर्त्तुमशक्नुवन्पश्चात्प्रतिबन्धापवादेन गृहमागतोऽपि सन्नेव करोति । तदैव जन्माभावात् सूतकप्रवृत्तेश्च । तदाह वैजवापः—'जन्मतोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि । दैवा-दतीतः कालश्चेदतीते सूतके भवेत् ॥' इति । अत एव कालविकल्पोऽभिहितो नारद-संहितायाम्—'तस्मिन् जन्ममुहूर्त्ते तु सूतकान्ते तथा शिशोः । जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम् ॥' इति । इदं च तुल्यन्यायान्नामकर्मण्यपि ध्येयम् । तस्मादतिक्रान्त-कालेऽपि अवश्यं जातकर्मादिमुहूर्त्तो विचार्य इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

तज्जातकर्मादीति । पर्वाण्युक्तानि मया । रिक्ताः चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, ताभिरूने वर्जिते तिथौ । जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । शुभेऽह्नि व्यतीपातादिदोषरहिते दिवसे शुभ-ग्रहवासरे च तथैकादशे द्वादशे वा घस्रे दिने तथा मृदुध्रुवक्षिप्रचरभानि प्रसिद्धानि तेषु च शिशोर्बालकस्य तज्जन्मसमयातिक्रान्तं जातकर्मादि । आदिशब्देन नामकर्माप्युच्यते । तद्विधेयं कर्तव्यं स्यात् । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु चारिक्तपर्वाख्यदिनेषु कार्यम् । शुभग्रहाणां दिनलग्नवर्गे तज्जातकर्म त्वथ नामधेयम् ॥' इति । रत्नमाला-याम्—'मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु सूनोर्विधेयं खलु जातकर्म । गुरौ भृगौ वापि चतुष्टयस्थे सन्तः प्रशंसन्ति च नामधेयम् ॥' चतुष्टयं केन्द्रम् ।

अथ जातकर्मफलम्

जातकर्मप्रयोजनमाह भृगुः—'जातकर्मक्रियां कुर्यात्पुत्रायुःश्रीविवृद्धये । ग्रहदोष-विनाशाय सूतिकाऽशुभविच्छिदे ॥ कुमारग्रहनाशाय पुंसां सत्त्वविवृद्धये ।' इति ।

नामकर्मणि कालविशेषाः

अथ नामकर्मणि विशेषविचारः । नारदः—'सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलो-चितम्' इति । तत्र नक्षत्रादिनियमाभावः, नियतकालविहितत्वात् । तदुक्तं सारसङ्ग्रहे—'एकादशेऽह्नि विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे । वैश्यानां षोडशे नाम मासान्ते शूद्रजन्म-नाम् ॥' इति । मनुस्तु—'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां चास्य कारयेत् । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥' दशम्यामतीतायामेकादशे दिवसे इत्यर्थः । एतच्च ब्राह्मणविषयम् । पूर्वोदीरितवाक्यस्वरसात् । अत्र नामकर्मणोऽपि विहितकालातिक्रमे शुक्रास्तादिदोषरहिते शुभकाले तत्कार्यम् । यदाह कश्यपः—

'उक्तकाले प्रकर्त्तव्या द्विजानामखिलाः क्रियाः । अतीतेषु च कालेषु कर्त्तव्याश्चोत्तरायणे ॥
सुरेज्येऽप्यसुरेज्ये वा नास्तगे न च वार्द्धके । शुभलग्ने शुभांशे च शुभेऽह्नि शुभवासरे ॥
चन्द्रताराबलोपेते नैधनोदयवर्जिते । पूर्वाह्णे क्षिप्रनक्षत्रचरस्थिरमृदुड्डुषु ॥

नाममङ्गलघोषैश्च रहस्यं दक्षिणश्रुतौ ।' इति ।

बृहस्पतिः

'पूर्वाह्णः श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्नो मध्यमः स्मृतः । अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि ॥'

तथा जगन्मोहने गुरुः

'पक्षच्छिद्रां च नवमीं हित्वा पञ्चदशीं तथा । शेषाः स्युस्तिथयः सर्वा नामकर्मणि पूजिताः ॥
भास्करार्कजभौमानां वर्जयेदंशकोदयौ । धनकर्मसुतभ्रातृनवमस्थः शुभः शशी ॥
शुद्धव्ययेऽष्टमे लग्ने पापाश्च त्र्यरिलाभगाः । शुभेषु शेषसंस्थेषु नामकर्म शुभावहम् ॥' इति ।

नामकरणप्रयोजनम्

प्रयोजनं च स्मर्यते—'नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः ।
नाम्नैव कीर्त्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म ॥' इति ।

चूचेचोला अश्विनीत्यादि शतपदचक्रं तदक्षरादिकमेव नाम कार्यम्—

तच्च नाम जन्मनक्षत्रचरणलक्षितस्वरोदयाभिहितशतपदचक्रान्तर्गताक्षरादिकमेव कार्यम् । उक्तञ्च गृह्यपरिशिष्टे—'तदक्षरादिकं नाम यस्मिन्धिष्ण्ये तदक्षरम् ॥'

शतपदचक्रसारोद्धारो ज्योतिषार्केऽभिहितो यथा—

'चूचेचोला पदेष्वाद्ये लीलूलेलो यमस्य भे । आईऊए इमेऽग्नेर्भे ओवावीवू तथाऽर्कभे ॥
वेवोकाकी मृगे ख्याताः कुघङच्छास्तु रौद्रभे । केकोहाही त्वदितिभे हूहेहोडा च पुष्यभे ॥
डीडूडेडो इमे सार्पे मामीमूमे मघाभिधे । मोटाटीटू तथा भाग्ये टेटोपाप्यर्यमर्क्षभे ॥
पूषणाठा तथा हस्ते पेपोरारीति चित्रभे । रूरेरोता तथा स्वातौ तीतूतेतो द्विदैवभे ॥
नानीनूने क्रमान्मैत्रे नोयायीयू इतीन्द्रभे । येयोभाभीति मूलाख्ये भूधाफाढा जलस्य भे ॥
भेभोजाजीति विश्वर्क्षे जूजेजोखाभिजिद्भवेत् । खीखूखेखो श्रुतौ ज्ञेया गागीगूगे च वासवे ॥
गोसासीसू जलेशर्क्षे सेसोदादीत्यजाङ्घ्रिभे । दूथझञा तथोपान्त्ये देदोचाचीति पौष्णभे ॥
इति प्रोक्ता इमे पद्ये वर्णानामादिजाः स्फुटाः । ज्ञेया मेषादिराशीनां नवभिर्नवभिः पदैः ॥'

एतैरादिमाक्षरैश्चूडामणिरित्यादिनामानि स्थाप्यानि । तदुक्तं शङ्खेन—'कुलदेवता-नक्षत्रादिमाससम्बद्धं नाम पिता वा कुर्यादन्योऽपि वा कुलवृद्धः' इति ।

चतुर्विधनामसु जन्मनाम गोप्यम्

अत्र केचित् 'जन्मनाम तु गोपयेत्' इति स्मरणाज्जन्मनक्षत्रसम्बन्धिनाम गुप्तं संस्थाप्य व्यवहारार्थमन्यनाम कुर्यात् इत्याहुः ।

कर्तव्यनामस्वरूपम्

तच्च नाम कीदृशं कार्यमित्याह वसिष्ठः—'तद्द्व्यक्षरं वा चतुरक्षरं वा यथेप्सितं चान्तलकारयुक्तम् । विवर्ज्य नामादिकमेव कार्यं स्फुटं वदेद्दक्षिणकर्णरन्ध्रे ॥' इति । याज्ञिका अपि पठन्ति—'घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं त्रिपुरुषानुकूलमनरिप्रतिष्ठितं तद्धि प्रतिष्ठिततमं भवति द्व्यक्षरं वा नाम कृतं कुर्यान्न तद्धितम्' इति । कृतं कृदन्तं तद्धितं तद्धितान्तम् । घोषवदादीनां कृदन्ततद्धितानां च ज्ञानं व्याकरणशास्त्राज्ज्ञेयम् । विश्वप्रकाशपद्धतौ तु विशेषः—'कुमार्या अप्ययुजाक्षरेण नाम दद्यताम्' इति ।

मासनामानि वसिष्ठेनोक्तानि

'चैत्रादिमासनामानि वैकुण्ठोऽथ जनार्द्दनः ।
उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्त्रिविक्रमः ॥
योगीशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनन्तोऽच्युतस्तथा ।
चक्रधारीति चैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः ॥' इति ।

कुलदेवतास्तु वंशपरम्परया प्रसिद्धाः । अत्रान्यो नामप्रयुक्तो विशेषः स्मृतिभ्योऽनुसन्धेयः ॥ ११ ॥

(इति नामकर्म)

हिन्दी—पर्व (१४।८।३०।१५ रवि की संक्रान्ति), रिक्ता (४।९।१४) तिथि को छोड़कर अन्य तिथियों (१।२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३) में, शुभग्रह (च० बु० गु० शु०) के वारों में, जन्म समय से ११वें या १२वें दिन, मृदुसंज्ञक (मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) एवं चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा)—इन १६ नक्षत्रों में बालक के जातकर्म और नामकरण संस्कार शुभ कहे गये हैं।

विशेष—ये संस्कार बालक के कल्याण की भावना से किये जाते हैं।

बालक का नाम ५ प्रकार का रखना चाहिए।

१. कुलदेवता सम्बन्धी।

२. मार्गशीर्ष के क्रम से १ कृष्ण, २ अनन्त, ३ अच्युत, ४ चक्रधर, ५ वैकुण्ठ, ६ जनार्दन, ७ उपेन्द्र, ८ यज्ञपुरुष, ९ वासुदेव, १० हरि, ११ योगीश तथा १२ पुण्डरीकाक्ष ये मास के नाम हैं।

३. नक्षत्रों के चरण के अनुसार नाक्षत्रनाम (राशिनाम) होता है।

४. व्यावहारिक नाम दो, चार एवं छः अक्षर का उत्तम होता है। यश एवं मान-प्रतिष्ठा की इच्छा रखने वाले का नाम २ अक्षर का, ब्रह्मचर्य तप-पुष्टि की कामना से ४ अक्षर का नाम श्रेष्ठ होता है (सं० मयूख)। बालक का नाम विषमाक्षर (३, ५ अक्षर) वाला नहीं रखना चाहिए। नाम के आदि में घोषाक्षर (वर्ग का ३।४।५वाँ अक्षर और ह अर्थात् 'ग, घ, ज, झ, ड, ढ, द, ध, न, ब, भ, म और ह' और बाद में अन्तःस्थ (य, र, ल, व) तथा चतुरक्षर में अन्तिम अक्षर स्वरान्त या विसर्गान्त और कृत्-प्रत्ययान्त होना उत्तम होता है। तद्धित-प्रत्ययान्त नाम अशुभ कहा गया है। अथवा कुलक्रमागत नाम अर्थात् पिता आदि के नाम का उत्तरार्ध पुत्र के नाम का उत्तरार्ध होना श्रेष्ठ होता है। कन्या का नाम विषमाक्षर (३।५ अक्षरों का) और तद्धित-प्रत्ययान्त कोमल, श्रुतिमधुर, मनोहर, मांगलिक एवं धार्मिक होना चाहिए। नक्षत्र, नदी, वृक्ष, पक्षी, सर्प, सेवक, सम्बन्धी एवं भयंकर नाम नहीं होना चाहिए।

५. पाँचवाँ घरेलू दुलार का नाम सौम्य, मधुर, कोमल एवं इच्छानुसार रखना श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ११ ॥

अथ बालजन्मानन्तरं प्राच्यशिष्टाचारप्राप्तं प्रसूतास्नानमुहूर्तं वसन्ततिलकयाऽऽह—

पौष्णध्रुवेन्दुकरवातहयेषु सूतीस्नानं समित्रभरवीज्यकुजेषु शस्तम् ।
नार्द्रात्रयश्रुतिमघान्तकमिश्रमूलत्वाष्ट्रे ज्ञसौरिवसुषड्विरिक्ततिथ्याम् ॥१२॥

पौष्णेति । पौष्णं रेवती, ध्रुवाणि प्रसिद्धानि, इन्दुर्मृगः, करो हस्तः, वातः स्वाती, हयोऽश्विनी, एषु समित्रभरवीज्यकुजेषु अनुराधानक्षत्रसूर्यगुरुभौमवारसहितेषु सूत्याः प्रसूतायाः स्नानं प्रशस्तमुत्तमफलदम् । तदुक्तं दैवज्ञवल्लभे—'उत्तरात्रयरोहिण्यः सौम्यः पवनरेवती । प्रसूता वनिता स्नायाद्धस्तमैत्राश्विनीषु च ॥ स्नाता प्रसूताऽप्यसुता बुधेन स्नाता च वन्ध्या भृगुनन्दनेन । सौरे मृतिः क्षीरहतिश्च सोमे पुत्रार्थलाभो रविजीवभौमे' ॥ अन्ये तु पूर्वाफल्गुनीज्येष्ठाधनिष्ठास्वपि सूतीस्नानं वदन्ति । 'करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रैन्दवाश्विध्रुवभेऽह्नि पुंसाम् । तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः ॥' इति ।

निषिद्धनक्षत्राणि प्राच्यममतेन

निषिद्धनक्षत्राण्युच्यन्ते । आर्द्रात्रयमार्द्रापुनर्वसुपुष्याः, श्रुतिमघान्तकमिश्रमूलत्वाष्ट्राणि प्रसिद्धानि; द्वन्द्वैकवद्भावः । एषु दशसु नक्षत्रेषु सूतीस्नानं न शस्तम् । पुनः सूतेरभावादिति तात्पर्यार्थः । तथा ज्ञो बुधः, सौरिः शनिः, तथा वसुः अष्टमी, षट् षष्ठी, रविर्द्वादशी, रिक्ताः ४।९।१४। बुधशनिवारयोरेतासु तिथिषु च न शस्तम् । तदप्युक्तं दैवज्ञमनोहरे—'भरणी कृत्तिका मूलमार्द्रा पुष्यः पुनर्वसुः । मघा चित्रा विशाखा च श्रवणो दशमस्तथा ॥ एषु मन्दे बुधे वारे सूतीस्नानं न कारयेत् । यदि स्नानं प्रकुर्वीत पुनः सूतिर्न विद्यते' ॥ इति । एतच्च दाक्षिणात्या नानुमन्यन्ते । यत्तु सूतिकास्नानं वदन्प्राच्य इत्थं द्रष्टव्यः । किं सूतकमध्ये सूतिकास्नानं सूतकाद् बहिर्वा ? नाद्यः कल्पः । यदि सूतकमध्ये षष्टिकापूजार्थे क्रियमाणमपि स्नानं चाण्डालधृतहस्तपुष्पवन्निष्फलमेव, शुद्ध्यभावात् । नापि द्वितीयः । सूतकानन्तरमेव शुद्ध्यापादकस्नानस्य विहितत्वात्, यद्यपि दैवज्ञवल्लभवाक्यम्, तदाचारमूलकं न स्मृतिमूलकमिति मत्वा सन्तोष्टव्यम् । इति सूतीस्नानम् ।

स्तन्यपानमुहूर्तः प्राच्यमतेनैव

प्राच्यमतेनैव जन्मानन्तरं बालस्य स्तन्यपानमुहूर्त उच्यतेऽस्माभिः—'रिक्तां भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं सवैधृतिम् । मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु स्तन्यपानं हितं शिशोः' ॥ इति दैवज्ञवल्लभोक्तेः ॥ १२ ॥

हिन्दी—रेवती, ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृगशिरा, हस्त, स्वाती, अश्विनी तथा अनुराधा इन १४ नक्षत्रों में, रवि, भौम एवं गुरुवारों में सूतिका-स्नान उत्तम कहा गया है ।

आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका), मूल तथा चित्रा इन १० नक्षत्रों में; बुध, शनि वारों में तथा अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी एवं रिक्ता (४।९।१४) तिथियों में सूतिका-स्नान शुभ नहीं है । शेष (आश्लेषा, पूर्वाफल्गुनी, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा) ७ नक्षत्र, सोम एवं शुक्रवार में मध्य श्रेणी का स्नान होता है ।

बच्चे को स्तन्यपान का मुहूर्त—

'रिक्ता भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं सवैधृतिम् ।
मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु स्तन्यपानं हितं शिशोः ॥' १२ ॥

अथ प्रसङ्गतः संस्कारानन्तरं गर्भगतमपि प्रथमादिमासोत्पन्नदन्तफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मासे चेत्प्रथमे भवेत्सदशनो बालो विनश्येत्स्वयं
हन्यात्स क्रमतोऽनुजातभगिनीमात्रग्रजान् द्व्यादिके ।
षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां
लक्ष्मीं सौख्यमथो जनौ सदशनो वोर्ध्वं स्वपित्रादिहा ॥ १३ ॥

मासे चेदिति । बालकश्चेज्जन्मानन्तरं प्रथमे मासे सदशनो दन्तयुक्तो भवेत्स्यात्तदा स्वयं विनश्येत् । ततो द्व्यादिके मासे द्वितीयादिके मासे स बालको दन्तयुक्तो भवेत्तदाऽनुजातभगिनीमात्रग्रजान् हन्ति, यथा द्वितीयमासेऽनुजातं कनिष्ठभ्रातरं हन्ति, तृतीयमासे भगिनीं हन्ति, चतुर्थमासे मातरं हन्ति, पञ्चमे मासि अग्रजं ज्येष्ठभ्रातरं हन्ति, षष्ठादिमासेषु दन्तजन्म समीचीनफलम् । यथा षष्ठे अतुलं बहुलं भोगं लभते, सप्तमे तातात्पितृतः सुखं लभते, अष्टमे पुष्टताम्, नवमे लक्ष्मीम्, दशमे सौख्यम्, एतच्चोपलक्षणम् । एकादशे मासे सुखबाहुल्यं लभते इत्यर्थः । यदाह चण्डेश्वरः—

'प्रथमे दन्तजननात्स्वयमेव विनश्यति । द्वितीये भ्रातरं हन्ति तृतीये भगिनीं तथा ॥
चतुर्थे मातरं हन्ति पञ्चमे स्वात्मनोऽग्रजम् । षष्ठे च मन्त्रजीवी स्यात्सप्तमे पितृसौख्यदः ॥
अष्टमे पुष्टिजनको नवमे लभते धनम् । लभते दशमे मासि सौख्यमेकादशेऽपि वा ॥
द्वादशे धनसम्पत्तिर्दन्तानां जनने फलम् ।' इति ।

अथो जनौ जन्मकाल एव सदशनो दन्तयुक्तः स्यात्तदा स्वपित्रादिहा स्वमात्मानं पितरं च आदिशब्देन मातरं च हन्ति नाशयतीति स्वपित्रादिहा । केचिदादिशब्देन भ्रात्रादीनपि नाशं व्याचक्षते । वोर्ध्वमिति । वा अथवा ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वपङ्क्तौ स्वजन्मानन्तरं निषिद्धेऽविहितेऽपि वा काले सदशनश्चेत् स्यात्तदापि स्वपित्रादिहा—आत्मपितृमातृनाशक इत्यर्थः । उक्तञ्च पद्मपुराणे विष्णुधर्मोत्तरे परशुरामं प्रत्याह पुष्करः—'दन्तजन्मनि बालानां लक्षणं तन्निबोध मे । उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः ॥' उपर्युपरि पङ्क्तौ । द्विजा दन्ताः, 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यभिधानात् । 'तैर्वा सह च यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम । मातरं पितरं चाथ खादेदात्मानमेव च ॥' इति ।

एवंविधे दन्तजनने शान्तिरप्युक्ता तत्रैव

'तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु । गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद् द्विजः ॥
तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने तु वरासने । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा ॥
पञ्चगव्येन रत्नैश्च मृत्तिकाभिश्च भार्गव । स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥
सप्ताहं चात्र कर्त्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् । अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा ॥
काञ्चनं रजतं गाश्च भुवं चासनमेव च । दन्तजन्मनि सामान्ये शृणु स्नानमतः परम् ॥
भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिर्मूलफलैस्तथा । सर्वौषधैः सर्वबीजैः सर्वगन्धैस्तथैव च ॥
स्नापयेत्पूजयेच्चात्र वह्निहोमं समीरितम् । प्रथमं स्थापयेत्तत्र देवदेवं च केशवम् ॥
एतेषामेव जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि । ब्राह्मणानां तु दातव्या यथाशक्ति च दक्षिणा ॥

ततः स्वलङ्कृतं बालमासने तूपवेशयेत् । आसने छत्रमूर्द्धानं बीजैः सुस्नापयेत्तथा ॥
सुस्त्रीभिर्बालिकानां च तथा कार्यं च पूजनम् ।
पूज्याश्च विधवा नार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ॥'

इत्येवं पद्मपुराणोक्ता दन्तजननशान्तिर्विधेया । ततोऽशुभफलनाशः, शुभफलावाप्तिर्भवतीति ।

इति प्रथमादिमासे दन्तजननफलानि शान्तिश्च ॥ १३ ॥

हिन्दी—जन्म के बाद पहले मास में बालक के दाँत निकलें तो बालक स्वयं नष्ट हो जाता है, दूसरे मास में दाँत निकलें तो छोटे भाई का नाश होता है (अर्थात् उसके बाद जो भाई हो, वह मर जाता है या बहिन पैदा होती है), तीसरे महीने में बहिन का, चौथे महीने में माता का, पाँचवें महीने में बड़े भाई का नाश करता है (या बड़े भाई का अभाव रहता है), छठे महीने में दाँत जमे तो बालक अत्यन्त सुखी रहता है, सातवें महीने में दाँत निकलें तो पिता से सुख प्राप्त करता है, आठवें मास में जमे तो बालक पुष्टता (शारीरिक शक्ति) प्राप्त करता है, नवें मास में दाँत निकलें तो धनवान् होता है तथा १०वें मास में दाँत जमे तो सुखी होता है। जन्म-समय में दाँत सहित बालक का जन्म हो अथवा पहले ऊपर की पंक्ति में दाँत निकले तो पिता-माता-भाई (अथवा अपना भी) नाश करता है। अशुभफलद दाँत निकलने पर शान्ति करनी चाहिए ॥ १३ ॥

प्रथमादिमासेषु दन्तजननफलम्

मास	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	सदशन	ऊर्ध्वपंक्तौ
फल	स्वनाश	अनुजनाश	भगिनीनाश	मातृहानि	अग्रजनाश	अतुलभोग	पितृसुख	शरीरपुष्टि	लक्ष्मीप्राप्ति	सुख	मातृ-पितृ-भ्रातृ-आत्म-हानि	

अथ दोलारोहणमुहूर्त्तं विवक्षुस्तत्सम्बन्धिशुभाशुभफलदातृदोलाचक्रमनुष्टुभाऽऽह—

दोलारोहेऽर्कभात् पञ्चशरपञ्चेषुसप्तभैः ।
नैरुज्यं मरणं कार्श्यं व्याधिः सौख्यं क्रमाच्छिशोः ॥ १४ ॥

दोलारोह इति । काष्ठलोहाद्याधारोपनिबद्धः परुषाघातवशादन्तरिक्षे गतागतं कुर्वन्नल्पो बालकयोग्यः पर्यङ्कविशेषो दोलाशब्देनोच्यते । तत्र शिशोर्बालकस्य दोलारोहे दोलास्थापने चिकीर्षिते सति अर्कभात् सूर्यनक्षत्रात् पञ्चनक्षत्रैर्नैरुज्यं नीरोगता स्यात्, तदग्रिमेषुभिः नक्षत्रैः मरणम्, तदग्रिमपञ्चनक्षत्रैः कार्श्यं देहे कृशत्वं स्यात्, तदग्रिमैरिषुभिः पञ्चनक्षत्रैर्व्याधिः स्यात्, तदग्रिमसप्तनक्षत्रैः सौख्यं स्यादिति यथासङ्ख्यं योजयेत् । फलं चेदं शिशोरेव, संस्कारत्वात् । उक्तञ्च—

'सूर्यभाच्चन्द्रभं यावत्पञ्चपञ्च चतुर्दिशम् । मध्ये तु सप्त देयानि दोलिकाचक्र उत्तमे ॥
पूर्वभागे निरोगत्वं दक्षिणे मरणं ध्रुवम् । पश्चिमे तु कृशो बाल उत्तरे व्याधिसम्भवः ॥
शेषेषु सप्तधिष्ण्येषु बालकस्य सुखं भवेत् ।' इति ॥ १४ ॥

हिन्दी—सूर्य के नक्षत्र से दोलारोहणकालिक नक्षत्र तक गिने। यदि ५ नक्षत्र के भीतर दोलारोहण नक्षत्र पड़े तो बालक नीरोग रहे, उसके बाद ५ नक्षत्रों में मरण, फिर ५ नक्षत्रों में दौर्बल्य, उसके बाद ५ नक्षत्रों में व्याधि और उसके बाद ७ नक्षत्रों में सुख होता है। अर्थात् सूर्य-नक्षत्र से ५।१.५।७ नक्षत्र क्रम से शुभ तथा अशुभफलदायक होते हैं ॥ १४ ॥

सूर्यभाद्दोलाचक्रम्

नक्षत्र	५	५	५	५	७
फल	नीरोग	मरण	कृशता	व्याधि	सौख्य

अथावसरप्राप्तं दोलारोहणमुहूर्तं वसन्ततिलकायाः पूर्वार्द्धेनोत्तरार्धेन निष्क्रमण-मुहूर्त्तं चाह—

दन्तार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे स्याद् वारे शुभे मृदुलघुध्रुवभैः शिशूनाम् ।
दोलाधिरूढिरथ निष्क्रमणं चतुर्थमासे गमोक्तसमयेऽर्कमितेऽह्नि वा स्यात् ॥१५॥

दन्तार्केति । दन्ताः द्वात्रिंशत्, अर्काः द्वादश, भूपाः षोडश, धृतयोऽष्टादश, दिशो दश, एतन्मितदिवसेषु तथा शुभे वारे सोमबुधगुरुशुक्राणां वारे तथा मृदुगणलघुगणध्रुव-गणनक्षत्रैरुपलक्षिते शिशूनां बालकानां दोलाधिरूढिः दोलायामधिरूढिरारोहः स्यात् । यदाह प्रयोगपारिजाते गुरुः—'दोलारोहस्तु कर्त्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा। षोडशे दिवसे वापि द्वात्रिंशद्दिवसेऽपि वा ॥' इति । भविष्यत्पुराणे—'अभीष्टे पुण्यदिवसे चन्द्रताराबलान्विते । मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु माता वा कुलयोषितः ॥ योगशायिहरिं स्मृत्वा प्राक्शीर्षं विन्यसेच्छिशुम्' इति ।

अथ प्रसङ्गतोऽन्येषामपि दोलारोहणमुहूर्तः प्रोच्यते । तत्र दीपिका—'उग्रेन्द्रमूला-हिशिवाग्निवर्ज्यं शस्तेन्दुना युक्तिथिलग्नयोगे । विष्टिक्षमापुत्रयमाहवर्ज्यमान्दोलिका-रोहणमत्र शस्तम् ॥' इति । यमः शनिः । अथ निष्क्रमणमुहूर्त्तः । तत्र चतुर्थमासे गमोक्तसमये यात्राभिहितसमीचीनतिथिवारनक्षत्रादिसहिते काले शिशूनां निष्क्रमणं निष्क्रमणाख्यसंस्कारं पूर्वं गृहाद् बहिर्गमनं कुर्यात् । वा अथवाऽर्कमितेऽह्नि द्वादशे दिवसे निष्क्रमणं कुर्यात् । यदाह मनुः—'चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्' । गुरु-रपि—'गृहान्निष्क्रमणं सूनोश्चतुर्थे मासि कारयेत् । यात्रोक्ते समये मासि तृतीये द्वादशे-ऽह्नि ॥' अत्र तृतीयमासोऽप्युक्तो राजमार्त्तण्डेनापि—

'मासे तृतीये शशिवृद्धिपक्षे क्षपाकरे शोभनगोचरस्थे ।
उत्पातपापग्रहवर्जिते भे निष्क्रामणं सौख्यकरं शिशूनाम् ॥'

तदेतयोः पक्षयोर्यथागृह्यं व्यवस्था ।

मुहूर्तसङ्ग्रहे तु विशिष्य तिथ्याद्युक्तं निष्क्रमणे—

'पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना। रिक्ताषष्ठ्यष्टमीदर्शद्वादशीश्च विवर्जयेत् ॥
चत्वार्यर्यम्णतस्त्रीणि वैश्वात् त्रीणि च बुध्न्यभात् ।'
बुध्न्यभादुत्तराभाद्रपदातस्त्रीणि भानि च ॥

मैत्रमादित्यपुष्यौ च रोहिणी च शुभावहाः। झपालिमेषा वर्ज्याः स्युस्तथैवाधोमुखानि च ॥
सतां तु वारवर्गाश्च शुभदास्तूदयास्तथा। केन्द्रत्रिकोणगा सौम्याः पापाः षष्ठत्रिलाभगाः ॥
उपनिष्क्रमणे शस्ता मातुलो वाहयेच्छिशुम् ।' इति ।

अधोमुखानि 'मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेत्' इत्युक्तानि, उदयाः लग्नानि, एवंविधे सुलग्ने क्रियमाणस्य शिशुनिष्क्रमणकर्मणः फलमाह बृहस्पतिः—

'अथ निष्क्रमणं नाम गृहात्प्रथमनिर्गमः। अकृतायां क्रियायां स्यादायुः श्रीनाशनं शिशोः ॥
कृते सम्पद्धिवृद्धिः स्यादायुर्वर्द्धनमेव च ॥' इति ।

अत्र विशेषमाह यमः—

'तृतीये मासि कर्त्तव्यं शिशोः सूर्यस्य दर्शनम् ॥
चतुर्थे मासि कर्त्तव्यमग्नेश्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥' इति ॥ १५ ॥

(इति निष्क्रमणादिमुहूर्ताः)

हिन्दी—जन्म के दिन से ३२।१२।१६।१८।१०वें दिन, शुभ(चं० बु० बृह० शुक्र)वारों में, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) तथा ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी)—इन ११ नक्षत्रों में दोलारोहण उत्तम होता है।

जन्ममास से चौथे महीने में यात्रा-प्रकरण में कहे गये तिथि, वार, नक्षत्र एवं लग्नशुद्धि में अथवा १२वें दिन घर के बाहर निकलना उत्तम कहा गया है ॥ १५ ॥

अथ सूतिकाया जलपूजामुहूर्त्तं भुजङ्गप्रयातेनाह—

कवीज्यास्तचैत्राधिमासे न पौषे जलं पूजयेत्सूतिकामासपूर्त्तौ ।
बुधेन्द्वीज्यवारे विरिक्ते तिथौ हि श्रुतिज्यादितीन्द्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः ॥ १६ ॥

कवीज्येति। कविः शुक्रः, इज्यो गुरुः, अनयोरस्ते, चैत्रमासे तथाऽधिकमासे तथा पौषमासे सूतिका जनयित्री मासपूर्त्तौ सत्यां जलं नद्यादेरम्बु न पूजयेत्। तथा बुधेन्द्वीज्यवारे बुधगुरुचन्द्रवारेषु, तथा विरिक्ते रिक्तारहिते तिथौ, हि निश्चितम्, तथा श्रुतिः श्रवणः, इज्यः पुष्यः, अदितिः पुनर्वसुः, इन्दुर्मृगः, अर्को हस्तः, नैर्ऋत्यं मूलम्, मैत्रमनुराधा, एतैर्नक्षत्रैः सहिते दिने सूतिका जनयित्री मासपूर्त्तौ सत्यां नद्यादेर्जलं पूजयेत्। अत्र मूलानुपलम्भः। नन्वयं मुहूर्तो निष्क्रमणात्प्राङ्नामकरणानन्तरं वक्तव्यः, प्राप्तकालत्वात्, व्युत्क्रमे कारणं न पश्याम इति चेत्, शृणु। क्रमस्त्वत्र शास्त्रीयो विवक्षितः। जलपूजा ह्याचारप्राप्ता लौकिकीति क्रमानपेक्षा। अतः कालान्तरेऽपि केचिज्जलपूजामाहुः। अथ मासानन्तरं विहितो गवादिदुग्धपानविधिः। तन्मुहूर्त्तः प्राच्यमतेन मयोच्यते। श्रीधरीये—'एकत्रिंशे वासरे वा द्वितीये जन्मर्क्षे वा शुद्धलग्नेऽनुकूले। शङ्खे क्षीरं सन्निदध्याच्छिशूनां वक्त्रे धात्री पूज्यपूजां विधाय ॥' नृसिंहोऽपि—'एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शङ्खेन पाययेत्। अन्नप्राशननक्षत्रदिवसोदयराशिषु ॥' वक्ष्यमाणान्नप्राशनोक्तशुभदिवसे एकत्रिंशत्तमे धात्र्युपमाता गवादिक्षीरं शङ्खे निधाय मान्यपूजां च विधाय शिशुमुखे क्षीरं निदध्यादित्यर्थः ॥ १६ ॥

हिन्दी—प्रसव के समय से १ मास वीतने पर भी शुक्र और बृहस्पति के अस्त में (बाल्य और वृद्धत्व में भी), चैत्र एवं पौष (खर) मासों में प्रसूता स्त्री को जल-पूजा नहीं करनी चाहिए।

बुध, चन्द्र, गुरु वारों में, रिक्तारहित (१।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५) तिथियों में तथा श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, मूल एवं अनुराधा इन ७ नक्षत्रों में (मासपूर्ति होने पर) प्रसूता को जलपूजन करना उत्तम होता है ॥ १६ ॥

अथान्नप्राशनमुहूर्त्तं स्रग्धरयाऽऽह—

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारां-
ल्लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पञ्चमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात्स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत् ॥ १७ ॥

रिक्तेति । अथोशब्दो मध्ये पठितोऽपि पद्यादौ ज्ञेयः । अथो अनन्तरं निष्क्रमणानन्तरमेवंविधे काले बालानामन्नाशनं प्रथमभोजनं सत्, शुभफलदायि स्यादित्यन्वयः । तत्रैते वर्ज्यपदार्थाः—रिक्ताः ४।९।१४, नन्दाः १।६।११, अष्ट ८, दर्श ३०, हरिदिवसं द्वादशी १२ एतास्तिथीर्हित्वा । उपलक्षणत्वात्तिथिक्षयं च । तथा सौरिभौमार्कवारांश्च हित्वेत्यर्थः । यदाह नारदः—'रिक्तां तिथिक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीमपि । त्यक्त्वान्यतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासराः' ॥ इति । कश्यपोऽपि—'द्वादशीमष्टमीं रिक्तां नन्दां चैव दिनक्षयम् । सूर्यार्किभौमवारांश्च त्यक्त्वान्यशुभवासरे' ॥ नवान्नप्राशनमित्यनुवर्त्तते । अत एवोक्तं जीर्णैः—'द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा । त्रयोदशी च दशमी प्राशने तिथयः शुभाः' ॥ इति । क्वचित्सूर्यबुधगुरुवाराः प्रशस्ता उक्ताः, अन्ये निषिद्धाः । उक्तञ्च—'शशिशुक्रे च मन्दाग्निः शनौ भौमे बलक्षयः । बुधार्कगुरुवारेषु प्राशनं हि शुभावहम्' ॥ इति । तदेतन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम् । दोषान्तरमप्युक्तं नारदेन—'न वैधृतौ व्यतीपाते विष्टयां गण्डातिगण्डयोः । शूले वज्रे न परिघे बालान्नप्राशनं हितम्' ॥ अत्रैषां दोषाणां सामान्यतो निषेधे सिद्धे पुनर्वचनं 'विष्टिरङ्गारकश्चैव' 'वज्रविष्कम्भयोस्तिस्रः' इत्यनयोरप्यपवादार्थम् । तेन स्वीयभोगपर्यन्तं निषेधः ।

अन्नप्राशने लग्नं मासाश्च

लग्नमिति । लग्ने जन्मराशिजन्मलग्ने ताभ्यामष्टमगृहमष्टमलवोऽष्टमनवांशश्च तौ गच्छति प्राप्नोत्येवंविधं लग्नं हित्वा जन्मराशिलग्नाभ्यामष्टमनवांशं च त्यजेदित्यर्थः । उक्तञ्च कश्यपेन—'जन्मराशिविलग्नाभ्यां नैधनेशे च वर्जयेत्' । इति । तथा मीनमेषालिकञ्च—मीनमेषवृश्चिकलग्नानि हित्वा । यदाह जगन्मोहने कश्यपः—'गोऽश्वकुम्भतुलाकन्यासिंहकर्कनृयुग्मगाः । शुभदा राशयश्चैते न मेषझषवृश्चिकाः' ॥ इति । नृयुक् मिथुनम् । मृगो मकरः, षष्ठादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । षष्ठमासमारभ्य सममासे षष्ठाष्टमदशमद्वादशमासेषु बालानाम् अन्नप्राशनम् । पुम्बालविषयमेतत् ।

स्त्रीशिशुषु विशेषः

अथानन्तरं हि निश्चयेन मृगदृशां कन्यकानां पञ्चमादोजमासे विषममासे पञ्चमसप्तमनवमैकादशमासेषु अन्नप्राशनं सत् । उक्तञ्च वसिष्ठेन—'युग्मेषु मासेषु च षष्ठमासात् संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम् । अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसम्प्राशनमिष्ट-

मेतत् ॥' अत्रायुग्ममासत्वं पञ्चममासादिति ज्ञेयम् । यदाह नारदः—'षष्ठे मास्यष्टमे वाथ पुंसां स्त्रीणां च पञ्चमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम्' ॥ मनुस्तु 'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि' इत्याह ।

फलितार्थः

एवमनेककालाभिधाने कस्मिन्काले अन्नप्राशनं विधेयमिति सन्देहः—किं समबलत्वात्सर्वेऽपि मुख्या एव कालाः, उत कश्चिन्मुख्यगौणभावः ? इति । अत्र ब्रूमः—स्वस्वगृह्ये विशिष्यकालोऽन्नप्राशने उक्तः स मुख्यः । तत्र गुरुशुक्रास्तादिविचारो नैवेति ध्येयम् । इतरेषु गौणकालेषु विहितकालाननुष्ठाने सति निर्दोषकाले हि विधेयम् । यत्र स्वगृह्ये क्वचिद्विशिष्यकालो नाभिहितस्तत्र सर्वेषां सांहितिककालानां तुल्यबलत्वाद्विकल्पो भवति । तत्रापि सदोषं कालं विहाय निर्दोषकालेऽन्नप्राशनं विधेयमिति फलितोऽर्थः ।

शुक्लपक्षपूर्वाह्णनक्षत्रविशेषा अन्नप्राशने

तत्रापि शुक्लपक्षे पूर्वाह्णे विधेयम् । 'शुक्लपक्षे च पूर्वाह्णे' इति नारदोक्तेः । नक्षत्रैरिति । मृदुगण-लघुगणचरगणयुतैः स्थिराख्यैर्नक्षत्रैर्बालकान्नप्राशनं स्यात्—'चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रेषु शुभे दिने' इति कश्यपोक्तेः । जगन्मोहने वसिष्ठोऽपि—'विष्णुरुष्णकिरणो हिमरश्मिर्वायुभिन्नवरुणादितिचित्राः । अश्विनितिष्यवसुपौष्णभरोहिण्युत्तराश्च शिशुभोजनताराः' ॥ इति ।

तत्र जन्मनक्षत्रं श्रेयः

अत्र विहितनक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रं प्रशस्तमुक्तं नारदेन—'पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चोपनायने । शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि' ॥ इति । 'बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धनेऽपि राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम् । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु' ॥ इति वसिष्ठोक्तेश्च । यत्तु गुरुवचनं—'जन्मर्क्षकर्मनक्षत्रे आधानर्क्षे च वर्जयेत् । कर्णवेधं तथा यानं क्षुरकर्मान्नभोजनम्' ॥ इति । एषां लक्षणमुक्तं हि मुहूर्तसङ्ग्रहे—'जन्मभं जन्मनक्षत्रं दशमं कर्मसंज्ञितम् । एकोनविंशमाधानं त्रयोविंशं विनाशभम्' ॥ इति । त्रयोविंशव्यतिरिक्तानां सर्वेषां जन्मनक्षत्रत्वमस्तीति तद्वार्षिकनवान्नभोजनविषयकम् । अत एव लोकेऽन्नभोजनान्नप्राशनशब्दयोः साधारणत्वेन व्यवहारः, उपलम्भात् । 'जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभैषज्यवादाध्वकर्त्तनेषु च वर्जयेत्' ॥ इति दीपिकायां निषेधानुपलम्भाच्च । तस्मात्प्रथमदशमैकोनविंशेषु जन्मनक्षत्रेषु बालान्नप्राशनं प्रशस्ततरमिति वयं ब्रूमः । यदपि लल्लवाक्यं—'हित्वैकं जन्मर्क्षं द्वे तारे जन्मसञ्ज्ञिते शुभदे । उद्वाहे चोपनये यात्रायामन्नभोजने क्षौरे' ॥ इति । 'यन्नक्षत्रे जन्म तज्जन्मनक्षत्रं दशममेकोनविंशं च जन्मतारेत्युच्यते लोकैः' इति । एतदपि प्रागुक्तविषयमेवेत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

विद्धनक्षत्रं त्याज्यमेव

तत्रापि विद्धनक्षत्रं सर्वथा निषिद्धमेव । तदुक्तं दीपिकायाम्—'कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा । प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं परित्यजेत्' ॥ वेधप्रकारो हि विवाहप्रकरणे वक्ष्यते ॥ १७ ॥

हिन्दी—रिक्ता (४।९।१४), नन्दा (१।६।११), अष्टमी, अमावास्या एवं द्वादशी—इन ९ तिथियों; शनिश्चर, मंगल तथा रवि वारों; जन्मराशि एवं जन्मलग्न से आठवीं राशि के लग्न और नवमांश; मीन, मेष एवं वृश्चिक लग्न को छोड़कर छठे से सममासों (६।८।१०) में बालकों का, ५ से विषम (५।७।९।११) मासों में बालिकाओं का—स्थिरसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) तथा चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) इन १६ नक्षत्रों में अन्नप्राशन उत्तम होता है।

विशेष—गर्भाधान से अन्नप्राशन तक समय के नियमित होने के कारण गुरु-शुक्र का अस्त, बाल्य और वृद्धत्व, सिंह के बृहस्पति, याम्यायन, न्यूनमास तथा अधिकमास का त्याग नहीं करना चाहिए। जैसा कि कहा भी है—

'गर्भाधानान्नप्राशेषु न गुरुसितयोर्बाल्यवार्धेन मौढ्यम्।
जह्यात् कालस्य रोधाद्धरिगुरुमयनं याम्यमूनाधिमासौ ॥'—मुहूर्तमार्तण्ड।

अन्नप्राशन जन्मनक्षत्र में भी शुभ होता है, सप्तशलाका-चक्र में ग्रहविद्ध नक्षत्र वर्जित हैं (पी० धा० द्र०) ॥ १७ ॥

अन्यद्वसन्ततिलकयाऽऽह—

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्ति पापैः।
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित् ॥ १८ ॥

केन्द्रेति। अत्र यद्यपि केन्द्रशब्देन दशममपि स्थानमुच्यते, तथापि न गृह्यते 'खशुद्धे लग्ने' इति वक्ष्यमाणत्वात्। एवं सति केन्द्राणि १।४।७, त्रिकोणं ९।५, सहजं ३, एषु स्थानेषु स्थितैः शुभग्रहैः, तथा त्रि–३लाभ–११रिपु–६गैः पापग्रहैश्चोपलक्षिते लग्ने खशुद्धे दशमशुद्धिसहिते सर्वग्रहरहिते इति यावत्। एवंविधे लग्ने लग्नाष्टषष्ठस्थानरहितमर्थादन्यस्थानस्थितं शशिनं प्रशस्तं वदन्ति, मुनय इति शेषः। यदाह कश्यपः—'त्रिकोणकेन्द्रत्र्यायेषु शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः। अलग्ननिधनान्त्यारिस्थानस्थेन हिमांशुना ॥' अन्नप्राशनं कुर्यादित्यनुवर्त्तते। अत्र लग्नस्थचन्द्रनिषेधः क्षीणचन्द्रविषयः। नारदोऽपि—

'दशमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके। शुक्लपक्षे च पूर्वाह्णे सौम्ययुक्तनिरीक्षिते ॥
त्रिषष्ठलाभगैः पापैः केन्द्रधीधर्मगैः शुभैः। व्यन्त्यारिनिधनस्थेन चन्द्रेण प्राशनं शुभम् ॥'

इति।

अत्र दशमशुद्धिः सर्वग्रहराहित्यम्। दशमस्थानातिरिक्तकेन्द्रं केन्द्रशब्देन विवक्षितम्। यदाह प्रयोगपारिजातेऽर्णवः—'दशमस्थानगान्सर्वान्विवर्जयेन्मतिमान्नरः। अन्नप्राशनकृत्येषु मृत्युक्लेशभयावहान् ॥' अत्र लग्नस्थचन्द्रः प्रशस्तः, पूर्णचन्द्रविषयत्वात्। एतच्चाग्रिमपद्ये वक्ष्यते। विशेषमाह अत्र गुरुः—'शुक्रारज्ञाः क्रमाद्याताः सप्तमाष्टमधर्मभे। भोज्यभोक्तृनवत्वे तु सर्वथा मरणप्रदा ॥' इति। शुक्रः सप्तमः, भौमोऽष्टमः, बुधो नवमश्च, भोज्यमन्नं गोधूमादि, तस्य नवत्वे नवान्नत्वे भक्षणीयत्वे सति भोक्तुरन्नप्राशनकर्त्तुर्बालकस्य नवत्वे सति वा एते ग्रहा मरणप्रदा इत्यर्थः। मैत्रेति। मैत्राम्बुपानिला अनुराधाशततारकास्वात्योऽसत्यो निषिद्धा इति केचिदाहुरिति परमतेनोपन्यासः।

यथोक्तं श्रीपतिना—'रेवतीश्रुतिपुनर्वसुहस्ता ब्राह्मतः पृथगपि द्वितीये च ! त्र्युत्तरे च गदितं पृथुकानां प्राशनं हि स नवान्नविधानम् ॥' अस्यार्थो रेवत्यादिभ्यः पञ्चभ्यो द्वितीयेऽपि नक्षत्रे । कोऽर्थः ? रेवत्यश्विनी च श्रवणं धनिष्ठा च पुनर्वसुः पुष्यश्च हस्तश्चित्रा च रोहिणी मृगश्च उत्तरात्रयमेवेत्येवं त्रयोदशर्क्षेषु पृथुकानां बालानामन्नप्राशनं वार्षिकं नवान्नविधानं च गदितमिति । नारदादिभिस्तु चरस्थिरक्षिप्रमृदुनक्षत्रेषु इति षोडश-नक्षत्राणामभिधानात् । तत्र त्रयाणामनुराधाशततारकास्वातीनामाधिक्यादतः श्रीपति-मतमाश्रित्यैषां भानां निषिद्धत्वमुक्तम् । ग्रन्थकृता च पुनर्जनुर्भं जन्मनक्षत्रं चासदिति केचिदित्युक्तम् । यदाह गुरुः—'जन्मर्क्षे कर्मनक्षत्रे आधानर्क्षे च वर्जयेत् । कर्णवेधं तथा यानं क्षुरकर्मान्नभोजनम् ॥' इति । विशेषानवधारणं जनानां मतभेदात् । वस्तु-तस्तु अन्नस्य भोजनम् अन्नभोजनमिति व्युत्पत्त्या वार्षिकनवान्नभोजनविषयकमेवैत-दित्युक्तमस्माभिः पूर्वपद्ये ॥ १८ ॥

हिन्दी—अन्नप्राशन लग्न से केन्द्र त्रिकोण तृतीय (१।४।७।१०।९।५।३) स्थानों में शुभग्रह (पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र,) हों, ३।६।११ पाप ग्रह हो, १०वाँ स्थान शुभ, पापरहित हो तथा १।८।६ स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों (२।३।४।५।७।९।१०।११।१२) में हो, ऐसे लग्न में अन्नप्राशन कराना उत्तम होता है। कोई-कोई आचार्य जन्म का अनुराधा, शतभिषा एवं स्वाती नक्षत्र निन्दित बतलाते हैं।

विशेष—जिसके मत से अन्नप्राशन में जन्मर्क्ष त्याज्य लिखा है, वह नवान्न भक्षण के लिये है, अन्नप्राशन के लिये नहीं है। अन्नप्राशन में नारद के मतानुसार जन्मर्क्ष उत्तम माना गया है ॥१८॥

अथ ग्रहाणां स्थानवशात्फलान्यनुष्टुप्छन्दोभ्यामाह—

क्षीणेन्दुपूर्णचन्द्रेज्यज्ञभौमार्कार्किभार्गवैः ।
त्रिकोणव्ययकेन्द्राष्टस्थितैरुक्तं फलं ग्रहैः ॥ १९ ॥
भिक्षाशी यज्ञकृद्दीर्घजीवी ज्ञानी च पित्तरुक् ।
कुष्ठी चान्नक्लेशवातव्याधिमान् भोगभागिति ॥ २० ॥

क्षीणेन्द्वित्यादि । त्रिकोणे ९।५, व्यये १२, केन्द्राणि १।४।७, दशमरहितानि, अष्ट ८, एषु स्थानेषु स्थितैः क्षीणेन्द्वादिभिरष्टभिर्ग्रहैर्भिक्षाशीत्यादिकं फलं यथासङ्ख्ये-नोक्तम् । मुनिभिरिति शेषः । यथा एषु स्थानेषु स्थितः क्षीणचन्द्रश्चेत्तदाऽन्नप्राशनकृद्-बालो भिक्षाशी दरिद्रः स्यात्, तथा पूर्णचन्द्र एतत्स्थाने स्थितश्चेत्तदा ज्योतिष्टोमयज्ञकृत्, एवमिज्यो गुरुश्चेद्दीर्घजीवी, ज्ञो बुधश्चेत् ज्ञानी स्यात्, भौमश्चेत्पित्तरुक् पित्तकृता रुग् यस्यासौ पित्तरुक्, अर्कश्चेत्कुष्ठी स्यात्, आर्किः शनिश्चेत्तदाऽन्नाभावसम्बन्धी क्लेशोऽन्न-क्लेशः, वातप्रधानो व्याधिर्वातव्याधिः, एतौ विद्येते यस्यासौ अन्नक्लेशवातव्याधिमान् स्यात् । उपलक्षणत्वाद्राहुकेत्वोरप्येतत्फलं द्रष्टव्यम् । भार्गवः शुक्रश्चेत्तर्हि भोगभाक् स्यादित्यर्थः, उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'रवौ लग्ने कुष्ठी धरणितनये पित्तगदभाक् शनौ वातव्याधिः क्षशशिनि भिक्षाशनरतः । बुधे ज्ञानी भोगी ह्युशनसि चिरायुः सुरगुरौ विधौ पूर्णे यज्वा भवति च नरः सत्रद इह ॥ कण्टकान्त्यनिधनत्रिकोणगास्तत्फलं ददति यत्नतो ग्रहाः । षष्ठ इन्दुरशुभस्तथाऽष्टमः केन्द्रकोणगत ऐनिरन्नहृत् ॥' इनः सूर्यस्तस्या-

पत्यमैनिः शनिः। अत्र लग्नस्थितानामेव ग्रहाणां फलाभिधानादन्यकेन्द्रादिषु तदतिदेशात् फलेऽपि महत्त्वाल्पत्वकृतो विशेषो ध्येय इति निष्कृष्टोर्थः। अन्यथा सर्वकेन्द्राद्यनुवादेन कुष्ठ्यादिफलमेव स्यात्। अत एव वसिष्ठेन लग्नस्थितानामेव फलमुक्तं—'कुष्ठी-लग्नगते सूर्ये क्षीणचन्द्रे च भिक्षुकः। सत्रदः पूर्णचन्द्रे स्यात्कुजे पित्तरुजार्दितः। बुधे ज्ञानी गुरौ भोगी दीर्घायुर्भाग्यवान्सिते। वातरोगी शनौ राहौ केतौ चान्नविवर्जितः॥' इति। नारदादिभिरप्येवमुक्तम्। लग्नं विहायान्यकेन्द्रस्थितानां ग्रहाणां तु सामान्यत एव फलं शुभाशुभमुक्तम्। तद्वाक्यं प्रागभिहितमस्माभिः। ग्रन्थकर्त्रा तु लाघवात् रत्नमालापद्यार्थमनुसृत्यैवमुक्तमित्यदोषः। पूर्णचन्द्रक्षीणचन्द्रयोर्लक्षणमन्नप्राशनप्रकरणे उक्तं वसिष्ठेन—'सम्पूर्णेन्दूभयाष्टम्योर्मध्येन्दुः पूर्णसंज्ञकः। विनष्टेन्दूभयाष्टम्यो-र्मध्येऽसौ क्षीणसंज्ञकः॥' इति। सम्पूर्णेन्दुः पूर्णिमा। मध्येन्दुरित्यत्र छान्दसः समासः। कुतः ? 'समर्थः पदविधिः' इति सापेक्षमसमर्थं भवतीति च स्मरणात्। अथवा मध्ये इन्दुरिति पदच्छेदः। तत्रायादेशे यलोपे च—'पूर्वत्रासिद्धम्' इत्यसिद्धत्वमाद्गुणे कर्त्तव्ये न भवति 'न मुने' इत्यत्र नेति योगविभागात्तस्य चेष्टसिद्धिविषयत्वात्। विनष्टेन्दुरमावास्या, असाविति कृतपदच्छेदे मध्येन्दुशब्दस्येन्दुशब्दवाच्यः॥१९–२०॥

(इति अन्नप्राशनम्)

हिन्दी—अन्नप्राशन के लग्न से ९।५।१२।१।४।७।१०।८ इन आठों स्थानों में-से किसी स्थान पर क्षीण चन्द्रमा हो तो अन्नप्राशन करनेवाला बालक भिक्षाशी (भीख का अन्न खाने वाला) होता है। पूर्ण चन्द्रमा हो तो यज्ञकर्ता, बृहस्पति हो तो दीर्घजीवी, बुध हो तो ज्ञानवान्, मंगल हो तो पित्तरोगी, सूर्य हो तो कुष्ठरोगी, शनि हो तो वातरोगी और शुक्र हो तो वह (बालक या बालिका) तरह-तरह के भोगों को भोगने वाला होता है॥ १९-२०॥

अथ भूम्युपवेशनमुहूर्त्तं वसन्ततिलकयाऽऽह—

पृथ्वीवराहमभिपूज्य कुजे विशुद्धेऽरिक्ते तिथौ व्रजति पञ्चममासि बालम्।
बद्ध्वा शुभेऽह्नि कटिसूत्रमथ ध्रुवेन्दुज्येष्ठर्क्षमैत्रलघुभैरुपवेशयेत् कौ॥ २१॥

पृथ्वीति। पृथ्वी च वराहश्चानयोः समाहारद्वन्द्वः। पृथ्वीं वराहं चाभिपूज्य कुजे विशुद्धे भौमबले सतीत्यर्थः। अरिक्ते रिक्तारहिते तिथौ सति तथा पञ्चममासि व्रजति लग्ने सति तथा शुभेऽह्नि शुभग्रहवारेषु तथा ध्रुवेन्दुज्येष्ठर्क्षमैत्रलघुभैः रोहिण्युत्तरात्रय-मृगज्येष्ठाऽनुराधाऽश्विनीपुष्यहस्तैर्दशनक्षत्रैः उपलक्षिते काले बालं कटिसूत्रं पट्टसूत्रादि-निर्मितं कटिस्थले बद्ध्वा कौ पृथिव्यामुपवेशयेन्मन्त्रपाठपूर्वकमुपवेशनाख्यं संस्कारं कुर्यात्। उक्तञ्च पद्मपुराणे—'पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्। तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमो रामविशेषतः॥ तिथिं च वर्जयेद्रिक्तां शस्तानि शृणु भानि मे। उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम्॥ प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम्। वराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा ग्रहान्॥'

मन्त्रा अपि तत्रैवोक्तास्ते लिख्यन्तेऽस्माभिः

'रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे। आयुःप्रमाणं निखिलं निःक्षिपस्व हरिप्रिये॥

अचिरादायुषस्तस्य ये केचित्परिपन्थिनः । जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् ॥
धारिण्यशेषभूतानां मातस्त्वमधिका ह्यसि । कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥

तस्योपवेशनं कृत्वा भूमौ ब्राह्मणभोजनम् ।
पूर्वं कृत्वा ततः कार्यमुत्सवं पूर्ववद् द्विज ॥' इति ।

उत्सवो नीराजनादिः । यद्यपि ग्रन्थकर्त्रा पञ्चममासि कर्त्तव्यं भूम्युपवेशनमन्नप्राशनतः प्राग् वक्तव्यम्, तथापि ज्योतिःशास्त्रकर्तृवसिष्ठाद्यनुक्तत्वात् क्रमबाधमङ्गीकृत्योक्तम् । साम्प्रतं बालानां त्वन्नप्राशनसमय एव भूम्युपवेशनकाल इति ॥ २१ ॥

हिन्दी—जब जन्म से पाँचवाँ मास लगा हो और मंगल बलवान् हो, तब रिक्ता (४।९।१४) तिथियों को छोड़कर अन्य (१।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५) तिथियों में, शुभ(चन्द्र, बुध, बृहस्पति एवं शुक्र)वारों में, ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृगशिरा, ज्येष्ठा, अनुराधा एवं लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य)—इन १० नक्षत्रों में पृथिवी और वराह भगवान् की पूजा करके कमर में करधनी (कटिसूत्र) पहना कर बालक को भूमि पर बैठाना उत्तम होता है ॥२१॥

अथ जीविकापरीक्षां शालिन्याह—

तस्मिन् काले स्थापयेत्तत्पुरस्ताद्वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीं च ।
स्वर्णं रौप्यं यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवैस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥ २२ ॥

तस्मिन् काल इति । स्पष्टार्थं पद्यम् । आजीवैर्जीविकाभिः । 'आजीवो जीविका वार्त्ता' इत्यभिधानात् । यदाह मार्कण्डेयः—'अग्रतोऽथ प्रविन्यस्य शिलाभाण्डानि सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्स्पृशेद् बालो रिङ्गमाणः स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति ॥' इति । बहुधा तु जीविकापरीक्षामन्नप्राशनसमय एव कुर्वन्तीति शिष्टाचारः । इदं पद्यं ग्रन्थकर्त्तुः मुहूर्तविचारार्थं प्रवृत्तस्य हि वक्तुमनुचितम्, मुहूर्त्तविचारस्यात्र प्रतिपादनीयत्वात् । किन्तु धर्मशास्त्रकर्तॄणामुचितोऽयं विचारः । यतस्ते संस्कारादिनिर्णयार्थं प्रवृत्ता इति॥२२॥

हिन्दी—बालक को भूमि पर बैठा कर उसके आगे वस्त्र, शस्त्र, पुस्तक, लेखनी (कलम), सोना एवं चाँदी आदि अनेक वस्तु रख दें । उन वस्तुओं में-से जिस वस्तु को बालक अपनी इच्छा से पहले उठा ले, उसी वस्तु के द्वारा उस बालक की जीविका चलेगी, ऐसा जानना चाहिए ॥२२॥

अथ शिशोस्ताम्बूलभक्षणमुहूर्त्तं स्रग्धरयाऽऽह—

वारे भौमार्किहीने ध्रुवमृदुलघुभैर्विष्णुमूलादितीन्द्र-
स्वातीवस्वभ्युपेतैर्मिथुनमृगसुताकुम्भगोमीनलग्ने ।
सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणैरशुभगगनगैः शत्रुलाभत्रिसंस्थै-
स्ताम्बूलं सार्द्धमासद्वयमितसमये प्रोक्तमन्नाशने वा ॥ २३ ॥

वारे इति । भौमार्किभ्यां मङ्गलशनिभ्यां हीने रहिते वासरे सति श्रवणमूलपुनर्वसुज्येष्ठास्वातीधनिष्ठायुक्तैः ध्रुवमृदुलघुनक्षत्रैः उपलक्षिते काले तथा मिथुनं, मृगो मकरः, सुता कन्या, कुम्भः, गौर्वृषः, मीनः एषामन्यतमे लग्ने सौम्यैः सौम्यग्रहैः केन्द्रत्रिकोणगतैः अशुभगगनगैः पापग्रहैः शत्रुलाभत्रिसंस्थैः षष्ठैकादशतृतीयस्थानस्थितैः सहिते सति

बालकस्य ताम्बूलं लक्षणया ताम्बूलभक्षणं प्रोक्तमित्यर्थः । यदाह दीपिकाकारः—'मूलादितिद्रविणतिष्यकरोत्तरासु पौष्णाश्विविष्णुरजनीकरशक्रभेषु । वारेषु सूर्यशशिजीवसितेन्दुजानां ताम्बूलभक्षणविधिः कथितः शिशूनाम् ।। दुश्चिक्यलाभभवनारिगताश्च पापाः सौम्यग्रहा नवमपञ्चमकण्टकस्थाः । आरोग्यशान्तिशुभमाग्यसुखोपभुक्त्यै ताम्बूलभक्षणविधौ मुनिभिः प्रदिष्टाः ।।' इति । द्रविणं धनिष्ठा, चित्रानुराधयोर्ग्रहणं राजमार्त्तण्डवचनात् । 'दिनकरचन्द्रसमीरणमैत्रं पुष्यपुनर्वसुरेवतिचित्रम् । घटमृगमिथुनं कन्यकलग्नं पूगफलाशनमेभिरिहेष्टम् ।।' पूगग्रहणं फलताम्बूलोपलक्षणम् । रोहिणीस्वात्योर्ग्रहणे मूलं नास्ति । मीनवृषयोर्ग्रहणे च मूलं नास्ति । एतच्च कस्मिन्काले कार्यमित्यत आह—सार्द्धेति । जन्मकालात्सार्धमासद्वयमितसमये ताम्बूलदानं प्रोक्तम् । यदाह चण्डेश्वरः—'सार्द्धे मासद्वये पूगं ताम्बूलं वा शिशोर्हितम् । षड्भिरन्नभुजो मासैर्भोगभागी भवेन्नरः ।।' वा अथवा अन्नाशने अन्नप्राशनसमये वा प्रोक्तम् । एतच्च शिष्टाचारदर्शनादुक्तम् । तदा मुहूर्त्तविचारानुन्मेषः । यदा सार्धे मासद्वये ताम्बूलभक्षणं विहितं तदा मुहूर्त्तविचारो युक्त एव ।

ताम्बूलभक्षणमुहूर्तोऽन्येषामपि—

अथ प्रसङ्गतोऽन्येषामपि ताम्बूलभक्षणमुहूर्त्तः प्रोच्यतेऽस्माभिः । तदुक्तं दीपिकायाम्—'मूलाश्विमैत्रकरतिष्यहरीन्दुभेषु पौष्णे तथा मृगशिरोऽदितिवासवेषु । अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलनूतनदलाद्यशनं शुभाय' ।। दलानि पर्णानि । विशेषः स्मृतिभ्योऽनुसन्धेयः ।

ताम्बूलदाने फलव्यवस्था—

ताम्बूलं सुष्ठु यो दद्याद् ब्राह्मणेभ्योऽतिभक्तितः । मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनाश्च जायते ।।
फलेन तृप्यते ब्रह्मा पत्रेण भगवान् हरिः । चूर्णमीश्वरतृप्त्यै स्यात्ताम्बूलाशनदानतः ।।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिः पूगैः फलानि च । लाभालाभौ सुखं दुःखमायुर्मरणमेव च ।।
पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे धनसंक्षयः । चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ।।
पर्णाग्रं पर्णपृष्ठं वा चूर्णपर्णं द्विपर्णकम् । रात्रौ खदिरताम्बूलं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ।।
अशास्त्रविधिना पर्णपूगं खादति यो नरः ।
सप्तजन्मदरिद्रः स्यादन्ते विष्णुं न संस्मरेत् ।।' इति ।। २३ ।।

हिन्दी—मंगल तथा शनिश्चर वारों को छोड़कर अन्य (सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति एवं शुक्र) वारों में, ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), श्रवण, मूल, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, स्वाती एवं धनिष्ठा, इन १७ नक्षत्रों में, मिथुन, मकर, कन्या, कुम्भ, वृष तथा मीन लग्नों में, शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र,) केन्द्र, त्रिकोण (१।४।७।१०।९।५) स्थानों में हों, पापग्रह ३।६।११ इन स्थानों में हो तो ढ़ाई मास की उम्र में अथवा अन्नप्राशन के अवसर पर बालक को पान खिलाना उत्तम होता है ।। २३ ।।

अथ कर्णवेधमुहूर्त्तं स्रग्धरयाऽऽह—

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा ।

जन्माह्वात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे-
ऽथौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्त ॥ २४ ॥

हित्वेति। अत्रैतान्पदार्थान् हित्वा कर्णवेधः प्रशस्त इत्यन्वयः। एतान् कान् ? तत्र चैत्रं पौषमासं च, अवमं दिनक्षयम्।

लक्षणलक्षितजन्ममासादिनिषेधः—

'आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्। जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु' इति लक्षणलक्षितं जन्ममासम्। रिक्तातिथिं ४।९।१४। युग्माब्दं समवर्षं द्वितीयचतुर्थादिकं, जन्मतारां प्रथमदशमैकोनविंशतिकात्मिकां हित्वा। उक्तञ्च व्यवहारोच्चये—'न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न जन्मतारासु हरौ प्रसुप्ते। तिथावरिक्ते न च विष्टिदुष्टे कर्णस्य वेधो न समानवर्षे ॥' इति। अत्र चैत्रस्य निषेधो मीनार्कविषयः, पौषनिषेधो धनुरर्कविषयः, अन्यथा—'कार्त्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा। कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्ले पक्षे शुभेऽहनि' ॥ इति व्यासवचनमसङ्गतं स्यात्। अत्र कार्त्तिकशुक्लपक्षैकादशीतः कार्त्तिकः प्रशस्तः। पूर्वस्य देवशयनसत्त्वान्निषेधः।

जन्ममासेऽन्यान्यपि वर्ज्यानि

अत्र जन्ममासे वर्ज्यान्तराण्यप्याह प्रयोगपारिजाते व्यासः—'यो जन्ममासे क्षुरकर्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते हि मोहात्। मूढः स रोगी धनपुत्रनाशं प्राप्नोति गूढं निधनं तदाशु ॥' इति। विहितकालमाह—ऋत्विति। ऋतवः षट्, मुनयः सप्त, वसवोऽष्टौ, एतैः सम्मिते गणिते मासि षष्ठे मासे सप्तमे मासेऽष्टमे मासे वा अथो वा जन्माह्वात्सूर्यभूपैर्द्वादशषोडशभिर्वा परिमिते गणिते दिवसे सौरसावने कर्णवेधः प्रशस्त उक्तः। यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'मासे षष्ठे सप्तमे वाऽष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेऽह्नि। मध्ये चाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ' इति।

षष्ठमासे कर्णवेधे तिथयः

यदा तु षष्ठमासादौ कर्णवेधश्चिकीर्षितः, तदा तिथीनाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी। द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने' ॥ इति। ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारेषु इति। बुधबृहस्पतिशुक्रचन्द्रवारेषु प्रशस्तः कर्णवेधः। यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'भूमिजार्कात्मजार्कानां वारान् संवर्जयेत्सुधीः। जीवेन्दुजेन्दुशुक्राणां दिवसाः परिपूजिताः' ॥ इति। अथौजेति। ओजाब्दे विषमवर्षे वा कर्णवेधः प्रशस्तः। सूर्यबले सतीत्यपि ध्येयम्, यदाह राजमार्त्तण्डः—'अर्केऽनुकूले शशिनि प्रशस्ते ताराबले चन्द्रविवृद्धिपक्षे। अयुग्मवर्षे शुभदं शिशूनां कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ॥' अत्र कर्णस्येत्येकवचनं ग्रहैकत्वाधिकरणन्यायेनाविवक्षितम्। तेन द्वयोरपि कर्णयोर्वेधः।

नक्षत्राणि कर्णवेधे

विष्णिवति। श्रवणधनिष्ठापुनर्वसुचित्रानुराधामृगरेवत्यश्विनीपुष्यहस्तनक्षत्रैर्दशभिरुपलक्षिते काले कर्णवेधः प्रशस्तः। उक्तं हि श्रीपतिना—'पौष्णवैष्णवकराश्विनचित्रापुष्यवासवपुनर्वसुमैत्रैः। सेन्दवैः श्रवणवेधविधानं निर्दिशन्ति मुनयो हि शिशूनाम्' ॥

नारदेनापि—'चित्रादित्याश्विविष्णवन्त्यरविमित्रवसूडुपु । समृगेज्येपु बालानां कर्णवेध-क्रिया हिता ॥' इति । गर्गेणोत्तरात्रयमप्युक्तम्—'पुष्ये धनिष्ठास्वदितौ हरीन्दुत्वाष्ट्रे करेऽन्त्ये तिसृषूत्तरासु । दस्रे समैत्रेऽप्यथ कर्णवेधो नेष्टाश्च सर्वेऽष्टमराशिसंस्थाः' ॥ इति । अत्रैच्छिको विकल्पः ।

जन्मनक्षत्रे कर्णवेधो न कार्यः

अत्र जन्मनक्षत्रनिषेधः सर्ववादिसिद्धः । तदुक्तं दीपिकायाम्—'जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभैषज्यवादाध्वकर्त्तनेषु विवर्जयेत् ॥' इति । 'कृती छेदने' इति । धात्वर्थानुसारात्कर्त्तनशब्देन कर्णवेधो विवक्षितः । तथा च स्मर्यते—'जन्मनि मासि विवाहः शुभदो जन्मर्क्षजन्मराश्योश्च । अशुभं वदन्ति गर्गाः श्रुतिवेधक्षौर-यात्रासु' ॥ इति ॥ २४ ॥

हिन्दी—चैत्र, पौष (दोनों खरमास), तिथिक्षय, हरिशयन (आषाढ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक), जन्ममास, रिक्ता (४।९।१४) तिथि, सम(२।४ आदि)वर्ष एवं जन्मतारा (जन्मनक्षत्र से १।१०।१९ नक्षत्र) इन सबको छोड़कर, जन्म से ६।७।८वें महीने में अथवा जन्म-दिन से १२।१६वें दिन, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा सोम वारों में, विषम (३।५ आदि) वर्षों में, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) एवं लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) इन १० नक्षत्रों में बालकों का कर्णवेध उत्तम होता है ॥ २४ ॥

अथ कर्णवेधे लग्नशुद्धिं प्रहर्षिण्याऽऽह—

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्रत्र्यायस्थैः शुभखचरैः कवीज्यलग्ने ।
पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थैर्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात् ॥ २५ ॥

संशुद्ध इति । मृतिभवनेऽष्टमस्थाने संशुद्धे सर्वग्रहवर्जिते सति । यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'न कश्चिदिष्टोऽष्टमराशिसंस्थस्तिथिद्वयं चावमसंज्ञकं च' इति । अत्र विहितलग्नानि प्रयोगपारिजाते नारदेनोक्तानि—

'वृषभे मिथुने मीने कुलीरे कन्यकासु च । तुलाचापे न कुर्वीत कर्णवेधं शुभद्वये ॥ मेषश्च मकरश्चैव मध्यमौ गुरुणोदितौ । सिंहवृश्चिककुम्भाश्च ह्यधमत्वाद्विवर्जिताः' ॥ इति ।

अत एवोक्तं वराहसंहितायाम्—'लाभे तृतीये च शुभैः समेतैः क्रूरैर्विहीने शुभ-राशिलग्ने । वेध्यौ तु कर्णौ त्रिदशेज्यलग्ने' इति । शुभाश्चन्द्रबुधगुरुशुक्राः, तेषां राशयः कर्कमिथुनकन्यावृषतुलाधनुर्मीनास्तेषामन्यतमे लग्ने क्रूरैर्विहीने सतीत्यर्थः । ग्रन्थ-कृद्दीपिकाकारमतमाश्रित्याह—कवीति । कवीज्ययोर्लग्ने वृषतुलाधनुर्मीनानामन्यतमे लग्ने सति त्रिकोण—९।५, केन्द्र १।४।७।१०, त्र्याय—३।११—स्थितैः शुभग्रहैस्तथा पापाख्यैर्ग्रहैररिसहजायगेहसंस्थैः षष्ठतृतीयैकादशस्थानस्थितैरुपलक्षिते तथा केन्द्रसंस्थे त्रिदशगुरौ सति कर्णवेधः शुभावहः शुभकारकः स्यात् । उक्तञ्च दीपिकायाम्—'सौम्यै-स्त्र्यायत्रिकोणकण्टकगतैः पापैस्त्रिलाभारिगैरोजाब्दे श्रुतिवेध इज्यसितयोर्लग्नेऽनुकूले शुभे ॥' इति । गुरुः—'कर्णवेधादिकार्येषु नेष्टाः सर्वेऽष्टमस्थिताः । कर्णवेधो विनिर्देश्यो लग्नसंस्थे बृहस्पतौ ॥ तदभावेऽन्यकेन्द्रस्थे तदभावे त्रिकोणगे' ॥ इति ।

कर्णवेधप्रकारः कर्णरन्ध्रविशेषश्च

अत्र कर्णवेधप्रकारो रत्नमालायाम्—'शिशोरजातदन्तस्य मातुरुत्सङ्गसर्पिणः। सुताया वेधयेत्कर्णौ सूच्या द्विगुणसूत्रया'॥ कर्णरन्ध्रे विशेषमाह देवलः —'कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः। तं दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः॥' शालङ्कायनः—'अविद्धकर्णैर्यद्भुक्तं लम्बकर्णैस्तथैव च। दग्धकर्णैश्च यद्भुक्तं तद्वै रक्षांसि गच्छति'॥ इति। ब्राह्मणादिवर्णविशेषे तत्सूच्यभिधानं तत्सम्बन्धिविशेषश्च स्मृतिभ्योऽनुसन्धेयः।

अब्दपूर्तिमुहूर्तः

अथ ग्रन्थकारानुक्तोऽप्यवसरप्राप्तोऽब्दपूर्तिमुहूर्तः प्रोच्यतेऽस्माभिः। तत्र सौराब्दान्ते यद्दिने जन्मनक्षत्रं तद्दिनेऽब्दपूर्तिः कार्या। उक्तश्च विधिरत्ने—'अब्देन सौरेण शिशोः समान्ते बालं सुसंस्नाप्य च जन्मधिष्ण्ये। कृत्वाऽऽयुषो वृद्धिकरं च कर्म तं धारयेद्वस्त्रसुवर्णसूत्रम्॥' नृसिंहोऽपि—'सौरेणाब्दान्तजन्मर्क्षे शिशुं संस्नाप्य शास्त्रतः। आविध्य हेमसूत्रं च राश्यादावनुकूलभे॥ नवक्षौमाम्बरादीनि यथार्हं धारयेत्तदा।

तत्र तिथिनिर्णयः

अत्र खण्डनक्षत्रादौ निर्णयमाह वृद्धगर्गः—'उदयव्यापिजन्मर्क्षं तस्माद् ग्राह्यं तु जन्मतः। सङ्गव्यापिनि खण्डर्क्षे तत्र जन्मकरं शुभम्॥' इति।

प्रत्यब्दमब्दपूर्त्तिकृत्यं कार्यम्

न केवलं प्रथमवर्ष एव अब्दपूर्तिः किन्तु प्रत्यब्दान्तेऽपि कार्या। यदाह गर्गः—'यस्मिन्दिने सवितरि तन्नक्षत्रदिनं भवेत्। प्रत्यब्दान्ते च नक्षत्रे विधिं वक्ष्ये नृणां परम्॥' इति। दाक्षिणात्यशिष्टाचारस्तु जन्ममासीयजन्मतिथावब्दपूर्त्तिर्भवतीति दृश्यते। इत्यब्दपूर्तिः॥ २५॥

हिन्दी—अनुकूल तिथि-वार-नक्षत्रादि में जन्मदिन से १२वें दिन में, अथवा ६ठे या ८वें मास में या ३।५ आदि वर्षों में बालकों का पहले दाहिना, उसके बाद बायाँ और बालिकाओं का पहले बायाँ, उसके बाद दाहिना कर्णवेध करना चाहिए।

लग्न से ८वें स्थान में कोई शुभाशुभ ग्रह न हो, केन्द्र, त्रिकोण, तृतीय एवं ग्यारहवें (१।४।७।१०।९।५।३।११) स्थान में शुभग्रह हों, शुक्र तथा बृहस्पति का लग्न (२।७।९।१२) हो, पापग्रह (क्षीणचन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) ३।६।११ स्थान में हो तथा लग्न में बृहस्पति हो, ऐसे समय कर्णवेध शुभ होता है॥ २५॥

अथ 'चूडावर्षात्' इत्यादिना चौलमुहूर्त्तं विवक्षुस्तन्निषेधकं प्रसङ्गतोऽन्यकर्मनिषेधकं च कालं स्रग्धरयाऽऽह—

गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठापरिणयदहनाधानगेहप्रवेशा-
श्चौलं राजाऽभिषेकोदवसितविशनं नैव याम्यायने स्यात्।
नो वा बाल्यास्तवार्द्धे सुरगुरुसितयोर्नैव केतूदये स्यात्
पक्षं वार्द्धं च केचिज्जहति तमपरे यावदीक्षां तदुग्रे॥ २६॥

गीर्वाणेति । गीर्वाणा देवाः, अम्बु जलं, लक्षणया जलाशयः । तयोः प्रतिष्ठा गीर्वाणप्रतिष्ठा जलाशयप्रतिष्ठा चेत्यर्थः । परिणयो विवाहः, दहनाधानमग्न्याधानम्, चौलं प्रसिद्धम्, उपवीतं व्रतबन्धः, क्षोणीपालाभिषेकोदवसितविशनं क्षोणीपालाभिषेकः राजाभिषेकः, उदवसितविशनं गृहप्रवेशः, 'गृहगेहोदवसितम्' इत्यमरेणाभिधानात् । अत्र समाहारद्वन्द्वः । एतानि कर्माणि उपलक्षणत्वादन्यान्यप्यनियतकालानि शुभकर्माणि याम्यायने दक्षिणायने नैव स्युः । स्यादित्येकवचनं मूले समाहारद्वन्द्वैकत्वाभिप्रायम् । यदाह महेश्वरः—'चूडाकर्मनृपाभिषेकनिलयाग्न्याधानपाणिग्रहान्देवस्थापनमौञ्जिबन्धनविधीन् कुर्यान्न याम्यायने' ।। इति । किन्तूत्तरायणे कुर्यात् । तदुक्तं रत्नमालायाम्—'गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठाविवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे च ।।' विशनमिति ल्युट्प्रत्ययस्य कित्त्वाद्यभावात् । 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणः प्राप्तः 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इति अनित्यत्वान्न भवति । ज्ञापकं चात्र 'ओर्गुणः' इति सूत्रम् । यथा 'ओरोत्' इति वक्तव्ये गुणग्रहणं संज्ञापूर्वको विधिरनित्यो यथा स्यात् । तेन स्वायम्भुवमिति सिद्धम् । तथा च महेश्वरेणाप्युक्तम्—'भूपानां मृदुभैर्ध्रुवैः प्रविशनं यात्रानिवृत्तौ शुभम्' इति । अथवा व्यक्तमेव पठितव्यं—'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठापरिणयदहनाधानगेहप्रवेशाश्चौलं राजाभिषेको व्रतमपि च शुभदं नैव याम्यायने स्यात्' ।। इति । अथ सुरगुरुसितयोर्बृहस्पतिशुक्रयोर्बाल्यास्तवार्द्धक्ये च बालत्वेऽस्ते वार्द्धक्ये एतानि कर्म्माणि नो वा कुर्यात् । इदं प्रागुक्तमपि पुनर्लिखितं तत्स्मरणाविच्छेदार्थम् । मूलवाक्यान्यपि प्रागेवोक्तान्यस्माभिः । वृद्धशब्दस्य गुणवाचित्वाद् 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ् । वार्द्धकमिति तु 'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च' इति मनोज्ञादेराकृतिगणत्वाद् वुञ् ।

केतूदये कर्तव्यकार्येषु त्याज्यदिनसङ्ख्याविचारः

केतूदये धूमकेतूदये शुभकर्माणि नैव भवन्ति । तदुक्तं चण्डेश्वरेण—'केतोरस्तदिनादूर्ध्वं सप्ताहं मङ्गलं त्यजेत् । यावत्केतूदयस्तावदशुद्धः समयो हि सः ।।' इति । अत्र केचित्केतूदये जाते सति पक्षं पञ्चदश दिनानि जहति वर्जयन्ति । उक्तञ्च वराहेण—'दृष्टः षोडशवासरान्न शुभदः कैश्चित्प्रदिष्टः शिखी' इति । शिखी केतुः, दृष्ट इति वचनाद्यावन्न दृष्टस्तावददोष इत्यर्थः । अत्र ग्रन्थकृता एकदिनत्यागोऽक्षरबाहुल्यभीतेः कृतः । केचित्तु वा पक्षान्तरे अर्द्धं पक्षार्द्धं सप्तदिनानि केतूदयानन्तरं जहति । तदप्युक्तं वराहेण—'केतूदये सप्तदिनानि चोर्ध्वं विवाहयात्रादिषु गर्हितानि । दिनानि शेषाणि वदन्ति नूनं शुभ्रानि रैभ्यप्रमुखा मुनीन्द्राः ।।' इति । ननु कैश्चित्केतूदयदर्शनं यावन्मङ्गलकृत्यानि निषिद्धानि । अन्यैस्तु केतूदयानन्तरं षोडशाष्टौ वा दिनानि निषिद्धानि । तत्कथमनयोर्वाक्ययोरेकवाक्यतेत्यत आह—तमिति । अपरे आचार्याः तं केतुं यावदीक्षां यावद्दर्शनं यज्जहति तदुग्रे केतौ द्वित्रिचूडे तामसकीलकादावतिदुष्टफले द्रष्टव्यम् । तेन भिन्नविषयत्वाद्दोषाभावः ।

तेषां केतूनां स्वरूपं फलानि च गर्गेणोक्तानि

'त्रिशिखाश्च त्रिताराश्च रक्ता लोहितरश्मयः । प्रायशस्तूत्तरामाशां सेवन्ते नित्यमेव ते ।।

लोहिताङ्गात्मजा ज्ञेया ग्रहाः षष्टिः समासतः ।
नामतः कौङ्कुमा ज्ञेया राज्ञां सङ्ग्रामकारकाः ॥
कृष्णाभाः कृष्णपर्यन्ताः सङ्कुलाः कृष्णरश्मयः ।
राहुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत्कीलकाश्चातिदारुणाः ॥'

इत्यादि । वयं तु ब्रूमः । यावद्दर्शनं केतूदयो निषिद्ध इत्युक्तं तदुग्रे ब्रह्मपुत्राख्ये केतौ महादुष्टफले ज्ञेयम् । उक्तञ्च लोमशसंहितायाम्—'चातुर्मास्येऽथ पौषे मधु भवति रवौ ब्रह्मपुत्रोद्गमे वा दम्पत्योरेव नाशः प्रचुरमुनिगणैः कीर्त्तितो वै विवाहे ॥' इति । मधुभं मीनः, ब्रह्मपुत्रः केतुः ।

केतुलक्षणं तत्र वर्ज्यानि च

विवाहस्योपलक्षणत्वादन्यान्यपि शुभकर्माणि निषिद्धानि—'केतोरस्तदिनादूर्ध्वं सप्त रात्राणि वर्जयेत् । ब्रह्मपुत्रोद्गमे चैव व्रतं यात्रां च मङ्गलम् ॥' इति ज्योतिर्निबन्धकृदुक्तेश्च । ब्रह्मपुत्रलक्षणं सफलं वसिष्ठेनोक्तम्—'त्रिशिखस्त्रिवर्णयुक्तो ब्रह्मसुतो ब्रह्मदण्डनिभः । अनियतदिक्प्रभवोऽसौ कान्तकरो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥' को ब्रह्मा, तस्याप्यन्तं करोति तत्रान्येषां का कथेत्यर्थः । अत एवोक्तं वराहेण—'ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः । अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥' इति ॥ २६ ॥

हिन्दी—देवताओं और जलाशयों की प्रतिष्ठा, विवाह, अग्न्याधान, गृहप्रवेश, मुण्डन, राजाभिषेक तथा व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) ये सब शुभ कर्म याम्यायन (कर्क की संक्रान्ति से मकर की संक्रान्ति तक=लगभग १७ जुलाई से १४ जनवरी-पर्यन्त), बृहस्पति और शुक्र के बाल्य, अस्त, वार्धक्य, केतु (पुच्छलतारा) के उदय में पक्ष-पर्यन्त अथवा ८ दिन, किसी के मत से उदय-पर्यन्त में नहीं करना चाहिए ।

विशेष—केतु के अनेक भेद होते हैं, जिनका वर्णन बृहत्संहिता के ११वें अध्याय में या नारदपुराण पूर्वभाग ५६ अध्याय, ९४-१०८ श्लोक में किया गया है ॥ २६ ॥

अथ गुरुशुक्रयोर्बाल्ये वार्द्धक्ये च शुभं कर्म त्याज्यम् । तत्रावसरप्राप्तां तदीयदिनसङ्ख्यामनुष्टुभाऽऽह—

पुरः पश्चाद् भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्द्धकम् ।
पक्षं पञ्चदिनं ते द्वे गुरोः पक्षमुदाहृते ॥ २७ ॥

पुरः पश्चादिति । भृगोः शुक्रस्य पुरः पूर्वस्यां दिश्युदितस्य पश्चाद्वा तत्र यथासङ्ख्यं बाल्यं स्यात् । पूर्वस्यां त्रिदिनं पश्चाद्दशाहं बालत्वं शुक्रस्येत्यर्थः । च पुनः भृगोर्वार्द्धक्यं वृद्धत्वं पूर्वस्या पक्षं पञ्चदशदिनानि पश्चात्पञ्चदिनानि । गुरोरस्ते द्वे बाल्यवार्द्धक्ये पक्षमुदाहृते कथिते । यदाह नारदः—'पश्चात्प्रागुदितः शुक्रो दशत्रिदिवसं शिशुः । वृद्धः पञ्चदिनं पक्षं गुरुः पक्षं च सर्वतः ॥' इति ॥ २७ ॥

हिन्दी—शुक्र पूर्वदिशा में उदय होने के बाद ३ दिन एवं पश्चिम दिशा में उदय के बाद १० दिन तक बाल्य (स्वल्प तेजस्वी) रहता है, शुक्र पूर्व में अस्त होने के पहले १५ दिन और पश्चिम में अस्त होने के पहले ५ दिन वृद्धत्व को प्राप्त करता है और बृहस्पति का बाल्यत्व एवं वृद्धत्व दोनों १५-१५ दिन होते हैं ॥ २७ ॥

परमते बाल्यं वार्द्धक्यं चानुष्टुभाऽऽह—

ते दशाहं द्वयोः प्रोक्ते कैश्चित्सप्तदिनं परैः।
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्द्धाहं च त्र्यहं विधोः॥ २८॥

ते दशाहमिति। दिङ्नियमं त्यक्त्वा द्वयोर्गुरुशुक्रयोस्ते बाल्यवार्द्धक्ये दशाहं दशदिनं प्रोक्ते कैश्चित्। परैस्तु सप्तदिने बाल्यवार्द्धक्ये गुरुशुक्रयोः प्रोक्ते। यदाह महेश्वरः—'बालः शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः। पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैन्द्रयां क्रमेण। जीवो वृद्धः शिशुरपि सदा पक्षमन्यैश्च सूतौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम्॥' इति।

केशवार्कोऽपि—'क्षिपति सप्तदिनान्युदयास्तयोः सुरगुरुर्भृगुजश्च गतैष्ययोः' इति। अन्यैरपि पुनस्त्र्यहं त्रिदिवसं बाल्यवार्द्धक्यं प्रोक्तम्। उक्तञ्च गर्गेण—'शेषे तु देशे त्रिदिनं वदन्ति'॥ इति।

तत्र मतान्तराणां व्यवस्था

अथैषां वाक्यानां गतिमाह—आत्ययिके इति। अत्ययः कार्यावश्यम्भावः, स प्रयोजनं यस्येति 'प्रयोजनम्' इति ठक्। लग्नान्तराभावे समयशुद्धयभावे वा अतीतकालस्य बटोः अवश्यं देयायाः कन्याया गुणवद्वरोपलब्धौ वा यथासम्भवं दश-सप्त-त्रिदिनानां त्याग उदितो नान्यथेत्यर्थः।

तत्र देशभेदाद् व्यवस्था

वयं तु देशभेदेनैषां वाक्यानां व्यवस्थां ब्रूमः। तदाह गर्गः—'शुक्रो गुरुः प्राक्परतश्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम्। वङ्गेषु हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे तु देशे त्रिदिनं वदन्ति॥' इति।

चन्द्रस्य बाल्यवार्द्धक्यदिनानि

चन्द्रस्य विशेषमाह—अर्द्धाहमिति। विधोस्तु बाल्यवार्द्धक्ये क्रमेणार्द्धाहं त्र्यहं च भवतः। बाल्यमर्द्धं दिनं वार्द्धक्यं त्रिदिनं चन्द्रस्येत्यर्थः। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'वृद्धत्वमिन्दोस्त्रिदिनं दिनार्द्धं बालत्वमस्तत्वमहर्द्वयं च। अस्ते विधौ मृत्युमुपैति कन्या बालेऽन्यसक्ता विधवा च वृद्धे॥' ननु त्रिविक्रमेण चन्द्रस्यैकदिनं बाल्यं प्रोक्तमिति तस्य वाक्यस्य का गतिः? न काचित्। किन्तु निर्मूलत्वादुपेक्ष्यमेतद्वाक्यम्। साक्षाद्वसिष्ठेनापीदमदूषि—'येनोक्तमेकं दिवसं शिशुत्वमित्येतदिन्दोस्तदयुक्तमेव। महत्त्वशीघ्रत्वसुधामयत्वाद्दिनार्द्धमष्टौ दिननिष्ठितत्वात्। इति।

कश्यपेन तु बालोऽपीन्दुः शुभ एवोक्तः—'वृद्धचन्द्रः स्त्रियं हन्ति पतिं हन्त्यस्तमागतः। यतोऽस्यामृतरश्मित्वाद् बालोऽपि शुभदः शशी॥' इति। अत एव सम्पूर्णायामपि शुक्लप्रतिपदि द्वितीयादिने द्वितीयायां प्रातर्यज्ञोपवीतादीनि शुभकृत्यानि शिष्टाः समाचरन्ति॥ २८॥

हिन्दी—किसी आचार्य के मत से गुरु और शुक्र दोनों का पूर्व-पश्चिम उदय-अस्त दोनों में १०-१० दिन बाल्य-वृद्धत्व होता है और किसी के मत में ७-७ दिनों तक तथा अत्यन्त आवश्यक

कार्य में ३-३ दिन बाल्य और वृद्धत्व होता है एवं चन्द्रमा उदय होने के बाद आधा दिन बाल, अस्त होने के पहले ३ दिन वृद्ध होता है। गुरु, शुक्र और चन्द्रमा तीनों ग्रहों का अस्त, बाल्य और वृद्धत्व शुभ कामों में अशुभ कहा गया है। अतः इनमें शुभ कार्य नहीं करना चाहिए। मुहूर्तमार्तण्ड में कहा है—'कृष्णानङ्गचतुर्दिनम्' इत्यादि ॥ २८ ॥

अथैवं निषिद्धकालमुक्त्वेदानीं चौलमुहूर्तं स्रग्धरारथोद्धतावृत्ताभ्यामाह—

चूडा वर्षात्तृतीयात् प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषष्ठी-
पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम् ।
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनौ नैधने शुद्धियुक्ते
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदुचरलघुभैरायषट्त्रिस्थपापैः ॥ २९ ॥

चूडावर्षादिति । तृतीयाद्वर्षादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। तेन गर्भाधानकालाज्जन्मकालाद्वा तृतीये विषमे वर्षे पञ्चमे सप्तमे वा चूडाकरणं प्रभवति कृतं सच्छुभोदर्कं भवतीत्यर्थः। यदाह वसिष्ठः—'तृतीये पञ्चमेऽब्दे वा स्वकुलाचारतो हितम्। चौलं शिशूनां यत्नेन स्वगृह्योक्तविधानतः ॥ आधानतो जन्मतो वा सप्तमाब्देऽपि कारयेत्।' स्वकुलाचारत इत्यनेन येषां कुले पार्थक्येन चूडाकरणं तत्र मुहूर्तविचारः। येषां तूपनीत्या सहेष्यते इति पक्षस्तेषामुपनयनमुहूर्त्तेन सिद्धत्वान्न पृथक् मुहूर्त्तविचारोन्मेषः। अत एवोक्तं याज्ञवल्क्येन—'चूडा कार्या यथाकुलम्' ॥ इति। मनुना प्रथमवर्ष उक्तम्—'चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। प्रथमेऽब्दे द्वितीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥' एवं बहुकालोक्तौ यथागृह्यं व्यवस्था द्रष्टव्या। स्वगृह्ये विशेषकालानुक्तौ तु सम्बलत्वात्सर्वेषां विकल्पः। विशेषमाह गुरुः—'तृतीयेऽब्दे शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषतः। पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोऽथवा समम् ॥' इति।

चौले तिथयः

अष्टेति। अष्ट अष्टमी, अर्कः द्वादशी, रिक्ताः प्रसिद्धाः, आद्या प्रतिपत्, षष्ठी प्रसिद्धा, पर्वाणि अष्टमीचतुर्दशीपूर्णिमाऽमावास्यासङ्क्रान्तयः, एतैरूने रहितेऽहनि। अत्र तत्पुरुषसमासे—'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच्। 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः। अष्टम्यादितिथींस्त्यक्त्वा शेषेषु तिथिषु चूडा स्यादित्यर्थः। यदाह गुरुः—'द्वादशीं चाष्टमीं रिक्तां षष्ठीं प्रतिपदं तथा। हित्वा शेषेषु तिथिषु क्षौरकर्म शुभावहम् ॥' कश्यपः—'पञ्चपर्वतिथिं रिक्तां त्यक्त्वाऽन्यदिवसे शुभम्' इति। अत एवाह वसिष्ठः—'पञ्चमी सप्तमी चैव दशम्येकादशी तथा। त्रयोदशी तृतीया च क्षुरकर्मशुभावहा ॥' इति। चकाराद् द्वितीयाऽपि। ननु सप्तमीत्रयोदश्योर्गलग्रहत्वात्कथं तयोर्ग्रहणम्? यदाह गुरुः—'विद्यारम्भो व्रतोद्देशः क्षौरं चैव विशेषतः। गलग्रहे न कर्तव्यं यदीच्छेत्पुत्रजीवितम् ॥' यदि चेत्, उच्यते। वैदिकं मुण्डनं चौलमित्युच्यते। तद्विषयको विधिः। अवैदिकमुण्डनं सुखार्थं यत्क्षौरमुच्यते। क्षुरस्य कर्म क्षौरमिति सामान्यव्युत्पत्तेः अतस्तद्विषयको निषेध इति वयं ब्रूमः। अन्ये देशाचारतो व्यवस्थामाहुः। तदयुक्तं विरोधाभावात्।

चैत्रे चूडा न कार्या

विचैत्रेति । चैत्ररहिते उत्तरायणे चूडा स्यात् । शुभाशुभप्रकरणाभिहितो जन्ममासनिषेधोऽत्रापि ध्येयः, तदाह राजमार्त्तण्डः—'उत्तरवर्त्मनि सवितरि चूडाकरणं जगुर्बुधा यवनाः । चैत्रं हित्वा पापग्रहदिवसं जन्ममासं च' ॥ इति । तथा ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानां वारे लग्नांशयोश्चेति । सौम्यग्रहवारे सौम्यग्रहाणां लग्ने कर्कमिथुनवृषकन्यातुलाधनुर्मीनानामन्यतमे लग्ने तेषामेव च नवांशे चूडा स्यात् । 'चन्द्रज्ञगुरुशुक्राणां वारलग्नांशकेपु च' इति कश्यपोक्तेः । विशेषमाह पराशरः—'सितेज्यसौम्यवारेषु क्षौरं पक्षद्वये हितम् । इन्दुवारः सिते पक्षे वाराः शेषा न शोभनाः ॥' इति । प्रयोगपारिजाते पापवाराणामप्यपवादः पठितः–'पापग्रहाणां वारेऽपि विप्राणां तु शुभो रविः । क्षत्रियाणां तु भूसुनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभः' ॥ इति । अस्वभनिधनतनाविति । भं लग्नं राशिश्च स्वस्य भे स्वभे स्वभाभ्यां निधनमष्टमलग्नं तन्न विद्यते यस्मिन् तनौ स्वजन्मलग्नजन्मराशिभ्यामष्टमलग्नरहिते लग्ने चूडा स्यादित्यर्थः । तथा नैधने अष्टमस्थाने शुद्धिसंयुक्ते शुद्धिः शुक्रव्यतिरिक्तसर्वग्रहराहित्यं तद्युक्ते सति चूडा स्यात् । उक्तञ्च कश्यपेन—'नैधने शुद्धिसंयुक्ते लग्नराशौ न नैधने' इति । पराशरः—'अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः शुक्रविवर्जिताः । शुक्रश्च निधने क्षौरे सर्वसम्पत्करः शिशोः ॥' इति । शाक्रेति । शाक्रोपेतैर्ज्येष्ठायुक्तैर्विमैत्रैरनुराधारहितैर्मृदुचरलघुभिर्द्वादशनक्षत्रैरुपलक्षिते काले चूडा स्यात् । यदाह वसिष्ठः—'अदितिद्वितये पौष्णद्वितये श्रवणत्रये । हस्ताच्च त्रितये शाक्रे सैन्दवे चौलमीरितम् ॥' कश्यपोऽपि—'दास्रेन्द्वदितिपुष्येन्द्रभेषु हस्तत्रयेऽपि च । विष्णुत्रये च पौष्णर्क्षे चौलकर्म शुभप्रदम्' ॥ इति । अविहितनक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रं प्रशस्तमित्याह कश्यपः—'नवान्नप्राशने चौले व्रतबन्धेऽभिषेचने । शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि ॥' इति । नारदादिवाक्यान्यन्नप्राशनेऽभिहितानि । अत्र केचित् जन्मनक्षत्रपदं तारापरं ज्ञेयमित्याहुः । तथा चोक्तं लल्लेन—'हित्वैकं जन्मर्क्षं द्वे तारे जन्मसंज्ञिते शुभदे । उद्वाहे चोपनये यात्रायामन्नभोजने क्षुरे कार्ये ॥' इति । तन्न, अवैदिकक्षुरविषयत्वात् । 'जन्मर्क्षे कर्मनक्षत्रे' इति गुरुवचनमपि तद्विषयमेव । वैदिकक्षुरपरं चैतत्कश्यपादिवाक्यमिति समञ्जसम् ।

पापग्रहचन्द्रस्थित्या निमित्तान्तराणि

अथ लग्नबलमाह—आयेति । एकादशषष्ठतृतीयस्थानस्थितैः पापग्रहैश्चोपलक्षिते काले चूडा स्यात् । 'अषष्ठान्त्यारिगे चन्द्रे पापैस्त्र्यायारिसंस्थितैः' इति काश्यपोक्तेः ॥२९॥

हिन्दी—जन्मसमय से अथवा गर्भाधान से तीसरे आदि विषम (३।५।७) वर्षों में; ८।१२।४। ९।१४।१६ तिथियों और पर्वों को छोड़कर अन्य (२।३।५।७।१०।११।१३) तिथियों में; चैत्र (१३ मार्च से १३ अप्रैल तक) को छोड़कर उत्तरायण (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मासों) में; बुध, सोम, शुक्र और बृहस्पति वारों में और इन्हीं की राशि (२।३।४।६।७।९।१२) और नवांश में जिस बालक का मुण्डन संस्कार करना है, उसकी जन्मराशि और जन्मलग्न से आठवीं राशि के लग्न को छोड़कर अन्य लग्न में, लग्न से आठवें स्थान में कोई शुभ या पापग्रह न हो, ज्येष्ठा से युक्त अनुराधारहित, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु,

श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) तथा लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) इन १२ नक्षत्रों में, लग्न से ११।६।३ स्थानों में पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) के रहने पर चूडाकर्म (मुण्डन-संस्कार) शुभ होता है। पराशर मुनि के मत से अष्टम में शुक्र की स्थिति अशुभ नहीं होती है (देखे—पी० धा०) ॥ २९ ॥

अन्यदपि रथोद्धतयाऽऽह—

क्षीणचन्द्रकुजसौरिभास्करैर्मृत्युशस्त्रमृतिपङ्गुताज्वराः।
स्युः क्रमेण बुधजीवभार्गवैः केन्द्रगैश्च शुभमिष्टतारया॥ ३०॥

क्षीणेति। क्षीणचन्द्रः, कुजो मङ्गलः, सौरिः शनिः, भास्करः सूर्यः, एतैः केन्द्रस्थैः क्रमेण यथासङ्ख्यं मृत्युः मरणं, शस्त्रमृतिः शस्त्रान्मृतिः, पङ्गुता खञ्जता, ज्वरः प्रसिद्धः, एतानि फलानि स्युर्भवेयुः। बुधजीवभार्गवैस्तु केन्द्रस्थैः शुभं कल्याणकारि फलं चूडाकर्तुः स्यात्। तदुक्तं रत्नमालायाम्—'क्षौरर्क्षेषु स्वकुलविधिना चौलमाहुर्मुनीन्द्राः केन्द्रं यातैर्गुरुभृगुबुधैस्तत्र सूर्ये ज्वरः स्यात्। शस्त्रान्नाशो धरणितनये पङ्गुता चार्कपुत्रे शीतज्योतिष्यपचिततनौ निश्चितं नाशमेति॥' केन्द्रव्यतिरिक्तस्थानफलमपि तत्रैव। 'धन-व्ययत्रिकोणगैरसद्ग्रहैर्मृतावपि। क्षुरक्रिया न शोभना शुभैस्तु पुष्टिकारिणी'॥ इति। मृतौ तु शुक्र एव शस्तो नान्ये शुभग्रहाः, प्रागुक्तपराशरवाक्यस्वरसात्। क्षुरक्रिया चौलम्। इष्टतारयेति। च पुनरिष्टतारया गोचरप्रकरणोक्तया शुभफलदतारया चूडा स्यात्। उक्तञ्च राजमार्तण्डेन—'रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहौ। क्षौरं ताराशुद्धौ शेषं चन्द्राश्रितं कर्म॥' इति। ज्योतिर्निबन्धे—'विवाहे सविता शस्तो व्रतबन्धे बृहस्पतिः। क्षौरे ताराविशुद्धिश्च शेषे चन्द्रबलं बलम्॥' इति।

सोमबुधवारमात्रे क्षौरम्

चौलप्रयोजनमाह वसिष्ठः—

'सर्वेषामेव वर्णानां चूडाकर्मविधिः स्मृतः। केशमूलं पिता ज्ञेयः केशाग्रं जननी तथा॥
चौलेनैवायुषो वृद्धिश्चौलेनैवायुषः क्षयः। तस्माच्चौलं प्रयत्नेन कारयेद् बुद्धिमान्नरः॥'

व्यवहारनिबन्धे चौलारम्भे विशेषमाह श्रीपतिः—'केशवमानर्त्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्राम्। दितिमदितिं च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम्'॥ इति। यत्तु कैश्चिदुक्तम्—'चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषतः। अक्षौरभेऽपि कर्त्तव्यं वारेण बुधसोमयोः'॥ इति तत्सामान्यक्षौरविषयम्॥ ३०॥

हिन्दी—चूडाकरणकालिक लग्न से केन्द्र (१।४।७।१०) में क्षीण चन्द्रमा हो तो बालक की मृत्यु, मंगल हो तो शस्त्र से मृत्यु, शनि हो तो पङ्गुता, सूर्य हो तो ज्वर होता है और बुध, गुरु, शुक्र केन्द्र में हो तथा तारा (२।४।६।७।९) हो तो चूडाकर्म शुभ होता है॥ ३०॥

अथ सगर्भायां स्वमातरि सत्यां शिशोश्चौलार्थं कालमनुष्टुभाऽऽह—

पञ्चमासाधिके मातुर्गर्भे चौलं शिशोर्न सत्।
पञ्चवर्षाधिकस्येष्टं गर्भिण्यामपि मातरि॥ ३१॥

पञ्चेति। चौलाधिकारिणः शिशोर्मातुर्गर्भे पञ्चमासेभ्योऽधिके सति चौलं न सत् शुभफलदातृ नैव स्यात्। अतः पञ्चमासेभ्यः पूर्वं चौलं कृतं सच्छुभफलमित्यर्थः।

तदुक्तं गृह्यपरिशिष्टे—'चूडाकर्म न कर्त्तव्यं यस्य माताऽस्ति गर्भिणी। करोति यदि मन्दात्मा तदा गर्भस्य नाशनम्। पित्रोर्मृतिं वदन्त्येके चतुरब्दान्तरे स्फुटम्' ॥ इति। वसिष्ठः—'पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि वा भवेत्। विपद्यते गुरुश्चैव दम्पती शिशुरब्दतः ॥ गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म च। पञ्चमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत्' ॥ इति।

पञ्चवर्षातिक्रमे चौले नैष नियमः

अस्याप्यपवादमाह—पञ्चेति। पञ्चवर्षाधिकस्योल्लङ्घितपञ्चमवर्षस्य शिशोर्मातरि गर्भिण्यामपि सत्यां पञ्चमासादध ऊर्ध्वं विहितकाले चौलमिष्टं कल्याणकारि भवेत्। अतो बालो यावत्पञ्चवर्षो न भवति तावत्पर्यन्तं निषेध इत्यर्थः। तदाह नारदः—'सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत्। पञ्चमाब्दात् प्रागथोर्ध्वं गर्भिण्यामपि कारयेत्' ॥

उपनयनेन सह चौलं मातरि गर्भिण्यां सत्यां भवति

यदा तूपनयनेन सह चौलं चिकीर्षितं तदा विशेषमाह ज्योतिर्नारदः—'सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते' ॥ इति। अत्र तु पञ्चवर्षाणां न्यूनाधिकभावो नापेक्षितः। सर्वापवादकत्वादस्य।

मातरि गर्भिण्यां मौञ्जी न भवति

एवं पार्थक्येन मौञ्ज्यपि सगर्भायां सत्यां संस्कार्यमातरि न भवति। तदुक्तम्—'सूनोर्मातरि गर्भिण्यां मौञ्जीचूडे न कारयेत्। गते तु पञ्चमे मासे गर्भादीनां मृतिर्भवेत्' ॥ ३१ ॥

हिन्दी—माता को ५ मास से अधिक का गर्भ हो तो बालक का मुण्डन-संस्कार नहीं करना चाहिए (माता पाँच मास से कम की गर्भवती हो तो मुण्डन किया जा सकता है।) और बालक की अवस्था ५ वर्ष से अधिक हो तो माता के गर्भवती रहने पर भी मुण्डन शुभ होता है। तात्पर्य यह है कि बालक की ५ वर्ष से अधिक अवस्था हो तो माता का गर्भ ५ मास से अधिक होने पर भी मुण्डन करना उत्तम होता है ॥ ३१ ॥

अथ चौले तारावलमावश्यकमित्युक्तम्। तत्र दुष्टायां तारायां सत्यामपवादं शालिन्याऽऽह—

तारादौष्ट्येऽब्जे त्रिकोणोच्चगे वा क्षौरं सत्स्यात्सौम्यमित्रस्ववर्गे।
सौम्ये भेऽब्जे शोभने दुष्टतारा शस्ता ज्ञेया क्षौरयात्रादिकृत्ये ॥ ३२ ॥

तारादौष्ट्ये इति। ताराणां दुष्टत्वं गोचरप्रकरणेऽभिहितं तत्तत एवावधार्यम्। तस्मात्तारादौष्ट्ये सत्यपि क्षौरं चौलं सच्छोभनं स्यात्। कस्मिन् सति ? अब्जे चन्द्रे त्रिकोणगे नवमपञ्चमस्थानस्थिते अथवोच्चगे वृषराशिस्थे, अथवा सौम्यानां बुधगुरुशुक्राणां वर्गे षड्वर्गे अथवा स्वस्यैव षड्वर्गे सति। उक्तञ्च ज्योतिस्तन्त्रे—'सौम्यसुहृन्निजवर्गे चन्द्रे तुङ्गत्रिकोणगे वाऽपि। क्षौरादिकोपकरणे तारादोषो न दूषयति' ॥ आदिशब्देन यात्रा। 'विपत्तारे गुडं दद्यात्' इत्यादयोऽपि तारादौष्ट्यापवादाः प्रागुक्ताः।

तेऽप्यत्रोह्याः। शुभतारायां गुणमाह—सौम्ये भे इति। सौम्ये भे विहिते नक्षत्रे सति अब्जे शोभनचन्द्रे गोचरोक्तेऽष्टमस्थानस्थे सति दुष्टताराऽसमीचीनतारापि चेत्स्यात्, तदा क्षौरयात्रादिमङ्गलकृत्येषु शस्तातिप्रशस्ता निखिलदोषापवादिका स्यादित्यर्थः। तदप्युक्तं ज्योतिस्तन्त्रे—'ऋक्षं दग्धं तिथी रिक्ता चन्द्रश्चाष्टमगस्तथा। तत्सर्वं नाशयेत्तारा षट् पञ्च नवमी तथा॥ जन्माख्या ह्यष्टमी तारा न शुभा नापि निन्दिता' इति॥ ३२॥

(इति चौलप्रकरणम्)

हिन्दी—तारा के दुष्ट (१।३।५।७) होने पर भी यदि चन्द्रमा मुण्डन-लग्न से त्रिकोण (९।५) में हो, अपनी उच्च (वृष) राशि का हो या शुभग्रह (गुरु, शुक्र) के घर में हो, या अपने मित्र (सूर्य, बुध) के वर्ग में हो या अपने ही वर्ग में हो तो क्षौरकर्म शुभ होता है। यदि चन्द्रमा गोचर में शुभस्थान पर हो और शुभ ग्रह की राशि में भी हो तो क्षौरकर्म, यात्रा आदि में दुष्ट तारा का दोष नष्ट हो जाता है॥ ३२॥

अथ चौलादिकृत्ये कालविशेषनिषेधमनुष्टुभाऽऽह—

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाऽऽचरेत्।
ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यते॥ ३३॥

ऋतुमत्या इति। ऋतुः स्त्रीधर्मः स यस्या अस्तीति ऋतुमती तस्याः, तथा सूतिकाया जातापत्यायाः सूनोः पुत्रस्योपलक्षणत्वात् कन्याया वा चौलोपनयनविवाहादिकमुक्तं वक्ष्यमाणं च कृत्यं नाऽऽचरेत् न कारयेत्। उक्तञ्च प्रचेतसा—'यस्य माङ्गलिकं कृत्यं तस्य माता रजस्वला। वैधव्यं जायते तत्र नृनार्योः पाणिपीडने॥' पाणिपीडने वैधव्यम्, अन्यत्र मृत्युरित्यर्थः।

सूतिकायाः कर्मानर्हकालावधौ न शुभकृत्यं सर्ववर्णेषु

सूतिकाया अपि कर्मानर्हकाल उक्तो विष्णुस्मृतौ—'सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेन्मासेन स्त्रीजननीम्' इति। अस्यार्थं केचिदाहुः—'सर्ववर्णस्त्रीणां पुंप्रसूतानां बालकजन्मदिनाद्विंशतितमदिनं यावदशुचिता ततः शुद्धिः। एवं कन्याप्रसूनां स्त्रीणां कन्याजन्मदिनात्त्रिंशद्दिनं यावदशुचिता, ततः शुद्धिरित्यर्थः। एतदन्ये नानुमन्यन्ते, यतः 'शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति'॥ इति। दक्षेण वर्णपुरस्कारेण शुचिताहान्युक्तानि। एवं पुञ्जनयित्र्याः ब्राह्मण्याः सूतकनिर्गमदिनाद्दशैवाशुचिता दिनान्यवशिष्यन्ते। कन्याजनयित्र्यास्तु तस्यास्तस्मादेव विंशतिदिनानि। क्षत्रियायास्तु पुङ्कन्याजनयित्र्याः क्रमादष्टाष्टदशदिनानि तस्मात्कालादवशिष्यन्ते। वैश्यायास्तु पुङ्कन्याजनयित्र्याः पञ्चपञ्चदशदिनान्यवशिष्यन्ते। शूद्रायाः पुञ्जनयित्र्याः दशदिनानि सूतककाले न्यूनानि जायन्ते, कन्याजनयित्र्यास्तु दिनसाम्यमेवेति सर्ववर्णानामनुगतमतिप्रसक्तमव्यापकं च लक्षणमापतति। अस्त्वितिचेन्न। यद्येषोऽर्थोऽभिप्रेतः स्यात्तदा महता वाक्येनेममर्थं स्पष्टं निर्दिशेत्। अतोऽनुगतमर्थान्तरमाहुरन्ये—यथा स्वस्ववर्णपुरस्कारेण य अशौचकालोऽभिहितः स सर्वेषां

तत्कुलजानां तुल्य एव। तदग्रे सर्वेऽपि शुचयः। पुञ्जनयित्र्यास्तु सूतिकायास्तदग्रे विंशतिदिनान्यशुचिताऽस्तु। कन्याजनयित्र्याः तदग्रे त्रिंशद्दिनान्यशुचितेत्यर्थः। अत एव सूतिकाया उक्तकालपर्यन्तं कर्मानर्हत्वात्तदपत्यस्यापि मङ्गलकृत्ये निषेध इति।

द्विज्येष्ठामार्गशीर्षविषये विवाहादिनिषेधः

ज्येष्ठेति। ज्येष्ठापत्यस्याद्यगर्भस्य पुत्रस्य कन्याया वा व्रतबन्धविवाहादिशुभकृत्यं ज्येष्ठमासे न भवति। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न च जातु मङ्गलम्' इति। कैश्चिदिति। मार्गेऽपि मार्गशीर्षमासेऽपि कैश्चिदाचार्यैराद्यगर्भसुतकन्ययोर्मङ्गलकृत्यं नेष्यते। तदाह वात्स्यः—'मार्गे मासि तथा॥ ज्येष्ठे विवाहं चौलमेव च। ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च न कुर्वीत व्रतं तथा' भरद्वाजोऽपि—'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम्। आद्यपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत्'॥ अस्मादेव ज्ञापकाद् द्वितीयादिगर्भपुत्रदुहित्रोर्ज्येष्ठे मार्गशीर्षे च मङ्गलकृत्यानां निषेधः। किन्तु विधिरिति प्रतिभाति। अत्र कश्चिद्विशेषो वक्तव्योऽस्ति, स व्रतबन्धप्रकरणे प्रवक्ष्यते॥ ३३॥

हिन्दी—यदि माता रजस्वला हो या प्रसूता हो तो बालक एवं बालिकाओं का मुण्डन, उपनयन, विवाह आदि संस्कार नहीं करना चाहिए (सूतक-निवृत्ति के बाद ही करना चाहिए)। ज्येष्ठ (प्रथम गर्भ की) सन्तान (लड़का, लड़की) का मुण्डन आदि संस्कार ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। किसी आचार्य के मत में अगहन में भी क्षौरकर्म, उपनयन तथा विवाह (प्रथम सन्तान का) नहीं करना चाहिए॥ ३३॥

अथ प्रसङ्गतः सामान्यक्षौरादिमुहूर्तं तन्निषिद्धकालं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

दन्तक्षौरनखक्रियाऽत्र विहिता चौलोदिते वारभे
पातङ्ग्यारखीन् विहाय नवमं घस्त्रं च सन्ध्यां तथा।
रिक्तां पर्वनिशां निरासनरणग्रामप्रयाणोद्यत-
स्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहि पुनः कार्या हितप्रेप्सुभिः॥ ३४॥

दन्तेति। चौलोदितेषु चौलप्रोक्तेषु वारेषु नक्षत्रेषु उपलक्षणत्वात्तदुक्ते लग्नेऽपि च दन्तक्षौरनखक्रियाऽत्र विहितोक्ता—'येषु येषु प्रशंसन्ति क्षुरकर्म महर्षयः। तेषु तेषु प्रशंसन्ति नखदन्तविलेखनम्'॥ इति। येषु येषु वारनक्षत्रलग्नादिष्वित्यर्थः। अथ क्षौर-निषिद्धकाल उच्यते—पातङ्गीति। 'पतङ्गः पक्षिसूर्ययोः' इत्यभिधानात्पतङ्गः सूर्य-स्तस्यापत्यं पातङ्गिः शनिः। आररवी प्रसिद्धौ। तेषां वारान् विहाय त्यक्त्वा उपलक्ष-णत्वादेषां लग्नानि मकरकुम्भमेषवृश्चिकसिंहाख्यानि अंशकांश्च विहायेत्यर्थः। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'हस्तत्रये पुष्यपुनर्वसौ च शशाङ्कविष्णुत्रितयाश्विनेषु। पौष्णेन्द्रधिष्ण्ये क्षुरकर्म शस्तं व्यर्कारशन्यंशकवारलग्ने'॥ इति। अतः शुभग्रहाणां वारलग्नांशे क्षौरं कार्यमिति फलितोऽर्थः।

क्षौरे वारलग्नांशानां फलानि

वारफलानि गर्गोक्तानि—

'भानुरायुः क्षपयति मासं सप्त शनैश्चरः। भौमो मासाष्टकं हन्ति ज्ञो यच्छेत्पञ्चमासकम्॥

सप्तमासान्ददातीन्दुः सुरेज्यो दशमासकम्। एकादश कविर्दद्यात्कृते तु क्षौरकर्मणि ॥' इति।

तुल्यन्यायत्वाल्लग्नानामंशानां चैतानि फलान्यूह्यानि। न केवलमायुर्हानिः, किन्तु शस्त्रघातोऽपि पापवारेषु। तदुक्तं वसिष्ठेन—'आदित्यभौमार्किदिने धीमान्न दन्तकाष्ठक्षुरकर्म कार्यम्। कुर्वन्नवाप्नोति फलं समग्रं शस्त्रेण सम्यक्स्वशरीरघातम् ॥'

क्षौरदिनान्नवमे दिनादौ क्षौरं न कार्यम्

नवमं घस्रं चेति। तथा नवमं घस्रं च विहाय यद्दिने क्षौरं कृतं ततो नवमदिने पुनः क्षौरं न कार्यम् 'उत्कटे भूषिते चैव यानी नो नवमेऽहनि' इति नारदोक्तेः। यत्तु नवमे नवम्यामिति व्याकुर्वन्ति तदयुक्तम्, दिनपदोपादानप्रसङ्गात्। दिनपदं तिथिपरमिति चेन्न, रिक्तायां वक्ष्यमाणस्वतन्त्रनिषेधानुपपत्तेः। ननु पृथगुपादानात् नवम्यां सर्वथा क्षौरं निन्द्यमेव चतुर्थीचतुर्दश्योस्तु तथा नेति चेन्न।

'चतुर्थीं चैव षष्ठीं च अष्टमीं च चतुर्दशीम्। तथा पञ्चदशीं चैव ब्रह्मचारी भवेत्सदा ॥
श्मश्रुकर्मशिरोभ्यङ्गदन्तधावनमैथुनम् ।
जन्तुश्चैतानि यः कुर्याल्लक्ष्मीस्तत्र न तिष्ठति ॥' इति।

व्यासवचने क्षौरे चतुर्थीचतुर्दश्योः सर्वथा निषेधाभिधानात्। अत एवामुमर्थं स्फुटमाह पराशरः—'क्षौराहान्नवमे त्वह्नि नेष्टमात्ययिकेष्वपि' इति। तथा सन्ध्यां प्रातःसन्ध्यां सायंसन्ध्यां च विहाय एवं रिक्तां (४, ९, १४) विहाय पर्वाण्यपि निशां रात्रिमपि विहायेत्यर्थः।

कार्यान्तराणि क्षौरे

अथाधिकारिणो निरूप्यन्ते। हितप्रेप्सुभिः स्वशुभोदर्कमिच्छद्भिरेतादृशैः क्षौरक्रिया हि निश्चयेन न कार्या। कीदृशैः निरासनैरासनं कम्बलादि तद्रहितैः, रणः सङ्ग्रामः, ग्रामो जनपदविशेषः, प्रयाणमर्थयात्रा, एतदर्थमुद्यतैः कृतोद्योगैः। स्नातैरनुष्ठितनित्यनैमित्तिककाम्यस्नानैः। यत्तु क्षौरार्थमेव स्नानं विधीयते प्रायश्चित्तादौ च तत्र नायं निषेधः। तथैव तस्य विधानात्। अभ्यक्तैः कृततैलाभ्यङ्गैः, कृताशनैः कृतभोजनैः, सुवर्णाद्यलङ्कारभूषितैरित्यपि ध्येयम्। यदाह वराहः—

'न स्नातमात्रगमनोत्कटभूषितानाम्-
अभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम्
सन्ध्यानिशाशनिकुजार्कदिने च रिक्ते
क्षौरं हितं न नवमेऽह्नि न चापि विष्टयाम् ॥' इति।

उत्कटानां कुक्कुटासनवदवस्थितानाम्। सन्ध्यालक्षणमपि वराहेणोक्तम्—'अर्धास्तमितादुदितात्सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्।' वृद्धगर्गः—'शन्याररविवारेषु रात्रौ पाते व्रतेऽहनि। श्राद्धाहे प्रतिपद्रिक्ताभद्राः क्षौरे विवर्जयेत् ॥' 'षष्ठ्यमा पूर्णिमा पातश्चतुर्दश्यष्टमी तथा। आशु सन्निहितं पापं तैले मांसे क्षुरे भगे' ॥ इति ॥ ३४ ॥

हिन्दी—मुण्डन में कहे गये तिथि-वार-नक्षत्रों में ही दाँत साफ करना, क्षौरकर्म (दाढ़ी, मूँछ एवं शिर का बाल कटवाना या मुँडवाना) तथा नख कटवाना शुभ होता है। शनिवार,

भौमवार एवं रविवारों में, क्षौर के नवें दिन, सन्ध्या, रिक्ता(४।९।१४)तिथि, पर्व-तिथियों की रात्रि, बिना आसन के, लड़ाई, किसी ग्राम की यात्रा, स्नान करने के बाद, उबटन लगाने के बाद एवं भोजन कर लेने के बाद अपनी भलाई चाहने वाले व्यक्ति को दन्त और नख-क्रिया नहीं करनी चाहिए।

आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण रविवार को, क्षत्रिय भौमवार को और वैश्य तथा शूद्र शनिवार को क्षौरकर्म करा सकते हैं।

'पापग्रहाणां वारेषु विप्राणां तु शुभो रविः।
क्षत्रियाणां क्षमासूनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभः॥' ज्यो० नि०।

राजकर्मचारिणां क्वापि न निषेधः—

'राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपसेविनाम्।
श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम्॥' ज्यो० नि०॥ ३४॥

केषाञ्चिन्निमित्तविशेषं क्षौरस्य विधिनिषेधौ च मञ्जुभाषिणीछन्दसाऽऽह—

क्रतुपाणिपीडमृतिबन्धमोक्षणे क्षुरकर्म च द्विजनृपाज्ञयाऽऽचरेत्।
शववाहतीर्थगमसिन्धुमज्जनक्षुरमाचरेन्न खलु गर्भिणीपतिः॥ ३५॥

क्रतुपाणीति। अत्र पूर्वार्द्धे सत्यपि निषिद्धवारादौ एषु कर्मसु क्षुरकर्म क्षौरं सद्यः कार्यमिति वाक्यार्थः। क्व? क्रतौ यज्ञे विप्राज्ञया क्षौरम्, तथा पाणिपीडा विवाहः, लक्षणया ततः प्राग्भाविनि गोदानकर्मणि। केचित्तु विवाहे श्मश्रुकर्म प्राशस्त्यपरं क्षौरमित्याहुः। अपरे शाखाविशेषेण विवाहे क्षौरमुक्तमित्यूचुः। तथा च श्रुतिः— 'मुण्डयितारः श्रविष्ठायना वधूमूढाम्' इत्यादि। मृतौ मातापित्रोर्मरणे बन्धमोक्षणे कारागृहे बद्धस्य यदा मोचनं भवेत्तदा राजाऽऽज्ञया द्विजाऽऽज्ञयाऽपीति प्राग्व्याख्यातम्। नृपो राजा तस्याज्ञया चौरादेः क्षौरं कार्यमेवं। यदाह नारदः—'नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे। उद्वाहेऽखिलवारर्क्षतिथिषु क्षौरमिष्टदम्'॥ इति। धर्मशास्त्रे— 'गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेऽहनि। आधाने सोमपाने च षट्सु क्षौरं विधीयते'॥ इति।

गर्भिणीपतेर्निषिद्धाः क्षौरादयः

शवेति। गर्भिणी गर्भवती तस्याः पतिर्भर्ता शववाहं मृतकवहनं, तीर्थगमनं तीर्थयात्राम्, उपलक्षणत्वाद्विदेशगमनमपि, सिन्धुमज्जनं समुद्रस्नानं, क्षुरं क्षुरकर्म, एतानि कर्माणि न आचरेन्न कुर्यात्। यदाह वसिष्ठः—'गृहनिर्माणमुदधिस्नानं चौलं सूतस्य तु। तीर्थयात्रां नखश्मश्रु न कुर्याद् गर्भिणीपतिः'॥ धर्मशास्त्रे तु विशेषः—सिन्धुस्नानं द्रुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनम्। विदेशगमनं चैव न कुर्याद् गर्भिणीपतिः॥'

राजयोगिपुरन्ध्रीगर्भिणीपतीनां च क्षौरं तीर्थेऽपि

'राजा योगी पुरन्ध्री च मातापित्रोस्तु जीवतोः।
मुण्डनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद् गर्भिणीपतिः॥'

गर्भिणीपतेरेतन्निषेधः कदा भवतीति

अयं च क्षौरादिनिषेधो गुर्विणीपतेः सप्तमासादूर्ध्वं, न प्राक्। यदुक्तं नारदीये—'वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद् गर्भिणीपतिः। श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं नान्यत्र वेदवित् ॥' श्राद्धं श्राद्धभोजनम्। इदमुत्तरार्धं गर्भाधानप्रकरणे वक्तव्यमपि प्रसङ्गादत्रैवोक्तं ग्रन्थकृतेति ॥ ३५ ॥

हिन्दी—यज्ञ में, विवाह में, मरणाऽऽशौच में, बन्धन (कारागार) से छूटने पर एवं वारादि के निषिद्ध रहने पर भी ब्राह्मण और राजा की आज्ञा से क्षौर करा लेना चाहिए।

जिस पुरुष की स्त्री गर्भवती हो, उस पुरुष को मरे हुए को उठाना, तीर्थयात्रा, समुद्रस्नान और क्षौरकर्म नहीं कराना चाहिए ॥ ३५ ॥

क्षौरे राज्ञां विशेषं सर्वथा वर्ज्यनक्षत्राणि च भुजङ्गप्रयातेनाह—

नृपाणां हितं क्षौरभे श्मश्रुकर्म दिने पञ्चमे पञ्चमेऽस्योदये वा।
षडग्निस्त्रिमैत्रोऽष्टकः पञ्चपित्र्योऽब्दतोऽब्ध्यर्यमाक्षौरकृन्मृत्युमेति ॥ ३६ ॥

नृपाणां हितमिति। क्षौरभे क्षौरनक्षत्रे विहिते सति पञ्चमे पञ्चमे एव दिने श्मश्रुकर्म मुखशोभाकारि क्षुरकर्म नृपाणां राज्ञां हितं प्रशस्तम्। यदाह वसिष्ठः—'महीभृतां पञ्चमपञ्चमेऽह्नि क्षौरं च कार्यं हितमुक्तभेषु'। ननु पञ्चमे-पञ्चमे इति वीप्सोक्त्या नियमप्रतीतेर्विहितनक्षत्राभावे च सति श्मश्रुकर्म कार्यमिति। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'न लभ्यते चेच्च तदुक्तधिष्ण्यं तद्भोदये वा निखिलं विधेयम्' इति। उदयशब्देन मुहूर्त इति ऋजवो व्याकुर्वते। तदाह गर्गः—'क्षौरकर्म महीशानां पञ्चमे पञ्चमेऽहनि। कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेऽप्यथवा तन्मुहूर्तके' ॥ तेषां क्षौरनक्षत्राणां ये स्वामिनस्तेषां मुहूर्ते इत्यर्थः। तांश्च मुहूर्तान् विवाहप्रकरणे वक्ष्यतीति चेत् न। अत्र क्षौरपदं श्मश्रुकर्मपरम्। 'राजा योगी पुरन्ध्री च मातापित्रोस्तु जीवतोः। मुण्डनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद् गर्भिणीपतिः' ॥ इति राज्ञो मुण्डननिषेधात्। अत एवोक्तं श्रीपतिना—'श्मश्रुकर्म पञ्चमे पञ्चमेऽह्नि भूभृतां क्षौरभस्योदये निन्द्यतारका न चेत्' इति। निन्द्यताराः जन्मत्रिपञ्चसप्तताराः। अन्ये त्वेवं व्याचक्षते। अस्योदये वेति। अस्य क्षौरभस्योदये लग्ने। यथा मेषलग्नं त्रिंशद्भागात्मकं तत्राद्यास्त्रयोदशभागाः सप्तविंशतिलिप्तयः यावता कालेन मेषलग्ने उदयं यान्ति तावदश्विनीनक्षत्रमुदयं यातीत्यर्थः। तदनन्तरं तावन्त एवांशा यावता कालेनोदयं यान्ति तावद्भरण्युदय इत्यनेन न्यायेन सर्वेषां नक्षत्राणामुदया ज्ञेयाः। इदञ्च व्याख्या वराहपद्यव्याख्यावसरे भट्टोत्पलेनाभ्यधायि। पितृचरणास्त्वेवं व्याकुर्वते—यस्मिन् काले अश्विन्या उदयः क्षितिजसम्बन्धः सम्पद्यते तं समयमारभ्य यावद्भरण्यामुदयः क्षितिजसम्बन्धः तदन्तराले यावान् कालः सोऽश्विन्या उदय उच्यते। एवं सत्युदयलग्नद्वयांशान्तरालाद् गणितमार्गेण यावानिष्टकाल आगच्छेत्स एव तन्नक्षत्रोदय इति निष्कृष्टोऽर्थः। नक्षत्रस्योपलक्षणत्वाच्छुभवारासम्भवेऽपि तद्घोरायां कार्यम्। उक्तञ्च नारदेन—'यस्य' खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते। ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा' ॥ इति। क्षणवारः कालहोरा।

निषिद्धनक्षत्रवारेष्वपि क्षौरम्

एवं सति निषिद्धनक्षत्रवारेष्वपि प्रथमश्मश्रुकर्म कार्यमिति युक्तमुत्पश्यामः ।

क्षौरे निषिद्धनक्षत्राणि

षडग्निरिति । अग्निः कृत्तिका क्षौरावृत्त्या षड्वारं कृत्तिका यस्य, एवं त्रीणि मैत्राण्यनुराधा यस्य, अष्टौ काः रोहिण्यो यस्य, पञ्च पित्र्याणि मघा यस्य, अब्धयश्चत्वारोऽर्यम्ण उत्तराफाल्गुन्यो यस्य स एतादृशः क्षौरकृत् अब्दतः वर्षानन्तरं मृत्युं मरणमेति प्राप्नोति । यदाह वसिष्ठः—'अष्टाब्जऋक्षः पितृपञ्चकश्च षड् वह्निधिष्ण्यश्चतुरर्यमर्क्षैः । त्रिमैत्रभः पद्मजनसन्निभोऽपि क्षौरी नरोऽब्दान्निधनं गतः सः' ।। इति । पद्मजो ब्रह्मा, तत्सन्निभस्तादृशः । तदुपादानं कैमुतिकन्यायसूचनार्थम् । ननु रत्नमालापद्ये—'षट्कृत्तिकः पञ्चमघस्त्रिमैत्रो ब्रह्माष्टको यश्चतुरुत्तरश्च । क्षौरी च वर्षं चतुराननोऽपि न प्राणितीति प्रकरः प्रवादः' ।। इत्यत्र सामान्यतः तिसृणामप्युत्तराणां ग्रहणाद्विरोध इति चेत् । मैवं वोचः । अत्राप्युत्तरापदेन प्रथमोपस्थितिकत्वाद्वसिष्ठवाक्येन सहैकवाक्यतानुरोधाच्चोत्तराफाल्गुन्येव गृह्यते नाषाढभाद्रपदे । तत्र तु वचनान्तरविरोधो नास्ति 'पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः' इत्यादौ तत्र सामान्यतः सर्वासामुत्तराणां ग्रहणं भवति ।। ३६ ।।

(इति सामान्यक्षौरप्रकरणं समाप्तम्)

हिन्दी—क्षौरकर्म में उक्त नक्षत्रों (ज्येष्ठा, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं अश्विनी में) पाँचवें-पाँचवें दिनों में, यदि पाँचवें-पाँचवें दिन क्षौर का नक्षत्र न हो तो क्षौरनक्षत्रोदय (क्षौर के नक्षत्र के तिथ्यंश ६।५२ में उक्त) में करना चाहिए ।

यदि एक वर्ष में कृत्तिका में ६ बार, अनुराधा में ३ बार, रोहिणी में ८ बार, मघा में ५ बार और उत्तराफल्गुनी में ४ बार कोई मनुष्य क्षौरकर्म करा लेता है तो उसकी मृत्यु हो जाती है । अर्थात् (कृत्तिका, रोहिणी, उत्तराफल्गुनी तथा अनुराधा) इन नक्षत्रों में क्षौरकर्म कदापि नहीं कराना चाहिए ।

विशेष—पीयूषधारा में क्षौरनक्षत्रोदय का अर्थ क्षितिज में उस नक्षत्र के सम्बन्ध से जितना समय लगे, उसको नक्षत्रोदय समय मान कर उसमें बाल बनवाना चाहिए, ऐसा अर्थ लिखा है । यह गणितगम्य है ।। ३६ ।।

अथ प्राप्तकालत्वादक्षराणामारम्भमुहूर्तं पञ्चचामरेणाह—

गणेशविष्णुवाग्रमाः प्रपूज्य पञ्चमाब्दके
तिथौ शिवार्कदिग्द्विषट्शरत्रिके रवावुदक् ।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने ।। ३७ ।।

गणेशेति । गणेशविष्णू प्रसिद्धौ, वाक् सरस्वती, रमा लक्ष्मीः, एता देवताः प्रपूज्य पञ्चमवर्षे सति, शिव एकादशी, अर्को द्वादशी, दिक् दशमी, द्वौ द्वितीया, षट् षष्ठी, शराः पञ्चमी, त्रयस्तृतीया, एतासामन्यतमतिथौ च सति । रवौ उदक् उत्तरायणस्थिते

सति। तथा लघुनक्षत्राणि हस्ताश्विपुष्याः, श्रवः श्रवणः, अनिलान्त्यभादितयः प्रसिद्धाः, ईश आर्द्रा, तक्षा चित्रा, मित्रमनुराधा, अत्र समाहारद्वन्द्वः। एतेषामन्यतमनक्षत्रे सति सतां सोमबुधगुरुशुक्राणां दिने दिवसे तथा चरराशयः मेषकर्कतुलामकरास्तद्रहिते शुभस्वामिके वृषमिथुनकन्याधनुर्मीनानामन्यतमे लग्ने सति शिशोर्लिपिग्रहो नूतनाक्षर-लेखनप्रारम्भः कार्यः। उक्तञ्च वसिष्ठेन—'उदग्गते भास्वति पञ्चमेऽब्दे प्राप्तेऽक्षरस्वी-करणं शिशूनाम्। सरस्वतीं विघ्नविनायकं च गुडौदनाद्यैरभिपूज्य कुर्यात्'॥ मार्कण्डेयः—

'पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम्। स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां च विद्यां विशेषतः॥
प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे ह्यप्रसुप्ते जनार्दने। षष्ठीं प्रतिपदं चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम्॥
रिक्ता पञ्चदशीं चैव सौरिभौमदिनं तथा। एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भं तु कारयेत्॥'

अत्र निषिद्धापि षष्ठी ग्रन्थकृता स्वीकृतेति तच्चिन्त्यम्। प्रयोगपारिजाते श्रीधरः—

'हस्तादित्यसमीरमित्रपुरजित्पौष्णाश्विचित्राच्युते-
ष्वाराकर्यंश इनोदयादिरहिते लग्ने स्थिरे चोभये।
पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं
षष्ठीमष्टमशुद्धिभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः'॥

पुरजिदार्द्रा, उभये द्विस्वभावराशौ। अत्र वचने पुष्यानुपादानं ग्रन्थकृता लघुपदेन कृतमिति तच्चिन्त्यम्॥ ३७॥

हिन्दी—जन्म से (उपलक्षण से गर्भाधान से) पाँचवें वर्ष में उत्तरायण सूर्य में (चैत्र को छोड़कर, १४ जनवरी से १४ मार्च तक तथा १४ अप्रैल से १७ जुलाई के भीतर) ११।१२।१०। २।६।५।३ इन ७ तिथियों में, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा इन १० नक्षत्रों में चर (१।४।७।१०) राशियों को छोड़कर अन्य शुभ राशियों (२।३।९।१२) के लग्न में एवं शुभ (चं., बु., बृ., शु.) वारों में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी की विधिवत् षोडशोपचार से पूजन करके बालक को लिपिग्रहण (अक्षरारम्भ) कराना उत्तम होता है। (लग्न से अष्टम शुद्ध हो, कुम्भ का नवांश न हो, ७।१०वें स्थान में बु., बृ., शु. हो तथा लग्न बली हो तो अक्षरारम्भ उत्तम होता है)॥ ३७॥

एवमक्षरग्रहणे दृढे सञ्जाते सति विद्यारम्भमुहूर्तं पञ्चचामरेणाह—

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये
गुरुद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके।
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परैः
शुभैरधीतिरुत्तमा त्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृता॥ ३८॥

मृगादिति। मृगात् त्रये मृगार्द्रापुनर्वसुषु, करात् त्रये हस्तचित्रास्वातीषु, श्रुतेः श्रवणात् त्रये श्रवणधनिष्ठाशतभिषासु, अश्विन्यां, मूले, पूर्विकात्रये पूर्वाफाल्गुनीपूर्वाषाढा-पूर्वाभाद्रपदासु, गुरुद्वये पुष्याश्लेषयोः, तथा सूर्यगुरुशुक्रवाराणां दिने च सति अधीति-विद्यानामध्ययनमुत्तमा स्मृता। यदाह श्रीपतिः—'मृगादिपञ्चस्वपि भेषु मूलहस्तादिके च त्रितयेऽश्विनीषु। पूर्वात्रये च श्रवणे च तद्वद्विद्यासमारम्भमुशन्ति सिद्ध्यै'॥ इति।

तद्वदिति । श्रवणत्रये इत्यर्थः । तदेतत्स्पष्टमुक्तं महेश्वरेण—'हस्तादित्रितये तथा निर्ऋतिभे पूर्वान्त्यभेष्वश्विनीमित्रर्क्षे च मृगादिपञ्चसु शुभः प्रारम्भ आद्यः स्मृतः । विद्यानां हरिभात्रये च दिवसे सूरेर्भृगोर्वा विदोऽनध्यायाख्यतदाद्यवर्जिततिथौ केन्द्र-स्थितैः सद्ग्रहैः' ॥ इति । अयमेव च ग्रन्थकृदाशयः । अत एवाह विश्वप्रकाशपद्धतौ गुरुः—'मृगादिपञ्चके हस्तत्रिके विष्णुत्रिकाश्विभे । मैत्रान्त्यमूलपूर्वासु विद्यारम्भः शुभे दिने' ॥ इति । वयं तु तद्वदिति पदं विद्यासमारम्भपदेन सम्बद्धमस्तीति व्याकुर्मः । अत एव वसिष्ठः—'पूर्वात्रये मूलमृगादिपञ्चके तथाश्विनीषु त्रितये च हस्तात् । सविष्णु-धिष्ण्येष्वथ सर्वविद्याप्रारम्भ इष्टः शुभवासरेषु' ॥ इति । यद्येषोऽभिप्रायो न स्यात् तदा पूर्वात्रये च श्रवणत्रये चेति ब्रूयाच्छ्रीपतिः । अनयोर्वाक्ययोर्यथासम्प्रदायं व्यवस्था । शुभवारेष्विति । अत्र चन्द्रव्यतिरिक्ताः शुभवासरा गृह्यन्ते । यदुक्तं रत्नमालायाम्—'विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञेष्वभीष्टार्थदायी कर्तुश्चायुश्चिरमपि करोत्यंशुमान्मध्यमो वा । नीहारांशौ भवति जडता पञ्चमा भूमिपुत्रे छायासूनावपि च मुनयः कीर्त्तयन्त्येवमाद्याः ॥'

नीहारो हिमम् । यत्तु भोजेनोक्तं—'विद्यारम्भे गुरुः शस्तो मध्यमौ भृगुभास्करौ । मरणं शनिभौमाभ्यामविद्या बुधसोमयोः ॥' इति । अत्राविद्या अनवधारणमन्यथा ज्ञानं वा तदेतद्धनुर्विद्याविषयम् । तद्वाक्यमधुनैव मया वक्ष्यते ।

तत्र तिथयः

षडिति । षष्ठीपञ्चमीतृतीयैकादशीद्वितीयानामन्यतमतिथावधीतिः कार्या । 'अनध्या-याख्यतदाद्यवर्जिततिथौ' इति महेश्वरोक्तेः । अनध्यायां तु व्रतबन्धे वक्ष्यति । ध्रुवेति । अत्रापिशब्दाध्याहारेण ग्रन्थो योज्यः । तथासत्यन्यैराचार्यैर्ध्रुवान्त्यमित्रभे रोहिण्युत्तरा-त्रयरेवत्यनुराधास्वप्यधीतिरुत्तमेत्येतदपि धनुर्विद्याविषयम् । तदुक्तं दीपिकायाम्—

'अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्निपित्र्यध्रुवहरिवसुमूलाश्वीन्दुभाग्यान्त्यभेषु ।
विशनिशशिबुधाह्ने विष्णुबोधेऽपि पौषे सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥' इति ।

ग्रन्थेऽनुराधोक्तिस्तु महेश्वरवाक्यालोचनेन ।

तत्र लग्नबलम्

अथ लग्नबलं शुभग्रहैस्त्रिकोणकेन्द्रगैः सद्भिरधीतिरुत्तमा स्मृता । 'केन्द्रस्थितैः सद्ग्रहैः' इत्युक्तेः । केन्द्रग्रहणं त्रिकोणोपलक्षणम् । विशेषमाह नृसिंहः—'शुभाः पापाश्च रन्ध्रस्थाः सर्वे नेष्टाः सदा ग्रहाः । भ्रातृषष्ठायकर्मस्थाः पापाः सर्वे शुभावहाः ॥ शुभाः केन्द्रत्रिकोणस्था धनभ्रातृगताः शुभाः । सर्वे लाभे प्रशस्ताः स्युरक्षरग्रहणे शिशोः' ॥ इति । अक्षरग्रहणं विद्योपलक्षणमिति विद्यारम्भः ।

अङ्कुरार्पणे मुहूर्तः सर्वकर्मसाधारणे

अथ समस्तशुभकर्मभ्यः प्राग्विहितोऽङ्कुरार्पणमुहूर्तो ग्रन्थकृदनुक्तोऽप्यस्माभि-रुच्यते—तत्र प्राक् तृतीयपञ्चमसप्तमनवमदिवसेषु बीजवापोक्तनक्षत्रेष्वङ्कुरारोपणं कार्यम् । यदाह नारदः—

'कर्तव्यं मङ्गलस्यादौ मङ्गलायाङ्कुरार्पणम् । नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेऽपि वा ॥

तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये । सम्यग्गृहानलङ्कृत्य वितानध्वजतोरणैः ॥
आशिषो वाचनं कार्यं द्विजैः पुण्याङ्गनादिभिः ।
सहवादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् ॥
तत्र मृत्सिकतं श्लक्ष्णं गृहीत्वा पुनरागतः । मृण्मयेष्वथवा सम्यग्वेणुपात्रेषु पूरयेत् ॥
अनेकबीजसंयुक्तं तोयपुष्पोपशोभितम् ।'

शौनकः

'आधानं गर्भसंस्कारं जातकर्म च नाम च । हित्वाऽन्यत्र विधातव्यं मङ्गलाङ्कुरवापनम् ॥
प्रदोषकाले कुर्वीत पूर्वाह्णे वा न रात्रिषु । वास्तुकर्मणि काले च स्याद्दिवैवाङ्कुरार्पणम् ॥'

गुरुः

'आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम्' ।

काश्यपकालविधाने तु विशेषोऽभिहितः—

'हस्तस्वातीविरञ्चासुरपितृमुरजिन्मित्रपौष्णार्यसार्प-
पाथोनाथोत्तरासु क्रिययुवतिधनुर्वृश्चिके कामरिक्ते ।
हित्वा पर्वासुरेज्यामरगुरुशशिविद्वारलग्नांशके स्या-
दुग्रर्क्षे बीजवापः शशिनि शुभयुते चाष्टमे शुद्धियुक्ते' ॥ इति ।

असुरो मूलम्, पाथोनाथः शशतारका ।

(इति मुहूर्तचिन्तामणिटीकायामङ्कुरार्पणमुहूर्तः)

व्रतबन्ध इति । त्रिंशतिपद्यैः प्रोच्यते इति शेषः । तत्र व्रतबन्धप्रयोजनमाह—
'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चोपनायनमुत्तमम् । द्विजत्वकारणं श्रौतस्मार्त्तकर्मप्रसाधनम् ॥
आद्यं सर्वाश्रमाणां च देहसंस्कारकारणम् । अनेन कर्मणा सर्वे संस्कृताः सर्वदेहिनः ।
तत्संस्कारं लग्नवशात्तस्माल्लग्नं प्रवच्मि तत्' ॥ इति । तस्य कालस्त्रिविधः—नित्यः
काम्यो गौणश्च ॥ ३८ ॥

हिन्दी—मृगशिरा से तीन (मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु), हस्त से तीन (हस्त, चित्रा, स्वाती), श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा), पुष्य एवं आश्लेषा इन १६ नक्षत्रों में, रवि, बुध, बृहस्पति एवं शुक्र के वारों में, ६।५।६।३।११।१२।१०।२ इन ७ तिथियों में तथा केन्द्र और त्रिकोण (१।४।७।१०।५।९) में शुभ ग्रहों (च., बु., बृ., शु.) के रहने पर विद्यारम्भ उत्तम होता है। यहाँ भी लग्न से ८वाँ स्थान शुद्ध हो, उपचय (३।६।१०।११) में पापग्रह हो तो विद्यारम्भ उत्तम होता है।

विशेष—किसी आचार्य के मत से ध्रुवसंज्ञक (रोहिणी, उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा) तथा रेवती, अनुराधा नक्षत्रों में भी विद्यारम्भ शुभ होता है, परन्तु यह धनुर्विद्या के लिये है। (पी० धा० द्रष्टव्य) ॥ ३८ ॥

तत्र क्रमेण त्रिविधमपि कालं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाऽष्टमे
वर्षे वाऽप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे ।

वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ॥ ३९ ॥

विप्राणामिति । अत्र नित्यं काम्यं च तावदुच्यते । विप्राणां ब्राह्मणानां गर्भाष्टमे गर्भदिनमारभ्याष्टमे सौरवर्षेऽथवा जनेरुत्पत्तिदिनात्सौरवर्षेऽष्टमे सति व्रतबन्धनं निगदितम् । इदं नित्यम् । अथ काम्यं—विप्राणामेव पञ्चमे गर्भाज्जनेर्वा वर्षे कार्यम् । एवं क्षितिभुजां क्षत्रियाणां गर्भाज्जनेर्वा षष्ठे वर्षे काम्यमुपनयनम् । तथा गर्भाज्जनेर्वा एकादशे सौरवर्षे नित्यमुपनयनम् । वैश्यानां पुनस्तथैवाष्टमे वर्षे काम्यमथ तथैव द्वादशे वर्षे नित्यमुपनयनम् । यदाह नारदः—'आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाग्रजन्मनाम् । राज्ञामेकादशे मौञ्जीबन्धनं द्वादशे विशाम् ॥' इति । अत्र वेदाधिकरणन्यायेन राजपदं क्षत्रियपरम्, अत्र फलाश्रवणान्नित्यमित्यवसीयते ।

काम्योपनयनकालिकं वयः

तत्र काम्यकालमाह मनुः—'ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे' ॥ इति । अत्र फलश्रवणात्काम्यता । पैठीनसिना गर्भपञ्चमेऽपि व्रतबन्धनमुक्तम्—'गर्भपञ्चमेऽब्दे ब्राह्मणमुपनयेत्' इति । तुल्यन्यायत्वात्क्षत्रियविशोरपि गर्भषष्ठे गर्भाष्टमे त्विति द्रष्टव्यम्, यत्तु–'गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यम्' इत्यापस्तम्बगृह्यसूत्रे गर्भाष्टमेष्विति उक्तेस्तत्र गर्भाष्टमेषु इति बहुत्वान्येथानुपपत्त्या गर्भषष्ठगर्भसप्तमगर्भाष्टमेषु सौरवर्षेष्विति वृत्तिकृद्व्याख्यानात्त्रयाणामपि नित्यकालता । एवं गर्भैकादशेष्वित्यादावपि व्याख्यानं ध्येयमिति तत्तु तच्छाखाध्यायिविषयम् । केचित्तु पञ्चमवर्षारम्भात्षोडशवर्षपर्यन्तं काम्याः काला इत्याहुः । यदाह विश्वप्रकाशपद्धतावापस्तम्बः—'पञ्चमे विद्यापुत्रकामः षष्ठे तु धनकामः, सप्तमे ब्रह्मवर्चसकामोऽष्टमे त्वायुष्कामो नवमे तेजस्कामः दशमेऽन्नाद्यकाम एकादशे इन्द्रियकामो द्वादशे पशुकामः त्रयोदशे जयकामश्चतुर्दशे पौरुषकामः पञ्चदशे पूर्णकामः षोडशे राज्यकामः' इति । तदप्यापस्तम्बशाखाध्यायिविषयं द्रष्टव्यम् ।

तत्रोपनयने गौणकालः

गौणकाल उच्यते । निगदिते प्रोक्ते गर्भाज्जनेर्वाष्टमे' इत्यादिके काले तस्मिन् द्विगुणिते गन्तुं प्रवृत्ते 'आदिकर्मणि क्तः' तथा सति तद्व्रतबन्धने गौणकालमाहुः । यथा स्वस्वोक्तनित्यकालाद् ब्राह्मणस्य षोडशवर्षपर्य्यन्तं, क्षत्रियस्य द्वाविंशतिवर्षपर्यन्तं, वैश्यस्य चतुर्विंशतिवर्षपर्यन्तं, गौणमित्यर्थः । यदाह मनुः—

'आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशाद् ब्रह्मबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥' इति ॥

ब्रह्मबन्धोः क्षत्रियस्य ।

उपनयने गौणकालस्याप्यतिक्रमे व्रात्यस्तोमः

गौणकालातिक्रमेऽपि याज्ञवल्क्येन विशेषोऽभिहितः—'अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः' ॥ इति। अत एव 'न ब्राह्मणः पतनमृच्छति' इति गौतमस्मरणमपि सङ्गच्छते। अत्र ब्राह्मणग्रहणं त्रैवर्णिकोपलक्षणम्। अन्यथा सावित्रीपतिता व्रात्या इति बहुवचनमनर्थकमापद्येत ॥ ३९ ॥

हिन्दी—गर्भाधान से अथवा जन्मकाल से ८वें वर्ष में अथवा ५वें वर्ष में ब्राह्मणों का, छठे या ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों का तथा ८वें अथवा बारहवें वर्ष में वैश्यों का उपनयन समय कहा गया है। कहे गये समय से दूना समय बीतने पर उपनयन को पण्डितों ने गौण कहा है।

विशेष—मनु ने नित्य और काम्य दो प्रकार का समय बतलाया है। ब्राह्मणादि के लिये ८।११।१२ वर्ष नित्यकाल है। ५।६।८ वर्ष काम्यकाल कहा गया है। दूने समय १६।२२।२४ वर्ष तक गौणकाल कहा गया है। उसके बाद व्रात्य संज्ञा दी गयी है। इन व्रात्यों के साथ अध्यापनकार्य, कन्यादान एवं पाक-सम्बन्ध आपत्तिकाल में भी नहीं करना चाहिए—

'गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥
आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान्यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणैः सह॥' मनु० २।३६–४० ॥३९॥

अथ व्रतबन्धे नक्षत्रादिकं वसन्ततिलकयाऽऽह—

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वारौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत्।
द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे ॥४०॥

क्षिप्रेति। नन्विदमयुक्तं प्रतिभाति। त्रैवर्णिकस्य त्रिविधमपि कालमभिधायेदानीमेतेषु मासेषु व्रतबन्धः कार्य इति वक्तुमुचितम्। तद्विहायैव नक्षत्राद्युक्तमिति चेत्, उच्यते—अहो देवानां प्रियस्य महदज्ञानविलसितम्। यद् 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा' इत्यादिपद्यमबुद्ध्वा च जागरीतितरामिति। यतो द्विविधः काल उत्तरायणरूपो दक्षिणायनरूपश्चेति। तदत्र दक्षिणायने व्रतबन्धनिषेधादुत्तरायणे मासषट्कात्मकं प्रशस्तमित्यर्थाद् गम्यत एव। यथा 'अभक्ष्यो ग्राम्यसूकरः' इत्युक्ते आरण्यः सूकरो भक्ष्य इति गम्यते। शुक्रास्ते न कर्त्तव्यमित्युक्ते शुक्रोदये कर्तव्यमिति भवद्वचनादेवावसीयते। अत एव व्रतबन्धे नारदेनोक्तं—'दृश्यमाने गुरौ शुक्रे शाखेशे चोत्तरायणे' इति।

उपनयने मासाः

एवं सत्यपि किञ्चिद्विशेषावगत्यर्थं मासा उच्यन्तेऽस्माभिः। तत्र वसन्ते ब्राह्मणस्य,

ग्रीष्मे राजन्यस्य, शरदि वैश्यस्य मुख्यकालमुपनयनं माघादिपञ्चमासेषु त्रैवर्णिकस्य साधारणकालमिति ।

यदाह वसिष्ठः—

'विप्राणामुपनयनं वसन्तसमये, धराधिनाथानाम् ।
ग्रीष्मतौं शरदि विशां मासाः साधारणाश्च माघाद्याः' ॥ इति ।

कश्यपोऽपि

'ऋतौ वसन्ते विप्राणां ग्रीष्मे राज्ञां शरद्यथ ।
विशां मुख्यं च सर्वेषां द्विजानां चोपनायनम् ॥
साधारणं च मासेषु माघादिषु च पञ्चसु' ।

एतेषु मासेषूपनयनफलानि—

एषां मासानां फलान्याह नारदः

स्वकुलाचारधर्मज्ञो माघमासे तु फाल्गुने । विधिज्ञश्चार्थवांश्चैत्रे वेदवेदाङ्गपारगः ॥
वैशाखे धनवान् वेदशास्त्रविद्याविशारदः ।
उपनीतः कुलाढ्यः स्याज्ज्येष्ठे विधिविदां वरः' ॥ इति ।

अत्र कैश्चिच्चण्डेश्वराद्यैर्माघादिषण्मासानां फलान्यभिहितानि—

'माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढव्रतः । चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ॥
ज्येष्ठे तु गृहनीतिज्ञ आषाढे क्रतुभाग्भवेत् ।
मार्गशीर्षे भवेद् भ्रष्टः शेषे दुःखमवाप्नुयात्' ॥ इति ।

तत्राषाढमिथुनस्थसूर्यविषये नियमः

अत्राषाढो हरिशयनात्प्रागेवाङ्गीकार्यो न परस्तात्तत्रापि मिथुनस्थिते सूर्ये न कर्कस्थे दक्षिणायनान्तःपातित्वात्तस्येति । तदेतदुपेक्ष्यम्, प्रागुक्तार्थवाक्यस्वरसात् । किञ्च मिथुनस्थितेऽपि सूर्ये ततः सार्द्धषड्दिवसानन्तरं व्रतबन्धादिनिषेधात् । 'आर्द्रादिके स्वातिविरामकाले नक्षत्रवृन्दे दशके रविश्चेत् । विवाहचौलव्रतबन्धनाद्यं सुरप्रतिष्ठापनकार्यमेव' ॥ इति वसिष्ठादिवचनात् ॥ 'उत्तरायणे' इति नारदवाक्यं तु दक्षिणायननिषेधपरमित्यास्तां प्रसक्तानुप्रसक्तम् । क्षिप्रेति । क्षिप्राणि अश्विनीपुष्यहस्ताः, ध्रुवाणि प्रसिद्धानि, अहिराश्लेषा, चराणि श्रवणधनिष्ठाशतभपुनर्वसुस्वात्यः, मूलमृदूनि प्रसिद्धानि, तिस्रः पूर्वा, रौद्रमार्द्रा, एषु द्वाविंशतिभेषु व्रतबन्धनं सत् शुभफलदातृ भवेत् । उक्तं च—'प्राजापत्यादिषड्क्षे भगर्क्षादिषु पञ्चसु । मूलादिदशके चैव समैत्रे व्रतबन्धनम्' ॥ इति । अर्थाद्भरणीकृत्तिकामघाविशाखाज्येष्ठासु न कार्यमित्यर्थः । एतानि सर्वशाखानक्षत्रमेलकाभिप्रायेणोक्तानि ।

मुख्यनक्षत्राण्युपनयने

मुख्यानि त्वाह वसिष्ठः—"हस्तत्रये च श्रवणत्रये च धातृद्वये त्र्युत्तरमैत्रभेषु । पौष्णद्वये चादितिभद्वये च शस्तं द्विजानां खलु 'मौञ्जिकर्म' ॥" इति । द्विजानां ब्राह्मण-

क्षत्रियवैश्यानाम् । कश्यपोऽपि—'मैत्रविष्णुत्रये हस्तत्रयर्क्षे चोत्तरात्रये । धातृद्वयादितीज्यान्त्यदस्रर्क्षेपूपनायनम्' ॥ इति । अर्थादार्द्राश्लेषाभरणीकृत्तिकाज्येष्ठाविशाखामघापूर्वात्रयमूलानि निन्द्यानि । तदाह गुरुः—'कृत्तिकाभरणीमूलज्येष्ठार्द्रासु विशाखयोः । पूर्वात्रये च सार्पर्क्षे न कुर्यादौपनायनम् ॥' चकारान्मघायाम् ।

विप्रस्यैव पुनर्वसौ मलमासैकदेशसम्बन्धेऽपि उपनयनमेव न कार्यम्

ब्राह्मणस्य पुनर्वसौ निषेधमाह राजमार्त्तण्डः—'चन्द्रतारानुकूलेपु ग्रहाव्देपु शुभेष्वपि । पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति' ॥ इति । अन्यत्रापि स्मर्यते—'अहः स्पृशि मले मासि शूद्रत्वमधिगच्छति' इति । अत्र विप्रः कृत इति पदद्वयोपादानादितरयोः क्षत्रियविशोः पुनर्वसौ व्रतबन्धो ब्राह्मणस्य मेखलामोक्षश्च प्रशस्त इत्यर्थः । केचित्तु केनचिन्निमित्तेन कर्मनाशानदीतरणाद्यनेकदुष्टकृत्येन पुनः संस्कारप्रसक्तौ सत्यां विप्रः पुनर्वसौ पुनः संस्कारमर्हतीति न व्रतबन्धनिषेध इत्येवं व्याचक्षते । तच्चिन्त्यम् । यतः—

'जीवार्केन्दूडुशुद्धौ हरिशयनबहिर्भास्करे चोत्तरस्थे
स्वाध्याये वेदवर्णाधिप इह शुभदे क्षौरभे नादितौ च ।
शुक्रार्केज्यर्क्षलग्ने रविमदनतिथिं प्रोह्य षष्ठाष्टमेन्दुं
नो जीवास्तातिचारेऽर्कसितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात्' ॥ इति ।

दीपिकायां पुनर्वसुनक्षत्रविषयकव्रतबन्धस्यैव सामान्यतो निषेधोक्तेर्विशेषवचनाद् ब्राह्मणे एव निषेधः पर्यवसन्नः । एकवाक्यताबलात् । पुनर्वसुनिषेधः श्लोकद्वयेऽपि पूर्वार्द्धस्यानन्वयाच्च । अयं चाचारः प्राच्यानाम् । दाक्षिणात्यास्त्वेतन्नाङ्गीकुर्वते, देशाचाराभावात् । उक्तञ्च वराहेण—'देशाचारस्तावदादौ विचिन्त्यो देशे देशे या स्थितिः सैव कार्या । लोके दुष्टं पण्डिता वर्ज्जयन्ति दैवज्ञोऽतो लोकमार्गेण यायात् ॥'

सप्तशलाकावेधस्वरूपं तदादिदोषाश्च

अत्र विहितनक्षत्रेपु वेधादिदोषास्त्याज्याः । तदुक्तं दीपिकायाम्—'कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा । प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं परित्यजेत्' ॥ इति । अत्र वेधः सप्तशलाकाचक्रस्थो द्रष्टव्यः । तदाह वसिष्ठः—'पञ्चशलाकाचक्रे पाणिग्रहणे भवति च विधिरुक्तः । शस्तः शुभमित्रकृतः सप्तशलाकाज इतरत्र' ॥ इति । इतरत्र यज्ञोपवीतचौलान्नप्राशनसीमन्तादिष्वित्यर्थः ।

सप्तशलाकाचक्रम्

चक्रन्यासः स्वरोदये—'तिर्यगूर्ध्वगता रेखाः सप्तसङ्ख्या लिखेद् बुधः । कृत्तिकादीनि भान्यत्र साभिजिन्ति क्रमेण च' ॥ इति ।

भुक्तभोग्याक्रान्तविद्धनक्षत्राणि शुभकृत्येषु युद्धादिषु च वर्ज्यानि

'भुक्तं भोग्यं तथाक्रान्तं विद्धं पापग्रहेण च । शुभाशुभेषु कार्येषु वर्जनीयं प्रयत्नतः ॥ यस्याभिधाननक्षत्रं विद्धं क्रूरग्रहेण तु । देशो ग्रामः पुरं सैन्यं नरो नारी विनश्यति' ॥ इति । अशुभेषु युद्धादिषु । दीपिकायामपि—'कृत्तिकादिचतुःसप्तरेखाराशौ परिभ्रमन् ।

ग्रहश्चेदेकरेखास्थो वेधः सप्तशलाकजः' ॥ इति । ग्रन्थकृता तु विवाहप्रकरणे सप्तशलाकाचक्रोक्तिं विनैव परस्परवेधकनक्षत्रवृन्दं सिद्धवत्कृत्याभिहितम् । नन्वत्रावसरप्रसङ्गात् कुतो नोक्तमिति चेत् । सत्यम् । 'यस्याः शशी सप्तशलाकभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे । रक्तांशुकेनैव च रोदमाना श्मशानभूमिं प्रमदा प्रयाति' ॥ इति दीपिकाकारवचनात् । एवं सति विवाहनक्षत्राणामेव वेधज्ञानार्थं पञ्चशलाकाचक्रं विचार्यम्, सप्तशलाकाचक्रं पुनर्विवाहादौ सकलकर्मविहितनक्षत्रवेधज्ञानार्थं ज्ञेयमित्ययं निष्कृष्टोऽर्थः । अयमेव च विवाहप्रकरणे चक्रोक्तौ ग्रन्थकर्तुराशय इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तेन ।

तत्र युतिलत्तापातादिदोषा अपि त्याज्याः

वेध इत्युपलक्षणम् । तेन युतिलत्तापातादयो विवाहोक्ता दोषा अपि त्याज्याः । तदुक्तं वसिष्ठेन—'निहितं त्रिविधोत्पातैः क्रूराक्रान्तं च विद्धभं त्वखिलम् । त्याज्यं तच्छुभकर्मणि न पादतः पातधिष्ण्यं च' ॥ इति । नारदोऽपि—'वीक्षिते वार्थैकविंशतिमहादोषवर्जिते' इति व्रतबन्धप्रकरणे उक्तवान् । वीक्षित इति पूर्वेण सम्बन्धः । ते च दोषा विवाहप्रकरणे वक्ष्यन्ते ग्रन्थकृता ।

वारा उपनयने

अर्केति । सूर्यबुधगुरुशुक्रचन्द्रदिवसेषु व्रतं सत्स्यात् । अर्थाद्भौमशनी निषिद्धौ । तदाह नारदः—'आचार्यकाव्यसौम्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः । वारौ तौ मध्यफलदौ निन्दितावितरौ व्रते' ॥ इति । आचार्यो गुरुः, काव्यः शुक्रः । जगन्मोहने गुरुः—'पापग्रहाणां वाराः स्युर्न शुभश्चन्द्रवासरः । सिते पक्षे प्रशस्तः स्यात्कृष्णे वारो विधोर्नहि ॥ शुभो बुधो नास्तमितः पापग्रहयुतोऽपि वा' इति रविवारं निषेधतिस्म । अत्र सूर्यस्य प्राबल्यदौर्बल्ययोर्व्रतबन्धस्य विधिनिषेधाविति विषयविवेकः ।

निषिद्धोऽपि भौमः सामवेदिनामतिप्रशस्तः

भौमस्तु निषिद्धोऽपि सामवेदिनामतिप्रशस्तः । यदाह नारदः—'शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः । शाखाधिपतिलग्नं च त्रितयं दुर्लभं व्रते' ॥ इति । ग्रन्थकृदप्यग्रे वक्ष्यति ।

उपनयनतिथयः

द्वीति । द्वितीयातृतीयापञ्चम्येकादशीद्वादशीदशमीसंज्ञितासु तिथिषु च व्रतं सत् स्यात् । यदाह नारदः—

'शुक्लपक्षे द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा । त्रयोदशी च दशमी सप्तमी व्रतबन्धने ॥
श्रेष्ठास्त्वेकादशी षष्ठी द्वादश्येतास्तु मध्यमाः ।
एकां चतुर्थीं सन्त्यज्य कृष्णपक्षेऽपि मध्यमाः ॥' इति ।

उपनयने तिथिफलानि

तिथिफलान्याह बादरायणः—

'प्रतिपदि मदिरासक्तः श्रुतिधरमेधाधिको द्वितीयायाम् ।
नीतिज्ञो मेधावी जितसकलारिस्तृतीयायाम् ॥

मन्दधिया हृतचित्तोऽधीतश्चपलश्चतुर्थ्यां स्यात्। पञ्चम्यां बहुवित्तः पूर्णायुर्धनपतिर्मतिमान् ॥

षष्ठ्यामशुचिः सततं सप्तम्यां व्याधिसन्तप्तः ।
अल्पायुरथाष्टम्यां नवमे धनवर्जितः सदा पुरुषः ॥
दशम्यामर्थसम्पत्तिरेकादश्यां गुणान्वितः ।
द्वादश्यां नीतिशास्त्रज्ञो निधनाय त्रयोदशी ॥
चतुर्दश्यां भवेन्नाशः पञ्चदश्यां क्षयो भवेत् ॥' इति ।

अत्र वाक्ये मध्यमा षष्ठी निषिद्धैव । अत एव ग्रन्थकृता नोक्ता । मध्यमे एकादशी-द्वादश्यावतिप्रशस्ते ।

त्रयोदशीतृतीयासप्तमीद्वितीयाविशेषा उपनयनेऽतिप्रशस्ताः

ननु सप्तमीत्रयोदश्योरनेन वाक्येनानिष्टफलोक्तेर्नारदवाक्ये कथं ग्रहणम् ? किञ्च 'कृष्णपक्षे चतुर्थीति सप्तम्यादिदिनत्रयम् । चतुर्दशी चतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः' ॥ इति वसिष्ठोक्तेन गलग्रहोक्तेश्च । उच्यते । वसन्तविषयत्वात्तयोस्तिथ्योः । तदप्युक्तं नारदेनैव—'विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति' ॥ इति । अथवा माघशुक्लसप्तमी मन्वादिः । तस्या अपि ग्रहणं यथा स्यात् । अत एव मन्वाद्याद्यपवादमाह वसिष्ठः—'या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघे च सप्तम्यथ फाल्गुनस्य । कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥' इति । अत्र चैत्रशुक्लतृतीया युगादिः । माघशुक्लसप्तमी मन्वादिः । वैशाखशुक्लतृतीया युगादिः । फाल्गुनपूर्णिमोत्तरं द्वितीया चातुर्मास्यद्वितीया । आसामनध्यायत्वेऽपि व्रतबन्धे प्राशस्त्यसद्भाव इत्यर्थः । अनध्यायत्वं च सप्रयोजनं 'शुचि शुक्रे' इत्यादिपद्यव्याख्यानावसरेऽस्माभिर्वक्ष्यते ।

कृष्णपक्षस्याद्यं त्रिकं श्रेष्ठमुपनयने

कृष्णादिमेति । विहितमासानां कृष्णपक्षस्यादिमे त्रिके पञ्चमीपर्यन्तं सत् स्यात् । नारदवाक्ये शुक्लपक्षस्योक्तेः—'आपञ्चम्यास्तिथेः कृष्णः शुक्लवत्परिकीर्तितः' इति वचनेनापवादनोक्तेः । 'एकां चतुर्थीं सन्त्यज्य कृष्णपक्षेऽपि चोत्तमाः । आपञ्चम्यास्तु तिथयो यदा स्युरभिनिन्दिताः' ॥ इति नारदस्याप्युक्तेश्च । वसिष्ठोऽपि—'त्यक्त्वा चतुर्थीमपि कृष्णपक्षे त्वाद्यं त्रिभागं शुभदं व्रते च' इति । न चेति । त्रिधाविभक्तस्य दिवसस्य त्रयो भागाः क्रमेण पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णसंज्ञका भवन्ति । उक्तञ्च स्कन्दपुराणे—'ऊर्ध्वं सूर्योदयात्प्रोक्तं मुहूर्तानां तु पञ्चकम् । पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तो मध्याह्नस्तु ततः परम् । अपराह्णस्ततः प्रोक्तो मुहूर्तानां तु पञ्चकम्' ॥ इति । तत्रापराह्णभागे च व्रतं न सत् । 'अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति' इत्युक्तेः । युक्तं चैतत् । तस्मिन् समयेऽपि श्राद्धं कर्तुमुचितं न तु इतरशुभकृत्यम् । यदाह नारदः—'त्रिधा विभज्य दिवसं तत्रादौ कर्म दैविकम् । द्वितीये मानुषं कार्यं तृतीयेंऽशे तु पैतृकम्' ॥ इति ।

अपराह्णे सर्वथा गर्हितमुपनयनम्

एतस्य फलमुक्तं मनुना—'सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायनम् । मध्याह्ने

मध्यमं प्रोक्तमपराह्णे च गर्हितम्' ॥ इति । एवं सति पूर्वाह्णे कदाचिल्लग्नासम्भवे मध्याह्नसमयेऽपि सति सम्भवे लग्नं कार्यम् । अपराह्णे तु सर्वथा न कार्यमिति निष्कृष्टोऽर्थः ॥ ४० ॥

हिन्दी—क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), ध्रुवसंज्ञक (रोहिणी, उ. फा., उ. षा., उ. भा.), आश्लेषा, चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), मूल, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), तीनों पूर्वा (पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा,) एवं आर्द्रा, इन २२ नक्षत्रों में; रवि, बुध, गुरु, शुक्र तथा सोम इन ५ वारों में; २।३।५।११।१२।१० तिथियों में एवं कृष्णपक्ष के प्रथम त्रिभाग (१।२।३।४।५) में उपनयन-संस्कार उत्तम होता है। उपनयन दिन के अपराह्ण (तीसरे भाग) में नहीं करना चाहिए। मध्याह्न में मध्यम श्रेणी का होता है। (उपनयन के मास के लिये ५.२६ श्लोक और पी० धा० देखिए) ॥ ४० ॥

विशेष—वसिष्ठ, कश्यप एवं नारद के मत में हस्त से ३, श्रवण से ३, रोहिणी से २, पुनर्वसु से २, रेवती से २, तीनों उत्तरा और अनुराधा ये १६ नक्षत्र ही उपनयन में लिये गये हैं। ब्राह्मण को पुनर्वसु में उपनयन निषिद्ध माना गया है, अतः उपनयन में यही उत्तम नक्षत्र हैं। आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा तथा मूल ये ६ नक्षत्र, ब्राह्मण के लिये पुनर्वसु सहित ७ नक्षत्र वसिष्ठ आदि के मत से निषिद्ध होते हुए भी आचार्य के मत में विहित है। अतः इनको मध्यम श्रेणी का समझना चाहिए। चैत्र का महीना और मीन राशि के सूर्य में उपनयन अतिप्रशस्त होता है।

'जन्मभाद् दुष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ ।
मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥'—ज्यौ० नि० ।
'गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न जायते ।
तदोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते गुरौ ॥'

तथा—
'हरौ सिंहांशके जीवे नीचर्क्षे नीचभांशके ।
मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते गुरौ ॥
जीवभार्गवयोरस्ते सिंहस्थे देवतागुरौ ।
मेखलाबन्धनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ ॥'

अथ व्रतबन्धे सामान्यतो लग्नभङ्गयोगं प्रमाणिकयाऽऽह—

कवीज्यचन्द्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः ।
व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः ॥ ४१ ॥

कवीज्येति । अत्र लग्नार्थं राशयः सापवादा वसिष्ठेनोक्ताः—'लग्नायसौम्यग्रहराशयो ये ग्राह्या न पापग्रहराशयो ये । ग्राह्याश्च तेऽपि प्रबलैश्च सौम्यैरधिष्ठिताश्चापि निरीक्षिता वा' ॥ अत एवाह नारदः—'राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः' ॥ इति ।

लग्नफलान्युपनयने

एवं सति जगन्मोहने वसिष्ठेन प्रत्येकं लग्नफलान्युक्तानि—

'मेषे भवति वाक्कुण्ठो वित्तविद्यायुतो वृषे । युग्मे वेदान्तदर्शी स्यात्कुलीरे च षडङ्गवित् ॥
शिल्पकर्मकरः सिंहे षष्ठे भवति पण्डितः । तुलायां स्यात्तु वाणिज्यं काण्डपृष्ठश्च वृश्चिके ॥
सर्वत्र पूजितश्चापे शूद्रवृत्तिर्मृगे तथा । राजप्रेक्षो भवेत्कुम्भे मीने वेदान्तपारगः' ॥ इति ।

शुभाशुभग्रहाणां निरीक्षणाद्यभावे योगानुसारि फलम्

तानि लग्नानां शुभाशुभग्रहाणामुत्तमनिन्द्याधिष्ठाननिरीक्षणाद्यभावे द्रष्टव्यानि। यदा तत्सम्भवस्तदा—'यथाहि योगादमृतायते विषं विषायते मध्वपि सर्पिषा समम्' इति वचनाद्योगजमेव फलं भवति। तत्र रिपौ षष्ठस्थाने मृतौ अष्टमस्थाने चेच्छुक्र-बृहस्पतिचन्द्रलग्नस्वामिनो भवन्ति तदाधमा मरणकारकाः स्युः। अञ्जभार्गवौ चन्द्र-शुक्रौ व्यये चेद्भवतस्तदा मरणकरावित्यर्थः। खलाः पापग्रहा लग्नाष्टमपञ्चमस्थानेषु स्थिताश्चेत्तदा तथा मरणकरा इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

हिन्दी—बालक का उपनयन ऐसे लग्न में निश्चित करना चाहिए, जिसके छठे और आठवें स्थान में शुक्र, बृहस्पति एवं चन्द्रमा स्थित होकर लग्न के स्वामी न हों, बारहवें स्थान में चन्द्रमा और शुक्र न हो तथा लग्न से आठवें एवं पाँचवें स्थान में पापग्रह (सूर्य, भौम, शनि, राहु, केतु) न हों, इस प्रकार की ग्रहस्थिति बालक की उन्नति में बाधक होती है ॥ ४१ ॥

अथ सामान्यतो लग्नशुद्धिमनुष्टुभाऽऽह—

व्रतबन्धेऽष्टषड्रिष्फवर्जिताः शोभनाः शुभाः।
त्रिषडाये खलाः पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ॥ ४२ ॥

व्रतेति। शुभाः शुभग्रहाः अष्टमषष्ठद्वादशस्थानस्थिताश्चेन्न स्युस्तदा व्रतबन्धे शोभनाः शुभफलदायकाः। खलाः पापाः तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थिताः शोभनाः। यदाह नारदः—'त्रिषडायगतैः पापैः षडष्टान्त्यविवर्जितैः। शुभैः षष्ठाष्टलग्नान्त्य-वर्जितेन हिमांशुना'॥ दैवज्ञमनोहरे गुरुः—

'लग्नस्थिते च रन्ध्रे च पापे च मरणं बटोः। सौख्यं स्यात्त्रिषडायेषु जडत्वमितरेषु च ॥
चन्द्रक्रूरास्तनौ नेष्टाः सर्वे रन्ध्रे व्यये कविः। सितेन्दुलग्नपाः षष्ठे मौञ्जीविद्यादिकर्मसु ॥
मौञ्जीबन्धे विशेषेण प्राग्लग्नात्पञ्चमं तथा। क्रूरग्रहैर्विमुक्तं च भृगुराहू तथाष्टमे ॥'

दाक्षिणात्यास्त्वेवमाहुः—'चन्द्रक्रूरास्तनौ नेष्टाः सर्वे रन्ध्रे व्यये कविः। सितेन्दु-लग्नपाः षष्ठे बटोः प्राणापहारकाः'॥ इति। अथ शुक्रस्य मरणरूपफलमुक्तं तदेतत्प्राच्या न सहन्ते। 'व्ययस्थानगताः सर्वे कुर्वन्ति व्ययशीलिनम्। खलं नीचं पापरतं बन्धुहीनं विदेशगम्'॥ इति वसिष्ठादिवचो विरोधात्। नन्वेतादृशदुष्टफलश्रवणाद् द्वादशशुक्रो निषिद्ध एवेति चेन्न। एवं सति द्वादशस्थानां सर्वेषामपि वर्जनीयत्वमापतेत्। तच्च तवापि न सम्मतम् 'सर्वत्र शुभकृच्छुक्रः षष्ठसप्ताष्टमं विना'। इति कश्यपोक्तेश्च।

उपनयनकालिकरव्यादिग्रहस्थितिफलं स्थानविशेषेण

विशेषो वसिष्ठेनोक्तः—

'द्वादशस्थं रविं भौमः पश्यन्नाचार्यनेत्रहा। बलिनं बलवान्नूनमचिरान्नात्र संशयः ॥

सर्वे ग्रहाश्चाष्टमगा निधनाः धनशोकदाः।
विना स्वतुङ्गस्वर्क्षाधिमित्रगाः शुभवर्गगाः ॥
आचार्यमशुभा घ्नन्ति शिष्यं घ्नन्त्यशुभेतराः।'

अस्यापवादस्तेनैवोक्तः

'चन्द्रात्स्मरारिरन्ध्रेषु यद्येकस्मिञ्छुभग्रहे।
स्थितेऽधियोगसंज्ञः स्याच्छुभयोगो द्विजन्मनाम् ॥
केन्द्रत्रिकोणगे जीवे भानुः शुक्रोऽथवा व्यये।
द्वितीये ज्ञे शुभे योगे द्विजानामुपनायनम्' ॥ इति।

गुरुः—'मेषगोकर्कटाख्यानां भानुशुक्रेन्दवः क्रमात्। यमोदये भवेद्योगो द्विजोपनयने शुभम्' ॥ इति। यमोदये मिथुनलग्नोदये। पूर्ण इति। पूर्णः शुक्लपक्षीयो विधुः कर्कस्थो वृषस्थश्च सन् तनौ लग्नस्थितो यदि भवेत् तदैव शुभो नान्यथा। यदाह वसिष्ठः—'प्रालेयरश्मौ यदि लग्नसंस्थे वलक्षपक्षेऽपि भवेत्स रोगी' इति। गुरुश्च—'चन्द्रोदयेऽभिशस्तः स्यात्क्षयरोगी सितेतरे। शुक्लपक्षे भवेद्यज्वा स्वभे तुङ्गे विशेषतः ॥' इति। चन्द्रे उदये इति पदच्छेदः। प्रागुक्तमध्येन्दुरितिवत्समाधिः। युक्तं चैतत्। उपनयनं हि द्वितीयं जन्म। तत्र हि राशिविशेषेण लग्नस्थचन्द्रस्य प्राशस्त्यमभिहितम्। तथा च लघुजातके वराहः—'कर्कवृषाजोपगते लग्ने चन्द्रे धनी सुरूपश्च। विकलाङ्गजडदरिद्रः शेषे तु विशेषतः कृष्णे ॥' इति।

उच्चस्थो लग्नस्थश्च चन्द्रो निषिद्धः

कश्यपस्तूच्चस्थं लग्नस्थं च चन्द्रं सदैव न्यषेधीत्। तथा 'वर्द्धमानोऽपि वा चन्द्रः पूर्णो वा यदि तुङ्गगः। निःस्वं करोति व्रतिनं लग्नगः क्षयरोगिणम्' ॥ इति। तदेतयोरुच्चस्थितचन्द्रसम्बन्धिनोः पक्षयोर्देशाचारतो व्यवस्था। स्वगृहे चन्द्रस्तूत्तम एव द्वयोरिति ॥ ४२ ॥

हिन्दी—उपनयन में लग्न से ६।८।१२ स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों (१।२।३।४।७।९।१०।११) में शुभग्रह पड़ें हो तो शुभफलदायक होते हैं एवं ३।६।११ स्थानों में पापग्रह उत्तम होते हैं तथा पूर्णचन्द्रमा वृषराशि का या कर्कराशि का होकर उपनयन लग्न में हो तो उत्तम होता है ॥ ४२ ॥

अथ वर्णेशशाखेशयोः प्रयोजनस्य वक्ष्यमाणत्वाद्वर्णाधीशं शाखाधीशं च शालिन्याह—

विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ राजन्यानामोषधीशो विशां च।
शूद्राणां ज्ञश्चान्त्यजानां शनिः स्याच्छाखेशाः स्युर्जीवशुक्रारसौम्याः ॥ ४३ ॥

विप्रेति। विप्राधीशाविति समासान्तर्गतमपि अधीशपदमन्यत्रानुषज्यते। तेन शुक्रबृहस्पती ब्राह्मणानां स्वामिनौ, भौमसूर्यौ क्षत्रियाणां स्वामिनौ, चन्द्रो वैश्यानां स्वामी, बुधः शूद्राणां स्वामी, शनिरन्त्यजानां चाण्डालादीनां प्रतिलोमजातीनां स्वामी। यदाह वराहः—'विप्रादितः शुक्रगुरू कुजार्कौ शशी बुधश्चेत्यसितोऽन्त्यजानाम्' इति। स्वामिनाविति पूर्वशेषः। 'ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः' इति वेदक्रमात्। जीवशुक्रारसौम्याः शाखेशाः स्युः। ऋग्वेदस्य गुरुः, यजुषः शुक्रः, साम्नो भौमः, अथर्वणस्य बुधः स्वामीत्यर्थः। यदाह नारदः—'वेदानामधिपा जीवशुक्रभौमबुधाः क्रमात्' इति। 'ऋग्यजुःसामशाखेशा गुरुशुक्रधरात्मजाः। अथर्वणस्य वेदस्य शाखेशश्चन्द्रनन्दनः ॥' इति वसिष्ठोक्तेश्च ॥ ४३ ॥

हिन्दी—ब्राह्मणों के स्वामी शुक्र और बृहस्पति हैं, क्षत्रियों के स्वामी मंगल और सूर्य हैं, वैश्यों के स्वामी चन्द्रमा हैं, शूद्रों के स्वामी बुध और अन्त्यजों के स्वामी शनिश्चर हैं।

ऋग्वेद के स्वामी बृहस्पति, यजुर्वेद के स्वामी शुक्र, सामवेद के स्वामी मंगल और अथर्ववेद के स्वामी बुध होते हैं ॥ ४३ ॥

अनयोर्वर्णेशशाखेशयोः प्रयोजनं वसन्ततिलकयाऽऽह—

शाखेशवारतनुवीर्यमतीव शस्तं शाखेशसूर्यशशिजीवबले व्रतं सत्।
जीवे भृगौ रिपुगृहे विजिते च नीचे स्याद् वेदशास्त्रविधिना रहितो व्रतेन ॥ ४४ ॥

शाखेशेति। यः स्वशाखाधिपस्तस्यैव वारस्तनुर्लग्नं च वीर्यं च गोचरप्रकरणे स्वगृहावच्छिन्नत्वेन वा बलत्वं च तद्व्रतेति शस्तम्। यथा गुरुः ऋग्वेदादीनामीशोऽतो गुरुवारे गुरुलग्ने धनमीनाख्ये गुरुबले च सत्युपनयनं शुभम्, एवं सर्वत्रापि ध्येयम्। तदुक्तं नारदेन—'शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः। शाखाधिपतिलग्नं च त्रितयं दुर्लभं व्रते ॥' शाखेशेति। शाखा वेदस्तस्येशः स्वामी। तुल्यन्यायत्वाद्वर्णेशोऽपि ग्राह्यः। सूर्यशशिजीवाः प्रसिद्धाः। एषां बले सति व्रतं सत्स्यादन्यथा नेत्यर्थः। तदुक्तञ्च वसिष्ठेन—'शाखेशसूर्यवर्णेशगुरूणां बलपूर्वकम्। ततोऽन्येषां गुरुबलं मुख्यमाचार्यशिष्ययोः ॥' राजमार्त्तण्डे विशेषः—'पितुः सूर्यबलं श्रेष्ठं शाखावर्णेशयोर्वटोः। सर्वेषां गुरुचन्द्रार्कबलं श्रेष्ठं व्रतादिषु ॥' इति। रत्नमालायाम्—'वर्णाधिपे बलोपेते उपनीतक्रिया हिता। सर्वेषां वा गुरौ चन्द्रे सूर्ये च बलशालिनि ॥' इति। भीमपराक्रमः—'विप्राणां गुरुसितयो राज्ञां रविभौमयोर्बलं शस्तम्। इन्दोर्विशां रवीन्दुत्रिदशेज्यबलेऽखिलानां तु ॥' नारदेन तु प्रत्येकं शाखेशादीनाम् उच्चादिस्थितत्वेन फलमुक्तम्—
'स्वोच्चसंस्थे तदंशे वा स्वराशौ वा तदंशके। शाखेशे वा गुरौ शुक्रे वेदवेदाङ्गपारगः ॥
परमोच्चगते जीवे शाखेशे वाथवा सिते। व्रती शिशुर्धनाढ्यः स्याद्वेदवेदाङ्गपारगः ॥
मित्रराशिगते जीवे तदंशे वा स्वशाखपे। शुक्रे वाचार्यसंयुक्ते तदा तत्र व्रती शिशुः ॥
स्वाधिमित्रगृहस्थे वा तस्योच्चस्थे तदंशके।
गुरौ भृगौ वा शाखेशे विद्याधनसमन्वितः ॥' इति।

शाखेश इत्युपलक्षणम्। तेन वर्णाधिपेऽप्येतदेव फलम्। अत्र प्रमाणं रत्नमालायां प्रागुक्तम्।

तेषां निर्बलत्वे फलम्

शाखेशादीनां निर्बलत्वे फलमाह—जीवेति। जीवे वा भृगौ वा चकाराच्छाखेशे वर्णेशे वा विजिते युद्धे पराजिते वा नीचे स्वनीचराशिस्थिते सति व्रतेनानुष्ठितेन सदा वेदशास्त्रविधिना वेदो वेदाध्ययनं शास्त्रं शास्त्राध्ययनं विधिर्नित्यनैमित्तिकश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानाख्यस्तेषां समाहारद्वन्द्वः, तेन रहितो व्रती स्यात्। तदुक्तं वसिष्ठेन—'नीचर्क्षनीचांशकसंस्थिते वा शाखेश्वरे वा स्फुजितीन्द्रपूज्ये। व्रती शिशुर्हीनकुलप्रसूतः शास्त्रोपजीवी स्वगृहं विसृज्य ॥' नारदेनापि—
'स्वनीचगे तदंशे वा स्वारिभे वा तदंशके। गुरौ भृगौ वा शाखेशे कुलशीलविवर्जितः ॥
स्वाधिशत्रुगृहस्थे वा तदंशे वा तदा व्रती। शाखेशे वा गुरौ शुक्रे महापातककृद्भवेत् ॥'

शाखेशे इत्युपलक्षणं वर्णाधिपस्यापि । तदुक्तं वसिष्ठेन—
'शाखेशगुरुशुक्राणां मौढ्ये बाल्ये च वार्द्धके । नैवोपनयनं कार्यं वर्णेशे दुर्बले सति ॥' इति ।
'शाखेशगुरुशुक्राणामेकस्मिञ्छत्रुनिर्जिते । विद्यावित्तार्थिभिस्तत्र न कार्यं चोपनायनम् ॥'
अत्र नीचाद्यवस्थितत्वेऽपि शाखेशादेः परिहारमाह वसिष्ठ एव—

'शत्रुनीचाधिशत्रुस्थे स्वांशे वा स्वोच्चभागगे ।
शाखेशे वा गुरौ शुक्रे न नीचफलमश्नुते ॥' इति ।

उच्चादिसंज्ञामाह वराहः

'अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः । दश १० शिखि ३ मनुयुक् २८ तिथीं–१५ द्रियांशै–५ स्त्रिनवक–२७ विंशति–२० भिश्च तेऽस्तनीचाः ।' स्वगृहादिकं ग्रन्थकृद्विवाहप्रकरणे वक्ष्यति । ननु शुक्रे शत्रुगृहस्थे नीचग्रहस्थे वा वटोरुपनयनं निषिद्धमित्युक्तम् । तदयुक्तम् । शुक्रशत्रू रविचन्द्रौ तद्गृहे सिंहकर्कौ तन्नीचं च कन्या, ततः कर्कसिंहकन्याराशिस्थे शुक्रे वटोरुपनयनं कार्यमिति तु वाक्यार्थः सम्पद्यते । यदा शुक्रस्य कर्कादिराशित्रयावस्थितिस्तदा सामान्यतः सूर्यस्यापि दक्षिणायनगतत्वादेवोपनयननिषेधे सिद्धे पुनर्निषेधो व्यर्थः । अत्रेयं समाधिसरणिः । यथा यद्यपि सामान्यतः सूर्यस्य दक्षिणायनगतत्वं सम्भवति तथापि विशेषः । कदाचिदसम्भवोऽप्यापतति । यदा स्पष्टीकृतिवशतो हि सूर्यात्प्राक् पश्चाद्वा एकराश्यन्तरितो राशिद्वयान्तरितो वा शुक्रः सम्भवति, तदा कर्कादिराशिस्थे सूर्ये शुक्रस्य स्पष्टीकृत्या कर्कादिराशित्रयावस्थितिः सम्भवतीति उपनयनकालदूपिका व्यर्थैव । दक्षिणायनसद्भावात् । यदा तु वृषमिथुनस्थिते सूर्ये स्पष्टीकृत्या कर्कसिंहराश्यवस्थितिः शुक्रस्य सम्भवति तदा विहितकालदूषिकेति सार्थक एव निषेधः । ननु शत्रुक्षेत्रावस्थितशुक्रनिषेधोऽभिहितरीत्या युक्त एव, परं नीचराश्यवस्थितशुक्रनिषेधो व्यर्थ एव । यतः स्पष्टीकृत्या जातोऽपि कन्यास्थितः शुक्रः कदाचिदपि दक्षिणायनं न व्यभिचरति । सत्यम् । 'शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु व्युत्क्रमात्तु द्विजन्मनाम् । मुख्यं साधारणं तेषां व्रतं माघादिपञ्चसु' ॥ इति नारदादिवाक्येभ्यः शरत्काले वैश्यानामुपनयनं विहितमित्यत्रगम्यते । तत्र कदाचिच्छुक्रस्य नीचराशिकन्यावस्थित्योपनयननिषेधेन वचनसार्थक्यात् । यदा तु 'विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे । दक्षिणे तु विशां कुर्यान्नानध्याये न सङ्क्रमे' ॥ इति वृद्धवसिष्ठवाक्याद्दक्षिणायनेऽपि वैश्यानां मौञ्जी प्रशस्ता तदा तु सुतरां शुक्रस्य शत्रुगृहनीचगृहस्थितत्वदोषोक्तिः सार्थिकैवेति ।

शत्रुगृहस्थे गुरौ नोपनयनम्

ननु शत्रुगृहस्थे गुरावप्युपनयनं निषिद्धमित्युक्तम् । तत्र गुरोः शत्रू बुधशुक्रौ, तद्गृहाणि मिथुनकन्यावृषतुलाख्यानि तत्स्थे गुरौ वटोरुपनयननिषेधो नीचस्थितगुरुवच्छिष्टैः कुतो नाङ्गीक्रियत इति । उच्यते, तत्र शत्रुराशयो यथा गुरोरस्ते सिंहस्थे वा गुरौ समस्तशुभकर्मणामारम्भो निषिद्धस्तथा दोषप्रकरणे पाठात् । तथा स्वनीच इत्यादिवाक्यस्योपनयनप्रकरण एव पाठादनावश्यकता प्रतीयते । आवश्यकत्वे तु दोषप्रकरण एव निषेधो वक्तव्यः स्यात् । न च तत्रोक्तौ सकलशुभकर्मणां निषेधः स्यादिति

वाच्यम् । स्वनीचग इत्यस्य वाक्यस्य 'शूले कालशीलविवर्जितः' इति चरणरूपं—'मौञ्जीबन्धनं कारयेत्' इति पठितव्यमपीति तस्यैव निषेधः सेत्स्यति । ननु मौञ्जीबन्धनपदमुपलक्षणत्वेन व्याख्यास्यते, यथा—'उपनयनं गोदानं पाणिग्रहणं गृहप्रवेशगमनानि । अस्तमितेषु न कुर्यात्सुरगुरुभृगुपुत्रचन्द्रेषु' इत्यादिषूक्तोपनयनपदमिति । सत्यम् । सर्वत्रोपलक्षणत्वं वाक्यान्तराणि विना व्याख्यातुं दुर्घटम् । अत्र हि—'वापीकूपतडागयागगमनम्' इत्यादि ऋक्षोच्चयादिवाक्यैकवाक्यतावशादुपनयनादिपदानि उपलक्षणत्वेन व्याक्रियन्ते न केवलानि । सदृशवाक्यान्तराभावात् ।

वृषमिथुनकन्यातुलास्थे गुरावुपनयनम्

एवं सति दोषप्रकरण एव निषेधे वक्तव्ये यदुपनयनप्रकरणे दोषाभिधानं तद्बटोः कालान्तरे सम्भवति वृषमिथुनकन्यातुलास्थे गुरावुपनयनं न कार्यमित्येवम्परम् । तदसम्भवे तु भवत्येव, कालान्तराभावात् । नीचस्थितगुरौ तु सर्वथा न भवति । दोषप्रकरणे पाठात् । गुर्वाद्यस्तवन्नीचराशिगतत्वेन निषेधसिद्धे तदंशकनिषेधो राश्यन्तरगेऽपि गुरौ नीचत्वहान्यर्थमित्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ४४ ॥

हिन्दी—शाखेश (वेद के स्वामी) का वार, लग्न और गोचरप्रकरणोक्त बल यज्ञोपवीत में अत्यन्त प्रशस्त होता है । अर्थात् ऋग्वेदवालों के लिये बृहस्पति वार, ९।१२ लग्न और बृहस्पति का बल, यजुर्वेदियों के लिये शुक्रवार, २।७ लग्न और शुक्र का बल, सामवेदियों के लिये मंगलवार, १।८ लग्न और मंगल बल, अथर्ववेदियों के लिये बुधवार, ३।६ लग्न और बुध का बल प्राप्त होना अत्युत्तम है और शाखेश, सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति का बली होना उपनयन में उत्तम होता है । यदि उपनयन के समय बृहस्पति और शुक्र (शाखेश एवं वर्णेश भी) अपने शत्रु की राशि में (अर्थात् गुरु ३।२।७ राशि में और शुक्र ५।४ राशि में, मंगल ३।६ राशि में तथा बुध कर्क में हो), यह युद्ध में पराजित हो (१।३२ की टिप्पणी द्रष्टव्य है) तथा अपनी नीच राशि के हों तो उपनीत बालक वेद और शास्त्र से रहित (मूर्ख और वेदशास्त्र की क्रिया से रहित तथा नास्तिक) होता है । वर्णेश का वार, लग्न तथा बली होना भी उत्तम होता है ॥ ४४ ॥

अथ सामान्यतो निषिद्धस्य जन्ममासादेरत्र व्रतबन्धेऽपवादमनुष्टुभाह—

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।
आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ॥ ४५ ॥

जन्मर्क्षेति । जन्मनक्षत्रे जन्ममासे जन्मलग्ने चादिशब्देन जन्मतिथिः एतेषु सत्स्वपि दोषेषु विप्राणामाद्यगर्भेऽपिशब्दात् द्वितीयगर्भादावपि व्रती बालो व्रतो यज्ञोपवीते विद्याधिकः स्यात् । क्षत्रादीनां क्षत्रियवैश्यानां पुनरनादिमे द्वितीयगर्भाद्ये बालके सति जन्मर्क्षमासलग्नादौ विद्याधिको व्रती स्यात्, आद्यगर्भे तु तेषां सर्वथा प्रतिषेध एवेति । अत्रायमाशयः । श्रीपतिः—'जन्ममासि न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत् । आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न च जातु मङ्गलम् ॥' इति । अत्राद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वेति देहलीदीपन्यायेनोभयत्रापि सम्बध्यते । तेन जन्ममासादावाद्यगर्भस्यैव निषेधः । तथा च—'सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि दूषणम्' इति वाक्यभेदानापत्तेः । अत एव महेश्वरः—'न जन्ममासे न च जन्मधिष्ण्ये न जन्मकालीयदिने विद-

ध्यात् । ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मङ्गलानि' ॥ इति वाक्यान्ते प्रथमस्येत्याद्युक्तवान् । नारदीये—'न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा । आद्य-गर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः' ॥ इति विशेषाच्च ।

ब्राह्मणविषयेऽपवादो गर्भाष्टमे उपनयने फलविशेषः

अस्यापवादमाह शौनकः—

'जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि जन्मराशौ ।
व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि प्रज्ञाविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ॥
गर्भाष्टमे गर्गपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबन्धने तु ।
ततोऽधिकं जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि वाडवानाम् ॥'

वाडवानां ब्राह्मणानाम् । 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' इत्यभिधानात् । प्रथमदश-मैकोनविंशतिनक्षत्राणां ग्रहणार्थं जन्मतारकास्वित्युक्तम् । पट्टबन्धने इत्यादि नारदवाक्यं प्रागुक्तमेव । गर्भाष्टमोपनयनफलमाह राजमार्त्तण्डः—

'यज्वा वसन्तसमये बहुवित्तभोगी गर्भाष्टमे विविधशास्त्रविशारदस्तु ।
वेदार्थपालनपरः खलु जन्ममासे ऋक्षेऽपि जन्मनि बहुक्रतुभाजनं स्यात् ॥'

ननु—'विवाहे चोपनयने जन्ममासं च वर्जयेत् ।'

विशेषाज्जन्मपक्षं तु वसिष्ठाद्यैरुदाहृतम्' इति जगन्मोहने गर्गवचनं कथं सङ्गच्छे-तेति चेत्, सत्यम् । क्षत्रियाणां विशां चाद्यगर्भनिषेधार्थं भविष्यति । तथा सति द्वितीयगर्भादावुपनयनादिमङ्गलकृत्यं सुखोदर्कं स्यात् । विप्राणां तु वाडवानामिति विशेषोक्तेराद्यगर्भानाद्यगर्भसाधारणमुपनयनं जन्ममासादौ कुत इति चेत् ? शृणु । यो जन्ममासादौ निषेधः स आद्यगर्भस्यैव, सोऽप्युपनयनवाक्येनापोह्यते द्वितीयगर्भादौ तु निषेध एव नास्ति किं तदपवादेन ॥ ४५ ॥

हिन्दी—प्रथम गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मण बालकों का उपनयन जन्म-नक्षत्र, जन्म-मास एवं जन्म-लग्न (आदि शब्द से जन्मतिथि तथा जन्मवार लेना चाहिए) में हो तो वह बालक बड़ा विद्वान् होता है । क्षत्रिय एवं वैश्य के प्रथम गर्भ को छोड़कर दूसरे गर्भ से उत्पन्न बालकों का उपनयन होने से वे भी अधिक विद्वान् होते हैं ॥ ४५ ॥

अथ गुरुबलमनुष्टुभाह

वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः ।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः ॥ ४६ ॥

वटुकन्येति । वटुरुपनयनाधिकारी उपलक्षणत्वाद्वरोऽपि । तथा कन्या स्त्रीजात्य-पत्यम् । तज्जन्मराशेर्नवमपञ्चमैकादशद्वितीयसप्तमस्थानस्थितो गुरुः श्रेष्ठ उत्तमः । यदाह श्रीपतिः—'स्वायधर्मतनयद्युनस्थितो नाकनायकपुरोहितः शुभः' । इति । खेति । दशमषट्तृतीयप्रथमस्थानस्थितो गुरुः पूजया धर्मशास्त्रोक्तपूजाविधानेन स्वनुष्ठितेन श्रेष्ठः । अन्यत्र चतुर्थद्वादशाष्टमाख्यनिन्द्यस्थानस्थितः सन् द्विगुणत्रिगुणादिपूजया स्वनुष्ठितयापि निन्द्यो निषिद्ध इत्यर्थः । उक्तञ्च वराहेण—

'दुश्चिक्यजन्माद्रिखमध्यमेषु जन्मर्क्षतो वाञ्छति वज्रपाणेः ।
पूजां पुरोधा न स एव काङ्क्षत्यथाष्टमप्रान्त्यरसातलस्थः' ।। इति ।

विवाहोपनयनयोर्गुरुबले विशेषो द्वित्रिपूजाभिः

वसिष्ठेन तु विशेष उक्तः—'बन्धौ तृतीये रिपुराशिसंस्थे वाञ्छन्ति पूजां दशमे सुरेज्ये । नेच्छन्ति पूजां जनिगे व्ययस्थे पुरातना अष्टमगेऽपि राशौ ।।' जनिगे जन्मराशिस्थे । चतुर्थजन्मस्थगुरोः पूजानिरपेक्षत्वविषयिणी देशभेदेन व्यवस्था ध्येया । तत्र पूजानिरपेक्षेऽपि गुरौ गुणवद्वरोपलब्धौ कन्यायाः कालातिक्रमाद्विवाह उचितः । तदप्युक्तं वराहेण—'पूजाभिलाषं प्रति निःस्पृहोऽपि कुर्याद् गुरौ शुद्धिविवर्जितोऽपि । वरस्य लाभे शुभदं विवाहं वदन्ति गर्गच्यवनादिमुख्याः ।।' इति । अत्र चतुर्थद्वादशाष्टमस्थानस्थितत्वेन गुरोर्द्विगुणत्रिगुणादिकां पूजां विधाय विवाहः शुभ इति साम्प्रदायिकार्थः । विवाह इत्युपलक्षणम् । तेन व्रतबन्धोऽप्येवमेव ध्येयः । तदुक्तं नारदेन—'बालस्य बलहीनोऽपि शान्त्या जीवो बलप्रदः । यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्तेनोपनायनम् ।।' इति । वसिष्ठेनापि—'उक्तेऽपि वर्षे न बली गुरुश्चेच्छान्त्या प्रशस्तं व्रतबन्धकर्म । अनुक्तवर्षेऽपि बलप्रदोऽपि नैवं तयोरब्दबलं बलीयः ।।' इति ।

गोचरेणैव गुरुबलं न वामवेधेन मौञ्जीबन्धादौ

अत्र वामवेधेन ये गुरुशुद्धिमाहुस्तान् दूषयति गर्गः—'मौञ्जीबन्धे विवाहे च प्रतिष्ठायां विशेषतः । गोचरेणैव कर्तव्यं वेधादिकमकारणम् ।।' इति ।

अष्टकवर्गबलेनैवेति कस्यचिन्मतम्

प्राच्यास्तु गोचरबलाभावे अष्टकवर्गबलेनैव व्रतबन्धादिकमाहुः । यदाह राजमार्त्तण्डः—'अष्टवर्गविशुद्धेषु गुरुशीतांशुभानुषु । व्रतोद्वाहौ च कर्त्तव्यौ गोचरेण कदापि न ।।' इति । उपलक्षणमेतत् । यत्र कर्मणि यस्य ग्रहस्य शुद्धिरपेक्षिता तस्याष्टकवर्गशुद्धिर्विचार्या । एतदप्याह स एव—'अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु । सूक्ष्माष्टवर्गसंशुद्धिः स्थूला शुद्धिस्तु गोचरे ।। अभावतो गोचरशोभनानां शुद्धिं वदेद्वागुरिरष्टवर्गात् । वैधव्यकन्याक्षयहेतुयोगे जीवाष्टवर्गस्य वदेत्तु शुद्धिम् ।।' इति ।

गुरोरष्टकवर्गस्तथा रव्यादीनां तत्फलं च

तत्र गुरोरष्टकवर्गो लिख्यते । बृहज्जातके वराहः—

'दिक्स्वाद्यष्टमदायबन्धुषु कुजात्स्वात्सत्रिकेष्वङ्गिराः । सूर्यात्सत्रिनवेषुधीस्वनवदिग्लाभारिगो भार्गवात् । जायायार्थनवात्मजेषु हिमगोर्मन्दत्रिषड्धीव्यये दिग्धीषट्स्वसुखायपूर्वनवगो ज्ञात्संस्मरेषूदयात् ।।' इति ।

एवं सत्यामपेक्षायां सूर्यादीनामप्यष्टकवर्गास्त एव ध्येयाः । एवं जन्मकालीनग्रहवशादुक्तस्थाने रेखाः दत्त्वा साम्प्रतं विरुद्धफलदातृग्रहाधिष्ठितराशौ रेखाधिक्ये शुभमन्यथा नेति निष्कृष्टोऽर्थः । उक्तश्च लघुजातके—'विफलं गोचरगणितं ह्यष्टकवर्गेण निर्दिशेत्पुंसाम् । रेखाधिक्ये शुभदं विन्द्वधिके नैव शोभनं प्रायः ।।' अत्र प्रत्येकं रेखाफलमुक्तं यवनाचार्यैः—

'कष्टं स्यादेकरेखायां द्वाभ्यामर्थक्षयो भवेत् ।
त्रिभिः क्लेशं विजानीयाच्चतुर्भिः समता मता ॥
पञ्चभिः क्षेममारोग्यं षड्भिरर्थागमो भवेत् । सप्तभिः परमानन्दस्त्वष्टाभिः सर्वसम्पदः ॥'
इत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ४६ ॥

हिन्दी—उपनयन में बालकों की, विवाह में लड़कियों की जन्मराशि से २।५।७।९।११ राशि में बृहस्पति हो तो उत्तम होता है। १०।६।३।१ इन स्थानों (राशियों) पर हो तो पूज्य होते हैं (पूजन करने से शुभ होते हैं) तथा अन्य ४।८।१२ स्थानों में हो तो अशुभ होते हैं ॥४६॥

अथ ग्रन्थकृत्स्वमतेन गुरुदौष्टयापवादमनुष्टुभाऽऽह—

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ।
रिःफाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसत् ॥ ४७ ॥

स्वोच्चे इति । गुरुर्द्वादशाष्टमचतुर्थाख्यनिन्द्यस्थानस्थितोऽपि यदि स्वोच्चस्थाने कर्के स्वभे धनुर्मीनाख्ये स्वमैत्रे स्वमित्रगृहे मेषवृश्चिकाख्ये स्वांशे यस्मिन् कस्मिंश्चिद्राशौ धनुर्मीननवांशे वर्गोत्तमे वर्गनवांशे यथा वृषराशौ वृषनवांशे गुरुः वर्गोत्तम इति । वर्गोत्तमलक्षणमुक्तं वराहेण—'वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्यपर्यन्तगाः शुभफला नवभागसंज्ञाः ।' इति ।

स्वोच्चादिनवांशेऽन्येष्वपि केषुचित् स्थानेषु शुभो गुरुः

उपलक्षणत्वात्स्वोच्चादिनवांशेऽपि वा स्थितः स्यात्तदेष्टशुभफलदाता । कैमुतिकन्यायेनाप्यन्येपु स्थानेष्वेतादृशो गुरुः शुभ एव । यदाह भुजबलः—'वर्गोत्तमे स्वभवने भवनेऽथ मैत्रे मित्रांशके स्वभवनोच्चनवांशके वा । जन्माष्टरिःफरिपुखत्रिचतुर्थगोऽपि जीवः सुखार्थसुतवृद्धिकरो विवाहे ॥' व्यासोऽपि—'मित्रराशिगते जीवे स्वगृहे स्वोच्चगेऽपि वा । उद्वाहिता यदा कन्या भवेत्पुत्रार्थसंयुता ॥' इति । तुल्यन्यायत्वाद् व्रतादावपि ज्ञेयम् । ननु गुरोः सूर्यभौमौ मित्रे । एवं सति सिंहकर्कावित्यपि कुतो न व्याख्यातमिति चेन्न । सिंहस्थस्य गुरोः स्वरूपेणैव निषेध इत्युक्तं प्राक् । कर्कस्थो गुरुरुच्चस्थ एवेति पुनरुक्तिः । अतः प्राक्साधीयः प्राग्व्याख्यातम् ।

गुरुविषये नीचार्यष्टमादिगैर्विशेषः

नीचं मकरः अरिस्थः मिथुनकन्यातुलावृषराशिस्थो गुरुः गोचरेण शुभोऽप्यसत् अनिष्टफलदातेत्यर्थः । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—

'उच्चस्थः स्वगृहे सुहृद्भवनगो वाचस्पतिर्नित्यशः,
पूर्णायुर्विविधार्थसौख्यजनको जन्माष्टमस्थोऽपि चेत् ।
नीचस्थोऽरिगृहे दिवाकरकरच्छायानुगामी सदा-
ऽपीष्टोऽनिष्टफलं ददाति नियतं वैधव्यदुःखास्पदम् ॥' इति ।

अत्राष्टमस्थ इत्यनेन सर्वथाऽनिष्टफले गुरौ 'न चाष्टमं लक्षणगुणं प्रपूजयेत्' इति वचनात्पूजामनीहमानेऽप्युपनयनादि शुभं स्यात् । द्वादशचतुर्थस्थानस्य तु द्विगुणपूजामिच्छतस्तथा तृतीयादिस्थानस्थस्य पूजामात्रापेक्षस्य गुरोः शुभफलदातृताऽस्तीति किं

वक्तव्यमिति कैमुतिकन्यायसूचनार्थोऽपिशब्दः। न चाष्टममिति वाक्यं शत्रुग्रहस्थितगुर्वभिप्रायम्।

गुरुदोषनिवारणसम्भवे गोचराष्टकवर्गेण उपनयनं मीनचैत्रे

अस्यापवादो रत्नकोशेऽभिहितः—

'गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न लभ्यते। तदोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ॥'

'हरौ सिंहांशके जीवे नीचर्क्षे नीचभागगे।
मौञ्जीवन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ॥' इति गुरूक्तेश्च॥ ४७॥

हिन्दी—अपनी उच्चराशि (कर्क), अपनी राशि (धनु और मीन), अपने मित्र की राशि (४।५।१।८), मकर, कुम्भ राशि में भी अपने नवांश और वर्गोत्तम में बृहस्पति हो तो जन्मराशि से ४।८।१२ राशि पर होते हुए भी उत्तम होता है। अपनी नीच राशि (मकर) और शुभ राशि (३।६।२।७) में हो तो गोचर से शुभ होने पर भी अशुभफलदायक ही होते हैं॥ ४७॥

विशेष—कालातिपत्ति में लड़के के उपनयन में और लड़की के विवाह में यदि उक्त प्रकार से गुरु शुभ न होता हो तो अष्टकवर्ग से बृहस्पति की शुद्धि देखनी चाहिए। राजमार्तण्ड में लिखा भी है—

'अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु।
सूक्ष्माष्टवर्गसंशुद्धिः स्थूला शुद्धिस्तु गोचरे॥'

इससे यह भी सिद्ध होता है कि गोचर से शुद्ध गुरु होने पर भी यदि अष्टकवर्ग से उत्तम गुरु नहीं है तो उपनयन एवं विवाह अशुभ ही होते हैं। कहा भी है—

'अष्टवर्गविशुद्धेषु गुरुशीतांशुभानुषु।
व्रतोद्वाहौ च कर्तव्यौ गोचरे न कदाचन॥'

अथ व्रतबन्धे वर्ज्यपदार्थाननुष्टुभाऽऽह—

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके।
प्राक्सन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलग्रहे॥ ४८॥

कृष्णे इति। एषु दुष्टपदार्थेषु सत्सु व्रतबन्धो नेष्ट इति वाक्यार्थः। तत्र कृष्णे प्रथमत्रिभागरहिते कृष्णपक्षे—'आपञ्चम्यास्तु तिथयः वराः स्युरतिनिन्दिताः' इति नारदोक्तेः। तथा प्रदोषे यस्मिन् दिने सन्ध्याकाले प्रदोषो भवेत्तद्दिवसे व्रतबन्धो नेष्टः। प्रदोषलक्षणं स्वयमेव वक्ष्यति। अनध्यायेऽपि नेष्टः। अनध्यायानग्रे वक्ष्यति। शनौ नेष्टः। अत्र सम्मतिरुक्ता। रात्रौ नेष्टः। अपराह्णकेऽपि नेष्टः। अत्र सम्मतिवाक्यं प्रागलेखि। इयं पुनरुक्तिः स्मरणाविच्छेदार्था। तथा प्राक्सन्ध्या प्रातःसन्ध्या तस्यां गर्जिते मेघध्वनावनध्यायनिमित्ते सति नेष्टः। यदाह वसिष्ठः—'व्रतेऽह्नि पूर्वसन्ध्यायां वारिदो यदि गर्जति। तद्दिने स्यादनध्यायं व्रतं तत्र विवर्जयेत्॥' इति सन्ध्यालक्षणं प्रागुक्तमस्माभिः।

उपनयनं गलग्रहे न भवति

तथा गलग्रहे गलग्रहाख्ये दिवसे व्रतबन्धो नेष्टः। गलग्रहानाह गुरुः—'त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादिदिनत्रयम्। चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः॥' यत्तु

वसिष्ठेन—'कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादिदिनत्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः' ॥ इत्यत्र कृष्णपक्षीयचतुर्थीग्रहणं कृतं तद्दोषाधिक्यप्रतिपत्त्यर्थम् । न तु शुक्लपक्षीयचतुर्थ्या ग्रहणार्थम् । कुतः ? गुरुवाक्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः ।

व्रते वर्ज्या अन्येऽपि कालाः

अत्र दैवज्ञमनोहरे—'प्रदोषे निश्यनध्याये मन्दे कृष्णे गलग्रहे । मधुं विनोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हति । गलग्रहे प्रदोषे च स्वल्पायुरुपजायते ॥' नन्वत्र रात्रिनिषेधो व्यर्थः । यतो दिवसे पूर्वाह्णादयस्त्रयः काला उपनयने श्रेष्ठमध्यमाधमा उक्ताः । यदाह मनुः—'सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायनम् । मध्याह्ने मध्यमं प्रोक्तमपराह्णे च गर्हितम्' ॥ तत्र 'अपराह्णोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हति' इत्यपराह्णकालस्यातिनिषिद्धत्वात्कैमुतिकन्यायेन रात्रिरपि निषिद्धेतिवाचनिको रात्रिनिषेधो व्यर्थ इति चेत्, सत्यम् । 'अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च । तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥' इति पुनः संस्कारनिमित्तापत्तौ निमित्तानन्तरमेव कैमुतिकन्यानेन पुनरुपनयने प्राप्ते यदि रात्रिसद्भावस्तदोपनयनं माभूदिति रात्रिपदोक्तिः । अनयैव रीत्या प्रदोषोक्तिरपि सार्थिका । यतः सायङ्कालीनसमयः प्रदोषशब्दवाच्यः । 'प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरोक्तेः । वयं तु दोषग्रहणाद्यद्दिने लक्षणविशिष्टः प्रदोषो भवेत्तद्दिनमुपनये त्याज्यमिति ब्रूमः । ननु यत्रापराह्णकालो निन्दितस्तत्र प्रदोषस्तु सुतरां निन्द्य इति प्रदोषग्रहणसामर्थ्यात् पुनरुपनयननिषेधार्थं प्रदोषग्रहणमिति चेत् न, रात्रिपदवत्सर्वथा वैयर्थ्ये सत्येवं गतिर्युक्ता । न च तदत्र पश्यामः । निबन्धकर्तृभिरुपनयनप्रकरण एव प्रदोषलक्षणवाक्यानां लिखितत्वात् । यद्यपि तानि 'सर्वविद्याविघातकृत्' इति 'ब्रह्म नाधीयते नरैः' इत्यादीनि च सामान्यतो विद्यारम्भविषयकाणि तथापि प्रथमातिक्रमे कारणाभावादक्षरस्वीकार एव तल्लेखनस्य युक्तत्वात् । अत एव शिष्टाः सायं यद्दिने प्रदोषस्तद्दिने गलग्रहरहितेऽप्युपनयनं कुर्वन्ति । उक्तश्च शार्ङ्गधरीये—'स्वाध्याये पूर्वाह्णे प्रदोषरहिते तथा विरिक्ते च । हित्वा शनिकुजवारौ स्वाध्यायः पूर्वपरदिने च' ॥ इति । नन्वनध्यायेषु गलग्रहेषु च व्रतबन्धो निषिद्ध इत्युक्तम् । तदयुक्तम्, विहिततिथ्यभावादेव भविष्यति । विहिताश्च तिथय इमाः द्वितीयातृतीयापञ्चमीषष्ठीदशम्येकादशीद्वादश्यो द्वित्रिष्विरत्यादिनोक्ताः । उच्यन्ते, द्विविधा अनध्यायाः—नित्या नैमित्तिकाश्च । नित्या अष्टम्यादयो नैमित्तिका मन्वाद्याः । तत्र मन्वादिराषाढशुक्लदशमीस्वाध्याय एव, सोपपदा अपि स्वाध्याया एव, सङ्क्रान्तिः कदाचित्स्वाध्यायेष्वपि स्यादित्येतासु तिथिषु व्रतबन्धो माभूदिति आसामनध्यायत्वोक्तिः ।

चैत्रवैशाखशुद्धतृतीययोरुपनयनम्

चैत्रशुद्धवैशाखशुद्धतृतीययोर्मन्वादियुगाद्योस्तु 'या चैत्रवैशाखसिता तृतीया' इत्यादिवसिष्ठवाक्येन वाचनिकं व्रतबन्धविषयत्वम् । अन्यासां मन्वादिस्वाध्यायतिथीनां दक्षिणायनगतमनध्यायत्वे प्रथमवेदारम्भो माभूदिति प्रयोजनम् । 'ब्रह्म नाधीयते नरैः' इति वाक्यान्तेऽभिधानात् । वेदस्योपलक्षणत्वात्सकलविद्यारम्भोऽपि । एतच्च सामान्यतः

सर्वासामप्यनध्यायतिथीनां प्रयोजनम् । मन्वादितिथिषु दानादिकमपि प्रयोजनं स्मर्यते मत्स्यपुराणे—मन्वन्तरादयश्चैते दत्तस्याक्षयकारकाः ।' इति ।

चतुर्दश्यादीनामनध्यायत्वोक्तौ हेतुः

चतुर्दश्यादयो यद्यनध्यायानीच्येरंस्तदा विहितप्रतिषिद्धत्वाभावान्मध्यमत्वावसायस्तिथीनां स्यात् । तत्र यथा स्वशाखीयनक्षत्रालाभे अनिषिद्धान्यन्यान्यपि नक्षत्राणि गृह्यन्ते तथा कदाचिद्विहिततिथ्यलाभे मध्यमतिथिष्वप्युपनयनं स्यात्तन्माभूदित्येतदर्थं चतुर्दश्यादीनामनध्यायत्वम् । एतदेव समाधानं तुल्यन्यायत्वाद् गलग्रहेष्वपि ध्येयम् ।

गलग्रहेऽन्यान्यपि कर्माणि न भवन्ति

किञ्च—'विद्यारम्भो व्रतोद्देशः क्षौरं चैव विशेषतः । गलग्रहे न कर्त्तव्यं यदीच्छेत् पुत्रजीवितम् ॥' इति गुरुणा क्षौरादिनिषेधोक्तेश्च । क्वचिद् बहून्यपि कर्माणि गलग्रहे निषिद्धानि । उक्तञ्च—'चूडा व्रतं तथोद्वाहं कर्णयोरपि वेधनम् । गलग्रहे न कर्त्तव्यं यदीच्छेत् पुत्रजीवितम् ॥' इत्यलमतिप्रसक्तानुप्रसक्तेन ॥ ४८ ॥

हिन्दी—कृष्णपक्ष में (षष्ठी से अमावास्या-पर्यन्त), प्रदोष के दिन (५।५५ में उक्त), अनध्याय (५।५४ में कथित), शनिवार, अपराह्णकाल (दिनमान के तृतीयांश में), रात्रि में, जिस दिन प्रातःकाल मेघगर्जन हो उस दिन और गलग्रह (१३।१४।१५।३०।१।४।७।८।९) तिथियों में उपनयन करना शुभ नहीं होता है ॥ ४८ ॥

अथ व्रतवन्धलग्ने रव्याद्यंशफलमनुष्टुभाऽऽह—

क्रूरो जडो भवेत् पापः पटुः षट्कर्मकृद् बटुः ।
यज्ञार्थभाक् तथा मूर्खो रव्याद्यंशे तनौ क्रमात् ॥ ४९ ॥

क्रूर इति । षट्कर्माणि—अध्ययनाध्यापनयजनयाजनदानप्रतिग्रहाः । उक्तञ्च व्यासेन—

'यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ । अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग्द्विजः ॥'

अन्यत्स्पष्टार्थम् । तदुक्तं रत्नमालायाम्—'शन्यंशे ह्युदयति मूर्खताऽर्कभागे क्रूरत्वं भवति च पापधीः कुजांशे । चन्द्रांशे त्वतिजडता बुधे पटुत्वं यज्वत्वं गुरुभृगुभागयोर्गृणन्ति ॥' इति । भीमपराक्रमोऽपि—'भवेत्क्रूरो जडः पापः पटुर्यज्वा मखान्वितः । मूर्खश्चार्कादिकांशेषु क्रमेणोदयवर्तिषु ॥' इति ।

बुधगुरुशुक्रस्वामिकराशयो व्रतबन्धे ग्राह्याः

एवं सति बुधगुरुशुक्रस्वामिकराशीनां नवांशा ग्राह्याः । एतच्च स्पष्टमुक्तं नारदेन—'लग्नेऽथ राशयः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः । शुभा नवांशा न तथा ग्राह्यास्ते शुभराशयः ॥ न कदाचित्कर्कटांशः शुभग्रहयुतोऽपि वा । तस्माद् गोमिथुनान्त्याश्वतुलाकन्यांशकाः शुभाः ॥' इति । अश्वो धनुः । तथा सति वृषमिथुनकन्यातुलाधनुर्मीनांशा ग्राह्या इति निष्कृष्टोऽर्थः ॥ ४९ ॥

हिन्दी—उपनयन लग्न में यदि सूर्य का नवांश हो तो उपनीत बालक क्रूर स्वभाव का (निर्दयी) होता है। चन्द्रमा का (४था) नवमांश हो तो जड़ (नासमझ) होता है। मंगल

का (१।८) नवमांश हो तो पापकर्म करने वाला, बुध का (३।६) नवमांश हो तो पटु (समस्त कार्यों के करने में दक्ष) होता है। बृहस्पति का (९।१२) नवांश हो तो पट्कर्मा (यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना, दान देना, पढ़ना और पढ़ाना इन ६ कर्मों को करने वाला) होता है। शुक्र का नवमांश (२।७ का) हो तो यज्ञकर्ता और धनवान् होता है और शनि का नवमांश (१०।११) हो तो बालक मूर्ख होता है। इससे स्पष्ट है कि उपनयन लग्न में नवांश का विचार आवश्यक है ॥ ४९ ॥

अथ चन्द्रनवांशफलं स्वनवांशे सापवादं तोटकेन छन्दसाऽऽह—

विद्यानिरतः शुभराशिलवे पापांशगते हि दरिद्रतरः।
चन्द्रे स्वलवे बहुदुःखयुतः कर्णादितिभे धनवान् स्वलवे ॥ ५० ॥

विद्यानिरत इति। यस्मिन् कस्मिंश्चिद्राशौ चन्द्रो यदि शुभग्रहराशिनवांशे स्यात्तदा व्रती विद्यानिरतो भवेत्। यदि पापग्रहराशिनवांशे चन्द्रस्तदा दरिद्रतरो धनधान्यरहितः स्यात्। यदि स्वलवे कर्कांशे स्यात्तदा बहुदुःखयुतो भवेत्। उक्तञ्च कश्यपेन—'शुभग्रहांशगे चन्द्रे विद्यावान् धनवान् व्रती। तस्मिन् पापांशसंस्थेति निर्धनोऽखिलदुःखभाक् ॥ स्वांशसंस्थे निशानाथे दरिद्रः खलु दुर्जनः।' इति।

तत्तन्नवांशस्थचन्द्रस्य फलम्

वसिष्ठेन प्रत्येकं फलमुक्तम्—
'सूर्यांशकगते चन्द्रे महापातककृद्व्रती। पुण्योपसेवी स्वांशस्थे नीचे निःस्वः खलो भवेत् ॥
कुजांशकगते चन्द्रे शस्त्रजीवी खलो व्रती। बुधांशकगते चन्द्रे वेदवेदी भवेत्पटुः ॥
जीवांशकगते यज्वा साङ्गवेदविशारदः। शुक्रांशगे धनी दाता विद्यावित्तविशारदः ॥
क्षिप्रोद्वाही यज्ञकृत्स्यात्सत्रदो भोगवान्भवेत्।
सौरांशकगते चन्द्रे सदा चाण्डालसेवकः ॥' इति।

स्वनवमांशस्थितचन्द्रफलमपवादयाऽऽह

अथ स्वांशस्थितस्य चन्द्रस्यापवादमाह—कर्णेति। यदि कर्णे श्रवणनक्षत्रे अदितौ पुनर्वसुभे चोपनयने सति स्वांशश्चन्द्रस्य नवांशश्चेत्स्यात्तदा व्रती धनवान् स्यात्। तदुक्तं नारदेन—'श्रवणादितिनक्षत्रे कर्कांशस्थे निशाकरे। तदा व्रती वेदशास्त्रधनधान्यसमृद्धिमान् ॥' इति ॥ ५० ॥

हिन्दी—उपनयन के समय किसी भी राशि में यदि चन्द्रमा शुभ राशि के (३।६।२।७।९।१२) नवांश में हो तो वह उपनीत बालक विद्या में रुचि रखने वाला होता है। पापग्रह की राशि (१।८।५।१०।११) के नवांश में हो तो अतिदरिद्र होता है। अपने (४) नवमांश में हो तो दुःखी (जीवन दुःखमय) व्यतीत होता है। किन्तु श्रवण नक्षत्र और पुनर्वसु नक्षत्र में चन्द्रमा हो और कर्क का नवांश हो तो धनवान् होता है। अर्थात् श्रवण नक्षत्र और पुनर्वसु के ४ चरण में चन्द्रमा रहे तो धनी होता है ॥ ५० ॥

अथ केन्द्रस्थानां सूर्यादीनां फलमनुष्टुभाऽऽह—

राजसेवो वैश्यवृत्तिः शस्त्रवृत्तिश्च पाठकः।
प्राज्ञोऽर्थवान् म्लेच्छसेवी केन्द्रे सूर्यादिखेचरैः ॥ ५१ ॥

राजसेवीति। केन्द्रे सूर्यादिग्रहैः प्रत्येकं स्थितैः क्रमादिद फलं ज्ञेयमित्यर्थः। अन्यत्स्पष्टम्। यदाह श्रीपतिः—

'स्वानुष्ठाने रतः स्यात् प्रचुरमतियुतः केन्द्रसंस्थे सुरेज्ये
विद्यासौख्यार्थयुक्तो ह्युशनसि शशिजेऽध्यापकश्च प्रदिष्टः।
सूर्ये राजोपसेवी भवति धरणिजे शस्त्रवृत्तिर्द्विजन्मा
शीतांशौ वैश्यवृत्तिर्दिनकरतनये सेवकश्चान्त्यजानाम् ॥'

अन्त्यजानां चाण्डालानाम्। अत्र लग्नस्थं चन्द्रं केन्द्रस्थं च शनिं विना शुभाः पापाश्च शुभफला इत्यवगम्यते।

केन्द्रगतपापा निषिद्धा व्रतबन्धे तत्फलानि च

मुनिभिस्तु केन्द्रगपापा निषिद्धा इत्युक्तम्। यदाह नारदः—
'स्फूर्जितं केन्द्रगे भानौ व्रतिनो वंशनाशनम्। कूजितं केन्द्रगे भौमे शिष्याचार्यविनाशनम् ॥ करोति रुदितं केन्द्रसंस्थे मन्दे महागदम्। लग्ने केन्द्रगते राहौ रन्ध्रे मातृविनाशनम् ॥ उग्रे केन्द्रगते केतौ व्रतिवित्तविनाशनम्।' इति।

तत्र सूर्यस्य सर्वशाखाधिपत्वात्केन्द्रसंस्थत्वमावश्यकविषयं द्रष्टव्यम्। उक्तञ्च दैवज्ञमनोहरे—'सर्वशाखाधिप भानुं केचिदूचुर्महर्षयः। तस्माद् गत्यन्तराभावे लग्नस्थोऽर्कः प्रशस्यते ॥' लग्नग्रहणं केन्द्रोपलक्षणम्। तथा स्वगृहोच्चाद्यवस्थितः पापग्रहः केन्द्रस्थः शुभफलदातान्यथा नेत्यर्थः। इति विरुद्धार्थयोर्वचनयोर्विषयविवेकः ॥ ५१ ॥

हिन्दी—उपनयन के समय सूर्य केन्द्र में हो तो उपनीत वालक राजा का नौकर होता है। चन्द्रमा केन्द्र में हो तो वैश्य वृत्ति करने वाला (व्यापारी) होता है। मंगल केन्द्र में हो तो शस्त्र-वृत्ति वाला (अस्त्र-शस्त्र का निर्माता या व्यापार करने वाला अथवा सेना में कार्य करने वाला या सिपाही इत्यादि) होता है। बुध केन्द्र में हो तो पाठक (अध्यापक), गुरु केन्द्र में हो तो विद्वान्, शुक्र केन्द्र में हो तो धनवान् और शनि केन्द्र में हो तो म्लेच्छों या नगरपालिका में वंपुलिस का दरोगा होता है ॥ ५१ ॥

अथ चन्द्रगुरुशुक्राणां ग्रहयुतौ फलमनुष्टुभाऽऽह—

शुक्रे जीवे तथा चन्द्रे सूर्यभौमाऽऽर्किसंयुते।
निर्गुणः क्रूरचेष्टः स्यान्निर्घृणः सद्युते पटुः ॥ ५२ ॥

शुक्रेति। शुक्रे तथा जीवे गुरौ तथा चन्द्रे च प्रत्येकं सूर्यसंयुते व्रती निर्गुणः स्यात्। एवं भौमसंयुते सति क्रूरचेष्टः क्रूरा हिंसनशीला चेष्टा हस्तादिचापलं यस्य स तादृशः स्यात्। तथाऽऽर्किः शनिस्तेन संयुते निर्घृणः निर्लज्जो निर्दयो वा स्यात्। तथा तस्मिन्नेव शुक्रे जीवे चन्द्रे वा प्रत्येकं सद्भिः चन्द्रबुधगुरुशुक्रैः युते पटुः सर्वविद्यानिपुणः स्यात्। उक्तञ्च रत्नमालायाम्—

'सार्के जीवे निर्गुणोऽर्थैर्विहीनः क्रूरः सारे वाक्पटुः सत्समेते।
भानोः पुत्रेणालसो निर्घृणश्च स्याच्छुक्रेन्दूजीववित्सम्प्रकल्प्यौ ॥' इति ॥ ५२ ॥

हिन्दी—उपनयनकाल में शुक्र, बृहस्पति और चन्द्रमा, इन तीनों में-से कोई यदि सूर्य के साथ हो तो उपनीत बालक गुणहीन होता है, मंगल के साथ हो तो क्रूर स्वभाव का (हिंसक,

डाकू, बलात्कार करने वाला आदि) होता है। शनि के साथ हो तो निर्लज्ज अथवा आधुनिक नेता होता हैं। वे ही तीनों (शु०, बृ०, च०) यदि शुभ ग्रह से युक्त हों तो बालक बुद्धिमान् होता है।

सूर्य-चन्द्र के योग के समय उपनयन मुहूर्त होता ही नहीं। और शु०, गु०, च०, ये तीनों ग्रह परस्पर योग करें या बुध के साथ योग करें, तभी 'सद्युते' शब्द की सार्थकता हो सकती है॥ ५२॥

अथ चन्द्रवशेन शुभाशुभयोगौ प्रमाणिकयाऽऽह—

विधौ सितांशगे सिते त्रिकोणगे तनौ गुरौ।
समस्तवेदविद् व्रती यमांशगेऽतिनिर्घृणः॥ ५३॥

विधाविति। विधौ चन्द्रे शुक्रांशगे सति शुक्रे च नवमपञ्चमस्थानस्थिते गुरौ लग्नस्थे च सति व्रती बटुः समस्तांश्चतुरो वेदान्वेत्ति जानाति तादृशः स्यात्। एवं यमांशगे शनिनवांशस्थिते चन्द्रे सति लग्ने गुरौ च सति सिते त्रिकोणगे सत्यप्यतिनिर्घृणः स्यात्। यदाह महेश्वरः—'जीवे लग्नमधिष्ठिते भृगुसुते धर्मात्मजस्थे विधौ शुक्रांशेऽखिलवेदविद्रविसुते स्वांशे कृतघ्नोऽधमः॥' इति।

गुरुशुक्रयुक्तशन्यंशस्थचन्द्रफलम्

अपरे तु गुरुशुक्रयुक्तेऽपि शन्यंशस्थे चन्द्रे सत्यतिनिर्घृण इति व्याचक्षते। तदुक्तं रत्नमालायाम्—'लग्ने जीवे भार्गवे च त्रिकोणे शुक्रांशस्थे स्याद्विधौ वेदवेदी। सौरांशस्थे सूरिलग्ने सशुक्रे विद्याशीलः प्रोज्झितः स्यात्कृतघ्नः॥' इति सूरिलग्ने सूरिर्बृहस्पतिस्तद्युक्ते लग्ने। इति व्रतबन्धे लग्नविचारः। ननु व्रतबन्धे वटुराशितोऽष्टमभवनादिशुद्धिरुक्ता। यदाह वसिष्ठः—'न नैधनं नैधनशुद्धिलग्नं न नैधनर्क्षं न च तन्नवांशः। न नैधनेशो न तदंशको वा लग्ने प्रशस्तो न च रात्रिनाथः॥' इति। सा ग्रन्थकृताऽत्र कुतो नोक्ता? अत्र ग्रन्थकृदाशयं वयं ब्रूमः। 'वीक्षिते वार्थैकविंशन्महादोषविवर्जिते' इति नारदोक्तेस्तेषां दोषाणां च विवाहप्रकरणे वक्ष्यमाणत्वात्तत्रापि दम्पत्योरष्टमं लग्नमित्यपि दोषः सलक्षणो वक्ष्यते। तत्र दम्पत्योरिति संस्कार्योपलक्षणम्। तेन वटोरप्यष्टमभवने शुद्धिरुक्तेवेत्यत्र पुनर्नोक्ता। यत्र एकविंशतिदोषविचारो नास्ति सीमन्तादौ किन्तु कतिपयदोषस्तत्र तु साक्षादष्टमभवनशुद्धिरुक्ता। अग्रेऽपि यात्रादौ वक्ष्यते चेति। एवं चेन्नैधननवांशशुद्ध्यादि कुतो नोक्तम्? सत्यम्। वक्तव्यमेवेति ब्रूमः। परन्तु नारदाद्यनेकमुनिभिरप्रणीतत्वान्नोक्तमिति ग्रन्थकृदाशयः। एवंविधे व्रतबन्धलग्ने व्रतं कुर्यात्। तदाह नारदः—

'शुभलग्ने शुभांशे वा नैधने शुद्धिसंयुते। लग्ने त्वन्यैः सौम्यखेटैः संयुते वा निरीक्षिते॥
जीवार्कशुक्रचन्द्राद्यैः पञ्चभिर्बलिभिर्ग्रहैः। स्थानादिबलसम्पन्नैश्चतुर्भिर्वा बलान्वितैः॥
वीक्षिते वार्थैकविंशन्महादोषविवर्जिते।' इति।

सर्वथा निर्दुष्टलग्नांशसम्भवेऽल्पदोषे लग्ने व्रतबन्धः

सर्वथा यदि निर्दूषणं लग्नं न लभ्यते तदा का गतिरिति उच्यते—वेधादिमहादोषराहित्ये सत्यल्पदोषसत्त्वे गुणाधिक्ये च लग्नं साधीयो भवति। तदुक्तं नारदेन—

'लग्नं सर्वगुणोपेतं लभ्यतेऽल्पैर्दिनैर्न तत् । दोषाल्पत्वं गुणाधिक्यं बहुसम्मतमिष्यते ॥ दोषदुष्टोऽथ कालो यः सोपमार्ष्टुं न शक्यते ।' दोषदुष्टत्वं वसिष्ठेनोक्तं—'दोषोऽप्येको गुणान् हन्ति तद्विरोधी गुणो न चेत् । पञ्चगव्येन यत्पूर्णं कुम्भं मद्यलवो यथा ॥' दोषः पापग्रहवेधादिः ।

तत्रान्येऽपि दोषाः

अन्येऽपि दोषा अत्र व्रतबन्धे वसिष्ठादिभिरुक्ताः—'ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥' श्रीपतिनिबन्धे—'पौषादिचतुरो मासान्प्राप्ता वृष्टिरकालजा । व्रतं यात्रां विवाहं च वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥' यत्तु गर्गवाक्यं—'बहुवर्षे त्रिरात्रं स्यादल्पवर्षे तु वासरम् । यदि वर्षेदनध्याये तेनैव सह गच्छति ॥' इति तद्वर्जं प्रकृत्याभिधानात् न केवलवृष्टौ दोषः । अकालवृष्टौ तु दोष एवेति ॥ ५३ ॥

हिन्दी—उपनयन के समय चन्द्रमा शुक्र के नवमांश में हो, शुक्र ५।९ स्थान में हो तथा बृहस्पति लग्न में हो तो ऐसी ग्रहस्थिति में उपनयन करने से उपवीती समस्त वेदों और वेदाङ्गों का ज्ञाता होता है ।

यदि चन्द्रमा शनि के नवांश में हो, शुक्र त्रिकोण (५।९) में एवं गुरु लग्न में हो तो अत्यन्त निर्लज्ज होता है ॥ ५३ ॥

अथैवं व्रतबन्धलग्नमभिधायेदानीं दोषवत्त्वे प्रतिज्ञातानध्यायाञ्जघनचपलार्ययाऽऽह—

शुचिशुक्रपौषतपसां दिगश्विरुद्रार्कसङ्ख्यसिततिथयः ।
भूतादित्रितयाष्टमी सङ्क्रमणं च व्रतेष्वनध्यायाः ॥ ५४ ॥

शुचीति । द्विविधा ह्यनध्यायाः—नित्या नैमित्तिकाश्च । तत्र आषाढशुक्लदशमी ज्येष्ठशुक्लद्वितीया पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः माघशुक्लद्वादशी एता अनध्यायाख्याः सोपपदत्वात् । तदुक्तं स्मृतौ—'सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आषाढे दशमी सिता । चतुर्थी द्वादशी माघ एताः सोपपदाः स्मृताः ॥' इति । भूतेति । भूतं चतुर्दशी तदादित्रितयं चतुर्दशीपूर्णिमाप्रतिपदः । कृष्णपक्षे च अमा अमावास्या च तन्मध्ये तथाष्टमी भूतादित्रितयं चाष्टमी चानयोः समाहारद्वन्द्वे नपुंसकत्वे ह्रस्वत्वं ज्ञेयम् । तथा सङ्क्रमणं सूर्यस्य निरयणसङ्क्रान्तिदिनं चकारान्मन्वाद्यास्त्रितिथी मधाविति पद्योक्ता मन्वाद्या युगादयश्चानध्याया ज्ञेयाः । व्रतेष्विति पदमावश्यकद्योतनार्थम् । यदाह गौतमः—'पक्षद्वये चतुर्दश्योरष्टमीद्वितये तथा । पक्षादावपि पक्षान्ते ब्रह्म नाधीयते नरैः ॥' ब्रह्म वेदः ।

अनध्यायान्तराण्यपि

हारीतेन विशेष उक्तः—'प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः । श्वोऽनध्यायाद्य शर्वर्यां नाधीयीति कदाचन ॥' इति । श्वोऽनध्यायाद्यशर्वर्यामिति मन्वाद्यनध्यायविषयम् । चतुर्दश्यादिषु तु पूर्वदिने प्रदोषसद्भावादेवाध्ययनाभावः । फलञ्च ज्योतिः-

सारसागरे—'अष्टमी हन्त्युपाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। अमावास्योभयं हन्ति प्रतिपत्पाठनाशिनी ॥' इति। वृद्धमनुः—'चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु। अष्टकासु च सङ्क्रान्तौ शयने बोधने हरेः। अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदासु च ॥' इति। चतुर्मास्यद्वितीया गर्गेणोक्ताः—'आषाढफाल्गुनोर्जेषु या द्वितीया विधुक्षये। चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति महर्षयः ॥' इति। विधुक्षये कृष्णपक्षे कृष्णादिमासगणनया चैत्रश्रावणमार्गशीर्षमासकृष्णपक्षसम्बन्धिन्यो द्वितीयाश्चातुर्मास्यद्वितीया इत्यर्थः। अत एवोक्तं ज्योतिःसारसागरे—'चातुर्मास्यसमाप्तौ तु या द्वितीया भवेत्तदा। सर्वास्वेतास्वनध्यायः पुराणैः परिकीर्त्तितः ॥' इति। चत्वारो मासाश्चातुर्मास्यमिति यौगिकशब्दः। ब्राह्मणादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्। तथा च स्मृत्यर्थसारे—'आषाढीकार्त्तिकीफाल्गुनीपूर्णिमाप्रतिपद्द्वितीयासु च' इत्यनध्यायप्रकरणेऽभिहितम्'। मन्वादयो युगादयश्चाद्यप्रकरणेऽभिहिताः। अष्टकास्तूक्ताः स्मृतौ—

'पौषादित्रिषु मासेषु कृष्णे चैवाष्टकात्रयम्। एका ज्ञेयाश्विने मासि हायने चतुरष्टकाः ॥

अष्टका च समुद्दिष्टा सप्तम्यादिदिनत्रयम्।
नाधीयीत च शास्त्राणि व्रतबन्धं च वर्जयेत् ॥' इति।

अनध्यायफलान्यावश्यके कृष्णप्रतिपद्युपनयनम्

अनध्यायप्रयोजनमाह वसिष्ठः—'पापांशकगते चन्द्रे स्वाधिनीचस्थितेऽपि वा। अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥' इति। अत्रानध्याये इत्येतद्विहितानध्यायव्यतिरिक्तानध्यायविषयम्। अन्यथा—'नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिने। मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि ॥' इति वसिष्ठवाक्यमनर्थकमापद्येत। नैमित्तिकानध्यायानां तर्हि किं प्रयोजनमिति चेत्। वेदाध्ययननिवृत्तिरित्यवगच्छत। एवं सति 'नार्त्तः कालमपेक्षते' इति लौकिकन्यायादतीतकालस्य वटोः कालान्तरप्रतीक्षामसहमानस्यावश्यकोपनयनविषयमिति निष्कृष्टोऽर्थः। अत एवोक्तं व्यासेन—'प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ। चन्द्रे बलयुते लग्ने वर्षाणामतिलङ्घने ॥' इति। प्रतिपद्ग्रहणं कैमुतिकन्यायसूचनार्थम्। नैमित्तिकानध्यायास्तु अस्माभिर्मन्वाद्या इति पद्यविवरणावसरे निरूपिताः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—आषाढ, ज्येष्ठ, पौष और माघ के शुक्लपक्ष में क्रम से १०।२।११।१२ तिथियाँ अर्थात् आषाढ शुक्ल १०, ज्येष्ठ शुक्ल २, पौष शुक्ल ११ और माघ शुक्ल १२, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, प्रतिपदा, अष्टमी और संक्रान्ति का दिन ये सब व्रतबन्ध में अनध्याय हैं। इनमें उपनयन-संस्कार नहीं करना चाहिए ॥ ५४ ॥

अथ दोषवत्त्वेन प्रतिज्ञातान्प्रदोषाननुष्टुभाऽऽह—

अर्कतर्कत्रितिथिषु प्रदोषः स्यात्तदग्रिमैः।
रात्र्यर्धसार्द्धप्रहरयाममध्यस्थितैः क्रमात् ॥ ५५ ॥

अर्केति। अर्कतर्कत्रितिथिषु तदग्रिमैरर्कादितिथिभ्योऽग्रिमैस्त्रयोदशीसप्तमीचतुर्थीतिथिभिः रात्र्यर्द्धसार्धप्रहरयाममध्ये स्थितैरर्कतर्कत्रितिथिषु प्रदोषः स्यात्। यथा

द्वादश्यामर्द्धरात्रात्प्राक् त्रयोदशीप्रवृत्तौ प्रदोषः स्यात् । षष्ठ्यां सार्द्धप्रहरमध्ये सप्तमी-प्रवृत्तिस्तदा प्रदोषः स्यात् । तथा तृतीयायां प्रहरमध्ये चतुर्थीप्रवेशे प्रदोष इत्यर्थः । उक्तञ्च—'चतुर्थी प्रथमे यामे सार्धयामे च सप्तमी । यामद्वये त्रयोदश्यां प्रदोषः सर्व-घातकः ॥' इति ।

चतुर्थीसप्तमीत्रयोदशीप्रदोषेषु मतभेदः

इद निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम् । दीपिकाटीकायां तूपनयनपद्यव्याख्याने प्रदोषपरिज्ञानं चाह गर्ग इत्युक्त्वोक्तम्—

'चतुर्थी याममेकं तु सार्द्धयामं तु सप्तमी । अर्द्धरात्रं त्रयोदश्यां प्रदोषो रजनीमुखम् ॥
अत्र नाध्यापयेद्वेदं वेदाङ्गानि च सर्वथा । अत्राध्ययनशीलस्य प्रदोषः सर्वघातकः ॥' इति ।

गोभिलेन ह्येवमुक्तम्

'षष्ठी च द्वादशी चैव अर्द्धरात्रोननाडिका । प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया नवनाडिका ॥'इति ।

स्मृत्यर्थसारेऽपि

चतुर्थ्याः पूर्वरात्रे तु नवनाड्यां प्रदर्शने । नाध्येयं पूर्वरात्रे स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी ॥
अर्द्धरात्रात्पुरा चेत्स्यान्नाध्येयं पूर्वरात्रिके ॥' इति ।

यदेतयोः पक्षयोर्देशाचारतो व्यवस्थेति । ननु रात्र्यर्द्धमित्यत्र 'अर्द्धं समेंशके' इत्य-भिधानात्समांशवाचिनोऽर्द्धशब्दस्य नपुंसकलिङ्गत्वात् 'अर्द्धं नपुंसकम्' इति समासे 'प्रथमानिर्द्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इत्यर्द्धशब्दस्योपसर्जनसंज्ञत्वात् । 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति पूर्वनिपाते च 'अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः' इत्यच्प्रत्यये कृते 'यस्येति च' इतीकारलोपे 'रात्राह्नाहाः पुंसि' इति पुंस्त्वे अर्द्धरात्र इति भवितव्यं, न पुनः रात्र्यर्ध-मिति चेत्, उच्यते । नात्र समांशवाच्यर्द्धशब्दः । यथा ग्रामार्द्धो नगरार्द्धं इत्यत्र किं तर्हि 'भित्तं शकलखण्डे वा पुंस्यर्द्धोऽर्द्धम्' इत्यभिधानात्केवलविभागवाची । कथं द्वितीय-प्रहरस्य चरमघटिका तृतीयप्रहरस्य प्रथमघटिका त्वेवं घटिकाद्वयोपेतः कालो निशीथ-शब्दवाच्यः । एतच्च जन्माष्टमीनिर्णये—'अर्द्धरात्रादधश्चोर्ध्वमेकार्द्धघटिकान्विता । रोहिणी चाष्टमी ग्राह्या उपवासव्रतादिषु ॥' इति योगीश्वरपद्यव्याख्याने व्याख्यातं माधवेन । ततश्च समांशवाचित्वाभावादर्द्धशब्दस्य नैकदेशिसमासः । किं तर्हि षष्ठीत्यनेन षष्ठीसमासे षष्ठ्यन्तस्य पूर्वनिपातः । अत्रैव—'रात्रौ यामद्वयादर्वाक् यदि पश्येत् त्रयोदशीम् । प्रदोषः स तु विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥' इति गोभिलवाक्यमप्यनुकूलम् । इदमेवाभि-प्रेत्य—'रात्र्यर्द्धपूर्वापरगा जयन्ती कलयापि वा' इति वराहेणापि रात्र्यर्द्धपदं प्रयुक्तम् । अत्र तु समांशवाचित्वं विवक्षितम् । सिद्धान्तपक्षस्तु परदिनार्द्धान्निशार्द्धात्परतो दिन-श्रीरिति विवाहवृन्दावनपद्यादौ तत्र तादृशाः प्रयोगाश्चिन्त्याः ॥ ५५ ॥

हिन्दी—द्वादशी तिथि को आधी रात के पहले यदि त्रयोदशी लग जाय, षष्ठी को १½ प्रहर रात के पहले सप्तमी आ जाय और तृतीया को १ प्रहर के पहले चतुर्थी प्रारम्भ हो जाय तो ये तीनों प्रदोष कहे जाते हैं। प्रदोष के दिन उपनय करना मना है। प्रदोष-समय में वेदों तथा वेदांगों का अध्ययन-अध्यापन भी नहीं करना चाहिए ॥ ५५ ॥

अथ व्रतबन्धानन्तरं सायङ्काले बह्वृचां ब्रह्मौदनाख्यः संस्कारोऽभिहितस्तत्र विशेषमार्ययाऽऽह—

प्राग्ब्रह्मौदनपाकाद् व्रतबन्धानन्तरं यदि चेत् ।
उत्पातानध्ययनोत्पत्तावपि शान्तिपूर्वकं तत्स्यात् ॥ ५६ ॥

प्रागिति । यदि व्रतबन्धात्प्रागाकालिकाद्यनध्याय उत्पातो वा भवेत्तदा न कार्य एव व्रतबन्धः । दैवान्निर्दिष्टे काले व्रतबन्धो निर्वृत्ततदुत्तरं सायंकालीनब्रह्मौदनविधेः पूर्वमुत्पातप्रयुक्ता कालशुद्धिरथवाऽनध्यायो वा स्यात्तदाऽनिष्टम् । उक्तञ्च नृसिंहप्रसादे— 'ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं भवेत् । तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य तत् ॥' अतस्तद्ब्रह्मौदनं शान्तिपूर्वकमादौ शान्तिं विधाय पश्चात्स्यात् ।

शान्तिप्रकारस्तु नृसिंहप्रसादे

'तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । स्वस्तिवाचनपूर्वं तु हवनं कारयेद् बुधः ॥
प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियुजो भवेत् । सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेद्विद्यासमृद्धये ॥
गायत्री युञ्जते मन्त्रः प्रायश्चित्त तु सर्पिषा । धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् ॥
शिलां होमविधेः पश्चात्स्थापयेत्तत्र संसदि ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ॥' इति ।

अत्रैतस्य विचारस्य मुहूर्तविचारेऽनुपयोगान्मूलपद्यानिबन्धो यद्यपि स्वयमवक्तव्यस्तथापि सकलजनप्रसिद्धयर्थमभिहितः ॥ ५६ ॥

हिन्दी—विधिपूर्वक उपनयन के अनन्तर और उसी दिन होने वाले ब्रह्मौदन पाक के पहले कोई अकालवृष्टि आदि उत्पात और अनध्याय आ जाय तो वहाँ शान्ति करके ब्रह्मौदन पाक-क्रिया करनी चाहिए । यह कर्म अन्य शाखा वालों के यहाँ होता है ॥ ५६ ॥

अथ पूर्वं द्वाविंशतिनक्षत्राण्यभिहितानि सामान्यतस्तेषां वेदपरत्वेन विशेषं वसन्ततिलकयाऽऽह—

वेदक्रमाच्छशिशिवाहिकरत्रिमूलपूर्वासु पौष्णकरमैत्रमृगादितीज्ये ।
ध्रौवेषु चाश्विवसुपुष्यकरोत्तरेशकर्णे मृगान्त्यलघुमैत्रधनादितौ सत् ॥ ५७ ॥

वेदक्रमादिति । मृगार्द्राश्लेषाहस्तचित्रास्वातीमूलपूर्वात्रयेषु ऋग्वेदाध्यायिनाम्, रेवतीहस्तानुराधामृगपुनर्वसुपुष्यरोहिण्युत्तरात्रयेषु यजुर्वेदाध्यायिनाम्, अश्विनीधनिष्ठापुष्यहस्तोत्तरात्रयार्द्राश्रवणेषु सामवेदाध्यायिनाम्, मृगरेवतीपुष्याश्विनीहस्तानुराधाधनिष्ठापुनर्वसुष्वथर्वणवेदाध्यायिनाम्, पूर्वश्लोकानुवृत्ततत्पदपरामृष्टमुपनयनं सत् शुभमित्यर्थः । उक्तञ्च ज्योतिर्निबन्धे—

'मूले हस्तत्रये सार्पे शैवपूर्वात्रये तथा । ऋग्वेदाध्यायिनां कार्यं मेखलाबन्धनं बुधैः ॥
पुष्ये पुनर्वसौ पौष्णे हस्ते मैत्रे शशाङ्कभे । ध्रुवेषु च प्रशस्तं स्याद्यजुषां मौञ्जिबन्धनम् ॥
पुष्यवासवहस्ताश्विशिवकर्णोत्तरात्रयम् । प्रशस्तं मेखलाबन्धे बटूनां सामगायिनाम् ॥
मृगमैत्राश्विनीहस्तरेवत्यदितिवासवम् । अथर्वपाठिनां शस्तो भगणोऽयं व्रतार्पणे ॥'
इति ॥ ५७ ॥

हिन्दी—ऋग्वेदियों का उपनयन मृगशिरा, आर्द्रा, आश्लेषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल तथा तीनों पूर्वा, इन १० नक्षत्रों में; यजुर्वेदियों का रेवती, हस्त, अनुराधा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य एवं ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), इन १० नक्षत्रों में; सामवेदियों का अश्विनी, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, आर्द्रा और श्रवण, इन ९ नक्षत्रों में और अथर्ववेद वालों का उपनयन मृगशिरा, रेवती, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), अनुराधा, धनिष्ठा और पुनर्वसु, इन ८ नक्षत्रों में उत्तम होता है ॥ ५७ ॥

वेदानुसार उपनयन नक्षत्र-सारणी

ऋग्वेदीय नक्षत्र	यजुर्वेदीय नक्षत्र	सामवेदीय नक्षत्र	अथर्ववेदीय नक्षत्र
मृगशिरा, आर्द्रा	रेवती, हस्त	अश्विनी	मृगशिरा
आश्लेषा	अनुराधा	धनिष्ठा, पुष्य	रेवती, हस्त
हस्त, चित्रा	मृगशिरा	हस्त	अश्विनी, पुष्य
स्वाती, मूल	पुनर्वसु, पुष्य	उत्तराफल्गुनी	अनुराधा
उत्तराफल्गुनी	उत्तराफल्गुनी	उत्तराषाढा	धनिष्ठा
पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	उत्तराभाद्रपदा	पुनर्वसु
पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	आर्द्रा	
	रोहिणी	श्रवण	

अथ धर्मशास्त्रीयं विशेषमनुष्टुभाऽऽह—

नान्दीश्राद्धोत्तरं मातुः पुष्पे लग्नान्तरे न हि ।
शान्त्या चौलं व्रतं पाणिग्रहः कार्योऽन्यथा न सत् ॥ ५८ ॥

नान्दीश्राद्धोत्तरमिति । बहुघटीसाध्यानां शुभकर्मणां प्रारम्भे सकलशुभाशुभकर्मसाधारणनान्दीश्राद्धाख्यं कर्माभिहितम् । तत्कृत्यानन्तरं यदि संस्कार्यमातुः पुष्पे रजोदर्शने जाते सति लग्नान्तरे विवक्षितलग्नादन्यस्मिन् लग्ने च असति तदावश्यकीं धर्मशास्त्रोक्तां शान्तिं विधाय चौलं व्रतं यज्ञोपवीतं पाणिग्रहो विवाहश्च कार्यः । अन्यथा समीचीनद्वितीयलग्ने सति चौलं चौलादिशुभकर्म न सत् । दुष्टफलदमित्यर्थः । उक्तश्च मेधातिथिना—

'चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि । भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥
वधूवरान्यतरयोर्जननी चेद्रजस्वला । तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत् ॥'

वृद्धमनुरपि—'विवाहव्रतचूडासु यदि माता रजस्वला । तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥' बृहस्पतिः—'वैधव्यं च विवाहे स्याज्जडत्वं व्रतबन्धने । चूडायां च शिशोर्मृत्युर्विघ्नं यात्राप्रवेशयोः ॥' इति । रजोविषयमेतज्ज्ञेयम् । प्रचेताः—'प्राप्य चाभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि । पत्नी रजस्वला जाता न कुर्यात्तत्पिता तदा ॥' इति ।

उपनयनकर्तारः

पितेति । नान्दीश्राद्धकर्तुरुपलक्षणम् । तथा च वृद्धगर्गेण—'पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः । उपायनेऽधिकारी स्यात् पूर्वाभावे परः परः ॥' इत्यादयोऽधि-

कारिणम् उपनयनेऽभिहिताः । तस्मात्संस्कार्यमातरि रजस्वलायां लग्नान्तरसद्भावे च न कार्यमेव चौलादि ।

उपनयने सुमुहूर्तालाभे श्रीशान्तिप्रकारः

लग्नान्तराभावे तु शान्तिप्रकारो वाक्यसारे—

'अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते । श्रियं सम्पूज्य विधिवत्ततो मङ्गलमाचरेत् ॥
हैमीं मापमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत् ।
प्रत्यृचं पायसं हुत्वाऽभिषिच्य हितमाचरेत् ॥' इति ।

श्रीशान्तेरपवादः आपदादौ

अस्याप्यपवादस्तत्रैव—'उपवासेन शुध्यन्ति नार्यः सद्यो रजस्वलाः । एकाकिन्यो विवाहादौ देशभङ्गेषु चापदि ॥' इति । एतच्च पद्यं वक्तुमनुचितम्, मुहूर्तविचारार्थं प्रवृत्तत्वात् । ग्रन्थकर्तुर्यतोऽत्र न कश्चिन्मुहूर्तविचारः प्रतिपाद्य इति । परन्तु सकलजन-प्रसिद्धः शास्त्रार्थो भवितुं युक्तः ॥ ५८ ॥

(इति सपरिकरो व्रतबन्धकालादि विचारः समाप्तः)

हिन्दी—नान्दीश्राद्ध के बाद यदि बालक की माता रजस्वला हो जाय और उसके बाद दूसरा लग्न (मुहूर्त) न मिलता हो तो उसी दिन शास्त्रोक्त विधि के अनुसार शान्ति करके चूड़ाकर्म, व्रतबन्ध एवं विवाह आदि संस्कार सम्पन्न करना चाहिए। बिना शान्ति किये यदि उक्त कर्म किये जाते हैं तो शुभ नहीं होता।

विशेष—'विवाहोत्सवयज्ञादावारब्धे सूतकं यदि ।
साङ्गं तत्कर्म कर्तव्यं मन्त्रदानादिकं परैः ॥'—ज्यो० नि० ।
'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥'

महर्षि जाबालि के इस वचनानुसार नान्दीश्राद्ध के बाद माता के रजस्वला होने का सूतक व्रतबन्धादि संस्कार में बाधक नहीं होता, अतः उक्त अर्थ व्यर्थ हो जाता है।

अतः इस श्लोक का—'माता के पुष्पवती होने पर नान्दीश्राद्ध के बाद दूसरा कोई मुहूर्त न मिलता हो तो रजस्वला की शान्ति करके कार्यारम्भ करे, अन्यथा शुभ नहीं होता' ऐसा अर्थ किया जाय तो ग्रन्थान्तर के अनुकूल हो जाता है और इसकी पुष्टि में वचन भी उपलब्ध है—

'सङ्कटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते ।
कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥
चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् ॥
अनारब्धविशुध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम् ।
गां दत्वा पञ्चगव्याशी ततः शुद्ध्यति सूतकी ॥'—ज्यो० नि० ॥ ५८ ॥

अथैवं त्रैवर्णिकानां व्रतबन्धमुक्त्वेदानीं केशान्तकर्मादि वक्ष्यति । तत्र विवाहात्प्राक् क्षत्रियाणां छुरिकाबन्धनं विहितं तन्मुहूर्तमनुष्टुभाऽऽह—

विचैत्रव्रतमासादौ विभौमास्ते विभूमिजे ।
छुरिकाबन्धनं शस्तं नृपाणां प्राग्विवाहतः ॥ ५९ ॥

विचैत्रेति । चैत्ररहितेषूपनयनमासेषु माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठेष्वित्यर्थः । आदिशब्देन व्रतबन्धनोक्तपक्षतिथिनक्षत्रलग्नादीनां ग्रहणम् । तस्मिन् कीदृशे ? विभौमास्ते मङ्गलास्तरहिते । गुरुशुक्रयोस्त्वस्तवर्जनं सामान्यनिषेधेन सिद्धत्वान्न पृथगुक्तम् । तथा विभूमिजे मङ्गलवाररहिते सूर्यादिवारे एतादृशे काले सति नृपाणां क्षत्रियाणां विवाहतः पूर्वं छूरिकाया अल्पशस्त्रविशेषस्य कट्यां बन्धनं कार्यमिति शेषः । तच्छस्त्रं हितकारी । उक्तञ्च नारदेन—

'छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे । जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौञ्जीबन्धनऋक्षेषु भौमवर्जितवासरे ॥ व्रतलग्नोदये कर्त्तुरष्टमोदयवर्जिते । धनत्रिकोणगैः सौम्यैः पापैर्व्यरिपुत्रिगैः ॥

छुरिकाबन्धनं कार्यमर्चयित्वा सुरान् पितॄन् ।
अर्चयेच्छुरिकां सद्म देवतानां च सन्निधौ ॥
ततः सुलग्ने बध्नीयात्कट्यां लक्षणसंयुताम् ॥' इति ।

लक्षणानि नारदवराहाभ्यामुक्तानि, ग्रन्थभूयस्त्वभयात्सम्प्रदायव्याख्यागम्यत्वाच्चास्माभिर्नोक्तानि । अत्र 'प्राग्विवाहतः' इत्युक्तेरवधिनिश्चयात्समावर्तनानन्तरं छूरिकाबन्धनं कार्यम् । विवाहभूषणत्वात्तस्याः । यदि यज्ञोपवीतानन्तरमेव चिकीर्षितं स्यात् तदोपनयनानन्तरं कार्यमित्येव ब्रूयात् । ग्रन्थकर्त्रा तु नारदोक्तक्रममङ्गीकृत्यैवमुक्तम् । 'तत्र—'पाठक्रमो बलीयान्' इति समाधिः ॥ ५९ ॥

हिन्दी—यज्ञोपवीत हो जाने के बाद विवाह होने से पूर्व चैत्र को छोड़कर व्रतबन्ध के मासादि (मास, तिथि, वार एवं नक्षत्रादि) में भौमास्त और रविवार को छोड़कर अन्य वारों में क्षत्रियों का छुरिकाबन्धन (कमर में कटार या कृपाण बाँधना) शुभ होता है ॥ ५९ ॥

अथ केशान्तसमावर्तनमुहूर्तमनुष्टुभाऽऽह—

केशान्तं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम् ।
व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥ ६० ॥

इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्त्तचिन्तामणौ
संस्कारप्रकरणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

केशान्तमिति । षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे 'चूडा वर्षात्तृतीयात्प्रभवति' इत्यादिना कथितशुभदिवसे गोदानापरपर्यायं केशान्तसञ्ज्ञं हि कर्म शुभं स्यात् ।

अथ वर्णभेदेन गोदानपदप्रवृत्तिनिमित्तं तत्कालाश्च

गावः केशा दीयन्ते खण्ड्यन्ते यस्मिन्निति व्युत्पत्तिः । यदाह—'केशान्तं षोडशे वर्षे कुर्याच्चौलोक्तभादिके ।' इति । महेश्वरोऽपि—'कर्म केशान्तसञ्ज्ञं हि वर्षे स्मृतं षोडशे चौलकर्मोक्तधिष्ण्यादिके' इति । षोडश इत्येतद् ब्राह्मणविषयं द्रष्टव्यम् । क्षत्रियविशोस्तु द्वाविंशतिचतुर्विंशतितमवर्षयोः केशान्तमित्यर्थः । तदुक्तं मनुना—'केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥' इति ।

महानाम्नीमहाव्रतोपनिषद्व्रतगोदानव्रतानि क्रमेण कार्याणि

अत्र गोदानस्य महानाम्न्यादि व्रतपूर्वकत्वात्तानि प्रागनुष्ठाय ततो गोदानं विधेयमिति। यदाहाश्वलायनः—'प्रथमं स्यान्महानाम्नी द्वितीयं च महाव्रतम्। तृतीयं स्यादुपनिषद्गोदानं च ततः परम्॥' इति। अतो जन्मतस्त्रयोदशे वर्षे महानाम्नी, चतुर्दशे महाव्रतं, पञ्चदशे उपनिषद्व्रतं, षोडशे गोदानमिति उक्तम्। एवं क्षत्रियविशोरप्युक्तं गोदानात्प्राक् वर्षचतुष्टयं क्रमेण महानाम्न्यादि भवति। अत्रापि मुहूर्तविचारश्चौलवदेव। तदुक्तं श्रीधरीये—'तिथिनक्षत्रवाराश्च वर्गोदयनिरीक्षणम्। चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च॥' इति। यदाह पुनर्दैवादतीतकालानि महानाम्न्यादिव्रतानि स्युस्तदा समावर्तनेन सह कार्याणि।

अथ समावर्तनकालः

व्रतोक्तेति। हि निश्चये, व्रतं यज्ञोपवीतम्, तत्र विहितदिवसे। आदिशब्देन वारनक्षत्रलग्नांशेषु सत्सु समावर्त्तनमिष्यते। यदाह—'गुरुशुद्धिं विना काले व्रतोक्ते व्रतमोक्षणम्।' इति। महेश्वरोऽपि—'खेचरज्ञैर्व्रतानां विसर्गोदितं कर्म तद्व्रतोक्ते च धिष्ण्यादिके' इति। सुरेश्वरोऽपि—'विभौमभानुजे वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते। चन्द्रतारादिशुद्धौ च स्यात्समावर्त्तनक्रिया॥' इति। यत्तु—'क्षौरोदितर्क्षादिविलग्नयोगे मौञ्जीविमोक्षः शुभदो द्विजानाम्।' इति दीपिकारादिभिरुक्तं तत् स्वदेशविषयम्। विशेषो नारदोक्तः—

'अथोत्तरायणे जीवशुक्रयोर्दृश्यमानयोः। द्विजातीनां गुरोर्गेहान्निवृत्तानां यतात्मनाम्॥
चित्रोत्तरादितीज्येन्दुहरिमित्रविधातृषु। मेषेऽर्केन्दुज्ञार्यशुक्रवारलग्नांशकेष्वपि॥
अथवा वस्त्रनक्षत्रवारलग्नांशकेष्वपि। प्रतिपत्पर्वरिक्तामामष्टमीं च दिनक्षयम्॥
हित्वान्यदिवसे कार्यं समावर्तनमुण्डनम्।'

अत्र कश्यपेन चैत्रो वर्जितः—'चैत्रमासविसृष्टेषु माघादिषु च पञ्चसु॥' इति तदुक्तेः।

गोदानविवाहमध्ये समावर्तनं कार्यम्

एतच्च गोदानानन्तरं विवाहात्प्राक् कार्यमित्याह वसिष्ठः—'अधीत्य वेदांश्च तदर्थशास्त्राण्यभ्यस्य लब्ध्वा स्वगुरोरनुज्ञाम्। कुर्यात् समावर्त्तनकर्म पश्चाद् गोदानतः पाणिनिपीडनात्प्राक्॥'

द्वितीयविवाहो द्वितीये वर्षे न

तत्रापि सत्यावश्यकत्वे द्वितीयवर्षे न कार्यमेव। तदुक्तं ग्रन्थान्तरे—'वधूप्रवेशं व्रतमोचनं च पुंसः पुनर्दारपरिग्रहं च। नाब्दे द्वितीये विदधीत विद्वान् वदन्ति गर्गात्रिवसिष्ठमुख्याः॥' इति। स्त्रीमरणानन्तरं पुनर्विवाहो द्वितीये वर्षे न भवतीत्यर्थः। पूर्वविवाहानन्तरं द्वितीयविवाहो द्वितीयवर्षे न भवतीति कस्यचिद्व्याख्यानमपाकृतम्। 'प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च। विषमे परिवत्सरे भवेद्युगलं चैव मृतिप्रदं भवेत्॥' इति सङ्ग्रहकारवचनादिति शिवम्॥ ६०॥

संस्कारप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने खलु संस्कृतिप्रकरणं पूर्णं सदानन्ददम् ।।

इति श्रीविद्वद्वरदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां सपरिकरं संस्कारप्रकरणं समाप्तम् ।। ५ ।।

हिन्दी—जन्म से सोलहवें वर्ष में मुण्डन में कहे हुए मुहूर्तों में (५।२९ श्लो० में उक्त) केशान्त-कर्म शुभ होता है। उपनयनानन्तर ब्रह्मचर्य-पालन के बाद जो केशच्छेदन होता है, उसे केशान्त-कर्म कहते हैं। ब्राह्मण का १६वें वर्ष में, क्षत्रिय का २२वें वर्ष में, वैश्य का २४वें वर्ष में केशान्त-कर्म करने का विधान है। व्रतबन्ध में कहे गये (५।३९ श्लो० में उक्त) दिन, तिथि एवं नक्षत्रादि में समावर्तन-कर्म शुभ होता है ।। ६० ।।

श्रीधर्मदत्तद्विवेदी-तनूज श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी-कृत संस्कार-प्रकरण पर 'मणिप्रदीप' नामक हिन्दी टीका समाप्त ।। ५ ।।
